संहिता एवं ग ह्यसूत्र
(Samhita & Grahyasutra)

Paper-VII (Option - D)

एम. ए. संस्कृत ;उत्तरा(द्ध

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक—१२४ ००१

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK - 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A -45 Naraina, Phase-1, New Delhi-110028.

विषय-सूची

न्दपज . ८ ;एकक - १द्ध

भूमिका ५-१४

अथर्ववेद सूत्तफ

१. रुधिर ाव निवर्तनम् ;१.१७द्ध १५
२. महद्ब्रह्म ;१.३२द्ध १८
३. परमधाम ;वेनसूत्तफम् ;२.१द्ध २१
४. कृमिनाशनम् ;२.३२द्ध २५
५. दीर्घायु प्राप्ति ;३.११द्ध २६
६. ब्रह्मौदनम् ;४.३४द्ध ३०
७. वाजिनीवान्_षभः ;४.३८द्ध ३४

न्दपज . ष ;एकक - २द्ध

अथर्ववेद सूत्तफ

८. ब्रह्मगवी ;५.१८द्ध ३६
९. तक्मनाशनम् ;५.२२द्ध ४०
१०. अरिृक्षयणम् ;६.२७द्ध ४४
११. अभययाचनम् ;६.५०द्ध ४५
१२. वेफवलपति ;पतिवशीकरणद्ध ;७.३८-३९द्ध ४६
१३. ब्रह्मचारिसूत्तफम् ;११.५द्ध ४७

न्दपज . ष्ष ;एकक - ३द्ध

अथर्ववेद सूत्तफ

१४. रोहित सूक्तम् ;१३.१, १-१०द्ध ५२
१५. सूर्यासूत्तफम् ;१४.१.१९द्ध ५७
१६. विषासहि सूत्तफम् ;१७.१द्ध ६२
१७. रात्रि सूक्तम् ;१९.५०द्ध ७९
१८. दुःस्वप्ननाशनम् ;१९.५७द्ध ८२
१९. वुफन्तापसूक्तम् ;२०.१२७द्ध ८५
२०. स्वराजपुनः स्थापन सूक्त ;३.३द्ध ८८

न्दपज . ष्ट ;एकक - ४द्ध

आश्वलायन ग ह्यसूत्रम्

वेदा - भूमिका ९१
१. प्रथमो{ध्यायः १२९
२. द्वितीयो{ध्यायः १९५

न्दपज . ट ;एकक - ५द्ध

पारस्कर ग ह्यसूत्रम्

१. द्वितीयकाण्डम् २२३

Syllabus (ikBÔØe)

Option – D, Paper - VII

lafgrk ,oa x`álw=k (Samhita & Grhyasutra)

vFkoZosn & lwÙkQ (Atharvaveda Hymns)

Unit-I (,dd&1) % 1–#fèkjÏkofuorZue~ (1–17)] 2–egn~czã (1–32)] 3–i jeèkke (osulwÙkQe~ (2–1)] 4 Ñfeuk'kue~ (2–32)] 5–nh?kkZ;qizkfIr (3–11)] 6–czãkShue~ (4–34)] 7–dkfuhdku~Í"kHk% (4–38) 20

Unit-II (,dd&2) % 8–czãxoh (5–18)] 9–rDeuk'kue~ (5–22)] 10–vfj'{k;.ke~ (Omens) (6–27)] 11–vHk;;kpue~ (Driving away posts) (6–50)] 12–osQoyifr (ifro'khdj.k) (7–38&39)] 13–czãpkfjlwÙkQe~ (11–5) 20

Unit-III (,dd&3) % 14–jksfgrlwDre~ (13–1] 1&10)] 15–lw;kZlwÙkQe~ (14–1] 1&16)] 16–fo"kklfglwÙkQe~ (17–1)] 17–jkf=klwDre~ (19–50)] 18–nq%LoIuuk'kue~ (19–57)] 19–oqQUrkilwDre~ (20–127) 20

Unit-IV (,dd & 4) % vk'oyk;u x`álw=ke~ (Asvalayana Grhyasutra) vè;k; 1&2 20

Unit-V (,dd & 5) % ikjLdj x`álw=ke~ (Paraskara Grhyasutra) vè;k; 1 dk.M 2 20

Guidelines:-

Question Paper should be set in Sanskrit & English

Unit I, II & III

(i) Explanations of three mantras out of five carrying 5 marks each should be asked from each unit. 5 ×3×3 = 45

(ii) One critical question out of three carrying 15 marks should be asked (Covering all three units) 15×1 = 15

Unit IV & V

(iii) Explanations of two sutras out of four carrying 5 marks each should be asked from each unit 5×2×2 = 20

(iv) One critical question out of two carrying 10 marks each should be sked from each unit. 10×2=20

Note: Question/questions worth 20 marks is/are required to be answered in Sanskrit.

करवेफ हमें बहका रहा हैऋ किन्तु सत्य तो सत्य है, जो उसे जानता है, वह तो व्यत्तफ करने का प्रयास करेगा ही। वेद में_षियों ने अपनी सांवेफतिक भाषा में ;जो उस समय सहज ग्राह्य रही होगीद्ध उपयोगी बातें बतलायी हैं। हमारी बु(जितना समझ पाए, उसका लाभ उठाएऋ किन्तु जो बातें हम समझ नहीं पाते, उन्हें किन्हीं हीन परिकल्पनाओं से जोड़ना उचित नहीं। दूसरी बात यह है कि जादू शब्द हमेशा बुरे अर्थों में ही प्रयुत्तफ नहीं होता। यदि कोई बालक या व्यत्तिफ किसी भी प्रकार को ई उचित बात समझ नहीं रहा है, ऐसे में कोई मनोवैज्ञानिक मेधा-सम्प व्यत्तिफ उसे सहमत कर ले, तो लोग हर्षित होकर उठते हैं वाह! इसने तो जादू कर दिया। माँ का-संतो का अपनत्व भरा व्यवहार ऐसे जादू करता ही रहता है। उपचार प(तियों में आज भी अनेक प्रक्रियाएँ जादू जैसी लगती हैं। होम्योपैथी में रसायन विज्ञान ;कौमिस्ट्रीद्ध वेफ हिसाब से देखें, तो १००० शत्तिफ ;पौटैन्सीद्ध की दवा में एक घन सेन्टीमीटर द्रव में मुश्किल से ओषधि का एक कण ;मालीक्यूलद्ध आता है। उस द्रव की छोटी बूँद में तो दवा वुफछ भी नहीं रह जाती, पिफर व अिसर कैसे करती है? यह बात समझ में न आने से जादू जैसी लगे भले, किन्तु है तो एक सूक्ष्म विज्ञान वेफ अनुशसन में ही। इसी प्रकार एक्सरे, इंपफारैड, अल्ट्रा वायलेट एवं लेसर किरणों किरणों से किया जाने वाला उपचार अज्ञानियों को जादू जैसा लगे भले ही, किन्तु है तो वह विज्ञान सम्मत प्रक्रिया ही।

वेदकाल में ऐसी सूक्ष्म चिकित्साओं की श्रेणी में प्राण तथा मन्त्र की सूक्ष्म धाराओं का प्रयोग सहज ही किया जाता रहा है। वे शत्तिफयाँ पवित्र जीने वाले, प्रकृति से संसर्ग में रहने वाले तपस्वी स्तर वेफ व्यक्तियों को सहज उपलब्ध रहती थीं। अतः वे ओषधियों, मणिओं आदि वेफ साथ उन सूक्ष्म धाराओं को संयुत्तफ करेक उपचार किया करते थे। आज वह प्रक्रिया हमारे लिए दुरूह हो गयी है, तो भी उसे नकारा नहीं जा सकता। अथर्ववेद में ऐसे प्रसंग भी पर्याप्त है। मन्त्रार्थों में ऐसे प्रसंगों को चेतना विज्ञान की ऐसी धाराएँ मानकर चला गया है, जो पिफलहाल स्पष्ट नहीं हो पायी हैं।

दुर्बोध शब्दावली—अथर्ववेद में अनेक ऐसे मन्त्र हैं, जिनवेफ अर्थ एवं उद्देश्य तो सहज ही स्पष्ट हो जाते हैं, किन्तु उनमें जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, उनवेफ अर्थ खोजे नहीं मिलते। निरुत्तफकार यास्क भी उस संदर्भ में मौन है। ताबुव एवं तस्तुव वेफ सर्पविषनाश की बात बहुत स्पष्टता से कही गयी है, किन्तु ये क्या हैं? अब तक किसी व्याख्याकार की समझ में नहीं आया। इसी प्रकार वेफ वुफछ शब्द हैं—ख गल, विशपफ, काबव, कर्शपफ आदि। ओषधि प्रयोगों में अनेक ऐसी ओषधियों का वर्णन किया है, जिनका उल्लेख किसी भैषज्यग्रन्थं में नहीं मिलता, जैसे अरंघुष अरुधती, उपजीका, अ वार आदि। मणियों वेफ संदर्भ में भी जंगिड़ मणि, प्रतिसरमणि अस्त तमणि की भावात्मक व्याख्या करवेफ ही चुप रह जाना पड़ता है। आलंकारिक, सांवेफतिक शब्दावली जैसे-कोकयातु ;चद्रवाक पक्षी जैसी कामव त्तिद्ध, सुर्पायातु ;गरुड़ जैसा दर्पद्ध, श्वयातु ;वुफत्ते की तरह जातिद्रोहद्ध आदि को यथा स्थान स्पष्ट किया गया है।

अथर्ववेद २०वें काण्ड वेफ सूत्तफ क्र १२७ से क्र० १३६ तक सूत्तफों को **वुफन्ताप सूत्तफ** कहते हैं। वुफछ विद्वान् इन्हे 'खिल' ;प्रक्षिप्तद्ध मानते हैंऋ किन्तु कालान्तर में इन्हें संहिता का ही अंग स्वीकार कर लिया गया है। आचार्य सायण वेफ भाष्य में इन सूत्तफों पर भाष्य प्राप्त नहीं हैं, अथर्ववेद वेफ ही वुफछ अन्य शूत्तफों पर भी अनेक भाष्य प्राप्त नहीं हैं। हो सकता है कि उनवेफ भाष्य वेफ वुफछ अंश काल-प्रभाव से नष्ट हो गये हों? जो भी हो किन्तु अब वे सभी मान्यता प्राप्त संहिताओं में है तथा अध्येताओं-विद्वानों वेफ लिए चुर्नाती भरे आकर्षण बने हुए हैं। सभी नक उन्हें दुरूह-दुर्बोध माना है। गोपथ ब्राह्मण, उत्तरभाग, प्रपाठक ६ण् कण्डिका १२.४ मे वुफन्ताप का अर्थ **'वुफयान् तप्यन्ते'** वुफत्सित-निन्दित ;पापोंद्ध को तापित ;तपाकर भस्मद्ध करने वाला बतलाया गया है। इससवेफ यज्ञानुष्ठान कर्त्ता वेफ पापों को भस्म किया जाता है। वैतमान सूत्र ;६.२द्ध वेफ अनुसार इसका प्रयोग सोयागों वेफ छठवें दिन 'प ष्ठय्' स्तुतियों वेफ रूप में किया गया है। सूत्रकार ने इस सूत्तफ समुच्चय वेफ सूत्तफों को इस प्रकार अलग-अलग विभागों में विभत्तफ किया है— सू० क्र० १२७-२८ वुफन्तापऋ सू० क्र० १२६,३०,३१,३२ एतश, सू० क्र० १३३ प्रवल्लिका, सू० क्र० १३४ प्रतिराधा, सू० क्र० १३५ अतिवाद तथा सू० क्र० १३६ आहनस्य कहे ये हें।

इन सूत्तफों में गेय पद वाले मंत्रों से लेकर एक-एक शब्द वाले मन्त्र तक हैं। जैसे—प्ररित्रयः ;१२६.८द्ध प दाकवः ;१२६.६द्ध, पाकबलिः, शाकबलिः ;१३१.१५-१६द्ध आदि।

भारत की_षि-परम्परा में यह कोई अनहोनी बात नहीं है।। तत्त्वदर्शी_षियों ने तो उच्चारण

से वेदमंत्रों वेफ अर्थ भली प्रकार प्रकट हो सकते हैं। किसी एक परम्परा में प्रयुत्तफ प्रयोगों तक उसे सीमाब(करना उचित नहीं लगता, अस्तु, प्रस्तुत वेदार्थ में परम्परा वेफ साथ व्यापक प्रयोगों को समाहित रखने का प्रयास किया गया है।

ब्रह्मजाया—अथर्व० ५.१७ में देवता ब्रह्मजाया का वर्णन है। जाया का सीधा अर्थ पत्नी होता है। ब्रह्म की पत्नी अथवा ब्राह्मण की पत्नी वेफ संदर्भ से संगति ठीक-ठीक बैठती नहीं। उसे **'ब्रह्मविद्या'** वेफ संदर्भ में लेने से मंत्रार्थों की गरिमा तथा परम्परागत अर्थ दोनों की संगति ठीक बैठ जाती है।

ब्रह्मगवीः—सूत्तफ ५.१८ वेफ देवता रूप में वर्णित ब्रह्मगवी का अर्थ ब्राह्मण की गाय अधिकांश विद्वान् करते हैं। गौ माता वेफ प्रति श्र(ा तथा उनकी महत्ता बढ़ाने वेफ लिए मंत्रों में वर्णित असामान्य प्रभावों को 'गौ' से जोड़ना उचित भी हैऋ किन्तु मन्त्रों वेफ भाव इस अर्थ वेफ साथ ठीक प्रकार सि(नहीं होते। ब्राह्मण की गाय जो उसको पोषण देती है, वह उसकी निष्ठा-प्रव त्ति है। इसलिए **'ब्रह्मगवी'** का अर्थ **'ब्रह्म व त्ति'** लेने से ही बात बनती है। इसी प्रकार 'शतौदना' गौ, वशा गौ, स्कम्भ आदि वेफ बारे में व्यापक पूर्वाग्रहमुत्तफ होकर ही अर्थ करने पड़े हैं, अध्येताओं को उनसे त ष्टि वेफ साथ नयी द ष्टि भी मिल सवेफगी, ऐसी आशा है। मंत्रों वेफ बीच-बीच में भी आलंकारिक प्रयोगों को टिप्पणियों वेफ माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। जैसे अथर्व० ४.७.३ में रोगी को परामर्श दिया गया है कि भूख वेफ अनुसार करंभ ;औषधियुत्तफ खाद्य का मिश्रणद्ध खाने और पीवपाक ;चर्बी पकानेद्ध विधि का प्रयोग तुम्हें विष प्रभाव से बचा लेगा। चर्बी पकाने की विधि का स्पष्टीकरण आवश्यक है—अन्यथा कोई नाससमझ चर्बी पकाकर उसका करंभ ;मिश्रणद्ध बनाकर शरीरिक विषों से मुत्तिफ चाह सकता है। पाद टिप्पणी में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि भरपूर श्रम, जिससे शरीर की चर्बी गलने लगे, ऐसे प्रयोग को 'पीवपाक' कहा जाना युत्तिफसंगत है। स्थान-स्थान पर ऐसे स्पष्टीकरण देने वाली टिप्पणीयों का संतुलित प्रयोग किया गया है।

वुफछ रहस्यात्मक प्रसंग

वेद यों तो सारे वेफ सारे गूढ़ हैं, उनवेफ मर्म को समझना कठिन है, पिफर भी उनकी भाषा वेफ आधार पर उनवेफ भावों को वुफछ अंशों तक समझ लिया जाता हैऋ किन्तु अथर्ववेद में ऐसे अनेक रहस्यात्मक प्रकरण हैं, जिनको न समझ पाने वेफ कारण भ्रम उत्प होते हैं।

जादू टोने का भ्रम—अथर्ववेद में बाधाओं से बचने तथा दुष्टों वेफ दमन वेफ क्रम में अनेक रहस्यात्मक प्रयोगों का उल्लेख है। वुफछ विदेशी विद्वान् इस आधार पर इसमें जादू-टोना होने का आरोप लगाते हैं, वुफछ लोग इसे दूसरों को हानि पहुँचाने की हीन-विधाओं का समर्थक कहते हैं, किन्तु विवेकपूर्ण समीक्षा से ऐसे सब आरोप निरर्थक सि(हो जाते हैं।

सब जानते हैं, कि संसार में भले-बुरे सभी प्रकार वेफ लोग हैं तथा अच्छे-बुरे सभी तरह वेफ स्थूल-सूक्ष्म प्रवाह भी हैं। स्वयं को सदाचारी बनाकर नीतिनिष्ठ तथा समर्थ बनाना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक है, दुष्टव त्तिओं-दुष्प्रयासों से अपने साथ-साथ कभी-कभी आक्रामक रुख बनाना पड़ता है। रोग से बचने वेफ साथ-साथ रोग पर आक्रमण भी करने पड़ते हैं। दुरुपयोग से तो बु(भी वुफचक्र रचने वाली बन जाती है और सदुपयोग करने से घ णा भी दोषों से बचा लेती है। अस्तु, विकारों तथा विकृत प्रक्रियाओं को नष्ट करने वेफ प्रयासों को हीन प्रक्रिया नहीं कहा जा सकता। उस विद्या का भी विवेकपूर्ण उपयोग समय-समय पर अत्यंत आवश्यक हो जाता है। जादू तो हमारे अज्ञान का परिचायक है। लोग विज्ञान वेफ तथा हाथ की सपफाई वेफ तमाम कौशल दिखाते हैं। समझने वालों वेफ लिए वे कौशल, सुनिश्चित प्रक्रियाएँ हैं और न समझ पाने वालों वेफ लिए जादू हैं।

यदि किसी ने **'इलैक्ट्रोस्टेट'** मशीन न देखी हो और कोई जानकार उसे समझाए कि यहाँ से सादा कागज डालो-उधर से छपा हुआ निकाल लो, तो अनजान व्यत्तिफ यही कहेगा कि जादूगरी

इसी प्रकार वुफछ अर्वाचीन विद्वानों ने मंत्रों वेफ अर्थ आग्रहपूर्वक आध्यात्मिक संदर्भ में ही किये हैं। वुफछ मंत्र जो क्रियापरक हैं, उनवेफ भी आध्यात्मिक अर्थ निकल तो आते हैं, किन्तु मन्त्रार्थों की स्वाभाविकता उससे खंडित होती है। प्रस्तुत भाषानुवाद में मंत्रों की स्वाभाविक धारा को बनाये रखकर, उनवेफ अर्थ करने का प्रयास किया है।

वेदमंत्र अनेकार्थक तो होते ही हैं। आलंकारिक ढंग से, किन्हीं स्थूल वस्तुओं या प्रक्रियाओं वेफ हवाले से गूढ़ रहस्यों को समझना_षियों की विशेषता रही है। द्रष्टाओं वेफ उदाहरण को भी ठीक से समझ पाना बड़ा कठिन होता है। उन्हें भाष्य-शैली में स्पष्ट करना भी कठिन होता है। भाषार्थ शैली में तो यह कार्य और भी दुरूह हो जाता है। पिफर भी यथास्थान टिप्पणियों द्वारा उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है, ताकि अध्येताओं को उन काव्यात्मक अलंकारों वेफ भाव समझने में सुविधा हो इसे वेदभगवान् की कृपा ही कहा जा सकता है।।

मणि—अनेक प्रकार की मणियों का प्रयोग तथा उनकी महत्ता अथर्ववेद वेफ अनेक सूत्तफों में वर्णित है। मणि को तैयार करने, प्राप्त करने तथा धारण करने वेफ स्पष्ट उल्लेख मिलते हैं। मणि सम्बोधन वेद में व्यापक अर्थों में प्रयुत्तफ हुआ है। वनस्पतियों एवं ओषधियों से निर्मित मणिओं का भी उल्लेख है। उन्हें मंत्रशत्तिफ से अनुप्राणित भी किया जाता हैऋ किन्तु वुफछ मणियों को तो दिव्य गुणों-दिव्य शत्तिफयों वेफ रूप में ही मानना पड़ता है। यह परम्परा भारतीय वा ्मय में रही भी है। जैसे रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

'रामनाम मणि दी धरु जीह देहरी द्वार' तथा **'मंत्र महामणि विषय ब्याल वेफ.....'**

उत्तफ पदों में रामनाम एवं मंत्रादि को मणि कहा गया है। अथर्ववेद में भी ाक्त्यमणि ;८.५.३द्ध एवं त्रिसंध्या मणि आदि संबोधन ऐसी ही शत्तिफ बीजरूप मणियों वेफ लिए प्रयुत्तफ प्रतीत होते हैं। मणि प्रसंगो में संदर्भानुसार उनवेफ स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मंत्रार्थ खोलने का प्रयास किया गया है।

मात नाम—मात नाम का उल्लेख सूत्तफ ४.२० वेफ_षि एवं देवता वेफ रूप में किया गया है। वुफछ आचार्यों ने इस सम्बोधन को मंत्रों में वर्णित त्रिसन्ध्या एवं सदम्पुष्पा मणियों से जोड़ा है। हितकारिणी ओषधियों मात नामा ;माता जैसे-प्रभावशालीद्ध को कहना उचित है। पिफर भी विभि मंत्रों में उनवेफ प्रभाव वेफ विवरण वेफ आधार पर उन्हें मात सत्तात्मक दिव्य प्रवाह ही मानना युत्तिफसंगत लगता है। इस अवधारणा वेफ आधार पर मंत्रार्थ स्वाभाविक रूप में सि(हो जाते हैं।

कृत्यादूषण—अनेक सूत्तफों वेफ देवता वेफ रूप में यह सम्बोधन प्रयुत्तफ हुआ। कृत्यादूषण—'कृत्या' अथवा उसवेफ प्रभाव को नष्ट करने वेफ प्रयोग अनेक स्थानों पर आये हैं। 'कृत्य' का अर्थ होता है, करने योग्य क्रिया और कृत्या दूषण का अर्थ हुआ किये हुए की प्रतिक्रिया। इस आशय से 'कृत्या' का प्रयोग भले-बुरे दोनों अर्थों में किया जा सकता है, किन्तु 'कृत्या' शब्द का प्रयोग किसी हानिकारक मारक शत्तिफ वेफ रूप में ही किया जाता रहा है। शत्रुनाश वेफ लिए 'कृत्या' प्रयोग तो नि ित रूप से 'मारक' संकल्प वेफ साथ किये गये कार्यों वेफ वा छित प्रतिपफलों वेफ साथ वुफछ अवा छित पफल भी निकल पड़ते हैं, उन्हें भी 'कृत्या' कह सकते हैं। जैसे-समुद्र मन्थन रत्नों की प्राप्ति वेफ संकल्प वेफ साथ किया गया थाऋ किन्तु उससे हलाहल विष भी निकल पड़ा, अच्छे उत्पादन वेफ प्रयास में पैफक्ट्रियों से प्रदूषण भी निकल पड़ता है। मनुष्य में कर्म संकल्प एवं कर्मशत्तिफ वेफ विकास वेफ लिए काया, इन्द्रियाँ तथा कामनाएँ आवश्यक हैं। उनवेफ इष्ट प्रयोगों वेफ साथ अनिष्ट प्रयोग भी होने लगते हैं, उन्हें भी 'कृत्या' कह सकते हैं। प्रजनन द्वारा स ष्टि कार्य आगे बढ़ाने वेफ लिए प्रदत्त कामशत्तिफ, कामवासना बनकर अनिष्टकारी बन जाती है, उसे भी 'कृत्या' कह सकते हैं। इस प्रकार कृत्या वेफ स्थूल-सूक्ष्म अगणित स्वरूप सि(हो सकते हैं। किसी उपजी 'कृत्या' अथवा 'कृत्यादूषण' का शमन आवश्यक हो जाता है। वेद द्वारा कृत्या निवारण को इसी प्रकार वेफ व्यापक संदर्भ में लेने

वेदार्थो को खोलने में_षि, देवता एवं छन्दों की अवधारणा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अथर्ववेद वेफ_षि, देवता एवं छन्दों की विशिष्टता पर एक द ष्टि डाल लेना उपयुत्तफ होगा।

_षि—अथर्ववेद वेफ अधिकांश सूत्तफों वेफ_षि 'अथर्वा' ;अविचल प्रज्ञायुत्तफ-स्थिरप्रज्ञद्ध_षि हैं। अन्य अनेक सूत्तफों वेफ_षियों वेफ साथ भी अथर्वा का नाम संयुत्तफ है, जैसे अथर्वाचार्य, अथर्वाकृति, अथर्वाि रा, भ ग्वि रा ब्रह्मा आदि। अथर्ववेद वेफ_षियों में बहुत से ऐसे नाम हैं, जो व्यत्तिफवाचक नहीं, भाववाचक-अशरीरी लगते हैं, जैसे नारायण, ब्रह्मा, भुवन, भुवन-साधन, भर्ग, आयु, यक्ष्मानाश, सूर्या, सावित्री आदि। स्पष्ट है कि मन्त्रद्रष्टा ;मन्त्रों वेफ प्रथम प्राप्तकर्त्ताद्ध ने जिस चेतन धारा वेफ साथ एकात्मता स्थापित करवेफ मंत्र प्राप्त किए, उसी सचेतन दिव्य धारा को_षि माना, स्वयं को नहीं। उन्हें वे चेतन धाराएँ मूर्तिमान् व्यत्तिफत्व्युत्तफ प्रतीत होती रही होंगी।

देवता—अथर्ववेद में देवताओं की संख्या अन्य वेदों की अपेक्षा दोगुनीं से भी अधिक है। इस लिए भी है, कि इसवेफ वर्ण्य विषय बहुत अधिक हैं, जिसे लक्ष्य करवेफ मंत्र कहा जाता है, उसे देवता कहते हैं। अतः उनका भाववाचक होना, तो आम बात है, विंफतु अथर्ववेद में देवताओं वेफ संबोधन वुफछ विचित्रता लिए हुए हैं, जैसे अज ;अजन्माद्ध, मात नामा, ईर्ष्योपनयन, यक्ष्मनाशन, कृत्यादूषण, कालात्मा, कामात्मा, शतौदनागौ, सप्त_षिगण, सभा आदि।

मन्त्रार्थों वेफ संदर्भ में जहाँ देवताओं की अवधारणा स्पष्ट करने की आवश्यकता अनुभव की गयी है, वहाँ उनको स्पष्ट करने का प्रयास किया है, आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ लगा दी गई हैं।

छन्द—अथर्ववेद में छन्दों की विविधता भी अन्य वेदों की अपेक्षा बहुत अधिक है। अनेक छन्द ऐसे हैं, जिनका उल्लेख छन्दः शाह वेफ उपलब्ध ग्रन्थों में नहीं मिलता। वुफछ छन्द ऐसे हैं, जिन्हें कई छन्दों को मिलाकर रचा गया है। संभवतः_षि को अपनी अभिव्यत्तिफ वेफ लिए ऐसा करना आवश्यक हो गया होगा। **वुफन्ताप सूत्तफ** ;काण्ड २० सू० १२६द्ध में तो मन्त्रांश हैं और कहीं पर तो एक-एक शब्द वेफ ही मंत्र हैं। उन्हें छन्दों की किसी स्थापित धारा में प्रायः नहीं लिया जा सकता, उनवेफ अर्थों का बोध भी दुरूह है।

मंत्रार्थ की शैली

अथर्ववेद का सूत्र ग्रंथ 'कौशिक सूत्र' है। उनमें मंत्रों वेफ विशिष्ट प्रयोगों का उल्लेख किया गया है। आचार्य सायण ने मंत्रों वेफ अर्थ बहुधा कौशिक सूत्र में वर्णित उनवेफ प्रयोगों वेफ आधार पर किये हैं। आचार्य सायण की प्रतिभा एवं महत्ता को नमन करते हुए भी कहना पड़ता है कि मंत्रार्थ की यह शैली सटीक नहीं है। किसी मन्त्र का अर्थ अलग बात है तथा उसका उपयोग किसी विशिष्ट प्रक्रिया में किया जाना वुफछ और ही बात है। जैसे-पुरुष सूत्तफ वेफ मन्त्रों से षोडशोपचार पूजन करने की परम्परा है। सूत्तफ में वर्णित परमपुरुष परमात्मा की विराट् सत्ता का चितंन करते हुए पूजन की क्रियाएँ सम्प करना बिल्वुफल ठीक हैऋ किन्तु यदि विभि मन्त्रों वेफ अर्थ उनवेफ साथ की जाने वाली क्रियाओं वेफ अनुसार किया जायेगा, तो पुरुष सूत्तफ वेफ साथ न्याय नहीं हो सकता। **'नाभ्या{सीद् अन्तरिक्षं'** मंत्र का अर्थ नैवैद्य चढ़ाने की क्रियापरक कैसे हो सकता है? **'सप्तास्यासन्परिधयहित्रऋ सप्त समिधः कृताः'** मंत्र से परिक्रमापरक अर्थ कैसे निकलेगा?

सभी लोग जानते हैं कि राष्ट्रीय-ध्वज पफहराते ही सभी लोग सलामी देते हुए राष्ट्रगान गाते हैं। इस आधार पर यदि कोई व्यत्तिफ राष्ट्रगान का अर्थ झण्डा पफहराने तथा सलामी देने की क्रियापरक करने लगे, तो बात कैसे बनेगी? झण्डे की सलामी की प्रक्रिया वेफ साथ राष्ट्रगान गाने की परम्परा सही होते हुए भी, उसका अर्थ उस प्रक्रिया से अलग ही होगा। अस्तु, अथर्ववेद वेफ मंत्रार्थ में कौशिक सूत्र में वर्णित प्रयोगपरक अर्थों की ओर जबरदस्ती मोड़ना उचित प्रतीत नहीं होता।

काण्ड में ८ मन्त्र हैं। षष्ठ काण्ड वेफ प्रत्येक सूत्तफ में कम से कम ३ मन्त्र हैं। सप्तम काण्ड में अधिकांशतः सूत्तफ १ या २ मन्त्र वेफ ही हैं।

;२द्ध द्वितीय भाग ;८ से १२ काण्डद्ध—ये सभी काण्ड बड़े-बड़े सूत्तफों वाले हैं, परंतु प्रत्येक काण्ड एवं सूत्तफों वेफ विषय भि -भि विषयों वाले हैं। १२वें काण्ड वेफ प्रारम्भ में प थ्वी-सूत्तफ है, जो ६३ मन्त्रों वाला है, जिसमें भौगोलिक परिद श्यों एवं राजनैतिक सि(ांतों का वर्णन है।

;३द्ध त तीय भाग ;१३ से १८ काण्डद्ध—इस भाग वेफ प्रत्येक काण्डों वेफ सूत्तफों में विषयों की एकरूपता है। १३वें काण्ड में अध्यात्म विषयक मन्त्र है। १४वें काण्ड में विवाह विषयक मन्त्र हैं। १५वें काण्ड में व्रात्यों वेफ यज्ञ विषयक आध्यात्मिक मन्त्र हैं। १६वें काण्ड में दुःस्वप्ननाशक मन्त्र हैं। १७ वाँ ३० मन्त्रों वाला एक सूत्तफात्मक है, जिसमें सम्मोहन मन्त्र है। १८वें काण्ड में अन्त्येष्टि एवं पित मेध विषयक मन्त्र है।

;४द्ध चतुर्थ भाग ;१६ से २० काण्डद्ध—१६वें काण्ड में भैषज्य, राष्ट्रव ि(तथा अध्यात्म विषयक मन्त्र हैं। २०वें कांड में सोमयोग विषयक मन्त्र हैं तथा अधिकांश मन्त्र_ग्वेद वेफ हैं अथवा_ग्वेद की _चाओं से साम्य रखते हैं।

;१द्ध भेषज अर्थात् रोग दूर करने वाली ओषधिओं का प्रतिपादन ;२द्ध अम त अर्थात् म त्यु को दूर करने वेफ साधन का प्रतिपादन और ;३द्ध ब्रह्मा अर्थात् ब हद-सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का प्रतिपादन। एक वाक्य में अथर्ववेद वेफ मंत्रों का माहात्म्य अथवा वर्ण्यविषय का प्रतिपादन करते हुए अथर्ववेद परिशिष्टिकार ने लिखा है—

अथर्वमंत्रसम्प्राप्त्या सर्वसि(िर्भविष्यति ;अथवा. परि. २.५द्ध अर्थात् अथर्ववेदमंत्र की सम्प्राप्ति ;सम्यक् ज्ञानद्ध से सब पुरुषार्थ सि(होंगे।

वर्ण्य विषय—अथर्ववेद वेफ वर्ण्य विषयों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। सायणाचार्य ने उसको १४ विभागों में विभत्तफ किया है। बाद में अध्येता विद्वानों की सूची में २६ विषयों का उल्लेख है।

कौशिक सूत्रानुसार अथर्ववेद वेफ १४ वर्ण्य-विषय—१. यज्ञानुष्ठान एवं संस्कार २. पौष्टिक कर्म ३. अनिष्टनिवारण एवं शान्तिकर्म ४. सम ि(५. राजव्यवस्था, ६. अभ्युदय एवं अभीष्टसि(७. शिक्षा ८. सांमनस्य-ऐक्य भाव ६. भैषज्य १०. आभिचारिक प्रयोग ११. हीकल्याण १२. ग ह-सज्जा १३. प्रायश्चित विधान १४. भविष्य कथन। कालान्तर में इन वर्ण्य-विषयों की और विशद विवेचना प्रस्तुत की गई। उस आधार पर अथर्ववेद वेफ उत्तफ १४ विषय बढ़कर २६ हो गये, जो इस प्रकार हैं—

१. पाक यज्ञ २. मेधाजनन प्रयोग ३. ब्रह्मचर्यसि(४. ग्राम नगर संव(न ५. पुत्र-कलत्र, प्रजा-पशु आदि की सम ि(६. सामंजस्य-ऐक्यभाव ७. राजकर्म ७. शत्रुसादन ६. संग्राम विजय १०. शह परिहरण ११. सैन्य-स्तम्भ १२. सैन्य-परिरक्षण १३. जय-पराजय विचार १४. सेनापत्यादिक कर्म, १५. सैन्य भेदनीति, १६. राजा की पुनः स्थापना १७. प्रायश्चित कर्म १८. कृषि आदि संव(न १६. ग हस्थ अभ्युदय २०. भैषज्य कर्म २१. संस्कार २२. सभा-जय साधन २३. व ष्टि-प्रयोग २४. अभ्युदय कर्म २५. वाणिज्य-कर्म २६._ण विमोचन २७. अभिचार निवारण २८. आयुष्य कर्म २६. यज्ञानुष्ठान्।

अथर्ववेद वेफ ये प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं। इनवेफ भी कई अवान्तर भेद-उपभेद हो सकते हैं, जिनकी संख्या बहुत हो सकती है, इन्हें देखकर निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि यह वेद जीवन को समग्रता से जीने, बाधाओं को निरस्त करने एवं सुखशांतिमय प्रगतिशील जीन वेफ सूत्रों की वुफ यिाँ, अपने आप में सँजोये हुए हैं।

_षि, देवता, छन्द

ब. अथर्ववेद प्रातिशाख्य सूत्र ;सं०-विश्वबन्धुद्ध स. अथर्वप्रातिशाख्य ;सं० डॉ० सूर्यकान्तद्ध।

;घद्ध शिक्षा-माण्डूकी शिक्षा।

; द्ध श्रौत सूत्र-वैतान श्रौत सूत्र।

;चद्ध ग ह्य सूत्र-कौशिक ग ह्य सूत्र।

;छद्ध अनुक्रमणी आदि १. अथर्ववेद परिशिष्ट २. चरणव्यूह ३. पंचपटलिका ४. दन्त्यौष्ठ विधि ५. ब हत्सर्वानुक्रमणी ६. नक्षत्रकल्प ७. आंगिरस कल्प ८. शान्तिकल्प ९. चरणव्यूह सूत्र १०. अथर्वप्रायश्चित्त।

;जद्ध उपवेद-१. सर्पवेद २. पिशाचवेद ३. असुरवेद ४. इतिहासवेद ५. पुराणवेद।

अथर्ववेद वेफ भाष्यकार

अथर्ववेद वेफ भाष्यकारों को दो भागों में विभत्तफ किया जा सकता है—१. प्राचीन २. अर्वाचीन।

१. सायण-अथर्ववेद वेफ प्राचीन भाष्यकारों में एकमात्र आचार्य सायण ;१४वीं शताब्दीद्ध का भाष्य ही उपलब्ध होता है, वह भी लगभग दो तिहाई पर ही, एक तिहाई पर उपलब्ध नहीं है। जिस पर सायण भाष्य उपलब्ध नहीं, वे काण्ड हैं—५, ६, १०, १२, १३, १४, १५ तथा १६। इनवेफ अतिरित्तफ ८वें तथा २० वें काण्ड पर सायण भाष्य आंशिक रूप से ही उपलब्ध है।

सायण भाष्य पर आधारित तीन संहिताएँ प्रकाशित हैं—१. निर्णय सागर प्रेस सं. स्व० शंकर पाण्डुरंग पण्डित १८६४.६८ ई० २. सनातन धर्म यन्त्रालय मुरादाबाद ;उ० प्र०द्ध सं० श्री रामचन्द्र शर्मा १६२६ ई० तथा ३. विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर ;पंजाबद्ध सं० श्री विश्वबंधु १६६०-६४ ई०। अर्वाचीन भाष्यकारों में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वान् दोनों है। उनका संक्षिप्त परिचय निम्नांकित है—

१. ग्रिपिफथ—सम्पूर्ण अथर्ववेद का अंग्रेजी अनुवाद आर० टी० एव० ग्रिपिफथ ने दो भागों में बनारस से प्रकाशित किया ;१८६४-६६ ई०।द्ध

२. ह्विटनी—सम्पूर्ण अथर्ववेद का अंग्रेजी अनुवाद उब्ल्यू० डी० ह्विटनी ने किया, जिसका संपादन सी० आर० लानमन ने किया ;१६०५५ ई०द्ध।

३. ब्लूमपफील्ड—अथर्ववेद का अधिकांश भाग अंग्रेजी में एम० ब्लूमपफील्ड ने अनुवादित किया।

४. ल्यूडविश—अथर्ववेद का जर्मन भाषा में अनुवाद ए० ल्यूडविश और जे० ग्रिल ने किया।

५. सातवलेकर—'अथर्ववेद का सुबोध भाष्य' नाम से एक विस्त त भाष्य श्री श्रीपाद्दामोदर सातवलेकर जी ने बड़े आयासपूर्वक सम्प किया।

६. जयदेव विद्यालंकार—पं० जयदेव शर्मा ने अथर्ववेद का भाष्य आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर से प्रकाशित किया।

अथर्ववेद का विषय-विभागक्रम

अथर्ववेद संहिता का विभाग क्रम दो प्रकार से है—१. काण्ड, सूत्तफ तथा मन्त्र और २. काण्ड, अनुवाक, प्रपाठक, सूत्तफ तथा मन्त्र। सम्पूर्ण अथर्ववेद २० काण्डात्मक है। काण्ड, सूत्तफ और मन्त्र का विभाजन ही सुगम और सर्वमान्य प्रतीत होता है। दूसरा काण्ड, अनुवाक, प्रपाठक, सूत्तफ और मन्त्रात्मक विभाजन पारायण ;पाठद्ध की सुविधा वेफ लिए किया गया प्रतीत होता है, जो आज उतना लोकप्रिय नहीं है, न सुविधापूर्ण ही। अथर्ववेद को रचनाक्रम की द ष्टि से चार भागों में बाँटा जा सकता है—

;१द्ध प्रथम भाग—;१ से ७ काण्डद्ध—इस विभाग में छोटे-छोटे सूत्तफ हैं। प्रथम काण्ड वेफ प्रत्येक सूत्तफ में ४ मन्त्र, द्वितीय काण्ड में ५ मंत्र, त तीय काण्ड में ६ मन्त्र, चतुर्थ काण्ड में ७ मन्त्र तथा पंचम

मंत्र वेफ रूप में उपलब्ध है।

२. शौनक संहिता—गोपथ ब्राह्मण तथा आजकल की प्रचलित अथर्व संहिता इसी शौनक शाखा की ही है। इस संहिता में २० काण्ड हैं, जबकि अनेक विद्वान् इसे अष्टादश काण्डात्मक ही मानते हैं। उनका कहना है कि उ ीसवाँ और बीसवाँ काण्ड 'खिल काण्ड' हैं, जो पीछे से अथर्ववेद में सम्मिलित कर लिये गएऋ किन्तु अन्ततः २० काण्डीय संहिता को मान्यता दे दी गयी है।

इसवेफ सूत्तफों वेफ विषय में मत—वैभिन्य है। ब हत्सर्वानुक्रमणी वेफ अनुसार इसमें ७५९ सूत्तफ है, परन्तु वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित संहिता में ७३१ सूत्तफ हैं। कई समीक्षकों ने ७३० सूत्तफ ही माने हैं। वेदाध्ययन परम्परा को गतिशील बनाने में स्वामी गंगेश्वरानन्द जी का अपूर्व योगदान है। उन्होंने चारों वेदों को एक जिल्द में प्रकाशित कराया है, उनवेफ अथर्ववेद में ७३६ सूत्तफ उपलब्ध हैं।

इन सभी संहिताओं की विवेकसम्मत समीक्षा ७५९ सूत्तफ मानने वेफ पक्ष में जाती है। इसका सबसे बड़ा कारण **'ब हत्सर्वानुक्रमणी'** का समर्थन है, साथ ही वेदों तथा वैदिक साहित्य वेफ शोध एवं प्रकाशन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले वाले वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, पंजाब से प्रकाशित सायणाचार्यकृत भाष्यसहित अथर्व संहिता है। इससे पूर्व सन् १९२९ में सनातन धर्म यन्त्रालय, मुरादाबाद से प्रकाशित अथर्व संहिता में भी सूत्तफ की संख्या ७५९ रखी गई है। सामान्यतः अथर्ववेद में ६००० मंत्र होने का उल्लेख पाया जाता है। किसी-किसी संहिता में ५९७९ मंत्र मिलते हैं ;स्वाध्याय मंडल पारडी, बलसाड़ गुजरात-बड़ा टाइप-बड़ी ;प्रमद्धऋ किन्तु प्रचलित संहिता में मंत्र संख्या ५९७७ ही उपलब्ध होती है। इस संहिता का दक्षिण भारत में विशेष प्रचलन है। आचार्य सायण का भाष्य भी इसी संहिता पर उपलब्ध है।

अथर्ववेद की अन्य संहिताएँ

अथर्ववेद की उत्तफ दो प्रमुख संहिताओं वेफ अतिरित्तफ, जिन अन्य सात संहिताओं ;शाखाओंद्ध का उल्लेख मिलता है, वे नाम मात्र वेफ लिए ही हैं। 'मौद' संहिता का उल्लेख महाभाष्य ;४.१.८६द्ध तथा शाबर भाष्य ;१.१.३०द्ध में मिलता है। अथर्ववेद परिशिष्ट में मौद तथा जलद शाखा वालों को पुरोहित न बनाने वेफ रूप में उल्लेख मिलता है। वहाँ इनसे राष्ट्र वेफ विनाश की आशंका व्यत्तफ की गई है। अथर्ववेद की अन्तिम शाखा चारण-वैद्य वेफ विषय में कौशिक सूत्र ;६.३७द्ध की व्याख्या तथा अथर्ववेद परिशिष्ट ;२२.२द्ध से वुफछ जानकारी मिलती है। वायु पुराणानुसार इस संहिता में ६०२९ मन्त्र थेऋ परंतु इस संहिता की कोई प्रति उपलब्ध नहीं। अन्य शाखाएँ तौद, जाजल, ब्रह्मवद तथा देवदर्श वेफवल नामतः प्रसि(हैं, उनका कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता।

अथर्ववेद से सम्ब(साहित्य

अथर्ववेद वेफ ब्राह्मण, उपनिषद्, प्रातिशाख्य, शिक्षा, कल्पसूत्र आदि सभी उपलब्ध होते हैं, उनका वर्गीकृत विभाजन निम्नांकित है—

;कद्ध ब्राह्मण—१. गोपथ २. पैप्पलाद।

;खद्ध उपनिषद्—१. प्रश्न २. मुण्डक ३. माण्डूक्य ४. अथर्वशिरस् ५. अथर्वशिखा ६. ब हज्जाबाल ७. न सिंह तापनी ८. नारद-परिव्राजक ९. सीता १०. शरभ ११. महानारायण १२. रामरहस्य १३. र ा म त ा प न ी १४. शांडिल्य १५. परमहंस परिव्राजक १६. अ पूर्णा १७. सूर्य १८. आत्मन् १९. पाशुपत २०. परब्रह्म २१. त्रिपुरतानी २२. दैवी २३. भावना २४. ब्राह्मा २५. जाबाल २६. गणपति २७. महावाक्य २८. गोपाल तापनी २९. कृष्ण ३०. हयग्रीव ३१. दत्तात्रेय तथा ३२. तरुड़।

;गद्ध प्रातिशाख्य—अ अथर्वप्रातिशाख्य या शौनकीय चतुरध्यायिका ;सं डब्लू० डी० ह्विटनेद्ध

आर्षी संहिता—_षियों वेफ द्वारा परम्परागत प्राप्त मंत्रों वेफ संकलन को 'आर्षी संहिता' कहा जाता है। आजकल काण्ड, सूत्तफ और मंत्रों वेफ विभाजन वाला जो अथर्ववेद उपलब्ध है, जिसे शौनकीय संहिता भी कहा जाता है,_षि संहिता या आर्षी-संहिता ही है।

विधि प्रयोग संहिता—जब मंत्रों का प्रयोग किसी अनुष्ठेय कर्म वेफ लिए किया जाता है, तो एक ही मंत्र को कई पदों में विभत्तफ करवेफ अनुष्ठेय मंत्र का निर्माण कर लिया जाता है, तब ऐसे मंत्रों वेफ संकलन को विधि-प्रयोग संहिता कहते हैं। **विधि प्रयोग संहिता'** का यह प्रथम प्रकार है। इसी भाँति इसवेफ चार प्रकार और होते हैं। द्वितीय प्रकार में नये शब्द मन्त्रों में जोड़े जाते हैं। त तीय प्रकार में किसी विशिष्ट मन्त्र का आवर्त्तन उस सूत्तफ वेफ प्रतिमंत्र वेफ साथ किया जाता है। इस प्रकार सूत्तफ वेफ मंत्रों की संख्या द्विगुणित हो जाती है। चतुर्थ प्रकार में किसी सूत्तफ में आए हुए मंत्रों वेफ क्रम को परिवर्तित कर दिया जाता है। पंचम प्रकार में किसी मंत्र वेफ अर्ध भाग को ही सम्पूर्ण मन्त्र मानकर प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आर्षी-संहिता मूल संहिता है। आचार्य संहिता उसका संक्षिप्तीकरण रूप है और विधि-प्रयोग संहिता उसका विस्त तीकरण रूप।

अथर्ववेद का शाखा विस्तार

अन्य वेदों की तरह 'अथर्ववेद' की भी एकाधिक शाखाओं का उल्लेख मिलता है। सायण भाष्य वेफ उपो(ात, प्रप हृदय, चरण व्यूह ;व्यासकृतद्ध तथा महाभाष्य ;पत लिकृतिद्ध आदि ग्रन्थों में अथर्ववेद की शाखाओं का उल्लेख पाया जाता है। महर्षि पतंजलि वेफ महाभाष्य में अथर्ववेद की 'नौ' शाखाओं का उल्लेख है—**नवधा{{थर्वाणो वेदः** ;म० भा० पस्प० १.१.१द्ध। सर्वानुक्रमणी ;महर्षि कात्यायनकृतद्ध ग्रन्थ में इस संबंध में दो मत उद ध त किये गये हैं। प्रथम मत वेफ अनुसार पन्द्रह शाखाएँ हैं। वेदों की शाखाओं का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ 'चरण व्यूह' में अथर्व संहिता वेफ 'नौ' भेद स्वीकार किये गये हैं, जो इस प्रकार हैं—१. पैप्पल ३. दान्त ३. प्रदान्त ४. स्नात ५. सौत्न ६. ब्रह्मदाबल ७. शौनक ८. देवदर्शत और ९. चारणवैद्य। आचार्य सायण ने भी अपनी अथर्ववेद भाष्यभूमिका में इसकी नौ शाखाएँ ही स्वीकार की हैंऋ परंतु उनवेफ नाम चरण व्यूह में बताए गये नामों से किंचित् भि हैं, वैसे अधिकांश विद्वानों ने आचार्य सायण द्वारा उल्लिखित नामों को प्रामाणिक माना है। वे इस प्रकार हैं—१. पैप्पल २. तौद ३. मौद ४. शौनकीय ५. जाजल ६. जलद ७. ब्रह्मवद ८. देवदर्शी और ९. चारणवैद्य।

इस प्रकार अथर्ववेद की वुफल नौ शाखाएँ प्रसि(हैंऋ किन्तु वर्तमान में दो शाखाओं से सम्ब(संहिता ही उपलब्ध होती है, अन्य सात शाखाओं की संहिताएँ उपलब्ध नहीं होतीं। जो दो शाखाएँ उपलब्ध हैं, उनमें भी एक शौनक संहिता ही आज की प्रचलित संहिता है, दूसरी पैप्पलाद संहिता यदा-कदा किसी पुस्तकालय में ही दर्शनार्थ उपलब्ध होती है, पठन-पाठन हेतु नहीं। इस प्रकार प्रमुख उपलब्ध संहिता शौनकीय ही है, इसवेफ तथा अन्यों वेफ विषय में उपलब्ध संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत है—

१. पिप्पलाद संहिता—'प्रप हृदय' नामक ग्रन्थ में इस संहिता की उपलब्ध जानकारी उपनिब(है। उसवेफ अनुसार इस संहिता वेफ आदि मुनि प्रसि(अध्यात्मवेत्ता 'पिप्पलाद' हैं। बीस काण्डात्मक इस संहिता की एक मात्र प्रति कश्मीर में उपलब्ध हुई, जो शारदा लिपि में थी, जो कश्मीर नरेश ने प्रसि(जर्मन विद्वान् डॉ० राथ को १८८५ में उपहार स्वरूप प्रदान की थी। उसी की पफाटो कॉपी तीन प्रति में सन् १९०१ ई० में डॉ० राथ महोदय ने छपाई थी। महाभाष्य वेफ अनुसार इस संहिता का प्रथम मन्त्र **'श ो देवी रभिष्ट आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि वन्तु नः'** है। छान्दोग्य मंत्र भाष्य में भी इसी मंत्र को पिप्पलाद संहिता का प्रथम मंत्र स्वीकार किया गया है—**'श ो देवी'.....अथर्ववेदादिमन्त्रों{यं पिप्पलादद ष्टः।'** आज कल की प्रचलित संहिता ;शौनकद्ध में यह मंत्र काण्ड वेफ षष्ठ सूत्तफ वेफ पहले

पारत्रिक-आमुष्मिक ;पारलौकिकद्ध पफलदायक होने से दूसरे स्थान पर आते हैं। आचार्य सायण ने तो अपने अथर्ववेदभाष्य की भूमिका में यहाँ तक लिखा है कि आमुष्मिक ;पारलौकिकद्ध पफलदायी वेदत्रयी की व्याख्या वेफ बाद, ऐहिक ;इहलौकिकद्ध और आमुष्मिक दोनों प्रकार वेफ पफल प्रदान करने वाले चतुर्थ वेद ;अथर्ववेदद्ध की व्याख्या करूँगा।

अथर्ववेद वेफ अनेक अभिधान

अथर्ववेद वेफ अनेक अभिधान ;नामद्ध वैदिक वा ्मय में प्राप्त हैं, यथा-अथर्ववेद, ब्रह्मवेद, अम तवेद, आत्मवेद, अंगिरोवेद, अथर्वा िरस वेद, भ ग्वांगिरसवेद आदि। **अथर्व** का निर्वचन प्रस्तुत करते हुए निरुत्तफ का कथन है—'थर्व' धातु वुफटिलता ;थर्व कौटिल्येद्ध, गतिशीलता, हिंसा आदि अर्थों में प्रयुत्तफ होती है। अतएव 'अथर्व' का अर्थ हुआ अवुफटिलता तथा अहिंसाव त्ति से चित्त की स्थिरता प्राप्त करने वाला। 'अथर्वन्' का एक अर्थ अग्नि को उद्बोधित करने वाला 'पुरोहित' भी होता है। सम्भवतः 'अवेस्ता' का 'अथ्रवन्' ;अग्निपूजकद्ध शब्द 'अथर्वन्' का प्रतिनिधित्व करता है।

अथर्ववेद को **'ब्रह्मवेद'** भी कहते हैं। वस्तुतः यह वेद 'यज्ञ-संसद' वेफ प्रमुख 'ब्रह्मा' वेफ लिए चारों वेदों का निष्णात होना विहित है. परन्तु 'अथर्ववेद' की विशेषज्ञता उनवेफ लिए अनिवार्य है क्योंकि **'ब्रह्मवेद'** में वह सब वुफछ है, जो चारों वेदों में प थक्-प थक् प्राप्त होता है। ;**ब्रह्मवेद एव सर्वम्**-गो० ब्रा० १ऋ५.१५द्ध।

अतएव 'ब्रह्मा वेफ ब्रह्मकर्म' की प्रमुखता वेफ कारण इसे 'ब्रह्मवेद' की अन्वर्थ संज्ञा प्राप्त है। गोपथ ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषदादि ग्रन्थों में भी अथर्ववेद को ब्रह्मवेद की संज्ञा प्रदान की गई है।

'अथर्व' की प्राचीन संज्ञा **'अथर्वांगिरस वेद'** भी है। इससे इसका सम्बन्ध 'अथर्व' और अंगिरा' दो_षिवुफलों से संयुत्तफ प्रतीत होता है। वस्तुतः अंगिरावंशीय अथर्वा_षि वेफ द्वारा प्रस्तुत किये जाने वेफ कारण इस वेद को 'अथर्वांगिरस वेद' कहा जाता है। यहाँ पर एक बात और ध्यातव्य है कि अथर्व द ष्ट मन्त्र शान्ति और पुष्टि कर्मयुत्तफ हैं और अंगिरस्-द ष्ट मन्त्र आभिचारिक हैं। प्रथमतः शान्ति-पौष्टिक मन्त्र हैं, बाद में आभिचारिक मन्त्रों का समावेश है। इसलिए अर्थांगिरस ;अथर्व+अंगिरसद्ध संज्ञा सार्थक है।

'अथर्ववेद' को **'भ ग्वांगिरस वेद'** भी कहते हैं। 'भ ग ' अंगिरा वेफ शिष्य थे। अथर्ववेद वेफ प्रचार-प्रसार का प्रमुख श्रेय 'भ गु' को ही प्राप्त है, अतः इसे भ ग्वांगिरस वेद की संज्ञा प्राप्त हुई और सर्वश्रेष्ठता भी **एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भ ग्वंगिरसः** ;गो० ब्रा० १.३.४द्ध।

अथर्ववेद की उत्तफ संज्ञाओं वेफ अतिरित्तफ वुफछ और भी संज्ञाएँ हैं—यथा, **छान्दोवेद** ;छन्दांसि-**अथर्व०** ११.७.२४द्ध, **महीवेद** ;चः साम यजुर्मही—अथर्व० १०.७.१४द्ध, **क्षत्रवेद** ;उवथं..... .....यजु.....साम.....क्षत्रं.....वेद—शत० ब्रा० १४.८.१४.२-४द्ध तथा **भैषज्य वेद ;चः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूमः**—अथर्व० ११.६.१४द्ध। अथर्ववेद वेफ ये सभी अभिधान उसवेफ वर्ण्य विषय को स्पष्ट करते हैं।

तीन संहिताएँ

अथर्ववेदीय कौशिक सूत्र वेफ दारिल-भाष्य में अथर्ववेद की तीन संहिताओं का उल्लेख पाया जाता है, जबकि अन्य तीनों वेदों की एक-एक संहिता ही उपलब्ध होती है, जिसका मुद्रण-प्रकाशन होता है।

दारिल भाष्य में अथर्व की जिन तीन संहिताओं का उल्लेख है, उनवेफ नाम हैं—;१द्ध आर्षी-संहिता ;२द्ध आचार्य संहिता और ;३द्ध विधि-प्रयोग संहिता।

Unit I-III

भूमिका

अथर्ववेद - महत्त्व एवं उपयोगिता

वेद वेफ प्रत्येक विभाग की तरह अथर्ववेद की अपनी वुफछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनवेफ आधार पर अनेक वेदज्ञ उसे अतुलनीय मानते हैं। वेद की अन्य शाखाओं में अपनी-अपनी विशिष्ट दिशाएँ हैं, किन्तु अथर्ववेद तो अपने अंक में मानो जीवन की समग्रता को समेटे हुए है। स ष्टि वेफ गूढ़ रहस्यों, दिव्य प्रार्थनाओं, यज्ञीय प्रयोगों, रोगोपचार, विवाह, प्रजनन, परिवार, समाज-व्यवस्था एवं आत्मरक्षा आदि जीवन वेफ सभी पक्षों का इसमें समावेश है। वेद की अन्य धाराओं में गूढ़ ज्ञान वेफ साथ शु(विज्ञान ;चनतम.`बपमदबमद्ध हैऋ किन्तु अथर्ववेद में ज्ञान-विज्ञान की गूढ़ धाराओं वेफ साथ व्यावहारिक विज्ञान ;एप्लाइड साइंसद्ध भी है।

जीवन को सुखमय तथा दुःखविरहित बनाने वेफ उद्देश्य से_षियों ने जिन यज्ञीय अनुष्ठानों का विधान बनाया है, उनवेफ पूर्ण निष्पादन वेफ निमित्त जिन चार_त्विजों की आवश्यकता बताई है, उनमें से अन्यतम ;प्रमुखद्ध_त्विज् ब्रह्मा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध इसी वेद से है। **पफब्रह्माा** का स्थान यज्ञ-संसद वेफ_त्विजों में प्रधान ;अध्यक्षद्ध है। **'ब्रह्मा'** का दायित्व यज्ञीय नाना विधियों का निरीक्षण तथा त्रुटियों का परिमार्जन करना है। इसवेफ लिए उसको सर्ववेदविद् होना अनिवार्य होता है तथा उसे मनोबल-सम्प भी होना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि तीनों वेदों वेफ द्वारा यज्ञ वेफवल एक पक्ष का संस्कार होता है। **'ब्रह्मा'** मन वेफ द्वारा यज्ञ वेफ दूसरे पक्ष का संस्कार करता है।

ऐतरेय ब्राह्मण वेफ अनुसार यज्ञ सम्पादन वेफ दो मार्ग हैं-वाक् तथा मन। वाक् ;वचनद्ध वेफ द्वारा वेदत्रयी ;क्, यजु, सामद्ध यज्ञ वेफ एक पक्ष को संस्करित करती है, दूसरे पक्ष का संस्कार **'ब्रह्मा'** ब्रह्मदेव ;अथर्ववेदद्ध वेफ द्वारा 'मन' से करता है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि यज्ञ वेफ पूर्ण संस्कार वेफ लिए अर्थवेद की नितान्त आवश्यकता है।

वस्तुतः अथर्ववेद में शान्ति-पुष्टि तथा आभिचारिक-दोनों तरह वेफ अनुष्ठान प्रयोग वर्णित हैं। राजा वेफ लिए इसका विशेष महत्त्व स्वीकार किया गया है। राजा वेफ लिए शान्तिक-पौष्टिक कर्म तथा तुलापुरुषादि महादान की विशेष आवश्यकता पड़ती है। जो अर्थवेद का मुख्य प्रतिपाद्य है। मत्स्य पुराण का कहना है कि पुरोहित को अथर्वमन्त्र तथा ब्राह्मण में पारंगत होना चाहिए। अथर्वपरिशिष्ट में तो यहाँ तक लिखा है कि अथर्ववेद को ज्ञाता शान्तिकर्म का पारगामी ;पुरोहितद्ध जिस राष्ट्र में रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवों से हीन होकर व (को प्राप्त करता है। इसलिए राजा को चाहिए कि वह अथर्ववेदविद् तथा जितेन्द्रिय पुरोहित का दान-सम्मान, सत्कारपूर्वक नित्यप्रति पूजन-अर्चन करे।

अथर्ववेद की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर सम्भवतः वुफछ आचार्यों ने इसे प्रथम वेद वेफ रूप में स्वीकारा है। न्यायम री कर्त्ता जयन्त भट्ट ने लिखा है—**तत्र वेदा त्वारः प्रथमो{थर्ववेदः** ;न्यायम री प ० २३७-२३८ चौ० प्र०द्ध। नागर खण्ड भी इसे आद्यवेद मानते हुए तर्वफ देता है कि सार्वलौकिक कार्यसि(में अथर्व ही मुख्य रूपेण प्रयुत्तफ होता है, इसलिए वह **'आद्य'** कहलाता है। ऐहिक जग्त वेफ लिए पफलदायक होने से भी इसे 'आद्य' कहते होंगे, जबकि अन्य तीनों वेद

न्दपज . ८ ;एकक - 1द्ध

अथर्ववेद सूक्त ;।जींतअंअमकं भ्लउदेद्ध

1. रुधिर ाव निवर्तनम् ;1.17द्ध

तेन शस्त्रघातादिजरुधिरप्रवाहस्य हीरजसः। अतिवर्तनस्य च निवृत्तये प - पर्वणा दण्डेन रुधिरवहनस्थानाभिमन्त्रणम् व्रणमुखे रथ्यापांसुसिकताप्रक्षेपणादिकम् अर्मकपालिकाबन्धनं च इत्येवमादि वुफर्यात्। सूत्रं च-''0अमूर्या' इति। प पर्वणा पांसुसिकताभिः परिकिरति। अर्मकपालिकां बंध्नाति। पाययति'' ;कौसू 26, 9-12द्ध इत्यादि। अर्मकपालिका नाम शुष्कपङ्कमृत्तिका, वेफदारमृत्तिका वा।

संहिता-पाठः

अचमूर्या यन्तिङ्ख यचोषितो हिचरा लोहिङ्खतवाससः।
अचभ्रातङ्खर इव जचामयचस्तिष्ठङ्खन्तु हचतवङ्खर्चसः।।1।।

पद-पाठः

अचमूः याः यन्ङ्खित। यचोषितः हिचरा लोहिङ्खत(वाससः।
अचभ्रातङ्खरः(इव जचामयङ्खः। तिष्ठङ्खन्तु हचतवङ्खर्चसः।।1।।

सायण भाष्यः योषितः स्त्रिया संबन्धिन्यः अमूः पुरतो दृश्यमानाः लोहितवाससः लोहित वर्णवस्त्राः। लोहितवर्णा इत्यर्थः। यद्वा लोहितस्य रुधिरस्य निवासभूताः। ईदृश्यो या हिराः सिराः रजोवननाड : यन्ति गच्छन्ति। व्याधिवशात् सर्वदा प्रवहन्तीत्यर्थः। ताः सिराः क्रियमाणेन अनेन भैषज्यकर्मणा हतवर्चसः हततेजस्काः प्रन रोगवीर्याः सत्यः ति न्तु स्थेयासुः। मा प्रवाक्षुरित्यर्थः। तिष्ठन्तु। तत्र दृ ान्तः-अभ्रातर इव। न विद्यन्ते भ्रातरो यासां ता अभ्रातरः। यथा अभ्रातृका जामयः भगिन्यः। आह च यास्कः-'न जामये भागिन्यै। जामिरन्येऽस्यां जनयन्ति जाम् अपत्यम्। ;या 3, 6द्ध इति। ता यत उत्पन्नास्तत्रैव पितृवुफले संतानकर्मणे पिण्डदानाय च तिष्ठन्ति तद्वद्, इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-ये जो सेवा करनेवाली हियों वेफ समान हितकारिणी नाड़ियाँ लोहू से ढँकी हुई शरीर में चल रही हैं वे बिना भाइयों की बहनों वेफ समान निस्तेज होकर ठहर जायें।।1।।

संहिता-पाठः

तिष्ठाङ्खवरेच तिष्ठङ्ख पर उचत त्वं तिङ्खष्ठ मध्यमे।
कचनिचष्ठिचका चच तिष्ठङ्खतिच तिष्ठचादि(मनिङ्खमर्चही।।2।।

पद-पाठः

तिष्ठङ्ख। अचवचरचे। ति ङ्ख। पचरेच। उचत। त्वम्। तिचष्ठच। मचध्यचमेच।
कचनिचष्ठिचका चच तिष्ठङ्खति। तिष्ठाङ्खत्। इत्। धचमनिङ्खः। मचही।।2।।

सा0 भा0ः इदानीं धमनीः प्रार्थयते-हे अवरे शरीरस्य अधोभागवर्तिनि सिरे त्वं तिष्ठ शस्त्राद्यभिघातजनितरुधिर ावाद् निवृत्ता भव। तथा हे परे ऊर्ध्वा वर्तिनि सिरे त्वमपि तिष्ठ। उत अपि च हे मध्यमे। मध्ये भवा मध्यमा। शरीरस्य मध्यभागवर्तिनि सिरे त्वमपि तिष्ठ। पूर्वार्धे प्रत्यक्षेण धमनीनां स्थानभेदभिन्नानां प्रार्थना कृता। अधुना परिमाणतो भिन्नानां तासामेव पारोक्ष्येण प्रार्थना क्रियते-कनिष्ठिका। अतिशयेन अल्पा कनिष्ठा। सूक्ष्मतरा च नाडी तिष्ठति। तत्र यत्नविशेषो न कर्तव्य इत्यर्थः। अस्मिन् पक्षे चकारः त्वर्थे। यद्वा

प मलकायेयम्। कनिष्ठिका च तिष्ठतु महती चेति। परस्परसमुच्चयार्थ कारः। मही महती स्थूलतरा धमनिः सिरा तिष्ठादित् तिष्ठस्तेवा। अनेन प्रयोगेण निवृत्तरुधिर ावा अवतिष्ठताम्। महीति। महती शब्दे छान्दसः अच्छब्दलोपः।

हिन्दी अनुवादः-हे नीचे की नाड़ी! तू ठहर, हे ऊपर वाली! तू ठहर, और हे बीच वाली! तू ठहरा ;कनिष्ठिकाद्ध अत्यन्त छोटी नाडी ठहरती है, अतः बड़ी नाड़ी भी अपने स्थान पर ठहर जावे।।2।।

संहिता-पाठः

शचतस्यङ्ग धचमनीङ्गनां सचह ङ्गस्य हिचराणाङ्गम्।
अस्थुद्गरिन्मङ्गध्यचमा इचमाः साकमन्ताङ्ग अरंसत।।3।।

पद-पाठः

शचतस्यङ्गा धचमनीङ्गनाम्। सचह ङ्गस्या हिचराणाङ्गम्।
अस्थुङ्गा इत्। मचध्यचमाः। इचमाः। साचकम्। अन्ताङ्गः। अंचस्चसचत्चा।।3।।

सा0 भा0: शतस्य शतसंख्यानां धमनीनाम् हृदयगतानां प्रधाननाडीनाम्। यथा च कठोपनिषदि अग्रे समाम्नायते। 'शतं चैका च हृदयस्य नाड स्तासां मूर्धानम् अभिनिःसृतैका' ;कउ0 6, 16द्ध इति। तथा सह स्य सह संख्याकानां हिरणाम् सिराणां शाखानाडीनाम्। सह शब्दस्य अपरिमितपर्यायत्वात् श्रुति- प्रसि(ानां सर्वासां शाखानाडीनाम् एतद् उपलक्षणम्। तथा च प्रश्नोपनिषदि वक्ष्यति। 'अत्रैतद् एकशतै नाडीनां तासां द्वासप्ततिं प्रति शाखानाडीसह ाण्यासु व्यान रति' ;प्र उ 3, 6द्ध इति।

तासाम् उभयविधानां नाडीनां मध्यमाः मध्ये भवाः इमाः पूर्वे व्याधिवशात् वन्त्यो नाड : अस्थुरित्। इच्छब्दः अवधारणे। अतिष्ठन्नेव। अधुना मन्त्रप्रभावात् निवृत्तरुधिर ावा भवन्त्येवेत्यर्थः। अतः परं निवृत्तरुधिर ावाभिर्नाडाभिः साकम् सार्धम् अन्तः अन्तिमाः अवशिष्टाः सर्वा नाड : अरंसत यथापूर्वं रमन्ते स्म। रमु क्रीडायाम्।

हिन्दी अनुवादः-सौ प्रधान नाड़ियों में से और हजारों नाड़ियों में से सब बीच वाली नाड़ियाँ स्वस्थान में स्थित हो गयीं। अन्त की अवशिष्ट नाड़ियां एक साथ अपने कार्य में लग गयीं।।3।।

संहिता-पाठः

परिङ्ग क्वः सिकङ्गतावङ्गती धङ्गचनूर्बृङ्गहत्यत्रिफमीत्।
तिष्ठङ्गतेचलयङ्गत्वा सु कङ्गम्।।4।।

पद-पाठः

परिङ्ग क्वः। सिकङ्गतावती। धचनूः। बृहङ्गती, अचत्रफच्चमचीत्।
तिष्ठङ्गते। इचलयङ्गत। सु। कच्चम्।।4।।

सा0 भा0: हे नाड : वः युष्मान्। 'बहुवचनस्य व सौ' ;पा0 8, 1, 21द्ध इति द्वितीयान्तस्य युष्मदः वसादेशः। सिकतावती सिकताः रजांसि तद्वती तदाधारभूता नाडी। यद्वा अश्मर्याख्यो व्याधिविशेषो यस्माद् उत्पद्यते सा नाडी सिकतावती। धनूः धनुर्वद वैक्रो मूत्राशयो नाडीविशेषः। धन धान्ये।

'मूत्राशयो धनुर्वक्रो वस्तिरित्यभिधीयते।' इति।

तथा बृहती महती। उत्तफा सा नाडी पर्यक्रमीत् परितो व्याप्नोत्। सर्वान् रुधिरप्रवहणमार्गान् निरुध्य वर्तत इत्यर्थः। क्रमु पादविक्षेपे। अस्मा(ोतोः हे नाड : यूयं ति त निवृत्त ावा भवत। कम् सुग्रम् अस्य जनस्य सु सुष्ठु इलयत प्रेरयत। वव्याधिविनिर्मुत्तफाः सुग्रं प्रयच्छतेत्यर्थः। इल प्रेरणे इति धातुः।

'निर्लक्ष्मम् इति सूक्तेन मुग्रहस्तपादाद्य ेषु सामुद्रिकोक्तदुर्लक्षणयुक्तायाः स्त्रियास्तद्दोषनिवृत्तये मुग्रप्रक्षालनम्, अभिषेकः,

पफलीकरणतुषावतक्षणानां होमो वा कार्यः। सूत्रितं हि-''निर्लक्ष्म्यम्' इति। पापलक्ष्णाया मुख्रम् उक्षत्यन्वृचं दक्षिणात् वेफशस्तुकात्'' ;कौसू 42, 11द्ध इत्यादि।

हिन्दी अनुवादः-सेचन स्वभाव वाली चार हाथ की बड़ी पट्टी ने नाड़ियों को लपेट लिया है, अतः तुम लोग ;बालू आदि से भरी हुई द्ध ठहर जाओ। भली भाँति सुख्रपूर्वक चलो। इसी प्रकार मनुष्य वुफमार्गगामिनी मनोवृत्तियों को रोककर यत्नपूर्वक अपनी हानि पूरी करे और लाभ वेफ साथ अपना अभ्युदय करता हुआ आनन्द भोग करे॥5॥

तथा शान्तिकल्पेपि महाशान्तौ एतत् सूक्तम्।

2. महद्ब्रह्म ;1.32द्ध

'इदं जनासः' इति सूक्तेन बन्ध्यायाः पुत्रप्रजननकर्मणि तस्याः-शान्तौषधि- सहितोदकाभिशवेफम्, पुरोडाशकन्दुकालंकार प्रदानं च वुफर्यात्। सूत्रितं हि-''इदं जनासः' इत्यस्यै शिशपाशाखासु उदकान्ते शान्ता अधिशिरोवसि ति। आत्रजितायै।'' ;कौसू0 34, 1, 2द्ध इति।

तथा अनेन सूक्तेन पुष्टिकामः संपत्कामो वा द्यावापृथिव्योर्यागम् उपस्थानं वा वुफर्यात्। आह कौशिकः-''इदं जनासः' इति द्यावापृथिव्यौ पुष्टिकामः। संपत्कामः'' ;कौसू0 59, 3ऋ 4द्ध इति।

अत्र आद्या दर्शपूर्णमास्योः पत्न्य लौ उदपात्रनिनयने विनियुक्ता।

सूत्रं च-''बर्हिषि पत्न्या लौ निनयति 'समुद्रं वः प्र हिणोमि' ;अ0 10, 5, 23द्ध इति 'इदं जनासः' ;अ0 1, 32, 1द्ध इति वा'' ;कौसू0 6, 17द्ध।

संहिता-पाठः

इ्यदं जह्नासो व्यिदथह्न मचहद् ब्रह्मह्न वदिष्यति।
न तत् पृह्नथिचव्यां नो दि्यवि येनह्न प्राणन्ह्नित वीचरुधह्नः।।1।।

पद-पाठः

इ्यदम् जचनाचस्चः। व्यिदथह्न। मचहत् ब्रह्मह्न। वचदिष्यचतिच।
न तत्। पृदथिचव्याम् नो। इतिह्न। दि्यवि येनह्न प्राचणन्ह्नित वीचरुधह्नः।।1।।
जनासः हे जनाः ज्ञातुकामा यूयम् इदम् वक्ष्यमाणं वस्तु विदथ जानीथ।

सा0 भा0: किं तद् इत्यत आह-मन्त्रदृष्टा)षि महत् महत्त्वगुणयुक्तं व्यापवंफ ब्रह्म ब्रह्मणः प्रथमकार्यम्। श्रूयते हि-'आपो वा इदम् अग्रे सलिलम् आसीत्' ;तै0 7, 1, 5, 1द्ध इति। स्मर्यते च-

'अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमपाकिरत् इति ;मस्मृ0 1, 8द्ध

तादृशं ब्रह्म वदिष्यति कथयिष्यति। तस्योदकस्य प्रतिनियतं निवासस्थानं वक्तु लोकप्रतीतिसि(स्थानम् अपवदति-तत् उदकात्मवंफ ब्रह्म पृथिव्याम् भूमौ न। तिष्ठतीति शेषः। वृष्ट र्ध्वभाविनो जलस्यैव भूमौ अवस्थानम्। ननु लोकप्रतीतिसि(द्युलोक एवेत्यत आह-नो नैव दिवि द्युलोवेफ। तिष्ठतीति शेषः। तर्हि संभाविता लोकद्वये अविद्यमानस्य तस्य खपुष्पकल्पनेत्यत आह-येन उक्तेन उदवेफन वीरुधः विरोहणशीला कौशिवेफनोक्ता त्याद्या। अन्या षधयः। प्राणन्ति जीवन्ति। उदकम् अन्तरेण अनुपपद्यमानं वीरुधां जीवनं तत्सत्तायाः कल्पकम् इति तस्य नासत्त्वम् इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे मनुष्यों! इस बात को तुम लोग जानते हो कि ब्रह्मज्ञानी ही परब्रह्म का कथन करेगा। वह ब्रह्म न तो पृथिवी में है और न तो अन्तरिक्ष में, जिसवेफ सहारे औषधियाँ जीवन धारण करती हैं।।1।।

संहिता-पाठः

अचन्तरिक्षेह्न आसचां स्थामह्न श्रान्त्चसदाह्नमिव।
आचस्थानह्नमचस्य भूतस्यह्न व्यिदुष्टद् वेचधसोच न वाह्न।।2।।

पद-पाठः

अचन्तरिह्नक्षे। आचसाचम्। स्थामह्न। श्राचन्त्चदाह्नम्(इ्व।

आचर्ऽस्थानङ्कम्। अचस्य। भूद्तस्यङ्क। क्चिदुः। तत्। वेचधसङ्कः। न। वाच॥2॥

सा0 भा0: पूर्वं प्रतिपादितप्रकारेण उदकसत्ताया अवश्यंभावात् लब्धसत्ताकस्य च वस्तुनः क्वचिद् अवस्थाननियमात् अस्यापि वेफनचित् निवासस्थानेन भवितव्यम् इत्याशङ्क विवक्षितम् असाधारणं स्थानं दर्शयति-अन्तरिक्ष इति। आसाम् वीरुधां स्थाम स्थानं स्थितिहेतुभूतम् उदकम् अन्तरिक्षे द्यावापृथिव्योर्मध्यवर्तिनि लोवेफ। वर्तत इति शेष। यद्वा आसाम् वीरुज्जीवनहेतुभूताम् अपां स्थानम् अन्तरिक्षे अन्तरिक्षलोवेफ। आह च भगवान् पत लिर्महाभाष्ये-'अन्तरिक्षे महत् समुद्रं विततम् अस्ति' इति। श्रूयते च-'अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे' ;तै0 5, 5, 11, 1द्ध इति। तत्र दृष्टान्तः-श्रान्तसदामिव। तपसा कृच्छ्रचान्द्रायणादिना श्रान्ताः सन्तः सीदन्ति निवसन्ति सुखोपभोगार्थम् इति श्रान्तसदः यक्षगन्धर्वादयः। षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु। अस्मात् 'सत्सूद्विष' ;पा 3, 2, 61द्ध इत्यादिना क्वि प्। तेषां यथा अन्तरिक्षं स्थानम्। 'यक्षगन्धर्वाप्सरोगणसेवितम् अन्तरिक्षम्' ;नृपू 1, 2द्ध इति श्रुतेः। तथेति पूर्वेण सम्बन्धः। लोकान्तरगतत्वेन तद् उदवंफ भूलोक- निवासिनाम् अनुपकारकम् इत्याशङ्क आह-आस्थानम् इति। अस्य अस्मिन् लोवेफ परिदृश्यमानस्य भूतस्य लब्धसत्ताकस्य स्थावरज मात्मकस्य जगतः आस्थानम्। आ समन्तात् तिष्ठन्ति जीवन्ति अनेनेति आस्थानम्। वृष्टिद्वारा जगज्जीवनकारणम् इत्यर्थः। तस्य दुर्ज्ञानत्वम् आह। तत् कारणभूतम् उदवंफ वेधसः विधातारो मन्वादयः विदुः जानन्ति न वा विदुः न वा जानन्ति। सर्व ष्टृणां तेषामपि संदिग्धं किल तत्, किमु वक्तव्यम् अर्वाचीनानां मनुष्याणां दुर्ज्ञेयमिति इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-सभी प्राणियों वेफ भीतर रहने वाले परमेश्वर में इन औषधियों का उसी प्रकार स्थान है, जिस प्रकार थवेफ हुए यात्रियों का विश्रामस्थल अन्तरिक्ष। बुद्धिमान लोग उस ब्रह्म को इस संसार का आश्रयस्थल जानते हैं या नहीं? यह रहस्य है॥2॥

संहिता-पाठः

यद् रोदङ्कसीच रेजङ्कमानेच भूमिङ्क न्चिरतङ्कक्षतम्।
आचर्द्रं तदचद्य सङ्कर्वचदा सङ्कमुद्द्रस्येङ्कव स्रोचत्याः॥3॥

पद-पाठः

यत्। रोदङ्कसीच इतिङ्क। रेजङ्कमानेच इतिङ्क। भूमिंङ्कः। चच। निःचऽअतङ्कक्षतम्।
आचर्द्रम्। तत्। अचद्य। स्चर्वचदा। स्चमुद्द्रस्यङ्कऽइव। स्रोचत्याः॥3॥

सा0 भा0: तस्योदकस्य उत्पत्तिप्रकारम् आह। रोदसी हे द्यावापृथिव्यौ रेजमाने कम्पमाने जलम् उत्पादयितुं व्याप्रियमाणे। रेजृ कम्पने इति धातुः। भ्यसते रेजत इति भयवेपनयोः इति यास्कः। ;3, 21द्ध भूमिः चकारात् द्यौ युवां यत् प्रागुदीरितम् उदवंफ निरतक्षतम् उदपादयतम् सृष्टयोदकस्य सर्वदा धारणात् प्राधान्यं सूचयितुं भूमेः अवयुत्यापि निर्देशः। तक्षू त्वक्षू तनूकरणे। तत् उदकम् अद्य इदानीं वर्तमानकाले सर्वदा सर्वस्मिन् काले आर्द्रम् आर्द्रगुणयुक्तं शोषरहितम्। वर्तत इति शेषः। वृष्टिद्वारा उदवेफ निर्गतेपि पुनरपि अन्तरिक्षगतम् उदकम् अनुपक्षीणं वर्तत इत्यर्थः। तत्र दृष्टान्तः-समुद्रस्येव स्रोत्याः-यथा समुद्रगामिन्यो नद्यः अक्षीणोदका वर्तन्ते तद्वद् इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे द्यावापृथिवी! काँपते हुए तुम दोनों ने जिस जल को उत्प किया है, वह जल आज भी समुद्र की स्रोतस्तिनी नदियों वेफ समान प्रवहणशील है॥3॥

संहिता-पाठः

विश्वङ्कमचन्यामङ्कभचीवारच तदचन्यस्याचमधिङ्क श्रिचतम्।
दिचवे चङ्क विचश्ववेङ्कदसे पृथिचव्यै चाङ्करंच नमङ्कः॥4॥

पद-पाठः

वि ङ्कम्। अचन्याम्। अचभिचऽवारङ्क। तत्। अचन्यस्याङ्कम्। अधिङ्क। श्रितम्।
दिचवे। चङ्कच। विच वेदसे। पृद्थिचव्यै। चच। अचक्चरम्। नमङ्कः॥4॥

सा0 भा0: विशिष्टकारणजन्यत्वेन आप्यं श्रेष्ठ सूचयितुं कारणत्वेन उक्ते द्यावापृथिव्यौ प्रशंसति। विश्वम्। कर्मणि षष्ठ भावश्छान्दसः विश्वस्य अन्याम्। 'सुपां सुपो भवन्ति' ;पावा 7, 1, 39द्ध इति सोः अम् आदेशः। अन्या द्यौः अभिवारः अभितो वरणं छादनम्। भवतीति

शेषः। अथवा विश्वम् कृत्स्नं जगत् अन्याम् अन्यया दिवा। व्यत्ययेन द्वितीया। अभीवारः अभिवृतम्। कर्मणि घञ्। आच्छन्नम् इत्यर्थः। लि व्यत्ययः। यद्वा। विश्वम् कर्तुभूतं जगत् अन्याम् दिवम् उद्दिश्य अभीवारः। अभितः संभजनयुक्तं वृष्टिविषयप्रार्थनायुक्तम् अभूत्। वृ संभक्तौ। भावे घञ्। तद् उक्तं विश्वम् अन्यस्याम् पृथिव्याम् अधि श्रितम् आश्रितं वर्तते। दिवे उक्तलक्षणाय द्युलोकाय वि वेदसे। वेद इति धननाम। वि स्य जगतो धनभूताय। वृष्टिप्रदानेन सर्वधनहेतुत्वाद धनात्मकत्वम्। यद्वा वेद इति ज्ञाननाम। वि विश्वविषयं ज्ञानं यस्यौ तथोक्ता तस्यै। तथा पृथिव्यै विश्वाधारभूतायै। परस्परसमुच्चयार्थो चकारौ। नमः। अन्ननामैतत्। हविर्लक्षणम् अन्नं नमस्कारं वा अकरम्। करोमि।

हिन्दी अनुवादः-उस सर्वव्यापक जल ने भूमि को चारों ओर से घेर लिया है, वहीं जल अन्य वस्तुओं में भी स्थित है। आकाश एवं पृथिवीस्वरूप उस सर्वज्ञ ब्रह्म को मैंने नमस्कार किया है।।5।।

3. परमधाम ;वेनसूक्तमद्ध ;2.1द्ध

संहिता-पाठः

वेचनस्तत् पङ्कश्यत् परमं गुहाच यद् यत्रच वि चं भक्चत्येकङ्करूपम्।
इ्चदं पृश्निङ्करदुह्वज्जायङ्कमानाः। स्वचर्विदोङ्क अचभ्य {नूषतच व्राः।।1।।

पद-पाठः

वेचनः। तत्। पचश्यचत्। पचरचमम्। गुहाङ्का। यत्। यत्रङ्का। वि ङ्गम्। भवङ्गति। एकङ्ग्रिरूपम्।
इचदम्। पृश्निङ्गः। । अचदुङ्गहचत्। जायङ्गमानाः। स्वचःर्ऽविदङ्गः। अचभि। अचनूङ्गषतच। व्राः।।7।।

सा0 भा0: वेनते कान्तिकर्मसु पाटास् दीप्यमान आदित्यो वेनः इत्युच्यते। 'वेनो वेनतेः कान्तिकर्मणः' इति हि यास्कः ;10, 38द्ध। गुहा गुहायाम्। गुहारूपे सर्वप्राणिहृदये यत् श्रुत्यन्तरप्रसि(सत्य ज्ञानादिलक्षणं परमम् ब्रह्म। यत्र यस्मिन् अधिष्टानरूपे ब्रह्मणि वि म् आरोपितं कृत्स्नं जगत् एकरूपम् एकाकारं भवति आरोपितस्य अधिष्टानव्यतिरेवेफण सत्त्वाभावात्। आह स्म भगवान् बादरायणः-'तदनन्यत्वम् आरम्भणशब्दादिभ्यः' ;ब्रसु 2, 1, 14द्ध इति। भवतीति। तत् उक्तलक्षणं ब्रह्म वेनः पश्यत् अपश्यत्। स्वानन्यत्वेन साक्षात्कृतवान् इत्यर्थः। पृश्निः। दिव आदित्यस्य च सधारणनामैतत्। प्राप्तौज्ज्वलवर्णं आदित्य। आह च यास्कः-'पृश्निरादित्यो भवति प्राश्नुत एनं वर्ण इति नैरुक्ताः' ;नि च2, 14द्ध इति। इदम् भूतभौतिकप्रप जातम् अदुहत्। अनुद्भूतनामरूपात्मवेफ जगत् ब्रह्मानन्यत्वेन सर्वशक्तित्वाद् उद्भूतनामरूपत्वेन व्यक्तम् अकार्षीद् इत्यर्थः। आवृतात्मानः प्रजाः स्वर्विदः। स्वः शब्दाभिधेयम् आदित्यं स्वोत्पादवेफ विदन्ति जानन्तीति स्वर्विदः। 'स्वरादित्यो भवति। सु अरणः, सु ईरणः' इति हि निरुक्तम् ;2, 14द्ध अभ्यनूषत आभिमुख्येन तम् आदित्यं स्तुवन्ति। णू स्तवने। यद्वा। वेनः पर्जन्यात्मा मध्यमस्थानो देवः। 'वायुः वरुणः' इति प्रक्रम्य 'वेनः असुनीतिः' ;निघ 5, 4द्ध इति मध्यमस्थानदेवगणे पाटात्। तत् आदित्यमण्डलस्थम् उदवेफ पश्यति। तदेव विशिनष्टि-परमम् उत्कृष्टं गुहारूपे आदित्यमण्डले यद् उदकम् अस्ति। यत्र च उदवेफ विश्वम् जगत् एकरूपम्, नैमित्तिकप्रलये उदकात्मवेफ भवति। 'आपो वा इदम् अग्रे सलिलम् आसीत्' ;तै0 7, 1, 5, 1द्ध इति, 'आपो वा इदं सर्वं वि ा भूतान्यापः' ;तैआ0 10, 22, 1द्ध इति च श्रुतेः। अथवा यत्र यस्मिन्नुदवेफ विषये विश्वम् एकरूपम् उपजीव्यत्वेन एकाकारबु(िमद् भवति। श्रूयते हि-'नानामनसः खलु वै पशवोः नानाव्रतास्तेऽपि एवाभि समनसः' ;तै0 5, 3, 1, 3द्ध इति। तत् पश्यतीति सम्बन्धः। इदम्। उदकनामैतत्। उदकम् उक्तम् उदवेफ पृश्निः आदित्यः तद्रश्मिसमूहो वा अदुहत् वर्षयति।

जायमानाः पृश्नेरुत्पद्यमानाः स्वर्विदः सुखस्य लम्भयित्रीः व्राः व्रियमाणः संभज्यमाना स्वीक्रियमाणा अपः सर्वे जना अभ्यनूषत अभिष्टुवन्ति। एवम् उक्तलक्षणः सर्वज्ञ आदित्यः शुभाशुभज्ञानं करोतु इति विज्ञानकर्मणा संबन्धः।

हिन्दी अनुवादः-बु(िमान् पुरुष ;भक्तद्ध उस ;परमात्माद्ध को देखते हैं, जो परम गुहास्वरूप है-;प्रलय काल मेंद्ध जिस परमात्मा में समस्त जड़-जंगम तत्स्वरूपाकार हो जाता है। सूर्य ;सूर्य वेफ सदृश प्रकाशमान पुरुषद्ध इस पृथ्वी पर विद्यमान सभी वस्तुओं को दुहता ;रस ग्रहण करताद्ध है। आनन्दस्वरूप परमात्मा को जानने वाले विद्वानों ने उसकी विविध प्रकार से स्तुति की है।।7।।

संहिता-पाठः

प्र तद् वोङ्कचेद् अचमृतङ्गस्य विचद्वान् गन्धचर्वो धम परचमं गुहाच यत्।
त्रीणिङ्क पचदानिच निहिङ्कताच गुहाङ्गस्यच यस्तानिच वेदच स पिचतुष्पिचतासङ्कत्।।2।।

पद-पाठः

प्र। तत्। वोचचेचत्। अचमृतङ्गस्य। विचद्वान्। गचन्धचर्वः। धामङ्का। पचरचमम्। गुहाङ्का। यत्।
त्रीणिङ्का। पचदानि। निऽहिंङ्कता। गुहाङ्का। अचस्यच। यः। तानिङ्का। वेदङ्का। सः। पिचतुः। पिचता। अचसचत्।।2।।

सा0 भा0: अमृतस्य अविनाशिनो ब्रह्मणो विद्वान् जानन्। न त्वत्र। स्वरूपपदाध्याहारेण वा संबन्धः अमृतस्य स्वरूपं विद्वान् इति। न विद्यते मृतं यस्येति बहुव्रीहौ समासे इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम्। गावो रश्मयः तान् धारयतीति गन्धर्व आदित्यः। 'सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः' ;तै 3, 4, 7, 1द्ध इति श्रुतेः। गां वेदलक्षणां वा धारयतीति गन्धर्वः। ')ग्भिः पूर्वा े दिवि देव ईयते' ;तैब्रा 3, 12, 9, 1द्ध इत्यादिश्रुतेः। इति गोशब्दोपपदाद् धृञो वप्रत्ययः। गोशब्दस्य गनादेशः। तत् उक्तफलक्षणं किं तद् इति तद् आह-परमम् क्रियापफलभूतविनश्वरस्वर्गाद्यपेक्षया उत्कृष्टं धाम पुनरावृत्तिरहितं स्थानम्।

अस्य गुहा गुहायां हृद्रपायां स्थितं यत् तत्त्वं तद् वोचेत् इति संबंधः। हृदयस्थस्य नित्यापरोक्षस्य परतत्त्वस्य उपदेश्यत्वम् अनुपपन्नम् इत्यत आह-त्रीणि पदानीति। परमात्मनह्यीणि पदानि गुहा गुहायां निहिता निहितानि। यद्यपि अत्र निरुपाधिकस्य ब्रह्मणो निरवयवत्वात् पादकल्पना नोपपद्यते तथापि भूतभौतिकप्रप जातात् तदुपादानस्य आत्मनो निरतिशयमहत्त्वं प्रतिपादयितुं त्रिपदत्वम् उक्तम् इति अविरोधः। गुहानिहितपदार्थवत् अज्ञातम् अपरिच्छिन्नं ब्रह्म उपदेशैकस्मधिगम्यम् अस्तीति तात्पर्यार्थः। यद्वा अस्य पूर्वोक्तस्य परब्रह्मणः त्रीणि पदानि। पद्यन्ते गम्यन्ते मुमुक्षुभिः प्राप्यन्त इति पदशब्देन अंशीभूता विराड्हिरण्यगर्भेश्वरा उच्यन्ते। गुहा। गूहयति संवृणोति परिच्छिनत्ति

परमात्मानाम् इति गुहा माया। तत्र निहितानि समष्टिरूपेण उपहितानि। गुरूपदेशजनितब्रह्मा- वबोधस्य प्रयोजनम् आह-यः शमदमादिसंपन्नोऽधिकारी तानि तत पादत्रयो- पलक्षितं निष्कलं ब्रह्म वेद जीवेश्वरोपाधिपरित्यागेन साक्षात्करोति। स विद्वान् पितुः स्वजनकस्यापि पिता कारणभूतः असत् भवति। अस्तेर्लेटि अडागमः। सर्वजगदधिष्टानभूतब्रह्मीभावेन स्वस्यापि सर्वजगत्कारणत्वोपपत्तेः। इत्यादि स्मर्यते च-

अथवा तानि विराड्ढिरण्यगर्भेश्वरतत्त्वानि वेद प्रणवावयवैः अकारादिभिः व्यष्टिरूपाणां विश्वतैजसप्राज्ञानां समष्टिरूपविराडादितादात्म्यज्ञानपुरः सरं तुरीयं वस्तु यो वेद स पितुः पिता असद् इति पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-वेदज्ञ विद्वान्, अविनाशी परब्रह्म वेफ उस परम पद का उपदेश करें, जो गुहा ;हृदयद्ध में स्थित है। इस ब्रह्म की गुहा में अगम्य शक्तिफ मेंद्ध तीनों पद स्थित हैं। जो व्यक्तिफ उनको जान लेता है, वह पिता का भी पिता अर्थात् महाविद्वान् जो जाता है।।2।।

संहिता-पाठः

> **स नद्धः पिफता जद्धनिफता स उफत बन्धुर्द्धामाद्धनि वेदफ भुवद्धनानिफ वि ा।**
> **यो देफवानाद्धं नामफध एकद्ध एफव तं संप्रफ्रश्नं भुवद्धना यन्तिफ सर्वा।।3।।**

पद-पाठः

सः। नफः। पिफता। जफनिफता। सः। उफत। बन्धद्धः धामाद्धनि। वेफदफ। भुवद्धनानि। वि ा।
यः। देफवानाद्धम्। नाफमफ(धः। एकद्धः। एफव। तम्। सफम्(प्रश्नम्। भुवद्धना। यफन्तिफ। सर्वा।।3।।

सा0 भा0: स सूर्यात्मकः परमात्मा नः अस्माकं पिता पालयिता। न वेफवलं पालकः विंफतु जनिता जनयिता उत्पादकः। उप अपिच स उक्त एव बन्धुः भ्रात्रादिरूपो बन्धुवर्गः। पित्रादीनां चेतानानां तद्व तिरेवेफण अभावात् तत्तन्नामभिः स एवाभिधीयत इत्यर्थः। बन्धुः। बन्ध बन्धने। इदानीं तस्य सर्वसताम् आह-धामानि कर्मपफलभूतस्वर्गादिस्थानानि। 'धामानि त्रयाणि भवन्ति। स्थानानि नामानि जन्मानीति'। इति हि निरुक्तम् ;9, 28द्ध।

तत्र स्थितानि वि ा विश्वानि सर्वाणि भवन्ति सत्तां लभन्ते उत्पद्यन्ते इति भुवनानि भूतजातानि च वेद। स्वाध्यस्तं कृत्स्नप्रप जानातीत्यर्थः। तथा य उक्तः परमात्मा एक एव देवानाम् इन्द्रादीनां स्वसृष्टानां नामधाः। इन्द्रमित्रादीनि नामानि दधाति विदधाति करोतीति नामधाः। यद्वा इन्द्राग्न्यादिदेवतात्मकः सन् तत्त ामानि स्वयमेव धत्ते इति नामधाः। तम् उक्तलक्षणम् आत्मानं विषयीकृत सर्वा सर्वाणि *भुवनाह भुवनानि भूतजातानि। संप्रश्नम्। विंफविधोऽयम् आत्मा इति संभूय क्रियमाणः प्रश्नः संप्रश्नः। तं यन्ति प्राप्नुवन्ति। 'यतो वाचो निवर्तन्ते' ;तैआ0 8, 9, 1द्ध इत्यादिश्रुत्या परतत्त्वस्य अवा ्मनसगोचरत्वात् तत्स्वरूपं नि ेतुम् असमर्थाः सन्तो जिज्ञासवः किम् अयम् आत्मा ज्ञानादिगुणकः उत निर्गुणः, परिच्छिन्नः अपरिच्छिन्नो वा, जगतः विंफ निमित्तकारणमेव उत उपादानकारणमपि इत्येवमादि संशयम् आपद्यन्त इत्यर्थः। अथवा संप्रश्नम्। क्रियाविशेषणम् एतत्। संगतः प्रश्नः संप्रश्नः। तत्पूर्वकं गुरुशास्त्रोपदेशतस्तमेव परमात्मानं यन्ति। तदैक्यं लभन्त इत्यर्थः। वि ं कृत्स्नं जगत् कर्म कर्तव्यं यस्येति व्युत्पत्त्या विश्वकर्मशब्देन परमात्मैवोच्यते इति वैश्वकर्मणहोमेऽपि अस्या)चो विनियोग उपपन्नः। संप्रश्न इति।

हिन्दी अनुवादः-वह परमात्मा ही हमारा पिता ;पालकद्ध, उत्पादक और बन्धुभूत है। वह सब पदों ;अवस्थाओंद्ध और लोकों को जानता है। वह अवेफला ही समस्त दिव्य गुण वाले पदार्थों वेफ नामों को सर्वगुण संप होने वेफ कारण धारण करने वाला है। उस अन्वेषणीय ब्रह्म को सभी प्राणी प्राप्त करते हैं।।3।।

संहिता-पाठः

> **परिफ द्यावाद्धपृथिफवी सफद्य आद्धयफमुपाद्धतिष्ठे प्रथमफजामृद्धतस्यद्ध।**
> **वाचद्धमिव वफत्तफरिद्ध भुवनेफ ा धाफस्युरेफष नफन्वे३द्धषो अफग्निः।।4।।**

पद-पाठः

परिद्ध। द्यावाद्धपृथिफवी इतिद्ध। सफद्यः। अफायफम्। उपद्ध। आफऽतिफष्ठेफ। प्रफथफमफऽजाम्।)फतस्यद्ध।
वाचद्धम्ऽइव। वफत्तफरिद्ध। भुद्वफनेफऽस्थाः। धाफस्युः। एफषः। नफनु। एफषः। अफग्निः।।4।।

सा0 भा0: ज्ञानोत्तरकालं तत्त्वविद् ब्रूते-द्यावापृथिवी द्यौ पृथिवी च द्यावापृथिव्यौ। तदुपलक्षितं कृत्स्नं जगत् सद्यः तदानीं तत्त्वज्ञानसमकालमेव परितः प्राप्तवान् अस्मि। स्वभेदेन अवगतस्य ब्रह्मणः सर्वात्मकत्वाद इति भावः। तथा च श्रुत्यन्तरे-'अहं मनुरभवं सूर्य ' ;)0 4, 26, 1द्ध इति।)तस्य सत्यस्य सत्याद् ब्रह्मणः। संबन्धसामान्ये षष्ठी। प्रथमजाः भूतभौतिकप्रप जातात् पूर्वम् उत्पन्नः सूत्रात्मा। श्रूयते हि-'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्' ;)0 10, 12, 1, 1द्ध इति। उपातिष्ठेत्। स यथा समष्टिरूपेण कृत्स्नं जगद् व्याप्य अवतिष्ठते तद्वद् अहम् अस्मीत्यर्थः। प्रथमं जायत इति प्रथमजाः। सद्यःप्राप्तिं दृष्टान्तेन उपपादयति-वाचमिवेति। वत्तफरि प्रयोत्तफरि स्थितां वाचं निकटस्थिता बो(रो यथा प्रयोगसमकाल एव अगच्छन्ति तथेत्यर्थः। यद्वा ज्ञानिना प्राप्यस्य तत्त्वस्य सर्वात्मकताम् आह-वाचमिवेति। वाक् स्वात्मवंफ विततं शब्दब्रह्म वत्तफरि फुषे परिच्छि सत् यथा आविर्भवति। यथा((हुरचार्याः-

'सः स्वः श्रुतिसंपन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।
स तु सर्वत्र संस्यूतो जाते भूताकरे पुनः।।
आविर्भवति देहेषु प्राणिनाम् अर्थविस्तृतः। इति।

एवं परमात्मा भुवनेष्ठाः। मायातत्कार्यात्मवेफ भुवने भूतजाते तिष्ठति उपहितः सन् वर्तत इति भुवनेष्ठा। एष परमात्मा धास्युः पोषणेच्छावान्। हेतुगर्भ विशेषणम् एतत्। पोषणा(तोस्तत्रतत्र भूतेषु वर्तत इत्यर्थः। यद्वा धासिरित्यन्नाम ;निघ 2, 7द्ध। तदुपलक्षितं भोग्यजातम् आत्मन इच्छतीति धास्युः। निष्क्रियस्य सतः कथं पोषकत्वं भोक्तृत्वं चेति तत्राह-नन्वेषो अग्निरिति। एष परमात्मा अग्निर्ननु वैश्वानरात्मना पोषको भौत्तफा खलु। श्रूयते हि वाजसनेयवेफ-'एतावद् वा इदम् *सर्वमृह अ चैवान्नाद सोम एवान्नम् अग्निर ादः'। इति।

हिन्दी अनुवादः-उस परमात्मा को जानने की भावना वेफ साथ मैं सर्वत्र भटकता हुआ सा तत्काल द्यावा-पृथिवी को सम्प्राप्त होता हूँ। सत्य नियमों वेफ प्रथम उत्पादक ;परमेश्वरद्ध की उपासना करता हूँ। वत्तफा में निहित वाणी की भाँति वह परमात्मा इस भुवन में समाविष्ट है। वह परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में स्थित है, निश्चय ही यह अग्नि है।।5।।

संहिता-पाठः

परि्य वि ्य भुवङ्कनान्यायमृङ्कतस्यच तन्तुंद विततङ्कत्त्वं दृद्दशे कम्।
यत्रङ्क देचवा अचमृङ्कतमानशाचनाः सङ्कमाचने योनाचध्यैरङ्कयन्त।।6।।

पद-पाठः

परिङ्क। वि ङ्क। भुवङ्कनानि। आचयच्चम्।)चतस्यङ्क। तन्तुङ्कम्। वि(तङ्कतम्। दृद्दशे कम्।
यत्रङ्क। देचवाः। अचमृतङ्कम्। आचनत्चशाचनाः। सचमाचने। योनौङ्क। अधिङ्क। ऐरङ्कयन्त।।6।।

सा0 भा0: वि ा विश्वानि भुवनानि पृथिव्यादीन् कर्मपफलभूतान् लोकान् पर्यायम् ज्ञानोत्पत्तेः प्राक् खलु परितः प्राप्तवम्। परितो गमनस्य प्रयोजनम् आह-)तस्य सत्यस्य ब्रह्मणः तन्तुम् पटस्य तन्तुवत् जगतः कारणभूतं विततम् व्याप्तं स्वरूपं दृशे द्रष्टुम्। पर्यायम् इति संबंधः। कम् इति पदपूरणः। तथा च यास्कः-'पदपूरणास्ते मिताक्षरेष्वनर्थकाः। कमीमिद्विति' ;नि0 1, 9द्ध इति। यद्वा)तस्य पुण्यापुण्यलक्षणकर्मणः कारणभूतं तन्तुम् तन्तुवद् बन्धनहेतुं मूलज्ञानं विततम् अनादित्वेन विस्तीर्णम्। ')तस्य तन्तुं विततं विचृत्य' ;तैआ0 ङ्क10, 1, 4द्ध इति श्रुत्यन्तराद् अत्रापि छित्त्वेत्यध्याहारः। कम् सुखात्मवंफ ब्रह्म। 'वंफ ब्रह्म खं ब्रह्म' ;छाउ 4, 10, 5द्ध इति श्रुतेः। दृशे द्रष्टुं पर्यायम् इति योजना। 'दृशे विख्ये च' ;पा0 3, 4, 11द्ध इति दृशेस्तुमर्थे वेफप्रत्ययान्तो निपातितः। द्रष्टव्यं ब्रह्मैव विशिनष्टि-यत्र देवा इत्यर्धर्चेन। यत्र यस्मिन् ब्रह्मणि देवाः इन्द्राद्या अमृतम् अविनश्वरं परमानन्दम् आनशानाः अश्नुवानाः प्राप्नुवन्तः समाने योनौ एकस्मिन्नेव कारणभूते ब्रह्मणि। अधिः सप्तम्यर्थानुवादी आधिक्यार्थो वा। ऐरयन्त स्वात्मानम् अगमयन्। तदेकीभूता इत्यर्थः। अथवा तत्त्ववित् स्वानुभवम् आविष्करोति। यत्र ब्रह्मणि मनोवृत्तिभिः साक्षात्कृते अमृतम् अनश्वरं- निरतिशयानन्दम् आनशानाः प्राप्नुवन्तो देवा इन्द्रियाणि समाने योनौ साधारणे कारणभूते ब्रह्मणि अध्यैरयन्त प्राप्नुवन्ति। लीना भवन्तीत्यर्थः। अर्थद्वयेपि तद् ब्रह्म द्रष्टुम् इति संबन्धः।

हिन्दी अनुवादः-उस वह्न-सूत वेफ समान व्यापक परमात्मामृत ोत को जानने वेफ विचार से मैं इन सब भूतमात्र में धूम आया हूँ। वह तो वहीं विद्यमान है जहाँ देवगण अमृत का अशन ;= भोजनद्ध करते हुए ;मोक्ष को प्राप्त करते हुएद्ध उस सर्वयोनिस्वरूप परमात्मा में विचरते हैं।।6।।

4. कृमिनाशनम् ;2.32द्ध

संहिता-पाठः

उ्चद्य ाद्वदित्यः त्रिफमीद्दन् हन्तु न्मिद्योचद्दन् हन्तु रशिमभिद्दः।
ये अचन्तः त्रिफमद्दयोच गविद्दा।1।।

पद-पाठः

उ्चत्(यन्। आचदित्यः। क्रिमीद्दन्। ह्यन्तुद्द। न्मि(म्रोचद्दन्। ह्यन्तुद्द। रशिमि(भिद्दः।
ये। अचन्तः। त्रिफमद्दयः। गविद्दा।1।।

सा0 भा0: आदित्यः उद्यन् उदयं प्राप्नुवन् रश्मिभिर्व्यापनशीलैः स्वकिरणैः क्रिमीन् हन्तु हिनस्तु। निम्रोचन अस्तं गच्छं रश्मिभिः त्रिफमीन् हन्तु। रश्मिभिरिति। 'अशे रश च' ;पाउद 1, 15द्ध इति मिप्रत्ययो रशादेश । बुफत्रत्यान् क्रिमीन् इति तत्राह-ये त्रिफमयः गावे। जातावेकवचनम्। गोशरीरेषु अन्तः मध्ये सन्ति। तान् त्रिफमीन् इति पूर्वत्र संबन्धः।

हिन्दी अनुवादः-उदय होते हुए और डूबते हुए सूर्य स्वरश्मियों से क्रिमियों को मारें-जो कीट गाय ;= या पृथ्वीद्ध वेफ अन्दर स्थित हैं।।1।।

संहिता-पाठः

क्चि रुद्दपं चतुरचक्षं त्रिफमिंद्द साचर द्दमर्जु.नम्।
शृद्दणाम्यद्दस्य पृद्द ीरषिद्द वृ ाम्चि यच्छिरद्दः।।2।।

पद-पाठः

विंच [.रूपम्। च्चतु:[अचक्षम्। क्रिमिङ्कम्। साचर ङ्कम्। अर्जु.नम्।
शृङ्णामिङ्क। अचस्यच। पृङ्ष्टीः। अपिङ्क। वृङ्श्चाचमिच। यत्। शिरङ्कः।।2।।

सा0 भा0: वि रूपम् नानाकारं चतुरक्षम् चतुर्नेत्रम् 'बहुव्रीहौ सक्‍ यक्ष्णोः स्वा ात् षच्' ;पा 5, 4, 13द्ध इति षच् समासान्तः। सार म् शबलवर्णम् अर्जुनाम् शुभ्रवर्णम् एवम् अनेकाकारं किमिं शृणमि हन्मि। शृ हिंसायाम्। 'प्यादीनां "स्वः' ;पा0 7, 3, 80द्ध। अस्य उत्तफलक्षणस्य त्रिफमेः पृष्टीः पार्श्वावयवान् अपि यच्छिरः शरीरान्तर्गतमांसादिभक्षवंफ प्रधानम् अ तदपि वृ ामि छिनि ।

हिन्दी अनुवादः-विविध अग-प्रत्यंग, चार आँखो वाले, विषात्तफ एवं श्वेतवर्ण कीट को मैं मारता हूँ। मैं इसकी पसलियों को तोड़ता हूँ और इसवेफ शिर को भी काटता हूँ।।2।।

संहिता-पाठः

अचत्रिचवद् वङ्कः क्रिमयो हन्मि कण्क्चवज्जङ्कमदग्निचवत्।
अचगस्त्यङ्कस्यच ब्रह्मङ्कणाच सं पिङ्कनष्म्यचहं क्रिमीङ्कन्।।3।।

पद-पाठः

अचत्रिच[वत्। वचः। त्रिफच्मचयचः। ह्चन्मिच। कच्चण्व[वत्। जचम्चदचग्निच[वत्।
अचगस्त्यङ्कस्य। ब्रह्मङ्कणा। सम्। पिचनष्मिच। अचहम्। क्रिमीङ्कन्।।3।।

सा0 भा0: हे किमयः वः युष्मान् अत्रिवत् कण्ववत् जमदग्निवत्। सर्वत्र प्रथमार्थे वतिः। ते यथा मन्त्रसामर्थ्यात् क्रिमीन् निध्नन्ति एवम् अहम् अपि हन्मि। तथा अगस्त्यस्य महर्षेर्ब्रह्मणा मन्त्रेण अहं किमीन् सर्वान् सं पिनष्मि पुनरु वो यथा न भवति तथा नाशयामि। एतेषां क्रिमिनिवारकत्वं श्रुत्यन्तरे प्रसि(म्-'अत्रिणा त्वा क्रिमे हन्मि कण्वेन जगदग्निना वि ावसोर्ब्रह्मणा हतः' ;तैआ0 4, 36, 1द्ध इति।

हिन्दी अनुवादः-हे कृमियो! हम अत्रि, कण्व और जमदग्नि षि वेफ सदृश, मंत्र शत्तिफ से तुम्हें मारते हैं तथा अगस्त्य षि की मंत्र शत्तिफ से तुम्हें पीस डालते हैं।।3।।

संहिता-पाठः

ह्चतो राजाच क्रिमीङ्कणायुङ्कतैषां स्थ्चपतिङ्कर्हचतः।
ह्चतो ह्चतमाङ्कताच क्रिमिङ्कर्हचतभ्राङ्कता ह्चतस्वङ्कसा।।4।।

पद-पाठः

ह्चतः। राजाङ्क क्रिमीङ्कणाम्। उ्चत। एचषाचम्। स्थ्चपतिङ्कः। ह्चतः।
ह्चतः। ह्चत[माङ्कता। त्रिफमिङ्कः। ह्चत[भ्राङ्कता। ह्चत[स्वङ्कसा।।4।।

सा0 भा0: त्रिफमीणां राजा हतः अस्मत्प्रयुक्तमन्त्रौषधादिना नष्टः। उत अपि च एषां। क्रिमीणां स्थपतिः सचिवो हतः। एवं हतमाता हतभ्राता हतभ्रातृकः हतस्वसा नष्टभगिनीक त्रिफमिर्हतः। नष्टः। सस्वामिक सामात्यं सवान्धवं कृत्स्नं क्रिमिवुफलं निरवेशषं नष्टम् इत्यर्थः। हतमातेत्यादिषु 'नद्यृत ' ;पा0 5, 4, 153द्ध इति नित्यं प्राप्तस्य कपः ')तश्छन्दसि' ;पा0 5, 4, 158द्ध इति प्रतिषेधः।

हिन्दी अनुवादः-हमारे द्वारा ओषधि प्रयोग करने पर कीटाणुओं का राजा तथा उसका मंत्री मारा गया। वह अपने माता-पिता, भाई-बहिन सहित स्वयं भी मारा गया।।4।।

संहिता-पाठः

ह्यतासोद्व अस्य वेचशसोद्व ह्यतासःच परिद्ववेशसः।
अथोच ये क्षुद्वल्लयका इद्ववच सर्वेच ते त्रिफमद्वयो ह्यताः।।ऽ।।

पद-पाठः

ह्यतासद्बः। अचस्यच। वेचशसद्बः। ह्यतासद्बः। परिद्व(विशसः।
अथोच इतिद्व। क्षुद्वल्लयकाः(इद्वव। सर्वे। तो। क्रिमद्वयः। ह्यता।।ऽ।

सा0 भा0: अस्य त्रिफमिवुफलस्य वेशसः निवेशस्थानानि मुख्यगृहा हतासः हताः। एवं परिवेशसः परितः स्थिताः समीपगृहा हतासः हताः वेशसः। विशतेरधिकारणे औणदिकः असिप्रत्ययः। अथो अपिच ये क्षुल्लका इव बीजावस्थाः सूक्ष्मरूपा दुर्लक्षाः क्रिमयः सन्ति ते सर्वे(पि क्रिमयः हताः नाशिताः।

हिन्दी अनुवादः-इन कीटाणुओं वेफ बैठने वाले स्थान तथा पास वेफ घर विनष्ट हो गये और बीजरूपक में विद्यमान दुर्लक्षित ;कठिनाई से दिखाई पड़ने वालेद्ध छोटे-छोटे कीटाणु भी नष्ट हो गये।।ऽ।।

संहिता-पाठः

प्र तेद्व शृणाम्यि शृ ेद्द याभ्यां. वितुदायसिद्व।
भिद्यनर्ना द्व ते वुफद्दषुम्भंद्व यस्तेद्व। विषचधानद्वः।।ϵ।।

पद-पाठः

प्र। तेच। शृद्दणचाम्यि। शृ ेद्द इतिद्व। याभ्याद्वम्। वि(तुद्ददायसिद्व।
भिद्य ा द्व। तेच। वुफद्दषुम्भद्वम्। यः। तेचः। विषच(धानद्वः।।ϵ।।

सा0 भा0: हे त्रिफमे ते त्वदीये शृ े विषाणे प्र शृणामि प्रभिनि याभ्यां शृ भ्यां वितुदायसि विशेषेण तुदसि व्यथयसि। ते इति संबन्धः। तुद व्यथेन इत्यस्मात् परस्य शस्यापि व्यत्ययेन शायजादेशः। ते तब षुकम्भम् अवयवविशेषं भिनि विदारयामि। तमेवावयवं विशिनष्टि-ते तब संबन्धी यः अवयवः विषधानः। विषं धीयतेस्मिन्निति

'अग्निर्णो दूतः' इति द्वितीयसूक्तेन परसेनामोहनकर्मणि पूर्वसूक्तोक्तानि कर्माणि वुफर्यात्। सूत्रं तु तत्रैवोदाहृतम्।

हिन्दी अनुवादः-हे कीटाणुओ! हम तुम्हारे उन सींगों को तोड़ते हैं, जिनवेफ द्वारा तुम पीड़ा पहुँचाते हो। हम तुम्हारे वुफषुम्भ ;विष ग्रन्थिद्ध को तोड़ते हैं, जिसमें तुम्हारा विष रहता है।।ϵ।।

ऽ. दीर्घायुप्राप्ति सूक्तफ ;3.11द्ध

;)षि-ब्रह्मा, भृग्व ि रा। **देवता**-इन्द्राग्नी, आयु, यक्ष्मनाशन।द्ध

1. **मु ामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।**
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तफमेनम्।।7।।

हे रोगिन्! तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट यक्ष्मा ;रोगद्ध, राजयक्ष्मा ;राज रोगद्ध से मैं हवियों के द्वारा तुम्हें मुक्तफ करता हूं। हे इन्द्रदेव और अग्निदेव! पीड़ा से जकड़ लेने वाली इस व्याधि से रोगी को मुक्तफ कराएं।।7।।

2. **यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।**
तमा हरामि नि)तेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय।।2।।

यह रोगग्रस्त पुरुष यदि मृत्यु को प्राप्त होने वाला हो या उसकी आयु क्षीण हो गई हो, तो भी मैं विनाश के समीप से वापस लाता हूं। इसे सौ वर्ष की पूर्ण आयु तक के लिए सुरक्षित करता हूं।।2।।

3. सह क्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।
इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्।।3।।

सह नेत्र तथा शतवीर्य एवं शतायुयुक्त हविष्य से मैंने इसे ;आरोग्य कोद्ध उभारा है, ताकि यह संसार के सभी दुरितों ;पापों-दुष्कर्मोंद्ध से पार हो सके। इन्द्रदेव इसे सौ वर्ष से भी अधिक आयु प्रदान करें।3।। ;यज्ञीय सूक्ष्म विज्ञान से नेत्रशक्ति, वीर्य आयुष्य सभी बढ़ते हैं। मनुष्य कष्टों को पार करके शतायु हो सकता है।द्ध

4. शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान्।
शतं त इन्द्रो अग्निः सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषाहार्षमेनम्।।4।।

;हे प्राणी!द्ध दीर्घायुष्य प्रदान करने वाली इस हवि के प्रभाव से मैं तुम्हें ;नीरोग स्थिति मेंद्ध वापस लाया हूं। अब तुम निरन्तर वृ(करते हुए सौ वसन्त)तुओं, सौ हेमन्त)तुओं तथा सौ शरद)तुओं तक जीवित रहो। सर्वप्रेरक सवितादेव, इन्द्रदेव, अग्निदेव और बृहस्पतिदेव तुम्हें शतायु प्रदान करें।।5।।

ऽ. प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।
व्य1न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम्।।ऽ।।

हे प्राण और अपान! जैसे भार वहन करने वाले बैल अपने गोष्ट में प्रवेश करते हैं, वैसे आप क्षयग्रस्त रोगी के शरीर में प्रवेश करें। मनुष्यगण मृत्यु के कारणरूप जिन सैकड़ों रोगों का वर्णन करते हैं, वे सभी दूर हो जाएँ।।ऽ।।

6. इहैव स्तं प्राणापानौ मापगातमितो युवम्।
शरीरमस्या ानि जरसे वहतं पुनः।।6।।

हे प्राण और अपान! आप दोनों इस शरीर में विद्यमान रहें। आप अकाल में भी इस शरीर का त्याग न करें। इस रोगी के शरीर तथा उसके अवयवों को वृ(ावस्था तक धरण करें।।6।।

7. जरायै त्वा परि ददामि जरायै नि ध्ुवामि त्वा।
जरा त्वा भद्रा नेष्ट व्य1न्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितराञ्छतम्।।7।।

;हे मनुष्य!द्ध हम आपको वृ(ावस्था तक जीवित रहने योग्य बनाते हैं और वृ(ावस्था तक रोगों से आपकी सुरक्षा करते हैं। वृ(ावस्था आपके लिए कल्याणकारी हो। ज्ञानी मनुष्य मृत्यु के कारणरूप जिन रोगों के विषय में कहते हैं, वे समस्त रोग आप से दूर हो जाएँ।।7।।

8. अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा। यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त
जायमानं सुपाशया। तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमु द् बृहस्पतिः।।8।।

जैसे गौ या बैल को रस्सी द्वारा बाँध जाता है, वैसे वृ(ावस्था ने आपको बाँध लिया है। जिस मृत्यु ने आपको पैदा होते ही अपने पाश द्वारा बाँध रखा है, उस पाश को बृहस्पतिदेव ब्रह्मा के अनुग्रह से मुत्तफ कराएँ।।8।।

6. ब्रह्मौदन सूत्तफ ;4.34द्ध

'ब्रह्मास्य शीर्षम्' इति सूक्तं ब्रह्मास्योदनसवे क्रिप्तहविरभिमर्शनादिकर्मणि विनियुक्तम्।

तत्रैवानेन सूत्तेफन चतसृषु दिक्षु ह्रदकरणम् वुफल्याकरणम् तासां रसैः पूरणम् "देषु आण्डीकादिमन्त्रोक्तद्रव्यविधानं च वुफर्यात्। सूत्रितं हि-''ब्राह्मास्य' इत्योदने "दान् प्रतिदिशं करोति।'' ;कौसू 66, 6द्ध इत्यादि।

संहिता-पाठः

ब्रह्माङ्कस्य शीचर्ष बृद्दहदङ्कस्य पृद्दष्टं वाङ्कमदेचव्यमुद्ददरङ्कमोदङ्कनस्यङ्क।
छन्दाङ्कंसि पचक्षौ मुखङ्कमस्य सचत्यं विङ्कष्टाचरी जाचतस्तपचसोऽधिङ्क यचज्ञः।।1।।

पद-पाठः

ब्रह्मइ। अचस्यच। शीचर्षम्। बृदहत्। अचस्यच। पृदष्टम्। वाचमच(देचव्यम्। उचदरइम्। ओचदचनस्य।
छन्दांइसि। पचक्षौ। मुखइम्। अचस्यच। सचत्यम्। विचष्टाचरी। जाचतः। तपइसः। अधिइ। यचज्ञः।।7।।

सा0 भा0: अस्यौदनस्य दीयमानस्य शिरः प्रभृत्यवयवकल्पनया स्तुतिः त्रिफयते- ब्राह्मणजात्या सह प्रजापतिमुखाद् उत्पन्नत्वाद् ब्रह्मशब्देनात्र रथंतरं साम विवक्षितम्।

अत एव तस्य ब्रह्मवर्यरूपता समाम्नाता-'रथंतरं साम भवति ब्रह्मवर्चसं वै रथंतरम्' ;तैब्रा0 2, 7, 1, 1द्ध इति। तद् ब्रह्मशब्दवाच्यं रथंतरं साम अस्य ओदनस्य शीर्षम् शिरः। तथा बृहत साम अस्य ओदनस्य पृष्टम् पृष्टभागः उपरिभागः। तथा वामदेव्यम् वामदेवेन दृष्टं साम उदरम्। छन्दासि गायत्र्यादीनि पक्षौ। तथा सत्यम् सत्याख्यं साम परं ब्रह्म वा अस्य ओदनस्य मुखम्। एवं विष्टारी विस्तीर्यमाणावयवः। तादृशोयं यज्ञः तपसः तप्यमानाद् ब्रह्मणः अधि उपरि जातः उत्पन्नः। यज्ञदानादिलक्षणाद् अन्यस्मात् तपसो वा आधिक्येनोत्पन्न इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-ब्रह्मोदन सब में यह दीपमान इस ओदन का शिर रथन्तरसाम हैं, बृहत्साम इस यज्ञ की रीढ़ वेफ समान है। बृहत्साम इस यज्ञ का पाट ही है। इस ओदन का उदर सामदेव षि वेफ द्वारा निर्मित साम है। गायत्री प्रभृति छन्द इसवेफ पक्ष हैं। सत्य साम इनका मुख है। इस प्रकार जला सकता चाहे गृहस्थ रुप स्वर्ग लोक में इनवेफ आसपास बहुत अत्यन्त विस्तार को प्राप्त यह यज्ञ तापमान ब्रह्मा से उत्प हुआ है।।7।।

संहिता-पाठः

अचनचस्थाः पूदता पवइनेन शुदद्धाः शचइयच शुचइयः शुचिचमपिइ यन्ति लोचकम्।

नैषां. शिचश्नं प्र दह्वदति जाचतवेह्वदाः स्वर्गे. लोवेफ ब्चहु स्त्रैणह्वमेषाम्।।2।।

पद-पाठः

अचनचस्थाः। पूद्दताः। पवह्वनेन। शुद्दद्धाः। शुचह्वयः। शुचिह्वम्। अपिह्व। यचन्तिच। लोचकम्। न।
एचषाचम्। शिचश्नम्। प्र। दचह्चतिच। जाचत{विह्वदाः। स्वचः{गे। लोचवेफ। ब्चहु। स्त्रैणह्वम्। एचषाचम्।।2।।

सा0 भा0: अनस्थाः। न विद्यते अस्थ्युपलक्षितं षाट्कौशिवंफ एषाम् इति अनस्थाः। अमृतमयशरीरा इत्यर्थः। अत एव पवनेन पवनसाधनेन पूताः। यद्वा पवनेन अन्तरिक्षसंचारिणा वायुना पवित्रीकृताः शु(ाः निर्मलाः शुचयः दीप्यमानाः एवंभूताः सवयज्ञस्य कर्तारः शुचिम् दीप्यमानं ज्योतिर्मयं लोकम् अपि यन्ति अपिगच्छन्ति देहावसाने प्राप्नुवन्ति। अपि च एषाम् स्वर्गे लोवेफ अवस्थितानां शिश्नम् भोगसाधनम् इन्द्रियं जातवेदाः जातानां वेदिता अग्निः न प्र दहति न निर्वीर्यं करोति। प्रदाहप्रसक्तिफम् आह-बहु स्त्रैणम् इति। तत्र हि सुकृतपफलोप- भोगस्थाने एषां सुकृतिनां बहु बहुलं स्त्रैणम् स्त्रीणां समूहो भोगार्थे विद्यते। एवं स्त्रीसमूहं भुञ्जानानामपि न निर्वीयत्वशङ्केत्यर्थः। स्त्रैणम् इति।

हिन्दी अनुवादः-यह ;ब्रह्मौदनद्ध अस्थिरहित ;कोई भी इच्छित आकार लेने में सक्षमद्ध और पवित्र है। वायु से ;शरीर में प्राणायाम आदि वेफ द्वाराद्ध शु(और पवित्र होकर यह पवित्र लोकों को ही प्राप्त होता है। अग्नि इसवेफ शिश्न ;उत्पादक अंगद्ध को नष्ट नहीं करता। स्वर्ग में ;इसका तेजस् धारण करने वालीद्ध इसकी बहुत सी स्त्रियाँ ;उत्पादक शक्तिफयाँ।द्ध हैं।।2।।

संहिता-पाठः

क्विचष्टाचरिणह्वमोदचनं ये पचह्वन्तिच नैनाचनवह्वर्तिः सचते क्चदा च्चन।
आस्तेह्व यचम उपह्व याति देचवान्त्सं गह्वन्धचर्वैर्म-दते सोचम्येभिह्वः।।3।।

पद-पाठः

विचष्टाचरिणह्वम्। ओचदचनम्। ये। पचह्वन्ति। न। एचनाचन्। अवह्वर्तिः। स्चचचतेच। क्चदा। च्चन।
आसतेह्व। यचमे। उपह्व। याचतिच। देचवान्। सम्। गचन्धचर्वैः। मचदचतेच। सोचम्येभिह्वः।।3।।

सा0 भा0: विष्टारिणम् उदीरितरीत्या विस्तीर्यमाणावयवम् ओदनं ये यजमानाः पचन्ति। पक्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छन्तीत्यर्थः। एनान् यजमानान् वर्तिः वृत्तिर्जीवनम् तदभावः अवर्तिः दारिद्र ं कदाचन कदाचिदपि न सचते न समवैति। पच समवाये। बहुवद् वक्तम् एकवद् आह। यः पचति स च सवयज्ञानुष्ठाता देहविश्लेषानन्तरं यमे पितॄणाम् अधिपतौ पूजितः सन् आस्ते सुखेन वसति। तेन अनुज्ञातः सन् देवान् उप याति उपगच्छति। तथा सोम्येभिः सौम्यैः सोमार्हैः गर्न्धर्वैः विश्वावसुप्रभृतिभिः सोमपालैः सह सं मदते अमृतमयसोमपानेन माद्यति।

हिन्दी अनुवादः-ब्रह्मोदन यज्ञ को करने वाले व्यक्तिफ अस्थिरहित शरीर वाले होकर, पवित्र वायु से पवित्री कृत और स्वयं भी पवित्र होकर अन्त में पवित्र स्वर्ग में जाते हैं। इनवेफ भोग साधन लिंग को अग्नि नहीं जलाता। साथ ही स्वर्गलोक में इन्हें यथेच्छ स्त्रीसम्भोग प्राप्त होता है। जो यजमान इस प्रकार वेफ विस्तार वाले ओदन को यज्ञ वेफ निमित्त पकाते हैं उन्हें अजीविका कभी नहीं होती ;= उन्हें अ   धन सदा उपलब्ध रहता हैद्ध। यमलोक ;= पृथवीद्ध पर वह सुख से रहता है। अन्त में मर कर वह देवों वेफ ;= स्वर्गद्ध को प्राप्त होता है। स्वर्ग में वह सोमयाती जनों वेफ साथ सुखी होता है।।3।।

संहिता-पाठः

क्विचष्टाचरिणह्वमोदचनं ये पचह्वन्ति नैनाह्वन् यचमः परिह्व मुष्णातिच रेतःह्व।
स्चथी हह्व भूद्दत्वा रह्वथचयानह्व ईयते पचक्षी हे भूद्दत्वातिच दिक्चः समेह्वति।।4।।

पद-पाठः

विष्टारिणम्। ओदनम्। ये। पचन्ति। न। एनान्। यमः। परि। मुष्णाति। रेतः।
रथी। ह। भूत्वा। रथयाने। ईयते। पक्षी। ह। भूत्वा। अति। दिवः। सम्। एति॥5॥

सा० भा०: नैनान् इत्यन्तं पूर्ववत्। यमः नियन्ता जीवनापहारी एनान् सवयज्ञानुष्टातॄन् रेतः न परि मुष्णाति नापहरति। रेतोहीनान् न करोतीत्यर्थः। स च सवयज्ञानुष्टाता रथयाने रथेन यातव्ये भूलोके यावज्जीवं रथी ह भूत्वा रथाधिरूढ एव ईयते संचरति। ई गतौ। दिवादिः। अन्तरिक्षमार्गे च पक्षी पक्षवान् ह भूत्वा दिवः अन्तरिक्षप्रभृतीन् उपरितनान् लोकान् अतिक्रम्य समेति तत्तद्भोगस्थानेषु भोगैः संगच्छते।

हिन्दी अनुवादः-जो यजमान इस प्रकार उपयुक्त विस्तार वाले यज्ञोदन को पकाते हैं-यमराज उनके वीर्य की चोरी नहीं करता ;वे सद्य शक्तिशाली और स्वस्थ रहते हैं। या यमराज उनके वंश को नष्ट नहीं कर पाता। वह व्यक्ति रथवाला होकर रथयान में संचरण करता है। पक्षी होकर वह द्युलोक में भी देवों के साथ संगत होता है।5॥

संहिता-पाठः

एष यज्ञानां विततो वहिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति बिसं शालूकं शफको मुलाली।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥8॥

पद-पाठः

एषः। यज्ञानाम्। वि-ततः। वहिष्ठः। विष्टारिणम्। पक्त्वा। दिवम्। आ। विवेश। आण्डीकम्। कुमुदम्। सम। तनोति। बिसम्। शालुकम्। शफकः। मुलाली। एताः। त्वा। धाराः। उप। यन्तु। सर्वाः। स्वः-गे। लोके। मधु-मत्। पिन्वमानाः। उप। त्वा। तिष्ठन्तु। पुष्करिणीः। सम्-अन्ताः॥8॥

सा० भा०: एष विततः विस्तृतः सवयज्ञः यज्ञानां मध्ये वहिष्टः वोढृतमः। विष्टारिणम् शिरः पृष्ठाद्यवयवकल्पनया उदीरितविस्तारोपेतम् ओदनं पक्त्वा यजमान- स्तत्फलभूतं दिवम् स्वर्गम् आ विवेश प्राप्नोति। आण्डीकम् अण्डाकृतेः कन्दात् उत्पन्नं कुमुदम् कैरवं दिश्येषु ”देषु सं तनोति संयोजयति। तथा बिसम् प कन्दम्। शालूकम् उत्पलकन्दम्। शफकः शफाकृतिः जलोत्पन्न। मुलालीति मृणाली विवक्षिता। एतानि सर्वाणि परितो ”देषु स्थापनीयानि। एवम् इदानीम् अनुष्ठित्वात् एतत्फलभोगस्थाने स्वर्गे कुमुदोत्पलकमलोपेतानि मधुरोदकानि नित्यपूर्णानि क्रीडासरांसि एनं परितः सेवन्त इत्यर्थः। एतदेवोत्तरत्र विशदीक्रियते-उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः इति। दधिमधुघृतादिलक्षणस्य दिश्यासु कुल्यासु पूर्यमाणस्य रसस्य एताः सर्वा धाराः प्रवाहाः फलभूते स्वर्गे लोके मधुमत् मधुयुक्तं माधुर्यवद् वा पिन्वमानाः सि न्त्यः त्वा त्वाम् उप यन्तु उपगच्छन्तु। तथा समन्ताः पर्यन्तवर्तिन्यः पुष्करिणीः पुष्करिण्यः सरस्यः हे सवयज्ञानुष्टातः त्वा त्वाम् उप तिष्ठन्तु उपस्थिताः संगता भवन्तु।

हिन्दी अनुवादः-विस्तृत यह सब यज्ञ अन्य यज्ञों के मध्य में अत्यन्त वोढा है। कोई भी यजमान इस उपरोक्त प्रकार के विस्तार वाले यज्ञ को उद्देश्य करके ओदन पका स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया। वह अण्डाकृति कुमुद को झीलादि में विस्तार देता है। मृणावनाल, प के, उपलकन्द तथा मृणाली को सरादि के संयोजित करता है ;= कमलादि पूर्ण सरोवरों में स्नान-पानादि का सुख भोगता है। हे ओदन सवकारी यजमान! यह सब घृतादि की धारायें तुझे सम्प्राप्त होवें। स्वर्गलोक में मधुर मधु प्रभृति से पूर्ण होती हुई विविध दुग्धादि की प सरसियां, चतुर्दिक से, सम्प्राप्त होवें॥8॥

संहिता-पाठः

घृत”दा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना उप त्वा
तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः॥6॥

पद-पाठः

धृद्दत{"ह्नदाः। मधुह्न{वूफलाः। सुराह्न{उदकाः। धीचरेणह्न। पूद्दर्णाः। उ्यदच्यवेफन। दच्यध्ना। एच्यताः।।6।।

सा0 भा0: घृत"दाः घृतपूर्ण"दयुक्ताः। मधुवूफलाः मधुना माक्षिवेफण युक्तानि वूफलानि यासां ताः। सुरोदकाः सुरा मद्यमेव उदवंफ यासां ताः। तथा क्षीरेण उदवेफन दध्ना च पूर्णाः। एतेषु घृतादिद्रव्येषु यद्यत् कामयसे तेन तेन पूर्णा बहुविधाः पुष्करिण्यः त्वां सेवन्ताम् इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे सव ;सोमयज्ञद्ध वेफ अनुष्टानकर्त्ता! घृत वेफ प्रवाह वाली, शहद से पूर्ण किनारों वाली, निर्मल जल वाली, दुग्ध, जल और दही से पूर्ण समस्त धाराएँ मधुरतायुत्तफ पदार्थों को पुष्ट करती हुईं, द्युलोक में आपको प्राप्त हों।।6।।

संहिता-पाठः

च्यतुरह्नः वुफद्दम्भांश्चह्नतुद्दर्धा दह्नदामि क्षीचरेणह्न पूद्दँर्णा उह्नदच्यवेफनह्न दच्यध्ना।
एच्यतास्त्वाच्य धाराच्य उपह्न यन्तुद्द सर्वा.: स्च्यर्ग लोच्यवेफ मधुह्नमच्यत् पिन्वह्नमानाच्य उपह्न त्वा
तिष्ठन्तु पुष्कच्यरिणीचः समह्नन्ताः।।7।।

पद-पाठः

च्यतुरह्नः। वुफद्दम्भा न्। च्यतुद्दः{धा। दच्यदच्याम्यि। क्षीचरेणह्न। पूद्दर्णान्। उ्यदच्यवेफनह्न। दच्यध्ना। एच्यताः।7।।

क्षीरादिद्रव्येण पूर्णान् चतुरः वुफम्भान् चतुर्धा प्रागादिदिग्भेदेन चतुष्प्रकारं दधामि दिक्षु निदधामि। एताः क्षीरादिधाराः त्वाम् उप यन्तु इत्यादि योज्यम्।

हिन्दी अनुवादः-दूध, दही और जल से पूर्ण चार घड़ों को हम चार दिशाओं में स्थापित करते हैं। स्वर्गलोक में दुग्ध आदि की धाराएँ मधुरता को पुष्ट करती हुई, आपको प्राप्त हों और जल से पूर्ण सरिताएँ भी आपको प्राप्त हों।।7।।

संहिता-पाठः

इ्यममोह्नदच्यनं नि दह्नधे ब्राह्मच्यणेषुह्न विष्टाच्यरिणं. लोकच्यजित स्च्यर्गम्।
स मेच्य मा क्षेह्नष्ट स्च्यधयाच्य पिन्वह्नमानो विच्यश्वरूह्नपा धेच्यनुः काह्नमदुघोह्न मे अस्तु।।8।।

पद-पाठः

इ्यमम्। ओच्यदच्यनम्। नि। दच्यधेच्य। ब्राच्यह्मच्यणेषुह्न। विच्यष्टच्यारिणह्नम्। लोच्यकच्य{जितह्नम्। स्वःच्य{गम्।
सः। मेच्य। क्षेच्यष्टच्य। स्च्यधयाह्न। पिन्वह्नमानः। विच्यश्व{रूपा। धेच्यनुः। काच्यमच्य{दुघाह्न। मेच्य। अच्यस्तुच्य।।

सा0 भा0: इमम् प म् ओदनं ब्राह्मेणषु अग्र जन्मसु भोक्तृषु नि दधे निक्षिपामि। कीदृशम्। विष्टारिणम् प्रागुक्तविस्तारोपेतं लोकजितम् लोक्यत इति लोकः कर्मपफलं तज्जयसाधनम् अत एव स्वर्ग्यम् स्वर्गशब्दाभिधेयदुःखासंभि निरतिशय- सुखस्य साधनम्। स मे ओदनः तस्मिन् स्वर्गे लोक स्वधया क्षीरादिरसेन पिन्वमानः वर्धमानः मा क्षेष्ट क्षयं मा प्राप्नोतु। क्षि क्षये। मा लु । पिन्वमान इति। पिवि मिवि णिवि सेचने। इदित्वा ु म्। अपि च ओदनः विश्वरूपा नानाविधपफलप्रदरूपा धेनुः सती मे मम कामदुघा अभिलषितपफलस्य दोग्ध्री अस्तु भवतु। कामान् दुग्धे इति कामदुघा।

हिन्दी अनुवादः-यह विस्तारित होने वाला स्वर्गीय 'ओदन' हम ब्राह्मणों ;ब्रह्मनिष्ठ साधकोंद्ध में स्थापित करते हैं, यह ओदन स्वधा से दुग्ध आदि वेफ द्वारा वर्दित होने वेफ कारण नष्ट न हो और अभिलषित पफल प्रदान करने वाली कामधेनु वेफ रूप में परिणत हो जाए।।8।।

7. वाजिनीवान्)षभ सूत्तफ ;4.38द्ध

;)**षि**-बादरायणि। **देवता**-1-4 अप्सरा, 5-7 वाजिनीवान्)षभ। **छन्द**-अनुष्टुप्, 3 त्र्यवसाना षट्पदा जगती, 5 भुरिक् अत्यष्टि, 6 त्रिष्टुप्, 7 त्र्यवसाना पञ्चपदा अनुष्टुबगर्भापुरउपरिष्टात् ज्योतिष्मती जगतीद्ध

1. उ ि न्दतीं स यन्तीमप्सरां साध्देविनीम्।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे।।1।।

उ ेदन ;शत्रु उच्छेदन अथवा ग्रन्थियों का निवारण करने वालीद्ध, उत्तम विजय दिलाने वाली, स्पर्धाओं में उत्तम ;विजयी बनाने वालेद्ध कर्मों की अध्िष्ठात्री देवी अप्सराओं को हम आहूत करते हैं।।1।।

2. विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साध्देविनीम्।
ग्लेह कृतानि गृ ानामप्सरां तामिह हुवे।।2।।

चयन करने में कुशल, श्रेष्ठ व्यवहार वाली अप्सरा तथा स्पर्ध में श्रेष्ठ ;विजयी बनाने वालेद्ध कर्म कराने वाली स्पध र्ा की अध्िष्ठात्री देवी का हम आवाहन करते हैं।।2।।

3. यायैः परिनृत्यत्यात्ददाना कृतं ग्लहात्। सा नः कृतानि सीषती प्रहामाप्नोतु मायया।
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम्।।3।।

स्पर्धाओं में गतिशील, उत्तम प्रयासों को अंगीकार करने वाली वह ;देवीद्ध हमारे द्वारा किये जाने वाले कार्यों को अनुशासित करे। वह अपनी कुशलता से उन्नति प्राप्त करे तथा पयस्वती ;पोषण देने वालीद्ध होकर हमारे पास आए। हमारा यह श्रेष्ठ ध्न ;दूसरों द्वारागद्ध जीत न लिया जाए।।3।।

4. या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधं च बिभ्रती।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे।।4।।

जो देवी ;स्पर्ध के समय पिछड़ जाने पर होने वालेद्ध शोक एवं क्रोध को भी अपने अक्षों ;निर्धारित पक्ष या प्रयासद्ध द्वारा आनन्द प्रदान करती हैं। ऐसी आनन्द और प्रमोद देने वाली अप्सराओं को हम आहूत करते हैं।।4।।

5. सूर्यस्य रश्मीननु याः संचरन्ति मरीचीर्वा या अनुसंचरन्ति। यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान्त्सघः।
सर्वौंल्लोकान् पर्यैति रक्षन्। स न ऐतु होममिमं जुषाणोऽन्तरिक्षेण सह वाजिनीवान्।।5।।

जो देवियाँ आदित्य रश्मियों अथवा प्रभा के विचरने के स्थान में विचरण करती हैं, जिनके सेचन समर्थ पति ;सूर्यदेवद्ध समस्त लोकों की सुरक्षा करते हुए, दूर अन्तरिक्ष तथा समस्त दिशाओं में विचरते हैंऋ वे सूर्यदेव अप्सराओं सहित हमारी हवियों को ग्रहण करते हुए, हमारे समीप पधरें।।5।।

6. अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
इमे ते स्तोका बहुला एह्यर्वा ि यं ते कर्कीह ते मनोऽस्तु।।6।।

हे बलवान् ;सूर्यदेवद्ध! आप कर्मठ बछड़ों या बच्चों की यहाँ पर सुरक्षा करें। यह आपके अनुग्रह ;पर आश्रितद्ध हैं, यह आपकी कर्म शक्तिफ है, आपका मन यहाँ रमे। आप हमारा नमन स्वीकार करें हमारे निकट पधरें।।6।।

७. अन्तरिक्षेण सह वाजिनीवन् कर्कीं वत्सामिह रक्ष वाजिन्।
अयं घासो अयं व्रज इह वत्सां नि बध्नीमः। यथानाम व ईश्महे स्वाहा।।७।।

हे शक्तिफवान्! आप कर्मठ बछड़ों की यहाँ पर सुरक्षा करें और उनका पालन करें। यह गोशाला है। यह उनके लिए घास है, यहाँ हम बछड़ों को बाँधते हैं। हमारा जैसा नाम है, उसी के अनुसार हम ऐश्वर्य पाएँ। हम आपके प्रति समर्पित हैं।

न्दपज . प्ट ;एकक - 2द्ध

8. ब्रह्मगवी ;5.18द्ध

)षि-मयोभू। **देवता-**ब्रह्मगवी

'ब्रह्मगवीभ्याम् अन्वाह। चेष्टाम् विचृतति। ऊबध्ये। श्मसाने। त्रिरमून् हनस्वेत्याह। द्वितीययाश्मानम् ऊबध्ये गूहयति। द्वादशरात्रं सर्वव्रत उपश्राम्यति। क्ष्विदिते स्तृतः। अवागग्रेण निवर्तयति' ;कौसू0 48, 13-22द्ध इति। 'नैतां ते देवाः' 'अतिमात्रम् अवर्धन्त इति द्वे सूक्ते एका ब्रह्मगवी। 'श्रमेण तपसा' इत्यनुवाकोर्(न्त्या। चेष्टाम्। अन्वाहेति शेषः। चेष्टा हरणमारणविशसनाद्याः। विचृतति ऊबध्ये हविः। कृतेत्यर्थः। अमून् शत्रून्। क्ष्विदिते द्वादशरात्राद् ऊर्ध्वं द्विः सवितर्युद्गते नष्टः शत्रुरिति ज्ञेयम्। अवागग्रेण दण्डेन अश्मानम् ऊबध्यग्रहाद् अपनयति।

संहिता-पाठः

नैतां तेङ्ख देचवा अचददुद्दस्तुभ्यषेङ्ख नृपतेच अत्तङ्खवे।

मा ब्राङ्खह्मचणस्यङ्ख राजन्यच गां जिङ्खघत्सो अनाचद्याम्।।१।।

पद-पाठः

न। एचताम्। तेच। देचवाः। अचदचदुद्दः। तुभ्यङ्कम्। नृद्र(पचते। अत्तङ्खवे।

मा। ब्राचह्मचणस्यङ्ख। राचजचन्यच। गाम्। जिघचत्सःच। अचनाचद्याम्।।१।।

हिन्दी अनुवादः-हे राजन्। इस गाय को तुम्हें देवों ने भक्षण वेफ लिए नहीं दिया है। हे राजन! ब्रह्मण की अहिंसा-अभक्ष्या गाय को हिंसित मत करो।।१।।

संहिता-पाठः

अचक्षद्रुङ्खग्धो राजचन्य(ः पाचप आङ्खत्मपराजिचतः।

स ब्राङ्खह्मचणस्यच गामङ्खद्यादचद्य जीङ्खवान्चि मा श्वः।।2।।

पद-पाठः

अचक्ष(द्रुङ्खग्धः। राचजचन्य(ः। पाचपः। आचत्मच(पचराचजिचतः।

सः। ब्राचह्मचणस्यङ्ख। गाम्। अचद्याचत्। अचद्य। जीचवाचन्चि। मा। श्वः।।2।।

हिन्दी अनुवादः-द्यूतकारी, द्रोही और अपनी ही भूलों वेफ कारण पराजित राजा आदि जो भी ब्राह्मण की गाय को खाए-वह आज तो जीवित रह जाय, पर कल जीवित न रहे।।2।।

संहिता-पाठः

आविङ्खष्टिताचघविङ्खषा पृदाचवूफरिङ्खक्च चर्म॰णा।

सा ब्राह्मचणस्यह्न राजन्य तृदष्टैषा गौरह्ननाचद्या।।3।।

पद-पाठः

आर्विह्नष्टिता। अचघर्विह्नषा। पृदादाचवूफः(इह्नव। चर्मणा।

सा। ब्राचह्मचणस्यह्न। राचजचन्यच। तृदष्टा। एचषा। गौः। अचनाचद्या।।3।।

हिन्दी अनुवादः-हे राजन् ब्राह्मण की यह गाय तो चमड़े से ढँकी हुई विषभरी और प्यासी सांपिनसी है। वह खाने वेफ योग्य नहीं है।।3।।

संहिता-पाठः

निर्वै क्षचत्रं नयह्नतिच हन्तिच वर्चोचग्निस्विचारह्नब्धो वि दुह्ननोतिच सर्वम्।

यो ब्राह्मचणं मन्यह्नतेच अ ह्नमेचव स क्विचषस्यह्न पिबति तैमाचतस्यह्न।।4।।

पद-पाठः

निः। वै। क्षत्रम् नयइति। हन्तिइ। वर्चःइ। अग्निःःइव। आरिइब्धः। वि। दुइनोतित्।
सर्वम्। यः। ब्राह्मणम्। मन्यइते। अ इम्। एव। सः। विषस्यइ। पिबतित्। तैमातस्य।।5।।

हिन्दी अनुवादः-दुःखी ब्राह्मण राज्य को विनष्ट कर देता है। राजा वेफ तेज को विनष्ट कर देता है। संक्षुब्ध अग्नि वेफ समान वह सब वुफछ नष्ट कर देता है। जो व्यक्ति ब्राह्मण को अपना खाद्य मानता है-वह गीले प्रदेश में रहनेवाले सर्प वेफविष को ही खाता है।।5।।

संहिता-पाठः

य एइनंच हन्तिइ मृइदुं मन्यइमानो देवपीयुर्धनइकामोच न चित्तात्।
सं तस्येन्द्रोच हृदइयेर्िग्निमिइन्ध उभे एइनं द्विष्टोच नभइसीच चरइन्तम्।।8।।

पद-पाठः

यः। एनम्। हन्तिइ। मृइदुम्। मन्यइमानः। देवर्पीयुः। धनइर्कामः। न। चित्तात्।
सम्। तस्यइ। इन्द्रइः। हृदइये। अग्निम्। इन्धे। उभे इतिइ। एनम्। द्विष्टःच। नभइसीच। इतिइ। चरइन्तम्।।8।।

हिन्दी अनुवादः-देवों वेफ घृतादि को पी जानेवाला और धन का लोभी जो व्यक्तिफ, भूल से भी, ब्राह्मण को मृदु-सरल जानकर, उसे मारता है-उसवेफ हृदय में इन्द्र स्वयं ही अग्नि-सी सुलगा देता है। इधर-उधर गमनागमनल करनेवाले इस व्यक्तिफ को यह दोनों द्यावा पृथिवी भी द्वेष करती हैं।।8।।

संहिता-पाठः

न ब्राइह्मणो हिंइसितव्योऽग्निः प्रियतइनोरिव।
सोमोच ह्यस्य दायाद इन्द्रोइ अस्याभिशस्तिपाः।।6।।

पद-पाठः

न। ब्राह्मणः। हिंसितव्यः। अग्निः। प्रियतइनोःइव।
सोमइः। हि। अस्य। दायादः। इन्द्रइः। अस्य। अभिशस्तिर्पाः।।6।।

हिन्दी अनुवादः-अपने शरीर में विद्यमान अग्नि ;= अपेक्षिता ऊष्माद्ध को बुझा देने वेफ समान ब्राह्मण कभी मारने वेफ योग्य नहीं है। इस ब्राह्मण का सगा सोम है और इन्द्र इसका निन्दा से रक्षक है।।6।।

संहिता-पाठः

शतापाष्ठां नि गिइरति तां न शइक्नोति निःखिदइम्।
अ यो ब्रह्मणां मल्वः स्वाद्वइद्मीति मन्यइते।।7।।

पद-पाठः

शतर्अइपाष्ठाम्। नि। गिरति। ताम्। न। शक्नोति। निःखिदइम्।
अ इम्। यः। ब्रह्मणाइम्। मल्वः। स्वादु। अर्द्मि। इतिइ। मन्यइते।।7।।

हिन्दी अनुवादः-जो तुच्छ व्यक्तिफ ब्राह्मणों वेफ अ को स्वादिष्ट जानकर भोगता है-वह शतशः विपत्तियों में गिरता है और परितप्त होते हुए वह ब्राह्मण वेफ अ को पचा नहीं सकता।।7।।

संहिता-पाठः

जिहा ज्या भवइति वुफल्मइलं वा नाइडीका दन्तास्तापइसाभिदिग्इधाः।
तेभिइर्ब्रह्म विइध्यति देवपीयून् हृइद्बलैर्धनुइर्भिर्देवजूइतैः।।8।।

पद-पाठः

जिचह्ना। ज्या। भवङ्गति। वुफल्मङ्गलम्। वाक्। नाचडीचका:। दन्ता:ङ्ग। तपङ्गसा। अचभि(दिङ्गग्धा:।
तेर्भि:ङ्ग। ब्रचह्मा। विचध्यचत्चि। देचवेच(पीचयून्। हृचत्(बलै:। धनुङ्ग:(भि:। देचव(जूङ्गतै:॥8॥

हिन्दी अनुवादः-ब्राह्मण की जिह्वा धनुष की प्रत्य   ा होती है। उसकी वाणी धनुष का दण्ड होती है। दन्त बाण का दण्डभाग होते हैं। ब्राह्मण अपने देवप्रेरित और हृदय वेफ आत्मिक बल से युत्तफ उन बाणों वेफ द्वारा देवों वेफ शत्रुओं को आवि(करता है॥8॥

संहिता-पाठः

तीचक्ष्णेषङ्गवो ब्राह्मचणा हेङ्गतिचमन्तोच यामस्यङ्गन्ति शचरच्यचांऽचङ्ग न सा मृषाङ्ग।
अचनुदहायच तपङ्गसा मचन्युनाङ्ग चोचत दूदरादवं भिन्दन्त्येनम्॥9॥

पद-पाठः

तीचक्ष्ण(इङ्गषव:। ब्राचह्मचण:। हेचत्चि(मन्तङ्ग:। याम्। अस्यङ्गन्ति। शचरच्याचं(म्। न। सा। मृषाङ्ग।
अचनुदद(हायङ्ग। तपङ्गसा। मचन्युनाङ्ग। चच। उचत। दूदरात्। अबङ्ग। भिचन्दचन्त्चि। एचनचम्॥9॥

हिन्दी अनुवादः-तीखे बाणों से युत्तफ और सायुध ब्राह्मण जिस बाण को पेंफकते हैं-वह कभी व्यर्थ नहीं होती। वे अपने तप और क्रोध वेफ साथ शत्रु कर पीछा करवेफ इसे ;= स्वशत्रु कोद्ध दूर से ही आवि(करते हैं॥9॥

संहिता-पाठः

ये सचह चमराङ्गजच ासङ्गन् दशशचता उचत।
ते ब्राङ्गह्मचणस्यच गां जचग्ध्वा वैचतहव्या: पराङ्गभवन्॥10॥

पद-पाठः

ये। सचह   ङ्गम्। अराङ्गजन्। आसङ्गन् दचशच(शचता:। उचत।
ते। ब्राचह्मचणस्यङ्ग। गाम्। जचग्ध्वा। वैचतच(हचव्या:। पराङ्ग। अचभचवचन्॥10॥

हिन्दी अनुवादः-जो सह   और दशसह   की भी संख्या में राजन्य थे-वे सब देवहविर्भोत्तफा ब्राह्मण की गाय को खाकर, पराजित हो गए॥10॥

संहिता-पाठः

गौस्चेव तान् हचन्यमाङ्गना वैतहचव्याँ अवाङ्गतिरत्।
ये वेफसङ्गरप्राबन्धाया स्चमाजाचमपेङ्गचिरन्॥11॥

पद-पाठः

गौ:। एचव। तान्। हचन्यमाङ्गना। वैचतच(हचव्यान्। अवङ्ग। अचतिचरचत्।
ये। वेफसङ्गर(प्राबन्धाया:। चचरचमच(अजाङ्गम्। अपेङ्गचिरन्॥11॥

हिन्दी अनुवादः-मारी जाती हुई उस गाय ने ही उन देवा भोगियों को मौत वेफ घाट उतार दिया। जिन लोगों ने बालों से बँधी हुई अन्तिम गृहपशु बकरी को भी पकाया-वे भी मारे गये॥11॥

संहिता-पाठः

एकङ्गशतंच ता जचनताच या भमिचर्व्य(धूनुत।
प्रचजा हिङ्गसिचत्वा ब्राह्मङ्गणीमसंभचव्यं पराङ्गभवन्॥12॥

पद-पाठः

एकङ्ख(शतम्। ताः। जचनताः। भूमिङ्घः। वि(अङ्घधूनुत।
प्रच(जाम्। हिंचस्यित्वा। ब्राह्मङ्घणीम्। अचस्चम्(भ्चव्यम्। पराङ्घ। अचभ्चक्चन्।।12।।

हिन्दी अनुवादः-सैकड़ों वे लोग हो गए हैं कि जिन्होंने पृथ्वी को हिला दिया था। वे भी ब्राह्मणप्रजा की हिंसा करवेफ असम्भावित पराजय को प्राप्त हुए।।12।।

संहिता-पाठः

देचवेचपीचयुश्चङ्घरतिच मर्त्ये.षु गरगीचर्णो भङ्घक्चत्वयस्थिङ्घभूयान्।
यो ब्राङ्घह्मचणं देचवबङ्घन्धुं हिंचनस्तिच न स पिङ्घतृद्याणचमप्येङ्घति लोचकम्।।13।।

पद-पाठः

देचवेच(पीचयुः। चचरचतिच। मर्त्ये.षु। गचरच(गीचर्णः। भ्चक्चतिच। अस्थिङ्घ(भूयान्।
यः। ब्राचह्मचणम्। देचव(बङ्घन्धुम्। हिंचनस्ति। न। सः। पिचतृद्(यानङ्घम्। अपिङ्घ। एचतिच। लोचकम्।।13।।

हिन्दी अनुवादः-देवा भोगी व्यत्तिफ मनुष्यों में विषमान किये हुए की तरह घूमता है और वह हड्डियों का वंफकालमात्र शेष रह जाता है। देवों वेफ बन्धुत्व को प्राप्त ब्राह्मण को जो व्यत्तिफ मारता है वह तो पितृलोक भी नहीं प्राप्त कर पाता।।13।।

संहिता-पाठः

अचग्निर्वै नङ्घः पदवाचयः सोमोङ्घ दायाङ्घद उच्यते।
हचन्ताभिशचस्तेन्द्रचस्तथाच तद् वेचधसोङ्घ बिदुः।।14।।

पद-पाठः

अचग्निः। वै। नःच। पचदच(वाचयः। सोमङ्घः। दाचयाचदः। उचच्यचतेच।
हचन्ता। अचभि(शङ्घस्ता। इन्द्रङ्घः। तथाङ्घ। तत्। वेधसङ्घः। विचदुङ्घः।।14।।

हिन्दी अनुवादः-हे मनुष्यो! हम ब्राह्मणों का मार्गप्रदर्शक स्वयं अग्नि है और सोम हमारा सगा कहा जाता है। मारने किंवा अभिशाप देनेवाले को इन्द्र मारनेवाला है। ऐसा ही वे सब पूर्वविद्वान् भी जानते थे।।14।।

संहिता-पाठः

इषुङ्घरिव दिङ्घग्धा नृङ्घपते पृदाचवूफरिवङ्घ गोपते।
सा ब्राङ्घह्मचणस्येषुङ्घर्घोचरा तयाङ्घ विध्यत्तिच पीयङ्घतः।।15।।

पद-पाठः

इषुङ्घः(इव। दिचग्धा। नृद्(पचतेच। पृद्दावूफः(इङ्घव। गोच(पचतेच।
सा। ब्राचह्मचणस्यङ्घ। इषुः। घोचरा। तयाङ्घ। विचध्यचतिच। पीयङ्घतः।।15।।

हिन्दी अनुवादः-हे राजन्! हे गोपालक विषदिग्ध बाण वेफ सदृश और सर्प वेफ समान वह ब्राह्मण का मनःकामनारूप घोर वाग्बाण है, वह उसी वेफ हिंसक को वि(करता है।।15।।

9. तक्मनाशनम् ;5.22द्ध

)षि-भृग्वङ्गिरा। **देवता-**तक्मनाशन।

ज्वरभैषज्यकर्मणि 'अग्निस्तक्मानम्' इति सूक्तेन लाजान् पाययति। तथा तत्रैव कर्मणि दावाग्निप्रणयनं कृत्वा अनेन सूक्तेन ताम्रस्रुवेण मूर्ध्नि संपातान् आनयति। तथा च सूत्रम्-''अग्निस्तक्मानम्' इति लाजान् पाययति। दावे लोहित पात्रेण मूर्ध्नि संपातान् आनयति'' ;कौसू0 29, 18ऋ 19द्ध इति। लाजाः कृष्णा व्रीहयः तान् अभिमन्त्र्य पाययति मण्डे कृत्वा।

संहिता-पाठः

अचग्निस्त्चक्मान्चमपह्र बाधताम्चितः सोमोच ग्रावाच वरूह्रणः पूह्रतदह्रक्षाः।
वेदिह्रर्बर्चर्हिः सचमिधःच शोशह्रचानाह्र अप्च द्वेषाह्रस्यमुचया भह्रवन्तु।।1।।

पद-पाठः

अचग्निः। तचक्मानह्रम्। अपह्र। बाचधचताचम्। इतः। सोमह्रः। ग्रावाह्र। वरूह्रणः। पूह्रत(दह्रक्षाः।
वेदिह्रः। बर्चर्हिः। सचम्(इधह्रः। शोशुह्रचानाः। अपह्र। द्वेषह्रांसि। अचमुदया। भचवचन्तुह्र।।1।।

हिन्दी अनुवादः-अग्नि ज्वर वेफ यहां से दूर भगावे। सोम, सोम को वूफटनेवाले पत्थर, वरूण पवित्रबल मरूत, वेदि, वुफशा और प्रदग्धा समिधाएं प्रभृति सब ज्वरादि को यहां से दूर करें।।1।।

संहिता-पाठः

अचयं यो विश्वाचन् हरिह्रतान् कृह्रणोष्युह्रछोचचयह्र चग्निरिह्रवाभिदुह्रवन्।
अधाच हि तह्रक्म ्रचसो हि भूह्रया अधाच न्य(्धचरा ्वाच परेह्रहि।।2।।

पद-पाठः

अचयम्। यः। विश्वाह्रन्। हरिह्रतान्। कृचणोषिह्र। उचत्(शोचचन्। अचग्निः(इह्रव। अचभिचदुह्रन्वन्।
अधह्र। हि। तचक्मचन्। अचरसः। हि। भूह्रया। अधह्र। न्य(्। अचधचराच ्च। वाच। पराह्र। इचहिच।।2।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! यह जो तू सबको तता-तपा कर द्वेष करनेवाले और पीला बनाकर अशत्तफ बना देता हैऋ अग्नि वेफ समान प्रशुष्क करते हुए तथा दुःख देते हुए, अब तुम सत्त्वहीन हो जाओ। तुम यहां से पृथवृफ प्रदेश में भग जाओ।।2।।

संहिता-पाठः

यः पचरुषः पाह्ररुषेचयो(वध्वंचस इह्रवारूचणः।
तचक्मानेह्र विश्वधावीर्याधचराञ्चंच पराह्र सुवा।।3।।

पद-पाठः

यः। पचरुचषः। पाचरुचषेचयः। अचवचध्वंचसः(इह्रव। अचरूचणः।
तचक्मानह्रम्। विचश्वचवाच(वीचर्यच। अचधचराञ्चह्रम। पराह्र। सुह्रवच।।3।।

हिन्दी अनुवादः-जो ज्वर रोग शरीर वेफ पर्व-पर्व में व्याप्त और अग्नि-सा ध्वंसक है। हे अग्ने! सर्वत्र प्रसारी ज्वररोग को अब तुम नीचे कर दो।।3।।

संहिता-पाठः

अचधचराञ्चं प्र हिह्रणोमिच नमः कृह्रत्वा तचक्मनेह्र।

शचक्यम्भ्चरस्यङ्ग मुष्टिचहा पुनङ्घरेतु महावृद्षान्।।5।।

पद-पाठः

अचध्चराञ्चङ्गम्। प्र। ह्चिनोचम्चि। नमङ्गः। कृद्त्वा तचक्मनेङ्ग।
शचक्यम्भ्चरस्यङ्ग मुष्टिच(हा। पुनःङ्ग। एचतुद्। म्चहाच(वृद्षान्।।5।।

हिन्दी अनुवादः-ज्वर को नमस्कार करवेफ मैं उसे निम्नगति में प्रेरित करता हूँ। शाकाहारी व्यत्तिफ को धक्वेफ से मारने वाला ज्वर अब पुनः अधिक वर्षा वाले प्रदेशों में चला जाय।।5।।

संहिता-पाठः

ओकोङ्ग अस्यच मूजङ्गवन्त ओकोङ्ग अस्य महावृद्षाः।
यावङ्गज्जाचतस्तङ्गक्मंचस्तावाङ्गनास्चि बल्हिङ्गहवेफषु न्योच्चरः।।8।।

पद-पाठः

ओकङ्गः। अचस्यच। मूजङ्ग(वन्तः। ओकङ्गः। अचस्यच। म्चहाच(वृद्षाः।
यावङ्गत्। जाचत्। तचक्मचन्। तावाङ्गन्। अचस्चि। बल्हिङ्गहवेफषु निच(ओचच्चरः।।8।।

हिन्दी अनुवादः-इस ज्वर वेफ घर तो मूँज-घासादिवाले प्रदेश हैं। अतिवृ वाले प्रदेश इस ज्वर वेफ घर हैं। हे ज्वर! जब से तुम पृथ्वी पर उत्प हुये हो-तभी से बा ीकों में दृष्टिगोचर होते हो।।8।।

संहिता-पाठः

तक्मचन्व्या(ल्च गङ्गद्च व्य(द्द भूरिङ्ग यावय।
दाचसीं न्चिष्ट ङ्करीमिच्छ्च तां वज्रेणच समङ्घर्पय।।6।।

पद-पाठः

तक्मङ्गन्। वि(आङ्ग। वि। गचद्च। वि(अङ्ग । भूरिङ्ग। यचक्चयच।
दाचसीम्। निचः(तिक्वङ्गरीम्। इचच्छ्च। ताम्। वज्रेण। सम्। अचर्पचयच।।6।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! सर्प! विकृता ग! रोगविशेष! तुम अत्यन्त दूर चले जाओ। तुम अत्यन्त विनाशिनी दासी ;= नीचवुफल की हीद्ध की इच्छा करो। उसे तुम अपने वज्र वेफ द्वारा मृत्यु को समर्पित करो।।6।।

संहिता-पाठः

तक्मचन् मूजङ्गवतो गच्छ्च बल्हिङ्गहकान् वा परस्तचराम्।
शूद्रामिङ्गच्छ प्रपफ्चर्व्य. 1च तां तङ्गक्मचन् वी(व धूनुहि।।7।।

पद-पाठः

तक्मङ्गन्। मूजङ्ग(वितः। गचच्छ्च। बल्हिङ्गहकान्। वा। पचरः(तचराम्।
शूद्द्राम्। इचच्छ्च। प्रच(पफ्चर्व्य(म्। तान् तचक्मचन्। वि(इङ्गव। धूदनुदहि।।7।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! तुम मूँज-घास वाले प्रदेशों में चले जाओ अथवा उससे भी दूर बा ीक देश को चले जाओ। भ्रमण करने वाली शूद्रा ही की इच्छा करो और तुम उसे ही भलीभांति कँपाओ।।7।।

संहिता-पाठः

म्चहाच्वृदषान् मूजह्ववतो बन्ध्वह्व्(फ्चरेत्यह्व।
प्रैतानिह्व तचक्मनेह्व ब्रूमो अन्यचक्षेचत्राणिच वा इ्चमा।।8।।

पद-पाठः

म्चहाच्(वृदषान्। मूजह्व(वितः। बन्धुह्व। अर्चा(चि। फ्चराच्(त्यह्व।
प्र। एचतानिह्व। तचक्मनेह्व। ब्रूदम्चः। अचन्यच्(क्षेचत्राणिह्व। वै। इ्चमा।।8।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वरभाई! तुम जाकर अतिवृष्टि वाले प्रदेश वेफ निवासियों को खाओ, और मूँज-घासवाले प्रदेशों वेफ लोगों को खाओ। हम इन प्रदेशवासियों को ज्वर वेफ प्रसार वेफ लिए कहते हैं अथवा इन अन्य स्थानों वेफ वासियों को कहते हैं।।8।।

संहिता-पाठः

अचन्यचक्षेचत्रे न रह्वमसे क्चशी सन् मृह्वयासिः नः।
अभूह्वदुद प्रार्थ-स्तचक्मा स गह्वमिष्यतिच बल्हिहकान्।।9।।

पद-पाठः

अचन्यच्(क्षेचत्रे। न। रच्मच्सेच। क्चशी। सन्। मृदञ्चयच्सिच। नचः।

अभूह्वत्। ऊंच इतिह्व। प्रच्(अर्थः। तचक्मा। सः। गच्मिचष्यचतिच। बल्हिहकान्।।9।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! तुम अन्य स्थानों में टिकते ही नहीं हो। हमारे निकट रहकर ;= हममें पैफलकरद्ध हमारे वश में रह, तुम हमें सुख देते हो। अब ज्वर अपने पूर्व वेग को प्राप्त हो रहा है। अब वह वा ीक प्रदेश में चला जायेगा।।9।।

संहिता-पाठः

'यत् त्वं शीचतोथोह्व रूच्रः स्चह काचसावेह्वपयः।
भीचमास्तेह्व तक्मन् हेचतयचस्ताभिह्वः स्मच परिह्व वृ ्गिध नः।।10।।

पद-पाठः

यत्। त्वम्। शीचतः। अथोच इतिह्व। रूच्रः। स्चह। काचसा। अवेह्वपयः।
भीचमाः। तेच। तचक्म्चन्। हेचतयह्वः। ताभिह्वः। स्मच। परिह्व। वृद्धि ्ग्धच। नःच।।10।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! तुम जो शीत, शुष्क और खांसी वेफ साथ आकर शरीर को अत्यन्त कँपाते हो। तुम्हारे वे शीत-खांसी प्रभृति आयुध स्वरूप अत्यन्त भयंकर हैं। तुम उनवेफ द्वारा हमें अपवर्जित कर दो।।10।।

संहिता-पाठः

मा स्मैचतान्सखीह्वन् वुफरुथा बचलासं· काचसमुह्वयुदगम्।
मा स्मातोचर्वा ै पुन्चस्तत् त्वाह्व तक्म्च ुपह्व ब्रुवे।।11।।

पद-पाठः

मा। स्मच। एचतान्। सखीह्वन्। वुफरुच्थाःच। बचलासह्वम्। लच्त्(युदगम्।
मा। स्मच। अतह्वः। अचर्वा ्। आ। ऐह्वः। पुनेह्वः। तत्। त्वाचः। तचक्म्चन्। उपह्व। ब्रुदवेच।।11।।

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! आप कपफ, खाँसी तथा क्षय आदि रोगों को अपना मित्र बनाएँ और उस स्थान से हमारे समीप न आएँ। हे ज्वर! इस बात को हम आपसे पुनः कहते हैं।।11

संहिता-पाठः

तक्मचन् भ्रात्राह्व ब्चलासेह्वन्त्च स्व ाच कासिह्वकया स्चह।
पाचप्मा भ्रातृह्वव्येण स्चह गच्छाचमुमरह्वणं जनह्वम्॥12॥

पद-पाठः

तक्मह्वन्। भ्रात्राह्व। ब्चलासेह्वन्। स्व ाच। कासिह्वकया। स्चह।
पाचप्मा। भ्रातृह्वव्येण। स्चह। गच्छह्व। अचमुम्। अरह्वणम्। जनह्वम॥12॥

हिन्दी अनुवादः-हे ज्वर! आप अपने भाई कपफ, खाँसी तथा भतीजे पाप ;दुष्कर्मद्ध वेफ साथ मलीन मनुष्यों वेफ समीप गमन करें॥12॥

संहिता-पाठः

तृतीह्वयवंफ वितृतीचयं सह्वदचन्दिमुद्दत शाह्वरच्दम्।
तह्वक्मानं. शीचतं रूच्रं ग्रैष्मं. नाशयच वार्षि.कम्॥13॥

पद-पाठः

तृतीह्वयकम्। विच(तृदतीचयम्। स्चदचम्(दिम्। उचत। शाचरच्दम्।
तचक्मानह्वम्। शीचतम्। रूच्रम्। ग्रैष्मह्वम्। नाचशच्यच। वार्षि.कम्॥13॥

हिन्दी अनुवादः-;हे देव!द्ध आप तीसरे दिन आने वाले ;तिजारीद्ध, तीन दिन छोड़कर आने वाले ;चौथियाद्ध, सदैव रहने वाले, पीड़ा देने वाले तथा शरद् तु, वर्षा तु और ग्रीष्म तु में होने वाले ज्वरों तथा टण्डी लाने वाले ज्वरों को विनष्ट करें॥13॥

संहिता-पाठः

गचन्धारिह्वभ्योच मूजह्वद्‌च्च ो(`ह्वभ्यो मचेगधेह्वभ्यः।
प्रैचष्यन् जनह्वमिव शेच्वधिं तचक्मानंच परिह्व द सि॥14॥

पद-पाठः

गचन्धारिह्व(भ्यः। मूजह्वचत्(भ्यः। अ `ह्वभ्यः। मचगधेह्वभ्यः।
प्रच(एचष्यन्। जनह्वम्(इव। शेचवच(धिम्। तचक्मानह्वम्। परिह्व। दच चसि॥14॥

हिन्दी अनुवादः-जिस प्रकार भेजे जाने वाले खजाने की सुरक्षा करने वाले मनुष्य गांधार, मूँजवान्, अंग तथा मगध देशों में भेजे जाते है, उसी प्रकार इस कष्टदायक रोग को हम ;दूरद्ध भेजते हैं॥14॥

10. अरिष्टक्षयणम् ;6.27द्ध

)षि-भृगु। **देवता-**यम, निर्)ति।

संहिता-पाठः

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन् दूतो नि `त्या इदमाजगाम।

तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।1।।

हिन्दी अनुवादः-हे देवो! पाप देवता द्वारा प्रेरित दूत ;कपोत पक्षीद्ध, जिस अशुभ सूचक संदेश वेफ द्वारा हमें कष्ट पहुँचाने आया है, हम उस ;अशुभद्ध वेफ निवारण वेफ लिए हव्यादि कर्मों से आपकी पूजा करते हैं। हमारे द्विपद पुत्र-पौत्रादि एवं चतुष्पद गौ, अ ादिकों वेफ अनिष्ट-निवारण वेफ लिए, कपोत वेफ आने वेफ दोषों की शान्ति हो।।1।।

संहिता-पाठः

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शवुफनो गृहं नः।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तुफ।।2।।

हिन्दी अनुवादः-हे देवताओं! हमारे घर आया हुआ यह कपोत कल्याण- कारी और निष्कलुष सूचक हो, जिससे हमारे घर में कोई अशुभ कार्य न हो! हे विद्वान् अग्निदेव! हमारे द्वारा समर्पित हव्य को ग्रहण करवेफ, इस कपोत वेफ यहाँ आने से होने वाले अनिष्ट या आयुध का निवारण करें।।2।।

संहिता-पाठः

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्री पदं कृणुते अग्निधाने।
शिवो गोभ्य उत पुरुषेभ्यो नो अस्तु मा नो देवा इह हिंसीत् कपोतः।।3।।

हिन्दी अनुवादः-पंखों वाला आयुध हमारा विनाश न करे। वह अग्नि- शाला में अग्नि वेफ पास अपना पैर रखे और हमारी गौओं मनुष्यों वेफ लिए कल्याणकारी हो। हे देवताओ! यह कपोत पक्षी हमारा विनाश न करे।।3।।

11. अभययाचनम् सूक्तफ ;6.50द्ध

)षि-अथर्वा। **देवता-**अश्विनीकुमार

संहिता-पाठः

हतं तर्दं समङ्कमाखुमि ना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम्।
यवा ेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय।।1।।

हिन्दी अनुवादः-हे अि नीवुफमारो! आप हिंसक चूहों का नाश कर दें। आप इनवेफ सिर को काट दें, हड्डी-पसली चूर्ण कर दें। आप इन चूहों वेफ मुख बन्द करवेफ हमारी पफसलों, धान्य आदि की सुरक्षा करें।।1।।

संहिता-पाठः

तर्द है पत है जभ्य हा उपक्वस।
ब्रह्मोवासंस्थितं हविरनदन्त इमान् यवानहिंसन्तो अपोदित।।2।।

हिन्दी अनुवादः-हे हिंसा करने वाले चूहे और पत ो! ब्रह्म जैसी भयंकर, अि नीवुफमारों वेफ निमित्त दी जा रही यह

आहुति, तुम्हें नष्ट करने वेफ हेतु ही है। अतः आहुति अर्पित करने वेफ पूर्व ही तुम हमारे यवा आदि को छोड़कर भाग जाओ।।2।।

संहिता-पाठः

तर्दापते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे।
य आरण्या व्यद्वरा ये वेफ च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वा म्भयामसि।।3।।

हिन्दी अनुवादः-हे चूहों एवं पत ों ;कीटोंद्ध आदि वेफ स्वामिन्! आप हमारा कथन सुनें। विभि ढंग से खाने वाले, जंगल या ग्राम में रहने वाले, ;सब उपद्रवियोंद्ध को इस प्रयोग वेफ द्वारा हम नष्ट करते हैं।।3।।

12. वेफवलपति सूत्तफ ;पतिवशीकरणम्द्ध ;7.38/39द्ध

)षि-अथर्वा। **देवता-**आसुरीवनस्पति।

संहिता-पाठः

इदं खनामि भेषजं मां पश्यमभिरोरुदम्।
परायतो निवर्तनमायतः प्रतिनन्दनम।।1।।

हिन्दी अनुवादः-मैं इस ओषधि को खोदती हूँ। यह ओषधि पति को अनुवूफल बनाने में समर्थ है। यह पति को अन्यत्र भटकने से रोकती है। इससे दाम्पत्य-जीवन आनन्दमय व्यतीत होता है।।1।।

संहिता-पाठः

येना निचक्र आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि।
तेना नि वुफर्वे त्वामहं यथा तेऽसानि सुप्रिया।2।।

हिन्दी अनुवादः-इस आसुरी नामक ओषधि अथवा पदार्थ शक्तिफ वेफ द्वारा इन्द्रदेव समस्त देवताओं से अधिक प्रभावशाली बने। इसवेफ द्वारा मैं अपने पति को अधिक प्रभावशाली बनाकर, उनकी सहधर्मिणी बनकर प्रगति करूँगी।।2।।

संहिता-पाठः

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम्।
प्रतीची वि ान् देवान् तां त्वाच्छावदामसि।।3।।

हिन्दी अनुवादः-हे शंखपुष्पी ओषधे! सोम, सूर्य एवं समस्त देवताओं को सम्मुख करने वेफ लिए आपवेफ सहयोग की अपेक्षा करती हूँ।।3।।

संहिता-पाठः

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं वेफवलो नान्यासां कीर्तचा न।।4।।

हिन्दी अनुवादः-हे स्वामिन्! सभा में भले ही वेफवल आप बोलें, पर घर में मैं भी बोलूँगी, उसे सुनकर आप अनुमोदन करें। आप सदैव मेरे ही रहें, अन्य का नाम भी न लें।।4।।

संहिता-पाठः

यदि वासि तिरोजनं यदि वा नद्यस्तिरः।
इयं ह मह्यं त्वामोषधिर्बद्ध्वेव न्यानयत्।।5।।

हिन्दी अनुवादः-हे स्वामिन्! यदि आपको कहीं वन आदि में जाना पड़े अथवा नदी वेफ पार जाएँ, तब भी यह ओषधि आपको आब(करवेफ मेरे सम्मुख करे।।5।।

13. ब्रह्मचारिसूत्तफम् ;11.7द्ध

)षि-ब्रह्मा। **देवता-**ब्रह्मचारी।

'ब्रह्मचारीष्णंश्चरति' इत्यादिभिस्त्रिभिः सूक्तैर्ब्रह्मचारिणो माहात्म्यम् उत्यते। तस्य ब्रह्मयज्ञजपे विनियोगः।

संहिता-पाठः

ब्रचह्मचचाचरीष्णं इरत्चि रोदङ्सी उ्चभे तस्ङ्मिन् देचवाः संमङ्नसो भवन्ति।

स दाङ्खधार पृथ्यिवीं दिवेङ्ख च्च स आङ्खचाचार्य.1य तपङ्खसा पिपर्ति।।1।।

पद-पाठः

ब्रचह्मचचारीच। इ्चष्णन्। चचरत्यत्यि। रोदङ्खसीच। इतिङ्ख। उ्चभे इतिङ्ख। तस्ङ्किमन्। दे्चवाः। सम{मङ्खनसः।
भ्चवच्चन्त्यि। सः। दाचधाचस्च। पृद्दथ्यिवीम्। दिवङ्खम्। च्च। सः। आच{चाचर्य{म्। तपङ्खसा। प्यिपर्त्यि।।1।।

सा0 भा0: ब्रह्मचारी ब्रह्मणि वेदात्मवेफ अध्येतव्ये चरितुं शीलम् अस्य स तथोक्तः उभे रोदसीः द्यावापृथिव्यौ इ्ष्णन् आत्मीयेन तपसा अभीक्ष्णं व्याप्नुवन् चरति स्वनियमे प्रवर्तते। इ्ष आभीक्ष्ण्ये। अस्मात् लटः शत्रादेशः। त्रयादित्वात् श्नाप्रत्ययः। तस्मिन् ब्रह्मचारिणि सर्वे इन्द्रादयो देवाः संमनसः समानमनस्का भवन्ति। अनुग्रहबु(युक्ता भवन्तीत्यर्थः। स ब्रह्मचारी आत्मीयेन तपसा पृथिवीम् भूमि दिवम् द्युलोवंफ च दाधार। तुजादित्वाद् अभ्यासदीर्घत्वम्। धारयति पोषयति। तथा आचार्यम् स्वं गुरुं तेनैव तपसा पिपर्ति पालयति सन्मार्गवृत्त्या आचार्यं परिपालतीत्यर्थः। 'शिष्यपापं गुरोरपि' इति शिष्यकृतेन पापेन गुरोरपि पातित्यस्मरणाद् एवम् उत्तफम्। पिपर्तीति। पृ पालनपूरणयोः। जुहोत्यादित्वादत् शपः श्लुः।

हिन्दी अनुवादः-ब्रह्मचारी ;ब्रह्म वेफ अनुशासन में आचरणशीलद्ध द्युलोक और भूलोक इन दोनों को अपने अनुवूफल बनाता हुआ चलता है। देवगण उस ;ब्रह्मचारीद्ध में सौमनस्यतापूर्वक निवास करते हैं। इस प्रकार वह पृथ्वी और द्युलोक को अपने तप से धारण करता है तथा आचार्य को परिपूर्ण ;तृप्त या सार्थकद्ध बनाता है।।1।।

संहिता-पाठः

ब्रचह्मचच्चारिणं. प्यितरोङ्ख देवजचनाः पृथङ्खग् दे्चवा अङ्खनुद्दसंयङ्खन्त्यि सर्वे.।
गचन्धचर्वा एङ्खनचमन्वाङ्खयचन् त्रयङ्खहिंशत् त्रिशचताः षङ्खट्सहच ाः सर्वाचन्त्स देवांस्तपङ्खसा पिपर्ति।।2।।

पद-पाठः

ब्रचह्मच{चाचरिणङ्खम्। प्यितरङ्खः। दे्चवच{जचनाः। पृथङ्खक्। दे्चवाः। अ्चनुद्द{संयङ्खन्ति। सर्वे.। गचन्धचर्वाः। एचनचम्। अनुङ्ख।
आचयचन्। त्रयङ्खः{त्रिंशत्। त्रिच{शचताः। षचट्{स्चहच ाः। सर्वा.न्। सः। दे्चवान्। तपङ्खसा। प्यिपर्त्यि।।2।

सा0 भा0: ब्रह्मचारिणम् ब्रह्मचर्यम् आचन्तं पुफषं पितरः पितृगणा देवजनाः एतत्संज्ञा देवगण अन्य च सर्वे देवा इन्द्रादयः पृथग् अनुसंयन्ति। तस्य रक्षणार्थं पृथवृफ पृथवृफ तम् अनुगच्छन्तीत्यर्थः। तथा गन्धर्वाः अन्तरिक्षसंचारिणो विश्वावसुप्रभृतयः एनं ब्रह्मचारिणम् अन्वायन् अनुगच्छन्ति। ये च त्रयहिंशद् देवाः 'अष्टौ वसवः एकादशः रुद्राः द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च' ;ऐब्रा 1, 10द्ध इत्येवं प्राग् उदाहृताः ये च त्रिशताः। त्रय इति अत्रापि संबध्यते। त्र्युत्तरत्रिशत संख्या- कास्तद्विभूतिरूपा देवाः। तथा षट्सह : ये च तद्विभूतिरूपाः षट्सह संख्याका देवाः। एवमेव वैश्वदेवनिविदि देवानां संख्या उत्तरोत्तरं भूयसी तन्माहात्म्यप्रति- पादनाय समाम्नायते-'ये स्थ त्रय एकादशाह्य त्रिंशच्च त्रय त्री च शता त्रय त्री च सह ा' इति प्रक्रम्य 'अतो वा देवा भूयांसः स्थ' ;खि 5, 5, 7द्ध इति तत्र प्रकृतसंख्यातो भूयस्त्वश्रवणाद् अत्र षट्सह ा इति अधिकसंख्योक्तिः। तान् सर्वान् देवान् स ब्रह्मचारी तपसा आत्मीयेन ब्रह्मचर्यनियमेन पिपर्ति पालयति। देवमनुष्यादिरूपं सर्वे जगद् ब्रह्मचर्येण ध्रियत इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-देव, पितर, गन्धर्व और देवगण ये सभी ब्रह्मचारी वेफ पीछे ;सहयोगार्थद्ध चलाते हैं। तीन एवं तीस ;या तैंतीसद्ध, तीन सौ और छह हजार इन देवताओं का ब्रह्मचारी ही अपने तप से परितोषण करता है।।2।।

संहिता-पाठः

आचचाचर्य{ उपचनयङ्खमानो ब्रह्मचाचरिणं. कृणुतेच गर्भ.मचन्तः।
तं रात्रीङ्खस्तिच उ्चदरे विभर्तिच तं जाचतं द्रष्टुङ्खमभ्यिसंयङ्खन्ति दे्चवाः।।3।।

पद-पाठः

आचार्य्(ः उपन्य(यह्नमानः। ब्रह्मचर्(चारिणह्नम्। कृह्णनुतेच्। गर्भ।म्। अन्तः।
तम्। रात्रीह्न। तिच :। उदरेह्न। बिभर्तिच। तम्। जातम्। द्रष्टुह्नम्। अभिच्संयह्नन्ति देवाः।।3।।

सा0 भा0: ब्रह्मचारिणम् माणवकम् उपनयमानः स्वसमीपम् उपगमयन् आचार्यः अन्तः विद्याशरीरस्य मध्ये गर्भं कृणुते करोति। उपनयमान इति। तं गर्भीभूतं ब्रह्मचारिणं ति ो रात्रीः। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। तावत्कालपर्यन्तं त्रिरात्रम् उदरे आत्मीये बिभर्ति धारयति। चतुर्थे दिवसे जातम् विद्यामशरीराद् उत्पन्नं तं ब्रह्मचारिणं द्रष्टुम् अवलोकयितुं देवा अभिसंयन्ति अभिमुखं संभूय गच्छन्ति। उपनयनसंस्कारेण माणवकस्य आचार्यसकाशाद् उत्पत्तिं भगवान् आपस्तम्बोऽपि आह स्म-'स हि विद्यातस्तं जनयति। तच्छ्रेष्ठं जन्म। शरीरमेव मातापितरौ जनयतः' ;आप0ध *1, 1, 15-17*द्ध इति।

हिन्दी अनुवादः-ब्रह्मचारी को अपने समीप बुलाते हुए ;उपनयन संस्कार करवेफद्ध आचार्य अपने ज्ञानरूपी शरीर वेफ गर्भ में उसे धारण करता है। आचार्य तीन रात्रि तक उसे अपने गर्भ में रखता है। जब ;दूसरे आध्यात्मिक जन्म को लेकरद्ध वह बाहर आ जाता है, तो देवगण ;दिव्य शक्तिफ प्रवाह अथवा सत् पुरुषद्ध एकत्रित ;उसवेफ सहयोग या अभिनन्दन वेफ लिएद्ध होते हैं।।3।।

संहिता-पाठः

इयं समित् पृह्नथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिह्नक्षं समिधाह्न पृणाति।
ब्रह्मचारी समिधा मेखह्नलया श्रमेह्नण लोकांस्तपह्नसा पिपर्ति।।4।।

पद-पाठः

इयम्। सम्(इत्। पृथिवी। द्यौः। द्वितीयाह्न। उत। अन्तरिह्नक्षम्। सम्(इधाह्न। पृणाति।
ब्रह्मचर्(चारी। सम्(इधाह्न। मेखह्नलया। श्रमेह्नण। लोकान्। तपह्नसा। पिपर्ति।।4।।

सा0 भा0: पूर्वं ब्रह्मचारिणो माहात्म्यकथनपुरः सरं तदुत्पत्तिरभिहिता। अधुना स्तुति- व्याजेन तन्नियमा उपदिश्यन्ते-इयं परिदृश्यमाना पृथिवी ब्रह्मचारिणः प्रथमा समित्। द्यौः द्युलोकात्मिका द्वितीया समित्। उत अपिच अन्तरिक्षे द्यावापृथिव्योर्मध्ये समिधा अग्नावाधीयमानया पृणाति पूरयति। पृ पालनपूरणयोः। इत्थं ब्रह्मचारी समिधा आधीनमानया मेखलया धार्यमाणया मौञ्ज्या श्रमेण इन्द्रियनिग्रहोद्भूतखेदेन तपसा अन्येनापि देहसन्तापवेफन नियमजातेन लोकान् प्रागुक्तान् पृथिव्यादीन् पिपर्ति पूरयति पालयति वा। अतः समिदाधानादिकम् अवश्यम् अस्य कर्तव्यम् इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, श्रम और तप द्वारा लोकों का पोषण करता है। उसकी पहली समिधा पृथ्वी है, दूसरी द्युलोक है तथा ;तीसरीद्ध अन्तरिक्ष है।।4।।

संहिता-पाठः

पूर्वो जातो ब्रह्मह्नणो ब्रह्मचारी घर्मं वसाह्ननस्तपसोदह्नतिष्ठत्।
तस्माह्नज्जातं ब्राह्मह्नणं ब्रह्मह्न ज्येष्ठं देवा च सर्वे अमृतेह्नन साकम्।।5।।

पद-पाठः

पूर्वः। जातः। ब्रह्मचर्(चारी। घर्मम्। वसाह्नः। तपह्नसा। उत्। अतिष्ठत्।
तस्माह्नत्। जातम्। ब्राह्मह्नणम्। ब्रह्मह्न। ज्येष्ठम्। देवाः। च। सर्वे। अमृतेह्न। साकम्।।5।।

सा0 भा0: यत् सर्वजगत्कारणं ब्रह्म सत्यज्ञानादिलक्षणं तस्माद् ब्रह्मणः सकाशाद् ब्रह्मचारी पूर्वो जातः प्रथमम् उत्पन्नः। स च उत्पन्नो धर्मम् दीप्तं रूपं वसानः आच्छादयन् तपसा समिदाधानादिरूपेण सह उदतिष्टत् उत्थितवान्। तस्मात् ब्रह्मचार्यात्मना तपस्तप्यमानाद् ब्रह्मणः सकाशाद् ब्राह्मणानां स्वभूतं ज्येष्टम् प्रशस्यतमं वृ(तमं वा ब्रह्म वेदात्मवंफ जातम् प्रादुर्भूतम्। तत्प्रतिपाद्याः सर्वे अग्न्यादयो देवा

अमृतेन अमृतत्वप्रापवेफण स्वोपभोग्येन सावंफ सह। जाता इत्यर्थः। प्रथमजननाद् ब्रह्मचारी सर्वश्रेष्ट इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-ब्राह्मण ;ब्रह्मनिष्ट घोषित होनेद्ध से पूर्व साधक ब्रह्मचारी ;ब्राह्मी अनुशासन का अभ्यासीद्ध होता है। वह ऊर्जा धारण करता हआ ऊपर उठता ;उ तिशील होताद्ध है, तब ब्राह्मण वेफ रूप में प्रकट होता है और ज्येष्ठ ब्रह्म ;परब्रह्मद्ध तथा देवगणों का सा ध्य उसे प्राप्त होता है।5।।

संहिता-पाठः

ब्रचह्मचचार्यर्ेति सचमिधाच समिद्ध(ःच कार्ष्णंच वसाद्दनो दीक्षिचतो दीचर्घश्मद्दश्रुः।
स सचद्य एद्दतिच पूर्व.स्माचदुत्तद्दरं समुद्दद्रं लोचकान्त्संचगृभ्यच मुहुद्दराचचरिद्दक्रत।।6।।

पद-पाठः

ब्रचह्मच्ािचारी। एचत्तिच। सचम्ऽिधाद्द। सम्ऽिद्ध(ः। कार्ष्ण.म्। वसाद्दनः। दीचक्षिचतः। दीचर्घऽिश्मद्दश्रुः।
सः। सचद्यः। एचत्तिच। पूर्व.स्मात्। उत्तद्दरम्। सचमुद्दद्रम्। लोचकान्। सचम्ऽगृभ्यद्द। मुहुद्दः। आच्ािचरिद्दक्रत्।।6।।

सा0 भा0: समिधा सायंप्रातरग्नावाधीयमानया तज्जनितेन तेजसा समि(संदीपितः कार्ष्णम् कृष्णमृगसंबन्धि अजिनं वसानः धारयन् दीक्षितः भिक्षाचरणादिभिर्नियम- विशेषैनियन्त्रितः दीर्घश्मश्रुः दीर्घैरायतैः श्मश्रुभिर्युक्तः सन् ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यधर्मेण युक्तः एति वर्तते। स उदीरितलक्षणो ब्रह्मचारी सद्यः शीघ्रं पूवस्मात् समुद्रात् उत्तरम् उत्तरदिगवस्थितं समुद्रम् एति गच्छति। तपसो महिम्ना व्याप्नोत्नीर्त्थः। तथा लोकान् पृथिव्यन्तरिक्षादीन् संगृह्य हस्ते धृत्वा मुहुः अत्यर्थम् आचरिक्रत् आभिमुख्येन करोति। सर्वं लोका अस्य वशे भवन्तीत्यर्थः। आचरिक्रत् इति करोते लुगन्तात् लर्ि रूपम्।

हिन्दी अनुवादः-;पहले वर्णित ढंग सेद्ध समिधाओं वेफ प्रज्वलित करवेफ कृष्णवह ;कृष्णमृग चर्मद्ध धारण करवेफ बढ़े हुए दाढ़ी-मूँछोंयुत्तफ ब्रह्मचारी पूर्व ;पहले वालेद्ध समुद्र ;सांसारिक भण्डारद्ध से उत्तर ;श्रेष्ठतरद्ध समुद्र ;दिव्य भण्डारोंद्ध तक पहुँच जाता है।।6।।

संहिता-पाठः

ब्रचह्मचचारी जचनयचन् ब्रह्माचपो लोचवंफ प्रचजापद्दतिं परमेचष्ठिनं. विचराजद्दम्।
गर्भो. भूद्दत्वार्मृतद्दस्यच योनाचविन्द्रोद्द ह भूद्दत्वार्सुद्दरांस्ततर्ह।।7।।

पद-पाठः

ब्रचह्मचचाचरी। जचनयद्दन्। ब्रह्मद्द। अचपः। लोचकम्। प्रचजार्पद्दतिम्। पचरचमेचर्स्थिनद्दम्। विच्ािराजद्दम्।
गर्भः। भूद्दत्वा। अमृतद्दस्य। योनौ.। इन्द्रद्दः। हच। भूद्दत्वा। असुद्दरान्। तचततर्ह्ध।7।।

उत्तफलक्षणो ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यमहिम्ना ब्रह्म ब्राह्मणजातिम् अपः स्नातपानार्था ग ाद्या नदीः इमम् आत्मनः पफलभूतं लोवंफ स्वर्गादिलोवंफ प्रजापतिम् प्रजानां ष्टारम् अवान्तरसृष्टिकरं परमेष्ठिनम् परमे उत्कृष्टे सत्यलोवेफ तिष्टतीति परमेष्ठी तम् आदिब्रह्माणं विराजम् स्थूलप्रप शरीराभिमानिमम् ईश्वरं च जनयन् उत्पादयन् वर्तते। स्वस्वकारणाद् उत्पद्यमानानाम् एषां ब्रह्मचर्यं निमित्तकारणम् इति तदाश्रयभूतो ब्रह्मचार्येव जनयत्निति उपचर्यते। अमृतस्य अमरणशीलस्य ब्रह्मणः संबन्धियां योनौ सत्वरजस्तमोगुणात्मिकायां प्रकृतौ प्रथमं ब्रह्मचारी गर्भो भूत्वा उदीरितं सर्वं जनयति। प ात् इन्द्रो ह भूत्वा तपोबलाद् इन्द्रत्वं प्राप्य असुरान् सुरविरोधिनो दैत्यान् ततर्ह जघान। तृह हिसि हिंसायाम्। इत्थं सर्वजगत्कर्तृत्वेन ब्रह्मचारिणः स्तुतिः।

हिन्दी अनुवादः-अमृत गर्भ में रहकर ब्रह्मचारी, ब्रह्मतेज, श्रेष्ट लोकों ;स्थितियों या क्षेत्रोंद्ध, प्रजापति ;प्रजापालक सामर्थ्यद्ध तथा सर्वश्रेष्ट स्थिति वाले विराट् को उत्प ;अपने अन्दर जाग्रतद्ध करता है। तब वह इन्द्र ;नियन्ता बनकरद्ध निश्चित रूप से असुरों ;आसुरी प्रवाहोंद्ध को नष्ट करता है।7।।

संहिता-पाठः

आचचार्यर्स्ततक्षच नभद्दसी उचभे इमे उचर्वी गद्दम्भीचरे पृद्दथिचवी दिवं. च।

ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति॥8॥

पद-पाठः

आचार्यः। ततक्ष। नभसी इति। उभे इति। इमे इति। उर्वी इति। गम्भीरे इति। पृथिवीम्।
दिवम्। च। ते इति। रक्षति। तपसा। ब्रह्मचारी। तस्मिन्। देवाः। सम्मनसः। भवन्ति॥8॥

सा० भा०: इमे परिदृश्यमाने उभे नभसी नभः अन्तरिक्षम्। तत्साहचर्याद् द्विवचनेन पृथिव्युपलक्ष्यते। द्यावापृथिव्यौ आचार्यस्ततक्ष तक्षणेन जनयामास। तक्षु त्वक्षु तनूकरणे। अस्मात लिट्। नभसी विशेष्येते उर्वी विस्तीर्णे गम्भीरे गाम्भीर्ययुक्ते। परिच्छेत्तुम् अशक्ये इत्यर्थः। ते एव व्यस्तं निर्दिशति-पृथिवीं दिवं च इति। तं द्यावापृथिव्योरुत्पादकम् आचार्य ब्रह्मचारी आत्मीयेन तपसा आत्मीयेन तपसा ब्रह्मचर्यनियमेन रक्षति पालयति। तस्मिन् तथाविधे ब्रह्मचारिणि सर्वे देवाः संमनसः समानमनस्काः प्रीता भवन्ति।

हिन्दी अनुवादः-(आचार्य के गर्भ में ब्रह्मचारी को नया जीवन मिलता है। उसका विवरण देते हुए ऋषि कहते हैं-) आचार्य नभ (गर्भाकाश) में दोनों बड़े और गम्भीर पृथ्वी और द्युलोक का सृजन (ब्रह्मचारी के लिए) करते हैं। ब्रह्मचारी अपनी तपः साधना से उनकी रक्षा करता है, इसीलिए देवगण उसके सौमनस्यतापूर्वक रहते हैं॥8॥

संहिता-पाठः

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा॥9॥

पद-पाठः

इमाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। ब्रह्मचारी। भिक्षाम्। आ। जभार। प्रथमः। दिवम्। च।
ते इति। कृत्वा समिधौ। उप। आस्ते। तयोः। आर्पिता। भुवनानि। विश्वा॥9॥

सा० भा०: इमां परिदृश्यमानां पृथिवीम् ब्रह्मचारी प्रथितां विस्तीर्णां भूमि ब्रह्मचारी प्रथमः प्रथमभावी सन् भिक्षाम् आ जभार भिक्षात्वेन आहृतवान्। अनन्तरं दिवम् द्युलोकं च द्वितीयां भिक्षाम् आजहार। ते द्यावापृथिव्यौ भिक्षणेन लब्धे समिधौ कृत्वा उपास्ते। अग्निं परिचरति। समिन्धनसाधनयोः तयोः द्यावापृथिव्योः विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि आर्पिता अर्पितानि स्थापितानि। आश्रित्य वर्तन्ते इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-सर्वप्रथम ब्रह्मचारी ने भूमि की भिक्षा ग्रहण की, तत्पश्चात् द्युलोक को भी प्राप्त किया। इन दोनो लोकों को समिधा बनाकर उसने अग्नि (ब्रह्मतेज) की उपासना की। इन दोनों के बीच ही उसका संसार स्थित होता है॥9॥

संहिता-पाठः

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्॥10॥

पद-पाठः

अर्वाक्। अन्यः। परः। अन्यः। दिवः। पृष्ठात्। गुहा। निधी इति। निधी। निहितौ।
ब्राह्मणस्य। तौ रक्षति। तपसा। ब्रह्मचारी। तत्। केवलम्। कृणुते। ब्रह्म। विद्वान्॥10॥

सा० भा०: दिवः द्युलोकस्य पृष्टात् उपरिभागाद् अर्वाक् अधः भूलोके अन्यः एको निधिर्वेदात्मकः गुहा गुहायाम् आचार्यहृदयरूपायां निक्षिप्तः। अन्यः अपरो निधिस्तत्प्रतिपाद्यदेवतारूपः परः परस्ताद् उपरि देशे गुहायां ज्ञातुम् अशक्ये स्थाने निक्षिप्तः। ब्राह्मणस्य अधीतवेदस्य संबन्धिनौ तौ निहितौ निक्षिप्तौ निधी ब्रह्मचारी तपसा ब्रह्मचर्यनियमेन रक्षति पालयति। विद्वान् वेदार्थरहस्याभिज्ञः तत् शब्दतदर्थात्मकं निधिद्वयं केवलम् निष्प्रपञ्चं ब्रह्म कृणुते कुरुते। स्वात्मभूते परब्रह्मणि वेदराशेस्तदर्थस्य च अध्यस्तत्वेन अधिष्ठानभूतं ब्रह्मैव तादूप्येण साक्षात्कारोतीत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-ब्राह्मण की सम्पत्ति निकटवर्ती गुहा (अन्तःकरण या अनुभूति) में तथा द्युलोक के आधार से भी परे स्थित

है। ब्रह्मचारी उसकी रक्षा तप द्वारा करता है। वह तप उसे नि ि त रूप से ब्रह्मविद् बना देता है।।10।।

संहिता-पाठः

अचर्वागचन्य इचतो अचन्यः पृद्वथिचव्या अचग्नि सचमेतोच नभद्वसी अन्तचरेमे।
तयोद्वः श्रयन्ते रचश्मयोधिद्व दृद्दढास्ताना तिद्वष्ठतिच तपद्वसा ब्रचह्मचाचरी।।11।।

पद-पाठः

अचर्वाक्। अचन्यः। इचतः। अचन्यः पृद्दथिचव्याः। अचग्नि इतिद्व। सचम्(एतःद्व। नभद्वसीच इतिद्व। अचन्तचरा। इचमे।
इतिद्व। तयोद्वः। श्रचयचन्तेच। रचश्मयद्वः। अधिद्व। दृद्दढाः। तान्। आ। तिचष्ठचतिच। तपद्वसा। ब्रचह्मच(चाचरी।।11।।

सा0 भा0: इतः अस्याः पृथिव्या अर्वाक् अधःप्रदेशे अन्यः। एको(ग्निः अनुद्यत्सूर्यात्मको वर्तते। अन्यः अपरः पार्थिवो(ग्निः पृथिव्या उपरि वर्तते। ततः सूर्य उदिते सति इमे नभसी अन्तरा अनयोर्द्यावापृथिव्योर्मध्ये तौ अग्नी समेतः परस्परं संगतौ भवतः। तयोः सूर्याग्न्योः संबन्धिनो रश्मयः परस्परसंमेलनेन अतिदृढाः श्रयन्ते द्यावापृथिव्यौ आश्रयन्ति। 'वै ानरो यतते सूर्येण' ;)0 ड्ड, 98, ड्ढ इति हि निगमः। इत्थम् अग्निद्वयोपेतां तां भूमिं ब्रह्मचारी तपसा तपोमहिम्ना आ तिष्टति अधितिष्टति। अग्निरूपेण तस्या अधिदेवता भवतीत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-इधर ;द्युलोक मेंद्ध एक ;तेजसद्ध है तथा इस पृथ्वी पर दूसरा ;तेजसद्ध है, ये दोनों अन्तरिक्ष में मिलते हैं। उनसे शत्तिफशाली किरणें प्रसारित होती हैं। तपःशत्तिफ से ब्रह्मचारी उन दिव्य संचारों का अधिकार बनता है।।11।।

इस सूक्त के)षि ब्रह्मा तथा देवता ब्रह्मचारी हैं। 'चर्' धतु चलने-आचरण एवं सेवन के अर्थों में प्रयुक्त होती है इस आध ार पर ब्रह्मचारी का व्यापक अर्थ होता है, ब्रह्म ;ब्राह्मी चेतना या अनुशासनद्ध में ही चलने वाला अथवा उसी का सेवन करने वाला। ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ 'वीर्य रक्षा' भी उसी व्यापक परिभाषा के अन्तर्गत आता है।

न्दपज . ्प्प् ;एकक - 3द्ध

14. रोहित सूक्तम् ;13.1, 1-10द्ध

)षि-ब्रह्मा। **देवता-**अध्यात्म, रोहितादित्य, मरूद्गण, अग्नि।

'उदेहि वाजिन्' इति सूक्तं रोहितदेवताकम्। रोहितः कि द् देवः। उद्यन् यः सूर्यस्तदात्मक इति श्रेयम्। रोहितसाहचर्येण मरूतः इन्द्रः अज एकपादः अग्निः सविता मित्रावरूणौ त्रफव्याद् अग्नि सूर्य इत्यादयो देवा अप्याहूता वर्णिता । रोहितस्य तथा तत्संबन्धिदेवानामत्र वर्णने प्रयोजनं राज्ञो राष्ट्रस्य भरणम् इति सूक्त इतस्ततो द्रष्टव्यम्।

चिम्मन्त्रेषु रोहितपदस्य निर्वचन रुहो रुरोह प्ररूहो रुरोह द्यावापृथिवीभ्यां रुरोहेति रोहित इति ध्वनितम्।
याज्ञिकास्तु वक्ष्यमाणप्रकारेण विनियु ते। तद्यथा-
अर्थकामः 'उदेहि वाजिन्' इत्यादिविंशत्यृग्भिरूद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठते।
तथा अर्थोत्थापनकामः उक्तविंशत्यृग्भिः स्नानं कृत्वा उपतिष्ठते।
तथा अर्थ सि(कामः अहतवस्त्रपरिधानं कृत्वा उत्तफाभि ग्भिरूपतिष्टते।
तथा अर्थो मम सिध्येद् एवंकामस्ताभि)ग्भिर्व म् अभिमन्त्र्य परिधापयति।
तथा विद्रावणादिविषये शमनकामः उक्ताभिर्त्रफग्भिर्व म् अभिमन्त्र्य ददाति।

सूत्रितं हि-'' 'उत्तमेन' ;अ 6, 62द्ध वास्पतिलि ाभिरूद्यन्तमुपतिष्टते। स्नातो(हितवसनो नित्तफवाहतमाच्छादयत। ददाति।'' ;कौसू0 41, 15-17द्ध इति उदेहि वाजिन्निति विंशत्यृचो वाचस्पतिलि । इति वेफशवः।

'यो रोहितः' ;25, 26द्ध इति द्वयो)चोः सलिलगणे पाठः। अतः 'सलिलैः क्षीरौदनम् अश्नान्ति। मन्थान्तानि' ;कौसू0 18, 25ऋ 26द्ध, 'सलिलैः सर्वकामः' ;कौसू0 24, 46द्ध इत्यादौ चास्य विनियोगः। सलिलगण 'आपो हि ष्ठा' ;अ0 1, 5द्ध इति सूक्ते द्रष्टव्यः।

'समि(ो अग्निः सामिथानो घृतवृ(ः' ;28-32द्ध इति प र्चस्य विनियोगो 'इमे द्यावापृथिवी' ;अ0 13, 3द्ध इत्यत्र द्रष्टव्यः।

संहिता-पाठः

उ्चदेहि्ह वाजि्चन् यो अ्चप्स्व्ह्य्चन्तरि्चदं रा्चष्ट्रं प्र वि्हश सू्दनृता्हव्चत्।
यो रोहि्हतो्च वि ्हम्चिदं ज्चजान्च स्च त्वा्ह रा्चष्ट्राय्च सुभृ्हतं बिभर्तु।।1।।

पद-पाठः

उ्चत्(एहि्ह। व्चाजि्चन्। यः। अ्चप्(सु। अ्चन्तः। इ्चदम्। रा्चष्ट्रम्। प्र। वि्चश्च। सू्दनृता्ह(व्चत्।
यः। रोहि्हतः। वि ्हम्। इ्चदम्। ज्चजान्ह। सः। त्वा्चः। रा्चष्ट्राय्ह। सु(भृ्हतम्। वि्चभ्चर्तु्द।।1।।

हिन्दी अनुवादः-हे गतिमान् सूर्यदेव! अप् ;तेजस्वी धाराओंद्ध वेफ बीच से उदित होकर, आप प्रिय सत्यनिष्ठा से युत्तफ राष्ट्र ;ज्योतिरूपद्ध में प्रविष्ट हों। हे राष्ट्राधिपते! जिस ;देवद्ध ने इस ;वि द्ध को प्रकट किया है, वह आपको राष्ट्र वेफ उत्तम रीति से भरण-पोषण में भी सक्षम बनाए।।1।।

संहिता-पाठः

उद्वाज्च आ ग्चन् यो अ्चप्स्व्ह्य्चन्तर्विश्च आ रो्हह्च त्व्चद्यो्हनयो्च याः।
सोमं्च दधा्हनो्चप ओष्हधी्चर्गा तु्हष्पदो द्वि्चपद्च आ वे्चशये्चह।।2।।

पद-पाठः

उत्। वाज्हः। आ। ग्चन्। यः। अ्चप्(सु। अ्चन्तः। विश्हः। आ। रो्चह्च। त्व्चत्(यो्हनयः। याः।।
सोम्हम्। दधा्हनः। अ्चपः। ओष्हधीः। गाः। चतु्हः(पदः। द्वि्च(पद्हः। आ। वे्चश्चय्च। इ्चह।।2।।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप ऊपर उठें। अप् धाराओं मं निवास करने वाली प्रजा और अ में आप उच्च स्थान प्राप्त करें। सोम आदि वनस्पतियों को पुष्ट करते हुए जल, ओषधियों, द्विपादों ;मनुष्योंद्ध, चतुष्पादों ;गौआदि पशुओंद्ध को अपने राष्ट्र मं प्रतिष्ठित कराएँ।।2।।

संहिता-पाठः

यू्दयमु्दग्रा म्ह्रुतः पृ्दश्निमातर्च इन्द्रे्हण यु्दजा प्र मृ्हणीत्च शत्रू्हन्।
आ वो्च रोहि्हतः शृणवत् सुदानव्चस्त्रिष्ह्प्तासो म्रुतः स्वादुसंमुदः।।3।।

पद-पाठः

यू्दयम्। उ्चग्राः। म्च्रुत्चः। पृ्दश्नि्च(माचत्चर्चः। इन्द्रे्हण। यु्दजा। प्र। मृ्दणी्चत्च। शत्रू्हन्।
आ। व्चः। रोहि्हतः। शृ्दण्चव्चत्। सु्द(दा्चन्च्चवः। त्रि(स्ह्प्तासः। म्च्रुत्चः। स्वा्चदु्द(सं्चमु्द्दः्च।।3।।

हिन्दी अनुवादः-हे मरूद्गण! आप महान् पराक्रमी और पृथ्वी वेफ प्रति मातृवत् व्यवहार करने वाले हैं। आप इन्द्रदेव वेफ सहयोग से दुष्ट रिपुओं का संहार करें। हे श्रेष्ट दानी मरूद्गणों! आप स्वादिष्ट पदार्थों से प्रस होते हैं। सूर्यदेव आपकी बात को सुनें।।33।।

संहिता-पाठः

रुहो्ह रुरोह्च रोहि्हतत्च आ रु्हरोह्च गर्भो्च जनी्हनां ज्चनुषा्हमु्दपस्थ्हम्।
ताभि्चः संर्हब्ध्चमन्व्हविन्द्चन् ष्डु्दर्वीर्गा्चतुं प्र्चपश्य्ह्न् चह रा्चष्ट्रमाहा्हः।।4।।

पद-पाठः

रुहङ्घः। रुयरोचहच्च। रोहिङ्घतः। आ। रुयरोचहच्च। गर्भ.ः। जनीङ्घनाम्। जचनुषाङ्घम्। उचपर्स्थङ्घम्। ताभिङ्घः।
सम्रिङ्घब्धम्। अनुङ्घ। अचचिन्दचन्। षट्। उचर्वीः। गाचतुम्। प्रचर्पश्यङ्घन्। इचह। राचष्ट्रम्। आ। अचहाचः।।5।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्यदेव उदित होकर ऊपर चढ़ रहे हैं, वे उत्पादन क्षमता से युत्तफ ;प्रकृतिद्ध माता वेफ अंक में गर्भरूप होकर बैठ गये हैं। छः दिशाओं ने उन ;सूर्यदेवद्ध वेफ द्वारा बढ़ाये गर्भ को धारण किया है। वे उ ति वेफ मार्ग को जानते हुए राष्ट्र को भी उ त करते हैं।।5।।

संहिता-पाठः

आ तेङ्घ राचष्ट्रमिचह रोहिङ्घतोर्हाषर्चीद् व्यार्स्थचन्मृधोच अभङ्घयं ते अभूत्।
तस्मैङ्घ तेच द्यावाङ्घपृथिचवी रेचवतीङ्घभिःच कामं दुहातामिचह श ङ्घ रीभिः।।6।।

पद-पाठः

आ। तेच। राचष्ट्रम्। इचह। रोहिङ्घतः। अचहाचर्षीत्। वि। आचस्थचत्। मृधङ्घः। अभङ्घयम्। ते।
अचभूदत्। तस्मैङ्घ। तेच। द्यावाङ्घपृथिचवी इतिङ्घ। रेचवतीङ्घभिः। दुदहाचताचम्। इचह। श ङ्घ रीभिः।।6।।

हिन्दी अनुवादः-आपवेफ राष्ट्र में सूर्यदेव आ गये हैं। उन्होंने अनिष्टकारी शत्रुओं ;रोगोंद्ध को दूर भगाकर आपको निर्भयता प्रदान की है। ये द्युलोक और भूलोक आपवेफ लिए यथेच्छ मात्रा में सम्पत्तियों और शत्तिफओं को दुहने वाले हों।।6।।

संहिता-पाठः

रोहिङ्घतोच द्यावाङ्घपृथिचवी जङ्घजान् तत्रच तन्तुङ्घ परमेचष्ठी तङ्घतान।
तत्रङ्घ शिश्रियेचज एकङ्घपाचदोदृं.हचद् द्यावाङ्घपृथिचवी बलेन।।6।।

पद-पाठः

रोहिङ्घतः। द्यावाङ्घपृथिचवी इतिङ्घ। जचजाचन्च। तत्रङ्घ। तन्तुङ्घम। पचरचमेचर्स्थी। तचताचन्च।
तत्रङ्घ। शिचश्रिचय्चे। अचजः। एकङ्घर्पादः। अदृं.हत्। द्यावाङ्घपृथीचवी इतिङ्घ। बलेङ्घन।।6।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्यदेव से द्युलोक और भूलोक का प्राकट्य हुआ है। वहाँ प्रजापति ने सूत्ररूप आत्मतत्त्व को विस्तारित किया है। वहीं पर एक पाद अज ;आत्माद्ध ने अवलम्बन लिया है और अपनी सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी दोनों को सुदृढ़ता प्रदान की है।।6।

संहिता-पाठः

रोहिङ्घतोच द्यावाचपृथिचवी अङ्घदृंहचत तेनच स्वर् स्तभ्चितं तेनच नाकङ्घः।
तेनाचन्तरिङ्घक्षंच विमिङ्घताच रजां.सिच तेनङ्घ देचवा अचमृतमन्वङ्घविन्दन।।7।।

पद-पाठः

रोहिङ्घतः। द्यावाङ्घपृथिचवी इतिङ्घ। अचदृंचहच्त्। तेनङ्घ। स्वर्ः। स्तचभ्चितम्। तेनङ्घ नाकङ्घः।
तेनङ्घ। अचनरिक्षङ्घम् विर्मिङ्घता। राजां.सि। तेनङ्घ। देचवाः। अचमृतङ्घम्। अनुङ्घ। अचचिन्दचन्।।7।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्यदेव ने पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को सुदृढ़ता प्रदान की। उनवेफ द्वारा सुखों से परिपूर्ण स्वर्गलोक को स्थिर किया गया। उनवेफ द्वारा ही दैवी शत्तिफयों ने अमरता को उपलब्ध किया।।7।।

संहिता-पाठः

> **वि रोहिङ्कतो अमृशद् विच रुङ्कपं समावुफर्वाचणः प्रच्रुहोच रुहङ्क ।**
> **दिवङ्क रूचद्वा मङ्कहचता मङ्कहिचम्ना सं तेङ्क राचष्ट्रमङ्कनक्तुद पयङ्कसा घृद्दतेनङ्क॥8॥**

पद-पाठः

वि। रोहिङ्कतः। अचमृद्दशचत्। विच ;रुङ्कपम्। सचम्;आचवुफद्दर्वाचणः। प्रच;रुहङ्कः। रुहङ्कः। चच।
दिवङ्कम्। रूचद्वा। मचहचता। मचहिचम्ना। सम्। तेच। राचष्ट्रम्। अचनक्तचक्तुद। पयङ्कसा। घृद्दतेनङ्क॥8॥

हिन्दी अनुवादः-रोहितदेव ;सूर्यदेवद्ध ने ही सभी रुह ;ऊपरीद्ध और प्ररुह ;निम्नस्थद्ध दिशाओं को भलीप्रकार प्रकट करते हुए सम्पूर्ण वि वेफ प्राणियों वेफ शरीरों का स्पर्श किया है। वे अपनी महान् महिमा से द्युलोक पर चढ़कर आपवेफ राष्ट्र को दूध और घृतादि से परिपूर्ण रखें॥8॥

संहिता-पाठः

> **यास्तेच रुहङ्कः प्रच्रुहोच यास्तङ्क आच्रुहो याभिङ्करापृद्दणासिच दिवङ्कमचन्तरिङ्किक्षम्।**
> **तासांच ब्रह्मङ्कणाच पयङ्कसा वावृधाचनो विचशि राचष्ट्रे जाङ्कगृहिच रोहिङ्कतस्य॥9॥**

पद-पाठः

याः। तेच। रुहङ्कः। प्रच;रुहङ्कः। याः। तेच। आच;रुहङ्कः। याभिङ्कः। आच;पृद्दणसि। दिवङ्कम्। अचन्तरिङ्किक्षम्।
तासाङ्कम्। ब्रह्मङ्कणा। पयङ्कसा। वचवृद्दधानः। विचशि। राचष्ट्रे। जाचगृद्दहिच। रोहिङ्कतस्य॥9॥

हिन्दी अनुवादः-जो अपाकी ओर अग्रसर होने वाली, पीछे की ओर लौटने वाली तथा ऊँचाई की ओर बढ़ने वाली लतारूप प्रजा है, जिससे आप स्वर्ग और अन्तरिक्ष को पोषण देते हैं। अतवेफ शत्तिफर्व;क घृत, दुग्ध आदि से हृष्ट-पुष्ट होते हुए इस राष्ट्र और प्रजा में आप सतत जाग्रत् रहें॥9॥

संहिता-पाठः

> **यास्तेच विशचस्तपङ्कसः संबभूद्दर्वचत्सं गाङ्कयचत्रीमनुद ता इचहागुङ्कः।**
> **तास्त्वा विङ्कशन्तुद मनङ्कसा शिचवेनच संमाङ्कता वचत्सो अचभ्ये;तुद रोहिङ्कतः॥10॥**

पद-पाठः

या। तेच। विशङ्कः। तपङ्कसः। सचम्;बचभूद्दवः। वचत्सम्। गाचयचत्रीम्। अनुद्द। ताः। इचह। आ। अचगुद्दः।
ताः। त्वाच। आ विचशचन्तुद्द। शिचवेनङ्क। सम्;माङ्कता। वचत्सः। अचभि। एचतुद्द। रोहिङ्कतः॥10॥

हिन्दी अनुवादः-सूर्य की तपः शत्तिफ से सभी प्रजाओं का प्रकाट हुआ है। वे प्रजाएँ गायत्री ;विद्या या शत्तिफद्ध वेफ अनुवूफल होकर प्रगति करती हैं। वे सभी श्रेष्ट, कल्याणकारी, संकल्पशत्तिफ से युत्तफ मन से आप में प्रवेश करें। अपनी माता सहित सूर्यदेव उ ति को प्राप्त हों॥10॥

संहिता-पाठः

ऊचर्ध्वो रोहिङ्कतोच अधिच नाक्वेफङ्क अस्थाचद् वि ङ्क रूचपाणिङ्क जचनयचन् युवाङ्क क्चविः।
तिग्मेनाचग्निर्ज्योतिङ्कषाच वि भाङ्कति तृद्दतीयेङ्क चक्रेच रजङ्कसि प्रिचयाणिङ्क॥11॥

पद-पाठः

ऊचर्ध्वः। रोहिङ्कतः। अधिङ्क। नाक्वेफङ्क। अचस्थाचत्। वि ङ्क। रूचपाणिङ्क। जचनयङ्कन्। युवाङ्क। क्चविः।
तिचग्मेनङ्क। अचग्निः। ज्योतिङ्कषा। वि। तृद्दतीये। चक्रेच। रजङ्कसि। प्रियाणिङ्क॥11॥

हिन्दी अनुवादः-तरुण, क्रान्तदर्शी, वि वेफ रूपों को प्रकट करते हुए सूर्यदेव ऊर्ध्वगामी होकर द्युलोक में विराजमान होते हैं। अग्निदेव भी उनकी प्रखर तेजस्विता से प्रकाशवान् होते हैं। वे तीसरे लोक ;द्युलोकद्ध में रहते हुए भी मनुष्यों वेफ प्रिय कार्यों को करते हैं।।11।।

संहिता-पाठः

स्रह इश्ृ ो वृषभो जातवेदाः घृताहुतः। सोमपृष्ठः। सुवीरः।
मा मा हासी ाथितो नेत् त्वा जहानि गोपोषं च मे वीरपोषं। च। धेहि।।12।।

पद-पाठः

स्रह इ(श्र :। वृषभः। जात(वेदाः। घृता(आहुतः। सोम(पृष्ठः। सु(वीरः। मा। मा।
हासीत्। नाथितः। न। इत्। त्वा। जहानि। गो(पोषम्। च। मे। वीर(पोषम्। च। धेहि।।12।।

हिन्दी अनुवादः-;ज्वालारूपीद्ध हजारों शृंगों से युत्तफ, अभीष्टवर्षक, घृताहुतियों द्वारा आहुत, सोम को पृष्टभाग पर धारण करने वाले, श्रेष्ट वीर सन्तानों को प्रदान करने वाले, सर्वज्ञ अग्निदेव कभी हमारा परित्याग न करें। हम भी कभी आपका आश्रय न छोड़ें। हे अग्ने! आप हमें गाय आदि पशुओं वेफ संरक्षण और वीर सन्तति वेफ पालन में समर्थ बनाएँ।।12।।

संहिता-पाठः

रोहितो यज्ञस्य जनिता मुखं· च रोहिताय वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि।
रोहितं देवा यन्ति सुमनस्यमानाःच स मा रोहैः सामित्यै रोहतु।।13।।

पद-पाठः

रोहितः। यज्ञस्य। जनिता। मुखम्। च। रोहिताय। वाचा। श्रोत्रेण। मनसा। जुहोमि।
रोहितम्। देवाः। यन्ति। सु(मनस्यमानाः। सः। मा। रोहैः। सामित्यै। रोहतु।।13।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्यदेव यज्ञ वेफ उत्पादकर्त्ता और मुखरूप हैं। हम वाणी, कान और मन तीनों वेफ सहयोग से सूर्य वेफ लिए आहुति प्रदान करते हैं। सभी देवगण हार्दिक प्रस ता वेफ साथ सूर्य को प्राप्त करते हैं। वे हमें सभा-समितियों द्वारा मानवीय प्रगति वेफ शिखर पर चढ़ाएँ।।13।।

संहिता-पाठः

रोहितो यज्ञ व्य(धाद् वि कर्मणे तस्मात् तेजांस्युप मेमान्यागुः।
वोचेयं· ते नाभिं भुवनस्याधि मज्मनि।।14।।

पद-पाठः

रोहितः। यज्ञम्। वि। अदधात्। वि कर्मणे। तस्मात्। तेजांसि। उप। मा। इमानि। आ।
अगुः। वोचेयम्। ते। नाभिम्। भुवनस्य। अधि। मज्मनि।।14।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्यदेव ने सम्पूर्ण वि वेफ सत्कर्मों वेफ लिए यज्ञीय विज्ञान का पोषण किया। उसी यज्ञीय भावना से ये सभी तेजस्वी गुण हमारे समीप आ रहे हैं। इस सम्पूर्ण वि वेफ मध्य, महत्त्व की दृष्टि से यही आप ;सूर्यदेवद्ध का प्रमुख भाग है, ऐसा हमारा कथन है।।14।।

15. सूर्यासूक्तम् ;14-1, 1-16द्ध

)**षि-**सावित्री, सूर्या। **देवता-**सोम, स्वविवाह, आत्मा, चन्द्रमा।

संहिता-पाठः

स्चत्येनोत्तद्दभिताच भूमिः सूर्येचणोत्तद्दभिताच द्यौः।
)चतेनाद्दद्यित्यास्तिद्दष्ठनित द्यिवि सोमोच अधिद्द श्रितः।।1।।

पद-पाठः

स्चत्येनद्द। उत्तद्दभिता। भूमिद्दः। सूर्ये॰ण। उत्तद्दभिता। द्यौः।
)चतेनद्द। आचद्यितयः। त्यिष्ठ्यन्त्यि। द्यिवि। सोमद्दः। अधिद्द। श्रियतः।।1।।

हिन्दी अनुवादः-सत्य ने पृथ्वी को आकाश में स्थापित किया है। सूर्यदेव द्युलोक को स्तम्भित किये हुए हैं। त से आदित्यगण स्थित हैं और सोम द्युलोक वेफ ऊपर स्थित है।।1।।

संहिता-पाठः

सोमेद्दनाद्यित्या ब्चलिन्चः। सोमेद्दन। पृथ्यिवी म्चही।
अथोच नक्षद्दत्राणामेचषामुद्दपस्थेच सोमच आहिद्दतः।।2।।

पद-पाठः

सोमेद्दन। आचद्यित्याः। ब्चलिनद्दः। सोमेद्दन। पृद्दथिवी। म्चही।
अथोच इतिद्द। नक्षद्दत्राणाम्। एचषाम्। उ्चपर्(स्थेद्द। सोमद्दः। आर्(हिद्दतः।।2।।

हिन्दी अनुवादः-आदित्यादि देव सोम वेफ कारण ही बलशाली हैं। सोम द्वारा ही पृथ्वी महिमामयी हुई है। इन नक्षत्रों वेफ बीच भी सोम को ही स्थापित किया गया है।।2।।

संहिता-पाठः

सोमं॰ मन्यते पप्यिवान् यत् सं॰पिंचषन्त्योषद्दधिम्।
सोमंच यं ब्रचह्माणोद्द व्यिदुर्न तस्याद्दश्नात्यि पार्थि॰वः।।3।।

पद-पाठः

सोमद्दम्। म्चन्य्चतेच। पचप्यि(वान्। यत्। स्चम्(पिषन्तिद्द। ओषद्दधिम्।
सोमद्दम्। यम्। ब्रचह्माणद्दः। व्यिदुः। न। तस्यद्द। अ्चश्नाचत्यि। पार्थि॰वः।।3।।

हिन्दी अनुवादः-जिस समय सोमलतादि वनस्पतियों, ओषधियों की पिसाई की जाती है, उस समय सोमपान करने वाले ऐसा समझते हैं कि हमने सोमपान किया हैऋ परन्तु जिस सोम को ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीजन जानते हैं, उसे कोई भी व्यत्तिफ मुख से पीने की सामर्थ्य नहीं रखता।।3।।

संहिता-पाठः

यत् त्वाद्द सोम प्रचविबद्दन्ति ततच आ प्याद्दयसेच पुनद्दः।
वाचयुः सोमद्दस्य रक्षिचता समाद्दनांच मास्च आकृद्दतिः।।4।।

पद-पाठः

यत्। त्वाच। सोचम्च। प्रच(पिबद्दन्ति। ततद्दः। आ। प्याचय्चसेच। पुनद्दः।
वाचयुः। सोमद्दस्य। स्चक्षिचता। समाद्दनाम्। मासद्दः। आर्(कृद्दतिः।।4।।

हिन्दी अनुवादः-हे सोमदेव! जिस समय लोग ओषधिरूप में आपको ग्रहण करते हैं, उसवेफ बाद आप बारम्बार प्रव(होते हैं। वायुदेव सोम की उसी प्रकार सुरक्षा करते हैं, जिस प्रकार महीने, वर्ष को सुरक्षित करते हैं।।5।।

संहिता-पाठः

आचच्छद्विद्धधानैर्गुप्चितो बार्ह.तैः सोम रक्षितः।
ग्राव्णाचमिच्छृदण्वन् तिष्ठसि न तेद्ध अश्नाति पार्थि.वः।।8।।

पद-पाठः

आचच्छत्[विद्धधानैः। गुदप्चितः। बार्ह.तेः। सोचमच। रक्षितः।
ग्राव्णाद्धम्। इत्। शृदण्वन्। तिष्ठसि। न। तेच। अचश्नाचति। पार्थि.वः।।8।।

हिन्दी अनुवादः-हे दिव्यसोम! आप बृहती विद्या वेफ जानकारों से विदित तथा गुह्य विधियों द्वारा सुरक्षित हैं ;संकीर्ण मानस वाले वुफपात्र इसे नहीं पा सकतेद्ध। आप ग्रावा ;सोम निष्पादक यंत्र या गरिमामय वाणीद्ध की ध्वनि को सुनते हैं। आपको पृथ्वी वेफ प्राणी सेवन करने में सक्षम नहीं हैं।।8।।

संहिता-पाठः

चित्तिद्धरा उप्चबर्ह.णंच चक्षुद्धरा अभ्य द्धनम्।
द्यौर्भूमिःच कोशद्ध आसीचद् यदयाद्धत् सूदर्या पतिद्धम्।।6।।

पद-पाठः

चित्तिद्धः। आःच। उचप्चबर्ह.र्णम्। चक्षुद्धः। आचः। अचभिद्ध[अ द्धनम्।

द्यौः। भूमिङ्कः। कोशःङ्क। आचसीचत्। यत्। अयाङ्कत्। सूद्दर्या। पतिङ्कम्।।6।।

हिन्दी अनुवादः-जिस समय सूर्यपुत्री ने पतिगृह वेफ लिए प्रस्थान किया, उस समय ज्ञान ;श्रेष्ठ विचारद्ध ही उसका उपबर्हण ;सिरहाना-तकियाद्ध था। नेत्र ही श्रेष्ठ अ न थे। द्युलोक और पृथ्वी ही उसवेफ कोषागार थे।।6।।

संहिता-पाठः

रैभ्याङ्कसीदनुद्ददेयीङ्क नाराशंचसी न्योचङ्कनी।
सूद्दर्यायाङ्क भचद्रमिद् वासोच गाथङ्कयैतिच परिङ्कष्कृता।।7।।

पद-पाठः

रैभीङ्क। आचसीचत्। अचनुद्द{देयीङ्क। नाचराचशंचसी। न्चि{ओचङ्कनी।
सूद्दर्यायाङ्कः। भचद्रम्। इत्। वासङ्कः। गाथङ्कया। एचतिच। परिङ्कष्कृता।।7।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्या की विदाई वेफ समय नाराशंसी और रैभी नामक चाएँ ;अथवा मनुष्यों की प्रशंसा करने वाली वाणियाँद्ध उसकी सखीरूपा हुईं। सूर्या का परिधान अतिशोभायमान था, जिसे लेकर दोनों सखियाँ साथ गईं ;अर्थात् कल्याणकारी गाथाओं मन्त्रादि से विशेषतः सज्जित होकर सूर्या गईंद्ध।।7।।

संहिता-पाठः

स्तोमाङ्क आसन् प्रतिचधयङ्कः वुफद्दरीरंच छन्दङ्क ओप्चशः।
सूद्दर्यायाङ्क अर्ि नाङ्क क्चराग्निराङ्कसीत् पुरोगचवः।।8।।

पद-पाठः

स्तोमाङ्कः। आचस्चन्। प्रचतिच{धयङ्कः। वुफद्दरीरङ्कम्। छन्दङ्कः। ओचप्चशः।
सूद्दर्यायाङ्कः। अर्चि नाङ्क। क्चरा। अचग्निः। आचसीचत्। पुद्दरचः{गचवः।।8।।

हिन्दी अनुवादः-स्तवन ;स्तुति मंत्रद्ध ही सूर्या वेफ लिए अ था, वुफरीर नामक छन्द सिरे वेफ आभूषण थे। सूर्या वेफ वर अर्ि नी वुफमार थे तथा अग्नि अग्रगामी दूतरूप थे।।8।।

संहिता-पाठः

सोमोङ्क वधूद्दयुरङ्कभवदर्चि नाङ्कस्तामुद्दभा क्चरा।
सूद्दर्यां यत् पत्येच शंसङ्कन्तींच मनङ्कसा सक्चितादङ्कदात्।।9।।

पद-पाठः

सोमङ्कः। क्चधूद्द{युः। अचभचक्चत्। अर्चि नाङ्क। आचस्ताचम्। उ्चभा। क्चरा।
सूद्दर्याम्। यत्। पत्येङ्क। शंसङ्कन्तीम्। मनङ्कसा। स्चक्चिता। अदङ्कदात्।।9।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्या द्वारा हृदय से पति की कामना करने पर जब ;सूर्य नेद्ध उन्हें अर्ि नीवुफमारों को प्रदान किया, तब सोम भी वधूयु ;उनवेफ साथ विवाह वेफ इच्छुकद्ध थेऋ परन्तु अर्ि नीवुफमार ही उनवेफ वररूप में स्वीकृत किये गये।।9।।

संहिता-पाठः

मनोङ्क अस्याच अनङ्क आसीचद् द्यौराङ्कसीदुद्दत च्छचदिः।
शुद्दत्रफावङ्कन्चड्वाहांवास्ताच यदयाङ्कत् सूद्दर्या पतिङ्कम्।।10।।

पद-पाठः

मनङ्घः। अचस्याचः। अनङ्घः। आचसीचत्। द्यौः। आचसीचत्। उचत। छचदिः।
शुद्वक्रौ। अचन्चड्वाहौ.। आचस्ताचम्। यत्। अयाङ्घत्। सूदर्या। पतिङ्घम्।।10।।

हिन्दी अनुवादः-जिस समय सूर्या अपने पतिगृह में गईं, उस समय मन ही उनका रथ ;वाहनद्ध था और आकाश ही रथ वेफ ऊपर की छतरी थी। दो शुक्र ;प्रकाशवान् सूर्य-चन्द्रद्ध उनवेफ रथवाहक थे।।10।।

संहिता-पाठः

)चक्साचमाभ्याङ्घमचभिहिङ्घतौच गावौ. ते सामचनावै.ताम्।
श्रोत्रेङ्घ ते चचक्रे आङ्घस्तां दिचवि पन्थङ्घ राचचरः।।11।

पद-पाठः

)चक्(साचमाभ्याङ्घम्। अचभि(हिङ्घतो। गावौ.। तेच। साचमचनौ। ऐचताचम्।
श्रोत्रेच इतिङ्घ। तेच। चचक्रे इतिङ्घ आचस्ताचम्। दिचवि। पन्थाङ्घः। चचराचचचरः।।11।।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्या देवि! वृफ और साम स्तवनों ;ज्ञानद्ध को सुनने वाले-धारण करने वाले, एक दूसरे वेफ साथ साम्य रखने वाले दो श्रोत आपवेफ मानरूपी रथ वेफ चक्र हुए। रथ वेफ गमन का मार्ग आकाश नि त हुआ।।11।।

संहिता-पाठः

शुचीङ्घ ते चचक्रे याचत्या व्याचनो अक्षच आहङ्घतः।
अनोङ्घ मनचस्मयं. सूदर्यारोङ्घहत् प्रयचती पतिङ्घम्।।12।।

पद-पाठः

शुचीच इतिङ्घ। तेच। चचक्रे इतिङ्घ। याचत्याः। विच(आचनः। अक्षङ्घः। आ(हिङ्घतः।
अनङ्घः। मचनचस्मयङ्घम्। सूदर्या। आ। अचरोचहचत्। प्रच(यचती। पतिङ्घम्।।12।।

हिन्दी अनुवादः-जाने वेफ समय आपवेफ रथ वेफ दोनों पहिये पवित्र अथवा अति उज्ज्वल हुए। उस रथ की धुरी वायुदेव थे। पतिगृह को जाने वाली सूर्या मनरूपी रथ पर आरूढ़ हुईं।।12।।

संहिता-पाठः

सूदर्यायाङ्घ वहचतुः प्रागाङ्घत् सचिता यमचवासृङ्घजत्।
मचघासुङ्घ हचन्यन्तेच गावचः पफल्गुङ्घनीषुद व्यु(ह्यते।।13।।

पद-पाठः

सूदर्यायाङ्घः। वचहचतुः। प्र। अचगाचत्। सचविचता। यम्। अचवच(असृङ्घजत्।
मचघासुङ्घ। हचन्यतेङ्घ। गावङ्घः। पफल्गुङ्घनीषु। वि। उचह्यचतेच।।13।।

हिन्दी अनुवादः-सूर्या वेफ पतिगृह-गमनकाल में सूर्य ने पुत्री वेफ प्रति स्नेहरूप जो धन वित किया ;दियाद्ध, उसे पहले ही भेज दिया था। मघा नक्षत्र में विदाई वेफ समय दी गई गौओं को हाँका गया तथा अर्जुनी अर्थात् पूर्वापफाल्गुनी और उत्तरापफाल्गुनी नक्षत्र में कन्या को पति वेफ गृह भेजा गया।।13।।

संहिता-पाठः

यदङ्घि ना पृदच्छमाङ्घनाचवयाङ्घतं त्रिचचक्रेणङ्घ वहचतुं सूदर्यायाङ्घः।

ˆ ं वंफद्ध च्चक्रं वाद्ध्मासीचत् (देचष्ट्रायद्ध तस्थथुः।।14।।

पद-पाठः

यत्। अर्चा चनाच्। पृद्दच्छमाद्धनौ। अयाद्धतम्। त्रिच(च्चक्रेणद्ध। वचह्यतुम्। सूद्दर्यायाद्धः।
(। एकद्धम्। च्चत्रफम्। वाचम्। आचसीचत। (। देचष्ट्रायद्ध। तद्धस्थचथुद्दः।।14।।

हिन्दी अनुवादः-हे अ नीवुफमारो! जिस समय आप दोनों तीनचक्रों से युत्तफ रथ से सूर्या ;सूर्यपुत्रीद्ध को ले जाने वेफ लिए पहुँचे थे, तब आपका एक चक्र कहाँ स्थित था? आप दोनों अपने-अपने क्रिया-व्यापार में प्रेरणा प्रदान करने वाले कौन से स्थान पर रहते थे?।।14।।

संहिता-पाठः

यदयाद्धतं शुभस्पती वरेचयं सूद्दर्यामुपद्ध।
वि ेद्ध देचवा अनुद्द तद् वाद्धमजानन् पुद्दत्रः पिचतरद्धमवृणीत पूद्दषा।।15।।

पद-पाठः

यत्। अयाद्धतम्। शुद्दभःच्। पचतीच्। इतिद्ध। वेचरच(यम्। सूद्दर्याम्। उपद्ध।
वि ेद्ध। देचवाः। अनुद्ध। तत्। वाचम्। अचजाचनचन्। पुत्रः। पित्चरद्धम्। अचवृद्दणीचत्च। पूद्दषा।।15।।

हिन्दी अनुवादः-हे श्रेष्ठ कर्मों वेफ निर्वाहक अ देवो! जब आप दोनों सूर्य पुत्री को श्रेष्ठ वधू मानकर उनवेफ समीप वरण करने वेफ लिए पहुँचे थे, तब आपवेफ उस कार्य का सभी देवों ने अनुमोदन किया था। पूषादेव ने पुत्र द्वारा पिता को स्वीकार करने वेफ समान आपको धारण किया।।15।।

संहिता-पाठः

द्वे तेद्ध च्चत्रेफ सूद्धर्ये ब्रचह्माणद्ध)तुद्दथा विद्धदुः।
अथैवंफ. च्चक्रं यद् गुहाच तदद्ध(चतयच इद् विचदुः।।16।।

पद-पाठः

द्वे इतिद्ध। तेच्। च्चक्रे इतिद्ध। सूद्दर्ये। ब्रचह्माणद्धः।)चतुद्द(था। विचदुद्दः।
अथद्ध। एकद्धम्। च्चक्रम्। यत्। गुहाद्ध। तत्। अच(द्धतयद्धः। इत्। विचदुः।।16।।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्ये! ब्राह्मण ;ब्रह्मनिष्ठ व्यत्तिफद्ध इस बात से परिचित हैं कि आपवेफ रथ वेफ दो ;कर्मशीलद्ध चक्र तुओं वेफ अनुसार गतिशील होने में प्रसि(हैं। तीसरा ;ज्ञान-विज्ञान परकद्ध चक्र जो गोपनीय था, उसे विद्वान् जानते हैं।।16।।

संहिता-पाठः

अचर्यचमणं. यजामहे सुब्चन्धुं पद्धत्तिचवेदद्धनम्।
उच्चर्वाचरूच्कमिद्धच्च बन्धद्धनाचत् प्रेतो मुद्ध ामिच नामुतद्धः।।17।।

पद-पाठः

अचर्यचमणद्धम्। यचजचामचहेच्। सुद्द(ब्चन्धुम्। पचत्तिच(विदद्धनम्।
उच्चर्वाचरूच्कम्(इद्धच्। बन्धद्धनात्। प्र। इचतः। मुद्द चामिच। न। अचमुतद्धः।।17।।

हिन्दी अनुवादः-पति की प्राप्ति कराने वाले तथा श्रेष्ठ बन्धु-बान्धवों से युत्तफ रखने वाले अर्यमादेव का हम यजन करते हैं। जिस प्रकार ककड़ी या खरबूजा ;पकने परद्ध बेल वेफ बन्धन से ;सहज हीद्ध पृथव्फ होता है, वैसे ही हम पितृवुफल से कन्या को पृथव्फ करते हैं, परन्तु पतिवुफल से उसे पृथव्फ नहीं करते।।17।।

16. विषासहिसूक्तम् ;17.1द्ध

)षि-ब्रह्मा। देवता-आदित्य।

संहिता-पाठः

विषाचसचहिं सहद्धमानं सासहाचनं सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानं सहोचजितं स्वचर्जितं गोचजितं संधनाचजितद्धम्।
ईड ंच नामद्ध ह्व इन्द्रचमायुद्धष्मान् भूयासम्।।1।।

पद-पाठः

विच(सचमचहिम्। सहद्धमानम्। सचसहाचनम्। सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानम्। सचहचः(जितद्धम्। स्वचः(जितद्धम्। गोच(जितद्धम्। संचधचनच(जितद्धम्।
ईड द्धम्। नामद्ध। हेच। इन्द्रद्धम्। आयुद्धष्मान्। भूद्धयाचसचम्।।1।।

सा0 भा0: ईड म् स्तुत्यम् आरोग्याद्यर्थिभिः सर्वैः प्राणिभिः सर्वदा स्तोतव्यं नाम सर्वेषां नामकम्। अथवा नामेति प्रसि(ौ। ईड त्वेन प्रसि(म् इन्द्रम् आदित्यं हे ह्वे इति संग्रहार्थः। कीदृशम् इन्द्रम् इति तं विशिनष्टि विषासहिम् इत्यादिना। विषासहिम् विशेषेण सोढारम्। यथा शत्रवो न पुनरु वन्ति तथा नाशयितारम् इत्यर्थः। षह अभिभवे। तदेव उपपादयति सहमानम् इति। सहनशीलम्। 'इन्द्रो यातूनाम् अभवत पराशरः' ;अ0 8, 4, 21द्ध इत्यादिश्रुतिभ्य इन्द्रस्य सहनशीलत्वं प्रसि(म्। यस्य यादृक् स्वभावः स तादृशं करोतीति प्रसि(म्। अतः शत्रु हननस्वाभाव्याद् विषासहित्वं तस्य युत्तफम् इत्यर्थः। न वेफवलम् इदानीमेव तच्छीलत्वं प्रागपि तथेत्याह-सासहानम् पूर्वमपि अभिभवितारम्। अतः शत्रुहनन- स्वभावता सि(ा। ननु सन्त्यन्ये सोढारः। कोस्यातिशय इति तत्राहसहीयांसम् इति। सोढॄणां मध्ये अतिशयेन सोढारम् उक्तविशेषणचतुष्टयसि(म् अर्थ पुनरनुवदति क्रियासंबन्धाय आदित्यं ह्वे। इत्थं शत्रुसहनद्वारेण इन्द्रं प्रशस्य अथ शत्रूणां सहआदिजेतृत्वद्वारेणापि प्रशंसति-सहोजितम् सहः परेषाम् अभिभावुवंफ तेजः। तस्य जेतारं शत्रुबलापहर्तारम् स्वर्जितम्। स्वर इति सुखनाम। शत्रूणां यत् सुखं तस्य जेतारं नाशयितारं स्वर्गस्य वा जेतारम्। तथा गोजितम् गोशब्दो महिष्यजाविकरितुरोष्ट्रोरुपलक्षकः। शत्रूणां ये गवाद्याः सन्ति तेषां जेतारम्। यद्वा गावः उदकानि तेषां जेतारम्। तथा संधनजितम् सम्यग्धनस्य सुवर्णरजतमणि- मुक्तादिलक्षणस्य जेतारम्। यद्वा सहआदिजयः स्वोपासकार्थो द्रष्टव्यः। स्वभक्तेभ्यः सहःस्वर्गगोधनानां लम्भकम् इत्यर्थः। उक्तगुणविशिष्टस्येन्द्रस्य आहाने प्रयोजनम् आह-आयुष्मान् भूयासम् इति। आहानोपलक्षितैहैकालिकोपस्थानादिलक्षणैः कर्मभिः परितुष्टस्य इन्द्रशब्दवाच्यस्य भगवतः सूर्यस्य प्रसादाद् अहम् आयुष्मान् शतसंवत्सरलक्षणेन आयुष्येण उपेतो भवेयम्। अत एव आयुष्मत्प्रार्थनालि द् अस्यानुवाकस्य आयुरभिवृ(र्थे माणकस्य त्रिकालम् आदित्योपस्थाने विनियोग उक्तः।

हिन्दी अनुवादः-अतिसमर्थ, सहनशील, शत्रुहनन वेफ स्वभाव से युत्तफ, वैरी को दबा डालने में सक्षम, नित्य विजेता, महाबली, अपने पराक्रम से दिग्विजय करने में समर्थ, स्वर्ग वेफ विजेता, गौ ;भूमि, इन्द्रियों और गौओंद्ध वेफ विजयी, वैभव सम्पदा वेफ विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं, उनकी अनुकम्पा से हम दीर्घायुष्य प्राप्त करें।1।।

संहिता-पाठः

विषाचसचहिं सहद्धमानं सासहाचनं सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानं सहोचजितद्ध स्वचर्जितेद्ध गोचजितं संधनाचजितद्धम्।
ईड ंच नामद्ध ह इन्द्रं प्रियचो देवानां भूयासम्।।2।।

पद-पाठः

विच(सचसचहिम् सहद्धमानम् सचसचहाचनम् सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानं सचहः(जितद्धम् स्वः(जितद्धम गोच(जितद्धम संचधचनच(जितद्धम्।
ईड द्धम्। नामद्ध। हेच। इन्द्रद्धम्। प्रियः। देचवानाद्धम। भूद्धयाचसचम्।।2।।

सा० भा०: पूर्ववद् व्याख्येम्। आयुष्मान् इत्यस्य स्थाने प्रियो देवानाम् इति विशेषः। इन्द्रस्य सर्वदेवाधिपतित्वात् तदात्मकस्य सूर्यस्यापि 'एवैफव वा महान् आत्मा देवता। स सूर्य इत्याचक्षते सर्वभूतात्मा' इति प्रतिज्ञाय अनुक्रमणिकाकारेण ;)आ 1, 2, 14-20द्ध एकस्यैव भगवतः सूर्यस्य सर्वदेवतायत्वात् तस्मिन् एकस्मिन् प्रीते इतरेषां देवानां प्रियो भवतीत्यभिप्रायः। इतरथा येषा प्रियभावः प्रार्थनीयस्त एव पृथक्पृथग् उपास्याः स्युः। किम् इतरदेवानां प्रियभावप्रार्थनयेति। पफलानभिघाताय इतरेषां स्वाधीनीकरणस्यापि अपेक्षितत्वात्। यथा लोवेफ प्रीतेपि राजनि तत्परन्तत्राणामपि अमात्यादीनां प्रीत्यर्थम् उपधावनदर्शनात्।

हिन्दी अनुवादः-अतिसमर्थ, सहिष्णुतायुत्तफ, शत्रुहनन वेफ सहज स्वभाव से युत्तफ, वैरी पर दबाव डालने में सक्षम, नित्य विजेता, महाबलिष्ट, अपने पराक्रम से दिग्विजय में सक्षम, स्वर्ग वेफ विजेता, पृथ्वी, इन्द्रियों और गौओं वेफ विजेता, ऐ र्यों को जीतने वाले, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं। उनकी अनुकम्पा से हम, देवशत्तिफयों वेफ प्रियपात्र बनें।।2।।

संहिता-पाठः

विचषाचसचहिं सहद्धमानं सासहाचनं सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानं सहोचजितं· स्वर्जितं· गोचजितं· संधनाचजितद्धम्।
ईड ंच नामद्ध हच इन्द्रद्ध प्रिचयः प्रजानां· भूयासम्।।3।।

पद-पाठः

विचऽस्चस्चहिम्। सहद्धमानम्। सचसचहाचनम्। सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानम्। स्चहःचऽजितद्धम्। स्वःऽजितद्धम्। गोचऽजितद्धम्। संचधचनचऽजितद्धम्।
ईड द्धम्। नामद्ध। हेच। इन्द्रद्धम्। प्रिचयः। प्रचऽजानाद्धम्। भूद्याचसचम्।।3।।

सा० भा०: प्रजानाम् प्रकर्षेण जायन्त इति प्रजाः पुत्राद्या भृत्यादय । तासां प्रियो भूयासम्। ता यथा विधेयाः सत्यः मां पूजयन्ति तथाविधो भूयासम् इति आशास्ते।

हिन्दी अनुवादः-अति सक्षम, सहिष्णु, शत्रुओं वेफ स्वाभाविक हन्ता, शत्रु को दवा डालने में समर्थ, नित्य विजेता, महाबलशाली, स्वसामर्थ्य से दिग्विजय में सक्षम, स्वर्ग को जीतने वाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं तथा ऐ र्यों वेफ विजेता, इन्द्र-रूप सूर्य को हम आवाहित करते हैं। उनवेफ अनुग्रह से हम प्रजाजनों वेफ प्रिय पात्र बनें।।3।।

संहिता-पाठः

विचषाचसचहिं सहद्धमानं सासहाचनं सहीद्धयांसम्।
सहद्धमानं सहोचजितं स्वर्जितं· गोचजितं· संधनाचजितद्धम्।

ईड ंच नामह्न ह्च इन्द्रं॰ प्रिचयः पह्नशूनां भूयासम्।।5।।

पद-पाठः

विच(स्चस्चहिम्। सहह्नमानम्। स्चस्चहाचनम्। सहीह्नयांसम्।
सहह्नमानम्। स्चहःच(जितह्नम्। स्वचः(जितह्नम्। गो(जितह्नम्। संचधचनच(जितह्नम्।
ईड ह्नम्। नामह्न। हेच। इन्द्रह्नम्। प्रिचयः। फ्चशूद्दनाम्। भूद्दयाचस्चम्।।5।।

सा0 भा0: पशवो गोमहिष्यजाविकाद्याः करितुरगोष्ट्रादय । 'चतुष्टपादाः पशवः' ;ऐब्रा 5, 19द्ध इति श्रुतेः। सत्सु तेषु तेषां प्रियभावप्रार्थनौचित्यात् तल्लाभं तदानुवूफल्यं चाशास्ते।

इत्थम् आयुष्याभावे कृत्स्नस्यापि लाभस्य वैयर्थ्यात् प्रथमम् आयुष्यम् आशास्य तत्सि(ये देवतानुवूफल्यमपि आशास्य पुत्राद्यभावे स्वात्मन एव अकात्स्न्र्यात् प्रजासमृ(िम् आशास्य तदनन्तरं पशुलाभं प्रार्थ्य अथ तैः सर्वै संपन्नः स्वसमानेषु श्रेष्ठभावम् आशास्ते।

हिन्दी अनुवादः-अति सक्षम, सहनशील, शत्रुओं वेफ सहज हननकर्त्ता, वैरी को दबा डालने में समर्थ, महाबलिष्ट, नित्य विजेता, स्वर्गीय सुखों, भूमि, इन्द्रियों और गौओं तथा वैभव सम्पदा वेफ विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं। उनकी अनुकम्पा से हम पशुओं ;गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हाथी, घोड़े-ऊँट आदिद्ध वेफ प्रियपात्र बनें।।5।।

संहिता-पाठः

विचषाचस्चहिं सहह्नमानं सासहाचनं सहीह्नयांसम्।
सहह्नमानं सहोचजितं स्वर्जितं॰ गोचजितं॰ संधनाचजितह्नम्।
ईड ंच नामह्न ह्च इन्द्रं॰ प्रिचयः सह्नमाचनानां॰ भूयासम्।।6।।

पद-पाठः

विच(स्चस्चहिम्। सहह्नमानम्। स्चस्चहाचनम्। सहिह्नयांसम्। सहह्नमानम्। स्चहःच(जितह्नम्। स्वः(जितह्नम्।
गो(जितह्नम्। संचधचनच(जितह्नम्। ईड ह्नम्। नामह्न। हेच। इन्द्रह्नम्। प्रिचयः। स्चमाचनानाह्नम्। भूद्दयाचस्चम्।।6।।

सा0 भा0: समानानाम् वुफल जातिवयोधनविद्याकर्मादिभिः स्वसदृशाः समानाः। तेषां प्रियो भूयासम्। तेषामपि श्रेष्ठत्वेन उपजीव्यो भूयासम् इत्यर्थः। सत्सु स्वसदृशेषु अन्येषु स्वस्य श्रैष्ठ ।भावाद् 'अहं भूयासम् उत्तमः समानानाम्' ;तै 3, 5, 5, 1द्ध, 'समानानाम् उत्तमलोको अस्तु' ;तै 5, 7, 4, 3द्ध इत्यादिश्रुतिषु तेषामपि श्रेष्ठ प्रार्थनादर्शनात्। इत्थम् आयुष्यादिसर्वकामप्रार्थनालि ।द् अस्यानुवाकस्य च सलिलगणे पाठात् 'सलिलैः सर्वकामः ;कौसू 24, 46द्ध इत्यादिको गणप्रयुक्तो विनियोग उक्त इति द्रष्टव्यम्। अत एव प्रियः प्रजानां भूयासम् प्रिय समानानां भूयासम् इति लि ।द् भास्करप्रीतिकारापूपदाने 'अथ यः कामयेत सर्वेषां नृणाम् उत्तमः स्याम्' इति प्रक्रम्य '' 'विषासहिम्' इति अभिमन्त्र्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्'' ;अप 12, 1, 1-6द्ध।

हिन्दी अनुवादः-अत्यन्त समर्थ, सहनशील, शत्रुओं वेफ स्वाभाविक हन्ता, शत्रुओं को दबाने में सक्षम, महाबली, नित्य विजेता, स्वर्गीय सुखों, भूमि, इन्द्रियों, गौओं तथा धन-सम्पदा वेफ विजेता, इन्द्ररूप सूर्यदेव को हम आवाहित करते हैं। उनकी कृपादृष्टि से हम समवयस्क मनुष्यों वेफ प्रिय रहें।।6।।

संहिता-पाठः

उदि्चह्युदिह्नहि सूर्यच वर्च॰सा माचभ्युदिह्नहि।
द्विचषंश्चच मह्यंच रध्यह्नतु मा चाचहं द्विह्नषचते रह्नधंच तवेद्च विह्नष्णो बहुद्दधा वीचर्या(णि।
त्वं नह्नः पृणीहि फ्चशुभिह्नर्विच रूह्नपैः सुद्दधायां॰ मा धेहि परचमे व्यो(मिन्।।7।।

पद-पाठः

उत्। इ॒यहि॒। उत्। इ॒यहि॒। सू॒दर्य॒। वर्च॑सा। मा॒। अ॒चभि॒चउदिह॒हि द्वि॒चषन्। च॒। म॒ह्य॒ह्ह॒म। रध्य॒ह्ह॒तु। मा। च॒। अ॒चहम्। द्वि॒चष्च॒ते। रध॒चम्। तव॒ह्ह। इत्। वि॒चष्णो॒च इति॒ह्ह। ब॒चहु॒धा। वि॒चर्या॒णि। त्वम्। न॒चः। पृ॒णी॒चहि॒। प॒चशु॒भि॒ह्हः। वि॒च रू॒ह्ह॒पैः। सु॒द॒धाया॒ह्हम्। मा॒। धे॒चहि॒। प॒चर॒मे। वि॒ओ॒ह्हमन्॥6॥

सा0 भा0: सरति गच्छति संततम् इति वा सुवति प्रेरयति स्वोदयेन सर्वं प्राणिजातं स्वस्वव्यापारे इति वा सूर्यः। तस्य। संबोधनम्। हे सूर्य त्वम् उदिहि उदिहि। वीप्सया उदयविषया त्वरा द्योत्यते। स्वयमेव उदेष्यतः सूर्यस्य उदयविषयप्रार्थनं मन्देहाद्यसुरकृतोदयप्रतिबन्धम् अन्तरेण उदयांशसनार्थम्।

उदिह्येव तव राक्षसकृत उदयप्रतिबन्धो मा भूद् इत्याभिप्रायः। उदयं विशिनष्टि-वर्चसा सर्वस्य आवर्जवेफन तेजसा सह मा मां प्रति अभ्युदिहि। अनेन नीहारादितिरोधानाभावः प्रार्थितः। अथ वा वर्चसा हेतुना मम वर्चोलाभाय अभ्युदिहि। सूर्ये उदिते सर्वस्यापि पदार्थस्य वर्चःप्राप्ति सुप्रसिद्धैव। यद्यपि सर्वे भूतजातं प्रति उदेति तथापि उपासकस्य स्वस्य अभिमतप्राप्तिलक्षण- प्रयोजनस त्वात् माभ्युदिहि इति प्रार्थ्यते। श्रुति भवति-'तस्मात् सर्व एव मन्यते मां प्रत्युगाद् इति' ;तै 6, 5, 4, 2द्ध इति। उदयप्रार्थनायाः प्रयोजनम् आह द्विषं त्यादिना। हे सूर्य अप्रतिबन्धेन उदितस्य तव अनुग्रहात् द्विषन् मयि देषं वुफर्वन् शत्रुः। मह्यं रध्यतु मम वंश प्राप्तोन्तु। मम पादाक्रान्तो भवतु। यथा मद्द्वेषी मदधीनो भविष्यति एवम् अहमपि तदधीनः कदाचिदपि स्याम् इत्याशङ्क्य व्यतिरेकाभावम् आशास्ते-मा चाहं द्विषते रधम्। अहं त्वदुपासकस्त्वप्रसादाद् द्विषते मयि देषं वुफर्वते शत्रवे मा रधम् वशो मा भूवम्।

सत्यपि भोग्ये शत्रुस त्वे भोगासंभवात् तत्स्वाधीनकरणलक्षणं पफलम् आशास्य इदानीम् ऐहिकामुष्मिकभोगसाधनलक्षणं पफलम् आशास्ते तवेद् विष्णो बहुधा इत्यादिना। आदौ भोगप्रदानसामर्थ्यस त्वं दर्शयति-तवेद् इति। हे विष्णो व्याप्नोति स्वरश्मिभिः सर्वं ब्रह्माण्डान्तरालम् इति विष्णुरादित्यः। अथवा द्वादशादित्यमध्ये 'दिवाकरो मित्रो विष्णु ' इति श्रुतौ स्मृतौ च विष्णोरपि परिगणनाद् विष्णुरादित्यः। तादृशविष्णुशब्दाभिधेयादित्य तवेत् तवैव वीर्याणि बहुधा बहुप्रकाराणि नान्यस्य देवतान्तरस्य। यतस्त्वं विष्णुः अतस्तव वीर्याणि अनन्तानीत्यभिप्रायः।

साक्षात् सूर्यस्य भगवतो वीर्याण्यपि जगदन्धकार निर्हरणसकलपदार्थप्रकाश- निखललौकिकवैदिक-कर्मनिर्वर्तनसमयवृष्टिप्रदानारोग्यकरण मोक्षप्रदानादीनि लोकप्रसिद्धान्येव। यतस्तव सर्वप्राण्युपकारकाणि बहुविधानि वीर्याणि सन्ति अतः त्वं नः अस्मान् वि रूपैः गोमहिष्यजाविकरितुरगोष्ट्रादिलक्षणैः पशुभिः पृणीहि पूरय। तथा एतद्देहावसाने परमे निरतिशये व्योमन् व्योमनि विशेषण अवतीति व्योम तस्मिन् ब्रध्नस्य विष्टपे स्थाने।

मन्त्रोक्तलक्षण इत्यर्थः तथाविधे लोवेफ स्वधायाम्। अन्ननामैतत्। यत्सेवया क्षुत्तृष्णाशोकमोहजरामरणादयो न भवन्ति तथाविधे अन्ने अमृते मा मां धेहि स्थापय। त ेगाहं वुफर्वित्यर्थः। उक्तफलक्षणे स्थाने स्वधास त्वो मन्त्रान्तरे। 'स्वधा च यत्र तृप्ति तत्र माम् अमृतं कृधि' ; *9, 1, 13, 10*द्ध इति।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! उदित हों, उदित होकर अपने वर्चस् से हमें प्रकाशित करें, हमसे द्वेष-भाव रखने वाले, हमारे वशीभूत होंऋ परन्तु हम भूलकर भी विद्वेषी शत्रुओं वेफ चंगुल में न आएँ। हे विष्णुरूप सूर्यदेव! आपका असीम ;अनन्तद्ध पराक्रमी शौर्य ;कार्यद्ध है, आप हमें विभि आकृतियों से युक्तफ, पशुओं से परिपूर्ण करें तथा अन्त में परमव्योम ;स्वर्गद्ध में प्रतिष्ठित करें और सुधारस से परितृप्त करें॥6॥

संहिता-पाठः

उदि॒ह्यु॒दिह्ह॒हि सूर्य॒ वर्च॑सा मा॒भ्यु॒दिह्ह॒हि।
यांश्च॒ पश्या॒ह्ह॒मि यांश्च॒ न तेषु॒ह्ह मा सु॒द॒म॒तिं कृ॒द॒धि॒ तवेद् वि॒ह्ह॒ष्णो ब॒हु॒द॒धा वी॒र्या॒णि।
त्वं न॒ह्हः पृ॑णीहि प॒शु॒भि॒ह्ह॒र्वि॒श्वरू॒ह्ह॒पैः सु॒द॒धाया॒ह्ह मा धे॑हि पर॒मे व्यो॒मन्॥7॥

पद-पाठः

उत्। इ॒यहि॒। उत्। इ॒यहि॒। सू॒दर्य॒। वर्च॑सा। मा॒। अ॒चभि॒चउदिह॒हि। यान्। च॒। प॒श्या॒ह्ह॒मि।
यान्। च॒। न। तेषु॒ह्ह। मा॒ सु॒द॒म॒तिम्। कृ॒द॒धि॒। तव॒ह्ह। इत्। वि॒चष्णो॒च इति॒ह्ह। ब॒चहु॒द॒धा। वी॒चर्या॒णि।

त्वम्। न्चः। पृदर्णाचहि्य। फ्चशु(भिङ्गः। क्चि (रूङ्गपै। सुद(धायाङ्गम्। माच। धेचहि्य। फ्चरच्मे। वि(ओङ्गमन्।।7।।

सा0 भा0: उदिह्युदिहि इति मन्त्रभागः पूर्ववद् व्याख्येयः। यान् प्राणिनः पश्यामि चक्षुषा विषयीकरोमि देशादिभिरव्यवहितान्, यां प्राणिनः देशादिव्यवधानवतो न पश्यामि तेषु द्विविधेषु प्राणिषु विषयभूतेषु मा मां सुमतिम् शोभनबु(युक्तं कृधि वुफरु। तेषु द्रोहरहितचित्तं वुफर्वित्यर्थः। तादृशी बु(ः स्वात्मशत्रुमित्रेषु समदर्शिन एव जायते। तथाविधा दृष्टिः परमेश्वरप्रीतये भवति।

'समत्वम् आराधनम् अच्युतस्य।
सममतिरात्मुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न च हन्ति विंफचिद् उच्चैः। ;विषु 3, 7, 20द्ध

इति स्मरणात्: विंफ च अद्रोह एव पुफषार्थसाधनेषु प्रथमतो निर्दिष्टः 'अहिंसा सत्यम् अस्तेयम्' ;भापु0 11, 17, 20द्ध इति। ईदृशीं बु(मन्त्रान्तरे महर्षिर्विष्णुं प्रार्थयामास-'त्वं विष्णो सुमतिं वि जन्याम् अप्रयुताम् एवयावो मतिं दाः' ;)0 7, 100, 2द्ध इति। हे विष्णो तवेद् इत्यादि गमत्। 'यतस्तव वीर्याणि बहुधा अतो मां सुमतिं वुफरु।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप उदित हों, उदित होकर अपनी तेजस्विता से हमें प्रकाशित करें। जिन प्राणियों को हम देखते हैं तथा जिन्हें देखने में सक्षम नहीं हैं, उन दोनों वेफ सम्बन्ध में हमें श्रेष्ठ विचारों से प्रेरित करें। हे विष्णुरूप!.....परितृप्त करें।।7।।

संहिता-पाठः

मा त्वाङ्ग दभन्त्सलिचले अचप्स्वङ्ग1चन्तर्ये पाचशिनङ्ग उपचतिष्ठचन्त्यत्रङ्ग।
हिचत्वाशङ्गस्तिं दिक्चमारूङ्गक्ष एचतां स नोङ्ग मृड सुमचतौ तेङ्ग स्यामच तवेद् विङ्गष्णो बहुदधा वीचर्या(णि।
त्वं नःङ्ग पृणीहि फ्चशुभिङ्गर्विच रुपैः सुदधायां. मा धेहि परचमे व्यो(मन्।।8।।

पद-पाठः

मा। त्वाच। दचभचन्। सचलिचले। अचप्(सु। अचन्तः। ये। पाचशिनङ्गः। उ्चपच्(तिष्ठङ्गन्ति। अत्रङ्ग।
हिचत्वा। अशङ्गस्तिम्। दिवङ्गम्। आ। अचरूचक्षःच। एचताम्। सः। न्चः। मृदङ्च। सुद(मतौ। तेच।
स्याचमच। तवङ्ग। इत्। विचष्णोच इतिङ्ग। बचहदु(धा। वीचर्या(णि।
त्वम्। न्चः। पृदणीचहि। फ्चशु(भिङ्गः। विच (रूङ्गपैः। सु(धायाङ्गम्। माच। धेचहि्य। फ्चरच्मे। वि(ओङ्गमन्।।8।।

सा0 भा0: सलिले सलिलम् अन्तरिक्षम् तस्मिन् अप्स्वन्तः अन्तरिक्षस्थानम् अपां मध्ये हे सूर्य त्वा त्वां मा दभन् दम्भनं हिंसां मा कार्षुः प्रच्छन्नचारिणो राक्षसाः। दम्भुदम्भे। मा लुङि 'दम्भे ेति वक्तव्यम्' ;ि्द्ध इत च्लेः अ । अप्सु सूर्यस्य हिंसकानां कः प्रस इति तत्राह-ये पाशिनः इति। अत्र अप्सु ये ये पाशिनः पाशहस्ता गतिनिरोधसाधनवन्तः उपतिष्ठन्ति मायाविनो राक्षसाः। 'उत्ति न्तं ह वा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति यावद् अस्तम्। अन्वगात्' ;तैआ0 2, 2, 1द्ध इत्यादिना गतिप्रतिबन्धकस वः प्रदर्शितः प्राक्। इत्थं गतिप्रत्यूहाभावम् आशास्य सुखेन द्यामारूढं दृष्ट्वा आह-हित्वेति। हे सूर्य एताम् अशस्तिम्। अशस्तिर्निन्दा। परारव्यब्रह्मणः सगुणमूर्तिभूतस्य भगवतः सूर्यस्य राक्षसा गतिं प्रत्यबध्नन् किल इत्येवंरूपां निन्दां हित्वा तैरप्रतिब(ो भूत्वा एतां दिवम् द्याम् अन्तरिक्षम् अरुक्षः आरूढवान् असि। 'शल इगुपधादनिटः क्सः' ;पा 3, 1, 45द्ध इति क्सप्रत्ययः। स तादृशस्त्यक्तशस्तिस्त्वं नः अस्मान् मृड सुखय। ते सुमतौ शोभनायाम् अनुग्रहबु(ौ स्याम भवेम। देवताया अनुग्रहबु(ौ सत्यां यद् अभीष्टं प्रार्थयते तत् सुलभं भवतीत्यभिप्रायेण आदौ सैव प्रार्थ्यते। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! जल वेफ बीच पाशधारी ;प्रच्छ चारीद्ध राक्षस आपको अन्तरिक्षीय जल में दबाने में समर्थ न हो सवेफं। हे सूर्यदेव! आप निन्दा भाव त्यागकर द्युलोक में आरूढ़ हो और हमें सुख प्रदान करें। हम आपवेफ अनुग्रहपूर्ण मार्गदर्शन में रहें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!........परितृप्त करें।।8।।

संहिता-पाठः

त्वं नङ्ग इन्द्र महचते सौभङ्गगाचयादङ्गब्धेभिः परिङ्ग पाह्यचत्तुफभिचस्तवेद् विङ्गष्णो बहुदधा वीचर्या(णि।
त्वं नङ्गः पृणीहि फ्चशुभिङ्गर्विच रूङ्गपैः सुदधाया मा धेहि परचमे व्यो(मन्।।9।।

पद-पाठः

त्वम्। न्वः। इ्यन्द्र्च। म्चहृचते। सौभङ्गाय। अदङ्क्ब्धेभिः। परिङ्घ। पाचहि्च। अचत्तुफर्(भिङ्घः। तवङ्घ।
इत्। क्चिष्णोच इतिङ्घ। बचहुद्(धा। वीचर्या(णि।
त्वम्। न्वः। पृदणीचहि्च फ्चशु(भिङ्घः। क्चिश्च(रूङ्घपैः। सुद्(धायाङ्घम्। माच। धेचहि्च। फ्चस्चमे। वि(ओङ्घमन्।।9।।

सा0 भा0: हे इन्द्र परमेश्वर सूर्य त्वं नः अस्मावंफ निरतिशयाय सौभगाय शोभनो भगो यस्य स सुभगः सुभगस्य भावः सौभगं सौभगाय सौभाग्याय।

'ऐ र्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययो ैव षण्णां भग इतीरणा।।' ;वि0 पु0 6, 5, 70द्ध

इत्युक्तफलक्षणभूतस्य ऐश्वर्यादेः सि(र्थम् इत्यर्थः। तदर्थम्। अदब्धेभिः अदब्धैः अर्हिस्यैर्व्याधिसर्पाग्नितस्करादिजनितहिंसारहितैः अक्तुभिः। रात्रिनामैतत्। रात्र्युपलक्षितैर्बहुभिर्दिवसैर्निमित्तभूतैः परि पाहि सर्वतो रक्ष। अथवा प्रायेण रात्रावेव व्याधितस्करभूतरक्षः पिशाचादिपीडासंभवाद् विशेषेण रात्रिषु रक्षा प्रार्थ्यते। तवेद् इत्यादि गतम्।

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रदेव! सौभाग्य की प्राप्ति वेफ लिए आप अदम्य प्रकाश से हमारा संरक्षण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!......परितृप्त करें।।9।।

संहिता-पाठः

त्व नङ्घ इन्द्रोचतिभिङ्घः शिचवाभि्चः शंतङ्घमो भव।
आचरोहं.हिदि्चवं दि्चवो गृङ्घणाचनः सोमङ्घपीतये प्रियधाङ्घमा स्वचस्तयेच तवेद् विङ्घष्णो बहुद्दधा वीचर्या(णि।
त्वं नङ्घः पृणीहि फ्चशुभिङ्घर्वि्च रूङ्घपैः सुदधायां. मा धेहि परस्चमे व्यो(मन्।।10।।

पद-पाठः

त्वम्। नः। इ्चन्द्र्च। ऊ्चति(भिङ्घः। शिचवाभिङ्घः। शम्(तङ्घमः। भ्चव्च। आच(रोहङ्घन।
त्रि्च(दि्चवम्। दि्चवः। गृदणाचनः। सोमङ्घ(पीतये। प्रि्चय(धाङ्घमा। स्वचस्तयेङ्घ। तवङ्घ। इत्।
क्चिष्णोच इतिङ्घ। बचहुद्(धा। वीचर्या(णि। त्वम्। नःच। पृदणीचहि्च। फ्चशु(भिःङ्घ। क्चिश्च(रूङ्घपैः।
सुद्(धायाङ्घम्। माच। धेचहि्च। फ्चस्चमे। वि(ओङ्घमन्।।10।।

सा0 भा0: हे इन्द्र त्वं नः अस्मावंफ शंतमो भव। शम् इति सुखनाम। सुखतमो भव। सुखयितृतमो भवेत्यर्थः। न हि असुखस्य सुखयितृत्वम् अस्ति। वैफः साधनै- रित्युच्यते-शिवाभिः म लाभिः ऊतिभिः रक्षाभिः। याभी रक्षाभी रक्षितः पुनः पुनःर्जननमरणादिक्लेशभा न भवति तादृश्यो रक्षाः शिवा इत्युच्यन्ते। विंफ वुफर्वन्। दिवः अन्तरिक्षस्य संबधिनं त्रिदिवम्। तिसृणां दिवां समाहारस्त्रिदिवः। 'ति ो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्' ;)0 7, 8, 7, 5द्ध 'तिस्रो भूमीर्धारयन् त्री रुत द्यून्' ;)0 2, 27, 8द्ध, 'त्रयो वा इमे त्रिवृतो लोकाः' ;ऐब्रा 2, 17द्ध इत्यादिश्रुतिभ्यो द्युलोकस्य त्रैविध्यम्। अथवा भूलोकापेक्षया तृतीया द्यौर्द्युलोकं दिवः। तम् आरोहन्। तथा सोमपीतये सोमपानाय। सोमपानं तु सोमयागम् अन्तरेण न संभवति तं देवेभ्यो हुत्वा शेषभक्षणविधानात् अग्नौ हुतस्य सोमस्य पानाय वा अतो यागादिकर्मसि(ये गृणानः अस्माभिः स्तूयमानः। कर्मणि कर्तृप्रत्ययः। आरोहणं किमर्थम् इति उच्यते। स्वस्तये जगतः क्षेमाय। उदयति सवितरि अन्धकारापगमेन सकलव्यवहारसि(ेः सर्वप्राणिनां क्षेमं भवतीति सुप्रसि(म्। कीदृशस्त्वम्। प्रियधामा प्रियस्थानः। द्युस्थाने प्रीतिमान् इत्यर्थः। न हि सूर्यस्य इतरदेववद् यदृच्छया स्थानान्तरसंक्रमणम् अस्ति। अथवा धाम तेजः। प्रियतेजा इत्यर्थः। न हि स्वतेजः स्वस्याप्रियम् अतः सद्यमेव। अथवा यस्य धाम लोकस्य प्रियं स प्रियधामा। एवं वुफर्वन् स्वस्तये भवेति शेषम् अध्याहृत्य वा योज्यम्। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रदेव! आप हमारा कल्याण करें, अपने संरक्षण साधनों से कल्याणप्रद हों। आप तृतीय स्थान द्युलोक में आरूढ़ होकर सोमरस का पान करते हुए, प्रकाश प्रदान करते हुए और लोक कल्याण करते हुए हमारा संरक्षण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!.....पदितृप्त करें।।10।।

संहिता-पाठः

त्वमिद्विन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्
विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥11॥

पद-पाठः

त्वम्। इन्द्र। असि। विश्व॒ऽजित्। सर्व॒ऽवित्। पुरु॒ऽहूतः। त्वम्। इन्द्र। त्वम्।
इन्द्र। इमम्। सु॒ऽहव॑म्। स्तोम॑म्। आ। ई॒रय॒स्व। सः। नः। मृड। सु॒ऽमतौ। ते।
स्याम। तव॑। इत्। विष्णो इति। बहु॒ऽधा। वीर्या॒णि। त्वम्। नः। पृणीहि।
पशुऽभिः। विश्व॒ऽरूपैः। सु॒ऽधायाम्। मा। धेहि। परमे। वि॒ऽओमन्॥11॥

सा० भा०: हे इन्द्र परमेश्वर्यविशिष्ट सूर्य। इन्द्र एव वा संबोध्यते सूर्यमूर्त्यन्तरभूतः। पुरुहूत इत्यसाधारणविशेषणात्। त्वं विश्वजित्। विश्वस्य जेता वशीकर्ता अधिपतिरसीत्यर्थः। तथा सर्ववित् सर्वप्रेरकत्वात् सर्वात्मकत्वाच्च। तथात्वं च 'असावादित्यो ब्रह्म' (तैआ० 2, 2, 2), 'स त्रेधात्मानं व्युकुरुत। अग्निं तृतीयं वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्' (बृउ 1, 2, 3) इत्यादिश्रुतेः परमेश्वराद् अभिन्नत्वात् सिद्धम्। तथा हे इन्द्र त्वं पुरुहूतोऽसि पुरुभिर्बहुभिर्यजमानैः स्वस्वयागसिद्धये आहूतोसि। यत एवंरूपमहिमासि अतो हे इन्द्र त्वम् इमम् इदानींक्रियमाणप्रकारं सुहवम् शोभनाहानसाधनं स्तोमम् स्तवम् आ सर्वतः ईरयस्व प्रेरय। स्तोमेन तुष्टः सन् एवमेव स्तुहीति प्रेरयेत्यर्थः। अथ वा ईरयतिरत्र प्रेरणापूर्वके स्वीकारे वर्तते प्रेर्य स्वीकुर्वित्यर्थः। स नो मृड इति पूर्ववद् व्याख्येयम्॥

हिन्दी अनुवादः-हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्ररूप सूर्य! आप समस्त विश्व के विजेता, सर्वज्ञ और प्रशंसनीय हैं। आप उत्तम स्तोत्रों को प्रेरित करें, हमें सुख प्रदान करें, हम आपकी कृपाबुद्धि में स्थित रहें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!.....परितृप्त करें॥11॥

संहिता-पाठः

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥12॥

पद-पाठः

अदब्धः। दिवि। पृथिव्याम्। उत। असि। न। ते। आपुः। महिमानम्। अन्तरिक्षे।
अदब्धेन। ब्रह्मणा। ववृधानः। सः। त्वम्। नः। इन्द्र। दिवि। सन्। शर्म। यच्छ।
तव। इत्। विष्णो इति। बहु॒ऽधा। वीर्या॒णि। त्वम्। नः। पृणीहि। पशु॒ऽभिः।
विश्व॒ऽरूपैः। सु॒ऽधायाम्। मा। धेहि। परमे। वि॒ऽओमन्॥12॥

सा० भा०: हे इन्द्र त्वं दिवि द्युलोके अदब्धः केनापि राक्षसादिना अहिंसितः असि। उत अपि च पृथिव्याम् भुवि भूचरैः वैरिभिः अपि अदब्धः अहिंसितोसि। तथा अन्तरिक्षे अपि ते तव महिमानं नापुः सोढुं शक्ता नाभवन्। अतिकठोरतेजस्त्वात् लोकत्रयेपि तव संतापलक्षणं महिमानम् आप्तुमपि अशक्ताः किल, किमु वक्तव्यं तव हिंसा कर्तुम् अशक्ता इत्यभिप्रायः। ईदृशो महिम्नः प्राप्तौ कारणम् आह अदब्धेनेति। यतस्त्वम् अदब्धेन अहिंस्येन अकुण्ठितसामर्थ्येन ब्रह्मणा मन्त्रेण गायत्रीलक्षणेन वावृधानः भृशं वर्धमानः। हिंसकानां रक्षसां गायत्र्यभि- मन्त्रितेनोदकेन निरस्तत्वेन संकोचाभावाद् इति भावः। निरसनप्रकारः 'तस्माद् उत्तिष्ठन्तं ह वा तानि रक्षांस्यादित्यं योधयन्ति' (तैआ० 2, 2, 1) इत्यादिना प्रदर्शितः। यद्वा ब्रह्मणा 'विषासहिं सहमानम्' इत्यादिकेन कृत्स्नेनानुवाकेन स्तुतिरूपेणेत्यार्थः। 'भुवस्त्वम् इन्द्र ब्रह्मणा महान्' (ऋ० 10, 50, 4), 'एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व' (ऋ० 1, 3, 1, 18) इत्यादिश्रुतेर्देवताया ब्रह्मणा महत्त्वप्राप्तिरभिवृद्धिश्च प्रसिद्धा। अथवा ब्रह्मणा परिवृढेन कर्मणा उपस्थानादिरूपेण वावृधानः। यतस्त्वं ब्रह्मणा वर्धसे अतस्त्वं सर्वत्र अदब्धः अन्यैरप्राप्तमाहात्म्यश्च भवसीत्यर्थः। स तादृशः त्वम् हे इन्द्र नः अस्माकं दिवि द्युलोके शर्म सुखं यच्छ देहि। स्वधाया मा धेहि परमे व्योमन्निति द्युक्तम्। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रात्मक सूर्य! आप द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथ्वी में अदम्य हैं। क्योंकि आप अजस्र शक्ति के स्रोत ब्रह्म द्वारा निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!......परितृप्त करें॥12॥

संहिता-पाठः

या तद्व इन्द्र तयनूरद्दप्सु या पृद्वथियव्यां यान्तस्यग्नौ या तद्व इन्द्रय पवद्वमाने स्वयर्विदिद्व।
ययेद्वन्द्र तयन्वाचऽयद्वन्तरिद्वक्षं व्यापियथ तयाद्व न इन्द्र तयन्वाचऽयद्व शर्म॰ यच्छय तवेद् विद्वष्णो बहुद्वधा वीयर्या{णि।
त्वं नद्वः। पृणीहि पयशुभिद्वर्विचश्वरूद्वपैः सुद्दधायां॰ मा धेहि परयमे व्यो{मन्॥13॥

पद-पाठः

या। तेय। इ॒यन्द्रय। तयनूः। अयप्{सु। या पृद्वथियव्याम्। या। अयन्तः। अयग्नौ। या। तेय।
इ॒यन्द्रय। पवद्वमाने। स्वयःविदिद्व। ययाद्व। इ॒यन्द्रय। तयन्वा{। अयन्तरिद्वक्षम्। विय{आयपियथ। तयाद्व।
नःय। इ॒यन्द्रय। तद्वन्वा{। शर्म॰। ययच्छय। तवद्व। इ॒त्। वियष्णोय इ॒तिद्व। बयहुद्द{धा। वीययर्या{णि।
त्वम्। नःय। पृद्वणीयहिय। पयशु{भिद्वः। विश्वयव{रूद्वपैः। सुद्द{धायाद्वम्। माय। धेयहिय। पयरयमेय। वि{ओद्वमन्॥13॥

सा0 भा0: इ॒त्थं मण्डलाभिमानिनः सूर्यस्य माहात्म्यम् उपवर्ण्य बहुविधं स्वाभीष्टमपि अर्थयित्वा इ॒दानीं प सु महाभूतेषु सूर्यस्य या मूर्तयः सन्ति तन्मुखादपि स्वाभीष्टम् अर्थयते-हे इ॒न्द्र परमैश्वर्ययुक्त सूर्य प्रसि(न्द्र वा या ते तव तनूः मूर्तिः अप्सु उदवेफषु अस्ति तथा तन्वा मूर्त्या अबधिष्ठितदेवतोपाधिनापि शर्म सुखम् अप्सु विद्यमानं तत्सारभूतामृतभैषज्यादिजन्यं यच्छ देहि। अप्सु अमृतभैषज्यादिस ।वो मन्त्रान्तरेषु श्रूयते-''अप्स्वन्तरमृतम् अप्सु भेषजम्' ;)0 1, 23, 19द्ध, 'यो वः शिवतमो रसः' ;)0 10, 9, 2द्ध, 'अप्सु मे सोमो अब्रवीद् अन्तर्विश्वानि भेषजा' ;)0 1, 23, 20द्ध इ॒त्यादिना। तथा पृथिव्याम् हे इ॒न्द्र या तव तनूरस्ति पृथिव्यभिमानिदेवतामूर्तिर्विद्यते तयापि तन्वा नः अस्मावंफ शर्म सुखं पृथिवीविकारभूतान्नादिसंभवे यच्छ। एवम् अन्तरग्नौ तेजसि या तव तनूः। 'चत्वारि श्रृ ा त्रयो अस्य पादाः' ;)0 4, 58, 3द्ध इ॒त्याद्युक्तफलक्षणा तया तन्वा मूर्त्यापि न शर्म यच्छ। दाहपाकप्रकाशादिजन्यं सुखं प्रयच्छेत्यर्थः। तथा स्वर्विदि स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भवेफ ज्ञातरि वा पवमाने। पवर्तिगतिकर्मा। सर्वदा अनुपरतगतौ वायौ हे इ॒न्द्र याते इ॒व तनूः मूर्तिरस्ति तयापि नः शर्म यच्छ। बहिरनुवूफलस्पर्शजन्यम् अन्तः प्राणादिवायूनां चिरकालसंचारजन्यं च सुखं प्रयच्छेत्यर्थः। किं च हे इ॒न्द्र यया तन्वा मूर्त्या अन्तरिक्षं व्यापिथ व्याप्तवान् असि तया अन्तरिक्षव्यापिन्या मूर्त्या शर्म सुखम् अन्तरिक्षजन्यं वृष्ट ादिसाध्यं यच्छ। अनेन प भूतव्यतिरेवेफण सुखसाधनवस्त्वन्तराभावात् सर्वविषयं सुखं प्रार्थितं भवति। तथा प महाभूतव्यतिरेवेफण अन्यस्य कस्यचिदपि पदार्थान्तरस्याभावात् तेषु व्याप्त्यभिधानेन इ॒न्द्रशब्दाभिधेयस्य सूर्यस्य भगवतः सर्वात्मकत्वम् उक्तं भवति। अनेनैवाभिप्रायेण 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुष ' ;)0 1, 115, 1द्ध इ॒त्यादिका श्रुतिः सूर्यस्य सर्वात्मकताम् आह। तवेद् इ॒त्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे इ॒न्द्ररूप सूर्यदेव! आप जल में स्थित ओषधि वेफ सारभूत तत्त्वों से हमें सुख प्रदान करें। पृथ्वी और अग्नितत्त्व में जो सुख विद्यमान है, वह हमें प्रदान करें तथा अन्तरिक्ष में संव्याप्त अपने स्वरूप आप हमारा कल्याण करें। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!.....परितृप्त करें॥13॥

संहिता-पाठः

त्वामिद्वन्द्र ब्रह्मद्वणा वद्वर्धयद्वन्तः सयत्रं नि षेद्वदुद्द)षद्वयोय नाधद्वमानायस्तवेद् विद्वष्णो बहुद्वधा वीययर्या{णि।
त्वं नद्वः पृणीहि पयशुभिद्वर्विचश्वरूद्वपैः सुद्दधायां॰ मा धेहि परयमे व्यो{मन्॥14॥

पद-पाठः

त्वाद्वम्। इ॒यन्द्रय। ब्रह्मद्वणा। वयर्धयद्वन्तः। सयत्रम्। नि। सेयदुः।)षद्वयः। नाधद्वमानाः। तवद्व।
इ॒त्। वियष्णोय इ॒तिद्व। बयहुद्द{धा। वीययर्या{णि। त्वम्। नःय। पृद्वणीयहिय। पयशु{भिद्वः। वियश्व{रूद्वपैः। सुद्द{धायाद्वम्। माय। धेयहिय। पयरयमे। वि{ओद्वमन्॥14॥

सा0 भा0: हे इ॒न्द्र सूर्य त्वाम्)षयः पूर्वे अ रः प्रभृतयो नाधमानाः अभिमतं पफलं याचमानाः ब्रह्मणा मन्त्रेण स्तोत्रशस्त्रादिरूपेण अथवा परिवृढेन सोमपश्वादिरूपेण हविषा वर्धयन्तः अभिवृ(वुफर्वन्तः सन्तः सत्रं गवामयनादिरूपं नि षेदुः निषण्णाः निष्पादयितुं नियमेन अवस्थिता आसन्। अन्वतिष्ठन्नित्यर्थः। तवेद् इ॒त्यादि। पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे इ॒न्द्रात्मक सूर्यदेव! अभीष्ट पफल की कामना से युत्तफ प्राचीन षि आपको स्तोत्रों से प्रवृ(करते हुए

सत्र नामक यज्ञ सम्प   करने वेफ लिए अनुशासित होकर बैठते थे। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!.....परितृप्त करें।।14।।

संहिता-पाठः

त्वं तृद्दतं त्वं पर्येचष्युत्सं· स्यह द्दधारं विदथं· स्वर्विदंच तवेद् विद्दष्णो बहुद्दधा वीचर्यार्(णि।
त्वं नद्दः पृणीहि प्फशुभिद्दर्विचश्वरूद्दपैः सुद्दधायां· मा धेहि परस्मे व्यो(मन्।।15।।

पद-पाठः

त्वम्। तृद्दतम्। परिद्द। एचष्चि। उत्सद्दम्। स्यह द्द(धारम्। क्विदथद्दम्। स्वचः(विदद्दम्।
त्वद्द। इत्। क्विष्णोच इतिद्द। बचहुद्द(धा। वीचर्यार्(णि। त्वम्। नचः। पृद्दणीचहि्च। प्फशु(भिद्दः।
क्विश्व(रूद्दपैः। सुद्द(धायाद्दम्। माच। धेचहि्च। प्फरस्चम। वि(ओद्दमन्।15।।

सा0 भा0: हे इन्द्र त्वं तृतं विस्तीर्णम् अंतरिक्षं पर्येषि व्याप्नोषि। अथवा तृतम् आच्छन्नं मेघैरावृतम् उदवंफ पर्येषि। तत्रापि त्वम् उत्सम् उत्स्यन्दते इति उत्सः उदकनिष्यन्दस्तं पर्येषि। उत्सो विशेष्यते-सह धारम् अपरिमिताभिर्धाराभिरूपेतम्। विदथम्। विदथो यज्ञः। ओषधिवनस्पत्यभिवृ(द्वारा यज्ञसाधनत्वाद् उत्सो विदथ इत्युच्यते। अथवा विदथं ज्ञानम्। 'विदथानि प्रचोदयन्' ;) 3, 27, 7द्ध इत्यादिदर्शनात्। सर्वेषां प्रज्ञापयितारम् इत्यर्थः। सत्यां वृष्टौ सर्वेषां पदार्थानाम् अभिव्यक्तेः। तथा स्वर्विदम् स्वर्गस्य सुखस्य वा लम्भयितारम्। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रात्मक सूर्यदेव! आप विस्तृत अन्तरिक्ष में संव्याप्त अनन्त धाराओं से युत्तफ मेघों को प्राप्त होते हैं। ये मेघ ओषधियों वेफ संवर्धक और यज्ञ वेफ साधनभूत होकर यज्ञ की प्रतिमूर्ति हैं। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव!...परितृप्त करें।।15।।

संहिता-पाठः

त्वं रद्दक्षसे प्रचदिशच तद्द चस्त्वं शोचचिषाच नभद्दसीच वि भाद्दसि।
त्वम्चिमा वि च भुक्चनानुद्द तिष्ठस)चतस्यच पन्थाचमन्वेद्दषि क्विद्वांस्तवेद् विद्दष्णो बहुद्दधा वीचर्यार्(णि।
त्वं नद्दः पृणीहि प्फशुभिद्दर्विचश्वरूद्दपैः सुद्दधायां· मा धेहि परस्मे व्यो(मन्।।16।।

पद-पाठः

त्वम्। रचक्षचसेच। प्रच(दिशद्दः। चतद्द   :। त्वम्। शोचचिषाद्द। नभद्दसीच इतिद्द। वि। भ्चासि्च।
त्वम्। इ्चमा। वि द्द। भुवद्दना। अनुद्द। तिचष्ठचसेच।)चतस्यद्द। पन्थाद्दम्। अनुद्द। एचषि्च।
क्विद्वान्। तवद्द। इत्। क्विष्णोच इतिद्द। बचहुद्दधा। वीचर्यार्(णि त्वम्। नःच पृद्दणीचहि्च। प्फशु(भिद्दः। क्वि (रूद्दपैः। सुद्द(धायाद्दम्। धेचहि्च। प्फरस्चमे। वि(ओद्दमन्।।16।।

सा0 भा0: हे सूर्य त्वं प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः प्रागाद्याः चत   : रक्षसे रक्षसि पालयसि। विभजस इत्यर्थः। यत्रोदेति सा प्राची इत्येवं दिग्विभागकल्पनाहेतुत्वाद्। अथवा दिक्षु अवस्थितानां प्राणिनां रक्षैव दिशां रक्षेत्यभिप्रायेण एवमुक्तम्। तथा त्वं शोचिषा रोचिषा प्रकाशेन नभसी अंतरिक्षं दिवं च अथवा द्यावापृथिव्यौ वि भासि प्रकाशयसि। अल्पम् इदम् उच्यते। त्वम् इमा इमानि वि   । विश्वानि भुवना अनु अनुलक्ष्य तिष्टसे प्रकाशसे। समस्तानां लोकानां भूतानां वा एक एव प्रकाशसे। एवम्)तस्य यज्ञस्य उदकस्य वा पन्थाम् पन्थानं मार्गम् अन्वेषि अनुक्रमेण व्याप्नोषि। कीदृशः सन्। विद्वान्)तस्य अवस्थितिं जानन्। न हि कि   त् वंफचित् पदार्थम् अजानन् तम् अन्वेतुम् अर्हति। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप चारों दिशाओं वेफ संरक्षक हैं। आप अपनी तेजस्विता से द्युलोक और पृथ्वी को आलोकित करते हैं और इन सभी लोकों वेफ अनुवूफल होकर प्रतिष्टित होते हैं।   त ;यज्ञ-सत्यद्ध को समझकर उसी मार्ग का अनुसरण करते हैं। हे सर्वव्यापक सूर्यदेव!.....परितृप्त करें।।16।।

संहिता-पाठः

प्फ भिचः पराद्द ् तप्फस्येकद्दयाचर्वा शद्दस्तिमेषि सुद्ददिनेच बाधद्दमानचस्तवेद् विद्दष्णो बहुद्दधा वीच(र्याणि।

त्वं नङ्कः पृणीहि पचशुभिङ्कर्विच रूङ्कपैः सुद्दधाया मा धेहि परस्मे व्यो(मन्।।17।।

पद-पाठः

पच (भिङ्क। पराङ्क ्। तचपचस्यि। एकङ्कया। अचर्वा ्। अशङ्कस्तिम्। एचषि। सुद(दिनेङ्क। बाधङ्कमानः। तवङ्क। इत्। विचष्णोच इतिङ्क। बचहुद(धा। वीचर्या(णि। त्वम्। नचः। पृदणीचहिच। पचशु(भिङ्कः। विच (रूङ्कपैः। सुद(धायाङ्कम्। माच। धेचहिच। पचरस्मे। वि(ओङ्कमन्।।17।।

सा0 भा0: हे सूर्य त्वं प भिः दीधितिभिर्मरीचिभिः परा ् ऊर्ध्वमुखः सन् तपसि प्रकाशयसि उपरितनान् लोकान्। तथा एकया दीधित्या अर्वा ् अधोमुखः सन् तपसि। अन्तरिक्षस्थस्य सूर्यस्य उपरि प्रकाशनं स्वर्महर्जनस्तपः सत्याख्यानां लोकानां प संख्यात्वात् प भिरित्युक्तम्। तथा अन्तरिक्षस्थितस्य सूर्यस्य अधः प्रकाश्यस्य भूलोकस्य एकत्वात् एकयार्वा ् इत्युक्तम्। एवं वुफर्वन् सुदिने शोभनदिवसे नीहारमेघाद्युपद्रवरहिते दिवसे निमित्तभूते सति नाधमानः तदर्थं याच्यमानः सन् अशस्तिम् एकयैवार्वा ् तपसीत्येवंरूपां निन्दाम् एषि प्राप्नोषि। अथवा प भिरंशैः परा ् तपसि एवेफनैवांशेन अर्वा ् तपसि। चक्षुर्गम्यं तेजः एकदेश एव, उपरितनं तेजः निरवधिकम् इत्येवं स्तुतिं प्राप्नोषीत्यर्थः। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप पाँच ;किरणोंद्ध से ऊपर वेफ लोकों को प्रकाशित करते हैं तथा एक ;किरणद्ध से नीचे की ओर प्रकाश पैफलाते हैं। इस प्रकार ;वुफहरे, मेघ आदि से रहितद्ध सुदिन की स्थिति में सभी लोगों द्वारा आप प्रार्थित होते हैं। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!....परितृप्त करें।।17।।

संहिता-पाठः

त्वमिन्द्रचस्त्वं मङ्कहेचन्द्रस्त्वं लोचकस्त्वं प्रचजापङ्कतिः।
तुभ्यं. यचज्ञो वि ताङ्कयतेच तुभ्यं. जुहतिच जुहङ्कतचस्तवेद् विङ्कष्णो बहुद्दधा वीचर्या(णि।
त्वं नङ्कः पृणीहि पचशुभिङ्कर्विचश्वरूङ्कपैः सुद्दधायां. मा धेहि परस्मे व्यो(मन्।।18।।

पद-पाठः

त्वम्। इन्द्रङ्कः। त्वम्। मचहाच(इचन्द्रः। त्वम्। लोचकः। त्वम्। प्रचजा(पङ्कतिः।
तुभ्यङ्कम्। यचज्ञः। वि। तायचतेच। तुभ्यङ्कम्। जुदहृचति। जुहङ्कतः। तवङ्क। इत्। विङ्कष्णोच इतिङ्क। बचहुद(धा। विचर्या(णि।
त्वम्। नःच। पृदणीचहिच। पचशु(भिङ्कः। विच (रूङ्कपैः। सुद(धायाङ्कम्। माच। धेचहिच। पचरस्मे। वि(ओङ्कमन्।।18।।

सा0 भा0: हे सूर्य त्वम् इन्द्रः स्वर्गाधिपति 'सह ाक्षो गोत्रभिद् वज्रबाहुः' ;तै 2, 3, 14, 4द्ध इत्यादिमन्त्रोक्तस्वरूप इन्द्रस्त्वमेव। तथा महेन्द्रस्त्वम् एव, महत्त्वगुणाविशिष्ट इन्द्रोपि त्वमेव। वस्तुतो देवतैक्येपि विशेषणभेदाद् देवताभेदम् इच्छन्ति तान्त्रिकाः। 'यद् अग्नये पवमानाय ऽऽऽ। यद् अग्नये पावकाय ऽऽऽयद् अग्नये शुचये ऽऽऽ ;तैब्रा0 1, 1, 5, 10द्ध इत्यत्र यथा अग्नेरेकत्वेपि पवमानादिगुणभेदेन भेदः एवम् अत्रापि द्रष्टव्यम्। इन्द्रस्य महत्त्वगुणयोगः-'इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महान् अभवत्' ;ऐआ0 1, 1द्ध इत्यादिश्रुतेर्वृत्रवधाद्यसाधारणपराक्रम-जन्यः। तथा त्वम् एव लोकः सुकृतिभिः प्राप्यो लोकः स्वर्गादिलक्षणस्त्वमेव। अथवा परब्रह्मस्वरूपत्वात् सर्वलोकात्मकस्त्वमेव। एवं प्रजापतिः प्रजानां स्रष्टा देवः त्वम् एव। यत एवम् अतः तुभ्यं तव प्रीतये यज्ञो ज्योतिष्टोमादिः वि तायते विस्तार्यते यजमानैः। तथा जुहतः होमं वुफर्वन्तः सर्वेपि तुभ्यं त्वदर्थमेव जुहति होमं वुफर्वन्ति। याज्यापुरोनुवाक्यापुरः सरं हूयमाना यागाः तद्रहिताः होमाः इति तयोर्विवेकः। तवेद् इत्यादि पूर्ववत्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप ही स्वर्गलोक वेफ अधिपति इन्द्र हैं, आप ही पुण्यात्माओं को प्राप्त होने वाले पुण्यलोक हैं। सम्पूर्ण प्रजा वेफ उत्पादक ; ष्टाद्ध आप ही हैं। साधकगण आपवेफ लिए ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ सम्प करते हैं। हे सर्वव्यापक देव!.....परितृप्त करें।।18।।

संहिता-पाठः

असङ्कति सत् प्रतिङ्कष्ठितं सचति भूद्दतं प्रतिङ्कष्ठितम्।
भूद्दतं हच भव्यच आहिङ्कतं भव्यं. भूद्दते प्रतिङ्कष्ठितंच तवेद् विङ्कष्णो बहुद्दधा वीचर्या(णि।
त्वं नङ्कः पृणीहि पचशुभिङ्कर्विच रूङ्कपैः सुद्दधायां. मा धेहि परस्मे व्यो(मन्।।19।।

पद-पाठः

असङ्घति। सत्। प्रतिङ्घ(स्थितम्। स्चाति। भूद्ब्तम्। प्रतिङ्घ(स्थितम्। भूद्ब्तम्। ह्चा। भव्येङ्घ। आ(हिङ्घतम्। भव्यङ्घम्। भूद्ब्तो। प्रतिङ्घ(स्थितम्। तवङ्घ। इ्रत्। विचष्णोच इतिङ्घ। ब्चहुद्(धा। वीचर्या(णि। त्वम्। नचः। पृद्ब्णीचहि। प्चशु(भिङ्घः। विच (रूङ्घपैः। सुद्(धायाङ्घम्। माच। धेचहिच। प्चस्चमे। वि(ओङ्घमन्।।19।।

सा0 भा0: असति। अत्र असच्छब्देन नामरूपादिराहित्यात् असत्प्रायं निरस्तसमस्तो- पाधिवंफ सन्मात्रं ब्रह्म अभिधीयते। यथा दृश्यपदार्था नामरूपादिघटितत्वेन सद्व वहारम् अर्हन्ति एवं नामरूपाद्यभावेन चक्षुराद्यविषयत्वेन द्रष्टुम् अनर्हत्वाद् ब्रह्म असद् इत्युच्यते। सच्छब्देन च असतः प्रप स्य सत्त्वेनावभासकत्वात् स्वयं च तद्रूपेण सत्त्वेनावभासात् अनृतनीहारमायाद्यपरपर्यायम् अज्ञानम् अभिधीयते। यद्यपि वस्तुतः सच्छब्देन ब्रह्म अभिधातव्यं 'सदेव सोम्येदम् अग्र आसीत्' ;छांउ 6, 2, 1द्ध सद्विलक्षणत्वाद् भ्रान्तिबाधयोर्विषयत्वाच्च 'अतोन्यद् आर्तम्' बृआ 3, 5, 1द्ध इति श्रुतेः, तथापि प्रतीत्यनुसारेण एवम् उत्तफम्। तस्मिन्नसति ब्रह्मणि सत् अज्ञानं प्रतिष्ठितम् आश्रितम् अध्यस्तम्। यथा इदमंशे शुक्तौ रजतं रज्ज्वां सर्पधारादि एवं ब्रह्मणि अज्ञानं प्रतिष्ठितम्। सति उक्तलक्षणे अज्ञाने चैतन्यप्रतिबिम्बवति भूतम् भूतकालावच्छिन्नं पृथिव्यादिभूतप वंफ सकलसृष्ट ुपादानभूतं प्रतिष्टिम् तद् आश्रित्य वर्तते। तत उत्पद्यत इत्यर्थः। यद्यपि 'आत्मन आकाशः संभूतः' ;तैआ0 2, 1, 1द्ध इत्यादिश्रुतेर्ब्रह्मतो भूतानाम् उत्पत्तिर्न मायातः, तथापि अविक्रियस्य वेफवलस्य सन्मात्रस्य तस्य अकार्यत्वात् अकारणत्वात् मायात एव तेषाम् उत्पत्तिः। तदधिष्ठानत्वाद् ब्रह्मत उत्पत्त्यभिधानश्रुतिः।

'भ्रमाधिष्ठानतारमाभिः प्रकृतित्वम् उपेयते।'

इति हि स्मरन्ति। अथवा असच्छब्देन सांख्यशास्त्रप्रसि(म् अनु ूतोवाभिभवं गुणत्रयसाम्यावस्थालक्षणं प्रधानम् उच्यते। तस्य विकृतिरूपता(भावात् असच्छब्दव्यवहारः। तस्मिन्नसति सद् उ ूतो वाभिभवम् अन्तःकृदितत्रिभेदं महत्तत्वं प्रतिष्ठितम्। महत्तत्वस्य प्रधानविकारत्वात् सच्छब्देन व्यवहारः। तस्मिन् सति महत्तत्वे भूतम् भूतप वंफ प्रतिष्ठितम्। तच्च भूतम् भूतप वंफ सर्वस्य कार्यप्रप स्य उपादानभूतं भव्ये कार्यजाते आहितम्। अनुगतम्। तच्च भव्यं कार्यजातं भूते स्कारणभूते भूतप वेफ प्रतिष्ठितम् नियतं वर्तते। कारणव्यतिरेवेफण पृथगवस्थानाभावात्। एवमात्मनः प्रप ावस्थानस्य परमेश्वरमहिमायत्तत्वात् तवेद् विष्णो वीर्याणीत्युच्यते। गतम् अन्यत्।

हिन्दी अनुवादः-असत् ;प्राकृतिकद्ध जगत् में सत् ;चेतन तत्वद्ध है और सत् तत्त्व ;चेतन तत्त्वद्ध में उत्प हुआ यह जगत् प्रतिष्ठित है। भूत ;अतीतद्ध समूह भविष्यत् ;आगे होने वाले भूत समूहद्ध में विद्यमान रहता है और भविष्यत् विगत भूत समूह पर आश्रित रहता है। हे विष्णुरूप सूर्यदेव!....परितृप्त करें।।19।।

संहिता-पाठः

शुद्रक्रो(सि भ्राचजो(सि।
स यथाच त्वं भ्राजङ्घता भ्राचजोस्येचवाहं भ्राजङ्घता भ्राज्यासम्।।20।।

पद-पाठः

शुद्रकः। अचस्चि। भ्राचजः। अचस्चि।
सः। यथाङ्घ। त्वम्। भ्राजङ्घता। भ्राचजः। अचस्चि। एचव। अचहम्। भ्राजङ्घता। भ्राचज्याचस्चम्।।

हे सूर्य त्वं शुक्रोसि शुक्रः अतिविशदः स्वच्छः प्रकाशः तद्रूपस्त्वम् असि। यद्वा शुक्रशब्दोत्र धर्मिपरः शुक्रगुणयुक्तोसि। अत्यन्तनिर्मलस्वरूपोसीत्यर्थः। अनेन कलुषलेशेनापि असंस्पृष्टस्वरूपता उक्ता। तथाा भ्राजो(सि भ्राजते दीप्यत इति भ्राजः। पचाद्यच्। दीप्तोसि सकललौकिकप्रकाशवेफन तेजसा युक्त इत्यर्थः। अस्तु विंफ तत इत्यत आह-स यथा त्वम् इति। सूर्य स तादृशस्त्वं यथा भ्राजता सकललोकप्रकाशवेफन तेजोमयेन रूपेण भ्राजोसि भ्राजनस्वभावो भवसि 'विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृशे' ;0 10, 170, 3द्ध इति मन्त्रान्तरम्। एव एवम् अहम् उक्तस्वरूपोपासकः भ्राजता दीप्तेन रूपेण शरीरकान्त्या भ्राज्यासम् दीप्तो भूयासम्। तेजोगुणकस्य सूर्यस्य उपासनया उपासकस्यापि तेजोगुणयुक्तत्वं युक्तमेव।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप तेजस्वी होकर देदीप्यमान रहते हैं। हे देव! जिस प्रकार आप सम्पूर्ण वि को अपनी तेजस्विता से प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार हम ;उपासकद्ध भी तेजोमय प्रकाश को प्राप्त करें।।20।।

संहिता-पाठः

रुचिङ्करसि रोचचो(सि।
स यथाच त्वं रुव्याङ्क रोचचोस्येचवाहं फ्चशुभिङ्क ब्राह्मणवर्चचसेनङ्क न रुचिषीय।।21।।

पद-पाठः

रुचिङ्क। अचसिच। रोचचः। अचसिच।
सः। यथाङ्क। त्वम्। रुव्याङ्क। रोचचः। असिङ्क। एचव। अचहम्। फ्चशु(भिङ्कः। चच। ब्राचह्मचणच(क्चर्चचसेचनङ्क। चच। रुचचिचषीचयच।।21।

सा0 भा0: हे सूर्य त्वं रुचिरसि रुचिर्दीप्तिस्तद्रूपस्त्वम् असि। यद्वा रुचिशब्देन रुचिमान् अभिधयते। प्रकृष्टरुचिरसि। तथा रोचोसि रोचयति दीपयतीति रोचः। तादृशस्त्वम् असि। अत्र रुचिरसीत्यनेन दीप्तिमत्त्वमात्रम् उत्तफम्। रोचोसीत्यनेन तु सकललोक- दीपकत्वम् इति विवेकः। इत्थं स्वापेक्षितगुणविशिष्टत्वेन स्तुत्वा स्वाभिमतम् आशास्ते-स यथा त्वम् इति। स तादृशस्त्वं रुच्या विश्वप्रकाशिकया दीप्त्या रोचोसि रोचको भवसि। पचाद्यच्। एव एवं भवानिव अहम् अपि पशुभिश्च। चशब्दो वक्ष्यमाणब्रह्मवर्चसेन समुच्चयार्थः। पशवो गोमहिषा दयः तै ब्राह्मणवर्चसेन च। अत्र चशब्दः पशुभिः समुच्चयार्थः। ब्राह्मणानाम् उचितं श्रुताध्ययनतपआदिजन्यं तेजः ब्राह्मणवर्चसम्। उभाभ्यां रुचिषीय दीप्तो भवेयम्। यथा ब्रह्मवर्चसलक्षणेन तेजसा दीप्यते लोवेफ एवं बहुभिः पश्वादिधनैरपि आढ : सन् दीप्यते इति पशूनां दीप्तिसाधनत्वाभिधानम्। लोवेफ धनाढ : प्रकाशत इति प्रसि(मेव। अत्र ’ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः ;पा0 5, 4, 78द्ध इति विहितः समासान्तः अच्प्रत्ययो ब्राह्मणशब्दात् परस्यापि वर्चसो भवति। ब्राह्मणवर्चसेन रुचिषीयेति ब्रह्मवर्चसप्रार्थनालि ात् माणवकस्य ब्रह्मवर्चसापेक्षत्वाद् उपनयनकर्मणि तस्य नाभिदेशं संस्पृश्य जपेत्। तस्मिन्नेव कर्मणि माणवकाभिमन्त्रेण च अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्त इति। मन्तव्यम्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप दीप्तिरूप और देदीप्यमान रहने वाले हैं। जिस प्रकार आप वि की प्रकाशक दीप्ति से देदीप्यमान हैं, उसी प्रकार हम भी गौ, अ ादि पशुओं और ब्रह्मतेजस् से प्रकाशमान रहें।।21।।

संहिता-पाठः

उ्चघचते नमङ्क उदाय्चते नम्च उदिङ्कताय्च नमङ्कः।
वि्चराजेच नमङ्कः स्व्चराजेच नमङ्कः सचम्राजेच नमङ्कः।।22।।

पद-पाठः

उ्चत्(य्चते। नङ्कः। उ्चत्(आचय्चते। नमङ्कः। उत्(इङ्कताय। नमङ्कः।
वि्च(राजेङ्क। नमङ्कः। स्व्च(राजेङ्क। नमङ्कः। सचम्(राजेङ्क। नमङ्कः।।22।

सा0 भा0: हे सूर्य उद्यते उदयैकदेशं गच्छते तुभ्यं नमः नमस्कारो(स्तु। तथा उदायते ऊर्ध्वम् ईषद्गच्छते। अर्धोदितायेत्यर्थः। तादृशाय तस्मै नमः। एवम् उदिताय ऊर्ध्वं सम्यक् प्राप्ताय संपूर्णोदयाय नमः। अत्र उद्यते उदायते इत्युभयत्र उत्पूर्वात् उदा ्पूर्वाच्च इण् गतौ इत्यस्माल्लटः शत्रादेशे ’इणो यण्‘ ;पा0 6, 4, 81द्ध इति यण् आदेशः। अथ यथोक्तावस्थात्रयनिबन्धनास्ति ो मूर्तीः पृथक् पृथग् नमस्करोति विराजे नम इत्यादिना। उद्यते विराजे नमः विविधं राजत इति विराट् तस्मै एकदेशोदिताय विराडात्मकाय नमः। स्वराजे नमः स्वयं राजत इति स्वराट् स्वाधीनप्रकाशाय उदायदवस्थाय अर्धोदिताय स्वराण्मूर्तये नमः। सम्राजे नमः सम्यक् अतिशयेन राजमानाय उदितावस्थाय नमः। अथवा अवस्थानम् अन्तरेणैव विराट्स्वराट्सम्राजः परमेश्वरस्य सोपाधिकास्ति ो मूर्तयः। तासु विराड् नाम परमेश्वरस्य यत् सकललोकात्मवंफ स्थूलशरीरं तदभिमानी फुरुषशब्दवाच्यो देवः। तथा स्मर्यते-

’भूतैर्यदा प भिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरच य तस्मिन्‘।
स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानम् अवाप नारायण आदिदेवः।।‘

;भापु0 11, 4, 3द्ध

’विराजम् असृजत् प्रभुः *;मस्मृ0 1, 32द्ध।*‘ **इति च।**

स्वराड् नाम भूतपञ्चकसारात्मवंफ परमेश्वरस्य सर्वसमष्टिरूपं यत् सूक्ष्मशरीरं तदभिमानी ’स ब्रह्मा। स शिवः। स हरिः। सेन्द्रः। सोक्षरः परमः स्वराट्‘ ;तैआ0 10, 11, 2द्ध इत्यादिश्रुत्युक्तो हिरण्यगर्भः। सम्राड् नाम परमेश्वरः कारणशरीराभिमानी सकलभूतभौतिकप्रपञ्च ष्टा

मायोपाधिक ईश्वरः। 'ब्रह्म प्रपद्ये। ब्रह्मकोशं प्रपद्ये' ;तैआ0 2, 19, 1द्ध, 'य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते' ;छांउ 1, 6, 6द्ध, 'हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषा ज्योतिः' ;मुंउ0 2, 2, 9द्ध इत्यादिश्रुतेः सूर्यमण्डलाभिमानिनो देवस्य परमेश्वरत्वाद् विराडादयः सूर्यात्मिकस्य देवस्य मूर्तय एव। अतस्ताभ्यः पृथक्पृथग् नमस्करोति। यद्वा विराट्स्वराट्सम्राजः अग्निवा यादित्याख्याः परमेश्वरस्य ति ो मूर्तयः ताभ्यः पृथक् पृथग् नमस्कारं करोति।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! उदीयमान को नमस्कार है, ऊपर उठने वाले को नमस्कार है, उदय हो चुकने वाले को नमस्कार है, विशेष दीप्तिमान् को नमन है, स्वकीय तेजस्विता से जाज्वल्यमान को नमन है तथा उत्कृष्टरूप से प्रकाशमान को हमारा वन्दन है।।22।।

संहिता-पाठः

अचस्तंचयच्चते नमोद्व(स्तमेष्यच्चते नमो(स्तद्बमिताय्च नमद्बः।
क्चिराजेच नमद्बः स्क्चराजेच नमद्बः सच्मप्राजेच नमद्बः।।23।।

पद-पाठः

अचस्त्चम्(यच्चते। नमद्बः। अचस्त्चम्(एचष्यच्चते। नमद्बः। अस्तद्बम्(इताय। नमद्बः।
क्चि(राजेद्ब। नमद्बः। स्क्च(राजेद्ब। नमद्बः। सच्म्(राजेद्ब। नमद्बः।।23।।

सा0 भा0: अस्तंयते अस्तम् अस्ताचलं गच्छते। ईषदस्तमितायेत्यर्थः। नमः एवम् अस्तमेष्यते गमिष्यते अर्धमस्तमिताय नमः। अस्तमिताय अस्तं संपूर्णं प्राप्ताय नमः। विराजे नमः इत्याद्याः पूर्ववद् व्याख्येयाः। अस्तं गच्छतोपि सूर्यस्य उक्तलक्षणावस्थात्रयनिबन्धना विराडादिसंज्ञाः सन्ति। अस्तंयदवस्थायां विंफचिद्नकृत्स्नप्रकाशसंभवाद् विराड् भवति। अर्धमस्तमितस्यापि अर्धोदितवत् स्वराट्त्वम् अस्त्येव। अस्तमितस्यापि 'अग्निं वावादित्यः सायं प्रविशति। तस्माद् अग्निर्दूरा क्तं ददृशे। उभे हि तेजसी संपद्येते' ;तैब्रा0 2, 1, 2, 9द्ध इति श्रुतेः अग्न्यात्मनावस्थानात् सम्राट्त्वं न हीयते। अथवा सर्वदा मेरुं परिभ्रमतः सूर्यस्य स्वत उदयास्तमयाभावाद् अस्मदादिदर्शनतिरोधानतारतम्याद् उदयास्तमयाव्यपदेशः। अतः उदयास्तमययोर्द्वैविध्येन विराडादिमूर्तयः उपासनार्थं शास्त्रे निर्दिष्टाः। मध्यन्दिनस्यापि उदितावस्थायाम् अन्तर्भावात् उक्तलि ेन माणवकस्य आयुरभिवृ(र्थं त्रिकालम् आदित्योपस्थाने अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्तः।

हिन्दी अनुवादः-अस्त होने की स्थिति वाले, अ(स्ति हो चुकने वाले और सम्पूर्णरूप से अस्त हो चुकने वाले आदित्य को नमन है। विशेष तेजवान्, श्रेष्ठ प्रकाशमान तथा स्वकीय तेजस्विता से प्रकाशित होने वाले सूर्यदेव वेफ निमित्त हमारा वन्दन है।।23।।

संहिता-पाठः

उदद्बगाद्चयमाद्बद्चित्यो विश्वेद्बन्च तपद्बसा सचह।
सचपत्नाचन् मद्यद्ब स्चन्धयचन् मा चाचहं द्विद्बष्चते रद्बधंच तवेद् विद्बष्णो बहुद्दधा वीचर्या(णि।
त्वं नद्बः पृणीहि पचशुभिद्बर्विच रुद्बपैः सुद्दधायां. मा धेहि पच्रमे व्यो(मन्।।24।।

पद-पाठः

उत्। अचगाचत्। अचयम्। आचद्चित्यः। विश्वेद्बन्। तपद्बसा। सचह। सच(पत्नाद्बन्। मद्यद्बम्।
स्चन्धयद्बन्। मा। चच। अचहम्। द्विचषच्चते। स्चधच्चम्। तवद्ब। इत्। विचष्णोच इतिद्ब। बचहुद्द(धा।
वीचर्या(णि। त्वम्। नद्बः। पृद्दणीचहेच। पचशु(भिद्बः। विच (रुद्बपैः। सुद्द(धायाद्बम्। माच। धेचहिच। पचरमे। वि(ओद्बमन्।।24।।

सा0 भा0: अयं सर्वैः परिदृश्यमान आदित्यः उदगात् उदितवान्। कीदृशः सन्। विश्वेन कृत्स्नेन तपसा सकललोकसंतापवेफन रश्मिनिचयेन सह। अप्रतिब(म् उदयतः सूर्यस्य रश्मीनां राक्षसादिकृतन्यूनताकरणाभावाद् विश्वेनेति विशेषितम्। उद्यन्तम् आदित्यम् उपतिष्ठमान आह-मह्यं मदर्थे सपत्नाान् शत्रून् रन्धयन् वशं प्रापयन्। उदयन्नेव सपत्नान् मम वशं गमयत्वित्यर्थः। अहं च द्विषते अप्रियं वुफर्वते द्वेष्ट्रे मा रधम् तस्य वशो मा भूवम्। हे सूर्य उदयतस्तवानुग्रहाद् इति शेषः। तवेद् विष्णो बहुधा इत्यादेर्मन्त्रशेषस्य व्याख्या पूर्ववद् द्रष्टव्या।

हिन्दी अनुवादः-अपने किरण समूह से सम्पूर्ण लोकों को भली प्रकार प्रकाशित करते हुए सूर्यदेव, हमारे आधि-व्याधि रूप शत्रुओं ;विकारोंद्ध को दूर करते हुए उदित हो गये हैं। हे सूर्यदेव! आपकी कृपादृष्टि से हम दुष्ट-विकारों वेफ वशीभूत न हो सर्वेफ।

हे व्यापक सूर्यदेव! आपवेफ अनन्त पराक्रम हैं, आप हमें विभि आकारों से युत्तफ पशुओं से परिपूर्ण करें। देहत्याग वेफ प ात् हमें परम व्योम में अधिष्ठित करें और अमृतरस से तृप्त करें।।25।।

संहिता-पाठः

> **आदिङ्घत्यच नाव्चमारुङ्घक्षः शचतारिङ्घत्रां स्वचस्तयेङ्घ।**
> **अहचर्मात्यङ्घपीपरोच रात्रिङ्घ सचत्रातिङ्घ पारय।।2S।।**

पद-पाठः

> आदिङ्घत्य। नावङ्घम्। आ। अचरूच्चक्षच। शचत(अङ्घरित्राम्। स्वचस्तयेङ्घ।
> अहङ्घः। माच। अतिङ्घ। अचपीचपच्चरःच। रात्रिङ्घम्। सचत्रा। अतिङ्घ। पाचरूचयच।।2S।

सा0 भा0: हे आदित्य त्वं नावम् स्थलक्षणाम् आरुक्षः आरूढोसि आकाशाख्यस्य समुद्रस्य तरणाय। नौर्विशेष्यते-शतारित्राम् उदकाकर्षणसाधनानि काष्ठानि। अरित्राणीत्युच्यन्ते। अनेवैफर्नौगतिसाधनैरुपेताम्। अत्र ग्रहमण्डलाकर्षका वायव एव अरित्राणि। आरोहणप्रयोजनाम् आह-स्वस्तये सर्वेषां प्राणिनां क्षेमाय। अथ स्वाभिमतम् आशास्ते-एवंरूपां नावम् आरूढस्त्वं मा माम् अहत्यरपीनरः अत्यपारयः। आध्यात्मिकाधिदैविकाभौतिकलक्षणत्रिविधापायपरिहारेण अ : पारं प्रापितवान् असि। एवमेव रात्रिमपि सत्रा सहैव अ । सह मध्ये व्यवधानम् अकृत्वा माम् अति पारय रात्रेः पारं गमय। अहोरात्रयोः संधौ मरणादिभयशङ्कया आह-सत्रेति। अनेन ज्वरशिरोव्यथादिपरिहारेण आयुरभिवृ(ः प्रार्थिता भवति। अथवा एवं व्याख्येयम्-हे आदित्य नावम् त्वामेव नौरूपम् आरुक्षः आरुक्षम् आरोहम् आरूढ त्वया अ : पारं प्रापितः अस्मीति। यथा नौः स्वस्मिन्नधिष्ठितं यथाभिमतदेशं गमयति एवं नयसीति त्वं नौः। आरुहेर्लुङि 'शल इगुपधाद् अनिटः क्सः' ;पा 3, 1, 45द्ध इति क्सः। तस्मिन् पक्षे शतारित्राम् इति शतशब्दः अपरिमितवचनः। अपरिमितरश्मिरूपारित्रोपेताम् इत्यर्थः। किमर्थम् आरोहणम् इति। स्वस्तये क्षेमाय सर्वोपद्रवराहित्येन चिरकालजीवनाय। स्वस्तिशब्दार्थं विशिनष्टि अहर्मात्यपीपर इत्यादिना। अहनि रात्रो च सुखेन अवस्थानमेव क्षेमः। अपीपर इति। पारयतेर्लुङि चङि रूपम्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप हमारे कल्याण वेफ निमित्त सैकड़ों अरित्रों ;डाँडोंद्ध से युत्तफ नाव पर आरोहण करें। आप दिन में और रात्रि वेफ समय भी हमारे साथ रहकर हमें पार करें।।2S।।

संहिता-पाठः

> **सूर्यच नाव्चमारुङ्घक्षः शचतारिङ्घत्रां स्वचस्तयेङ्घ।**
> **रात्रिंच मात्यङ्घपीपचरो(हङ्घः सचत्रातिङ्घ पराय।।26।।**

पद-पाठः

> सूर्य.। नावङ्घम्। आ। अचरूच्चक्षःच। शचत(अङ्घरित्राम्। स्वचस्तयेङ्घ।
> रात्रिङ्घम्। माच। अतिङ्घ। अचपीचपच्चरःच। अहङ्घः। सचत्रा। अतिङ्घ। पाचरूचयच।।26।।

सा0 भा0: पूर्ववदेव व्याख्या। अहरित्यस्य स्थाने रात्रिम् इति, रात्रिम् इत्यस्य स्थाने अहरिति व्यत्ययमात्रं विशेषः। पूर्वमन्त्रे अहनि सूर्यानुग्रहेण सुखेन जीवनं सि(वत्कृत्य रात्रौ तद्विषये संदिहानो रात्रिं सत्राति पारयेति प्रार्थितवान्। अस्मिंस्तु मन्त्रे रात्रौ सूर्यानुग्रहेण रात्रेः पारं प्राप्य प्रबु(ः सन् आह-हे सूर्य रात्रि मा अत्यपीपरः मां रात्रिपारं प्रापितवान् असि। एवमेव अहः अहरपि सत्रा रात्र्या सह तयोर्मध्ये व्यधानराहित्येन अति पारय। एवं मन्त्रद्वयेन विदद्वयेपि सांतत्येन सुखेन जीवनं प्रार्थितं भवति। एवं प्रतिदिनं त्रिषु कालेषु अनेनानुवावेफन सूर्योपस्थानं वुफर्वतो माणवकादेः शतसंवत्सरलक्षणं दीर्घम् आयुर्भवति। अतः एवमादिलि ाद् आयुष्कामस्य कालत्रये सूर्योपस्थाने अस्यानुवाकस्य विनियोग उक्तः। आदित्यसूर्ययोः पर्यायत्वं गमयितुम् उत्तरमन्त्रे सूर्य नावम् इति निर्दिष्टम्।

हिन्दी अनुवादः-हे सूर्यदेव! आप ;आपका सागर से पार जाने वेफ लिएद्ध वि वेफ मंगलार्थ ;वायुरूपीद्ध सैकड़ों पतवारों वेफ साथ ;रथरूपीद्ध नाव पर आरूढ़ हुए हैं। आपने हमें सवुफशल रात्रि वेफ पार पहुँचा दिया है, इसी प्रकार आप हमें दिन वेफ भी पार उतारें।।26।।

संहिता-पाठः

प्रचजापङ्कतेचरावृङ्कतोच ब्रह्मङ्कणाच वर्म.णाचहं क्चश्यपङ्कस्यच ज्योतिङ्कषाच वर्च.सा च।
जचरदङ्कष्टिः कृदतवीङ्कर्योच विहाङ्कयाः सचह ङ्कयुदः सुकृङ्कत रेयम्।।27।।

पद-पाठः

प्रचजा(पङ्कतेः। आ(वृङ्कतः। ब्रह्मङ्कणा। वर्म.णा। अचहम्। क्चश्यपङ्कस्य। ज्योतिङ्कषा। वर्च.सा। चच।
जचरत्(अङ्कष्टिः। कृदत्(वीङ्कर्यः। वि(हाङ्कयाः। स्चह ङ्क(आयुः। सु(कृङ्कतः। चचरेचयचम्।।27।।

सा0 भा0: प्रजापतेः प्रकाशवृष्ट ादिना प्रजानां पालनात् प्रजापतिः आदित्यः। अथवा संवत्सरकालनिर्वाहकत्वात् तस्य च प्रजापतिरूपत्वात् सूर्यः प्रजापतिः। तस्य ब्रह्मणा परिवृढेन रूपेण। कीदृशेन। वर्मणा। धर्म तनुत्रम् तद्रूपेण सूर्यस्य तेजोमयेन स्वरूपेण आवृतः वेष्टितः। अथवा प्रजापतिः प्रजानां ष्टा हिरण्यगर्भः। 'स त्रेधात्मानं व्युवुफरुत। अग्निं तृतीय वायुं तृतीयम् आदित्यं तृतीयम्' ;बृआ0 1, 2, 3द्ध इति श्रुत्या प्रजापतेर्मूर्त्यन्तरभूत आदित्यः। स एव ब्रह्म 'असावादित्यो ब्रह्म' ;तैआ0 2, 2, 2द्ध इति श्रुति। तदेव ब्रह्म स्वोपासकस्य वर्मवद् आच्छाद- कत्वाद् वर्म इत्युच्यते। तेन आवृतो वेष्टितो(हम्। अथवा प्रजापतेः आदित्यस्य ब्रह्मणा मन्त्रमयेन वर्मणा। तत्स्वरूपतिरूपकत्वेन संबन्धाद् ब्रह्मणो मन्त्रस्य तदीयत्वम्। तेन परिवृतः। रक्षित इत्यर्थः। विंफच कश्यपस्य। 'कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यति' ;तैआ0 1, 8, 8द्ध इति श्रुतेः कश्यपः सूर्यस्य मूर्त्यन्तरभूतः। तथा च श्रुत्यन्तरम्-'आरोगो भ्राजः पटरः पत स्वर्णरो ज्योतिषीमान् विभासः। ते अस्मै सर्वे दिवम् आतपन्ति। ते सर्वे कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते' ;तैआ01, 7, 2द्ध इति , 'कश्यपो(ष्टमः। स महामेरुं जहाति' ;तैआ0 1, 7, 1 द्ध इति च। तादृशस्य कश्यपस्य प्रकाशमयस्य ज्योतिषा। द्योतत इति ज्योतिः। तेन प्रकाशेन। द्युत दीप्तौ इत्यस्माद् 'द्युतेरिसिन् आदे जः' ;पाउ0 2, 110द्ध इति इसिन् आदेर्जभाव । तथा तस्य वर्चसा च ज्योतिरित्यस्य व्याख्यानम् वर्चसेति। वर्चः तमस आवर्जवंफ तेजः। वर्च दीप्तौ इति धातुः। चकारो ब्रह्मणा सह समुच्चयार्थः। अथवा ज्योतिः स्वरूपप्रकाशः। वर्चो रश्मिप्रकाशः। चशब्दो ज्योतिषा समुच्चयार्थः। ज्योतिषा आवृतो वर्चसा च आवृतो(हम् इत्यर्थः। तथा च तैत्तिरीयकम्-'परीवृतो वरीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं तेजसा कश्यपस्य' ;तैआ0 2, 19, 1द्ध इति। अथवा एवं व्याख्येयम्-कश्यपाद् उदिताः सूर्याः 'कश्यपाज्ज्योतिर्लभन्ते' ;तैआ0 17, 2द्ध इत्यादि श्रुतेः। कश्यपः इतरेषां सूर्याणां मुख्यः। स एवात्र प्रजापतिशब्देनोच्यते। तस्य ब्रह्मणा वर्मणा आवृतः इत्यस्य व्याख्यानं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा चेति। अस्मिन् पक्षेपि चशब्दः अस्य ज्योतिषा सह समुच्चयार्थः। बाह्यापायपरिहाराय वर्मणा आवरणम् आशास्य अथ भोगम् आशास्ते जरदष्टिरित्यादिना। जरदष्टिः। जरत् इति। जीर्यतेर्भूतकालवच्छिन्नेर्थे अतृन्। जीनः सन्नपि अष्टिः अशनं भोजनं यस्य स जरदष्टिः। अनेन अरोगदृढगात्रः सन् बहुविधान् भोगां स्कालं भुञ्जानो भवेयम् इति प्रार्थना कृता भवति। तथा शतवीर्यः अपरिमितैः वीर्यैः शारीरैर्बलैर्युक्तः अनेकपुत्राद्युत्पादनसामर्थ्योपेतौ वा। विहायाः विविधगमनः। सर्वत्र अप्रतिब(- गतिरित्यर्थः। ओहा गतौ। 'वहिहाधाञ्भ्यश्छन्दसि' ;पाउ0 4, 221द्ध इति असुन्। तत्र णिदित्यनुवृत्तेर्णिद्ध ा- वाद् 'आतो युक्' ;पा 7, 3, 33द्ध इति युगागमः। तथा सह ायुः अपरिमियायुष्यः। सुकृत सुष्टु संस्कृतः सर्वसंपूर्णः सन्। अथवा लौकिवंफ वैदिवंफ च यत् कर्तव्यजातम् अस्ति तद् येन सुष्टु कृतं स सुकृतः। कृतकृत्य इत्यर्थः। तादृशः सन्। यद्वा सुकृतः सुकृतवान् सुकृतं धर्मस्तद्वान् चरेयम् सर्वत्र पृथिव्यां गच्छेयम्। एतत् सर्वम् हे सूर्य तवानुग्रहात् संपादयामिति आशास्ते।

हिन्दी अनुवादः-प्रजापतिरूप सूर्य वेफ ज्ञानरूप कवच से आच्छादित होते हुए हम कश्यप ;सर्वदर्शकद्ध वेफ तेज और शक्तिफ से युक्तफ होकर वृ(ावस्था पर्यन्त नीरोग रहकर सुदृढ़ अंग-अवयवों से युक्तफ रहते हुए चिरकाल तक विभि भोगों का उपभोग करें। हमारी गति कहीं अवरु(न हो। हम दीघायु पाकर लौकिक और वैदिक सम्पूर्ण क्रियाकलापों को भली प्रकार सम्प करवेफ स्वयं को धन्य बनाएँ हे सूर्यदेव! हम आपवेफ कृपापात्र रहें।।27।।

संहिता-पाठः

परीङ्कवृतोच ब्रह्मङ्कणाच वर्म.णाचहं क्चश्यपङ्कस्यच ज्योतिङ्कषाच वर्च.सा च।
मा माच प्रापर्च षङ्कवोच दैव्याच या मा मानुङ्कषीचरवङ्कसृष्टा क्चधायङ्क।।28।।

पद-पाठः

परिङ्क(वृतः। ब्रह्मङ्कणा। वर्म.णा। अचहम्। क्चश्यपङ्कस्य। ज्योतिङ्कषा। वर्च.सा। चच। मा। माच।
प्र। आचपचन्। इषङ्कवः। दैव्याचः। याः। मा। मानुङ्कषीः। अवङ्क(सृष्टाः। क्चधायङ्क।।28।।

सा0 भा0: परीवृतः इत्यादि वर्चसा च इत्यन्तं पूर्ववद् व्याख्येयम्। यतो(हं ब्रह्मणां वर्मणा ज्योतिषा वर्चसा च परीवृतः अतो दैव्याः वेदप्रेरिताः। 'देवाद् यञञौ' ;पावा 4, 1, 85द्ध इति प्राग्दीव्यतीयो यञ्प्रत्ययः। या इषवः बाणाः सन्ति ता मा मां मा प्रापन्। इषवो

विशेष्यन्ते-बधाय मम हननाय अवसृष्टाः प्रेरिताः मा प्रापन्। मा प्राप्नुयुः। एवं मानुषीः मानुष्यः मनुष्यैर्वधाय प्रेषिता अपि इषवो मां मा प्रापन्।

हिन्दी अनुवादः-हम कश्यप ;द्रष्टाद्ध आदित्यदेव वेफ मन्त्ररूप कवच, उनवेफ तेज और रश्मि प्रकाश से संरक्षित रहें। अतएव हमारे संहारार्थ देवों और मनुष्यों द्वारा भेजे गये बाण ;आयुधद्ध हमें प्रभावित न करें ;अर्थात् हमारे संहार में समर्थ न होंद्ध।।28।।

संहिता-पाठः

> **)चतेनद्ब गुद्दप्त)चतुभिद्ब च सर्वैर्भूद्दतेनद्ब गुद्दप्तो भव्येद्बन चाचहम्।**
> **मा माच प्रापद्बत् पाचप्मा मोत मृद्दत्युरचन्तुर्दचधेचहं सद्बलिचलेनद्ब वाचचः।।29।।**

पद-पाठः

>)चतेनद्ब। गुद्दप्तः।)चतु(भिद्बः। चच। सर्वैः। भूद्दतेनद्ब। गुद्दप्तः। भव्येद्बन। चच। अचहम्। मा। माच। प्र।
> आचपच्चत्। पाचप्मा। मा। उचत। मृद्दत्युः। अचन्तः। दचधेच। अचहम्। सचलिचलेनद्ब। वाचचः।।29।

सा0 भा0: अहम्)तेन।)तम् यथार्थम्। सत्यम् इत्यर्थः। तेन गुप्तः रक्षितः। अथ वा)तं ब्रह्म आदित्याख्यम् तेन गुप्तः। तथा सर्वैः)तुभिः वसन्ताद्यै गुप्तौ रक्षितः। तथा भूतेन पूर्वकालम् उत्पन्नेन पदार्थजातेन गुप्तः। एवं भव्येन उत्पत्स्यमानेन च पदार्थजातेन गुप्तो रक्षितः। यत एवम् अतो हेतोः पाप्मा पापं नरकहेतुभूतं मा मां मा प्रापत् मा प्राप्नुयात्। उत अपि च मृत्युः मरणकर्ता देवोपि मा प्रापत्। अहं तु वाचो मन्त्रात्मिकायाः सलिलेन उदवेफन रक्षाकामः अन्तर्दधे अन्तर्धानं करोमि। यथा लोवेफ सलिलेनान्तर्हितः प्राणी न वेफनापि दृश्यते एवम् अहं मन्त्रमयेन सलिलेन पापादि बाधराहित्याय आत्मानं गोपयामीत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हम सत्यनिष्ठा से वसन्तादि तुओं से तथा पूर्वकाल और भविष्यत्काल में उत्प होने वाले समस्त पदार्थों से संरक्षित रहें। नरक का निमित्त कारण पाप कर्म और मृत्यु हमें प्राप्त न हो। हम मन्त्ररूपी वाणी से स्वयं को रक्षित ;परिष्कृतद्ध करते हैं।।29।।

संहिता-पाठः

> **अचग्निर्मा॰ गोचप्ता परिद्ब पाचतु विच तद्ब उचद्यन्त्सूर्यो॰ नुदतां मृत्युपाचशान्।**
> **व्युद्दच्छन्तीद्बरुचषचसः॑च पर्व॰ता धुद्दवाः सचह ॑॰ प्राचणा म या यद्बतन्ताम्।।30।।**

पद-पाठः

> अचग्निः। माच। गोचप्ता। परिद्ब। पाचतुद्द। विच तद्बः। उचत्(यन्। सूर्य॰ः। नुद्दच्चताचम् मृद्दत्युद्द(पाशान्।
> विच(उचच्छन्तीद्बः। उचषच्चसद्बः। पर्व॰ताः। धुद्दवाः। सचह द्बम्। प्राचणाः। मयिद्ब। आ। यचतचन्ताचम्।।30।।

सा0 भा0: अग्निः अ नादिविशिष्टो देवो गोप्ता स्वाश्रितरक्षकः अथवा मम भयेभ्यो गोप्ता सन् विश्वतः सर्वतः यतोयतो भयं भवति तेभ्यः सर्वेभ्योपि मा परि पातु परितो रक्षतु। तथा सूर्यो देवः उद्यन् उदयसमय एव मृत्युपाशान् मृत्योर्मारकस्य देवस्य ये पाशाः सर्पाग्निव्याघ्रकण्टकादिरूपा विततः सन्ति तान् सर्वान् नुदताम् अपसारयतु। यथा ते मां न स्पृशन्ति तथा करोतु। अत्र उद्यन्त्सूर्यो नुदताम् इत्यभिधानात् अग्निर्मा गोप्ता परि पात्विति अग्निविषयपरिपालनप्रार्थना उदयात्पूर्वकालीनरात्रिविषया वेदितव्या। तथा व्युच्छन्तीः व्युच्छन्त्यः। उछी विवासे। विवासे वर्जनम्। नैशस्य तमसो निवारयित्र्य उषसः उषोदेवेता उदयात्पूर्व- कालाभिमानिन्यः। दिवसानां बाहुल्यम् अपेक्ष्य उषस इति बहुवचननिर्देशः। तथा ध्रुवाः निश्चलाः स्थिराः पर्वताः पर्ववन्तः शैला हिमवदादय । मृत्युपाशान् नुदन्ताम् इति योज्यम्। माम् अनुगृह्णन्त्विति वा शेषो(ध्याहर्तव्यः। तेषाम् अग्न्यादीनाम् अनुग्रहात् सह प्राणाः। सह म् इति अपरिमितनाम। प्राणस्य व्यापारभेदेन आनन्त्याद् अपरिमित्वम्। ते मयि आयुष्कामे आ सर्वतो यतन्ताम् चेष्टां वुफर्वन्तु। अथवा प्राणसंवादश्रुतिषु इन्द्रियाणामपि प्राणशब्दव्यवहार्यत्वश्रवणात् 'सप्त प्राणाः प्रभवन्ति' ;तैआ0 10, 10, 1द्ध, 'नव वै प्राणा नाभिर्दशमी' ;तैब्रा0 1, 3, 7, 5द्ध इत्यादौ च चक्षुरादीन्द्रियाणामपि प्राणशब्दव्यवहारात् तेषामपि स्थैर्यस्य मुख्यप्राणवदेव आशास्यत्वात् तद्ध ापारबाहुल्यमपि अपेक्ष्य सह प्राणा म या यतन्ताम् इत्युक्तम्।

हिन्दी अनुवादः-संरक्षक अग्निदेव सभी ओर से हमारी सुरक्षा करें, सूर्यदेव उदित होते समय मृत्यु वेफ रूप में विस्तृत सर्प,

अग्निदेव, व्याघ्र आदि वेफ बन्धनों से मुत्तफ करें। प्रकाशयुत्तफ उषःकाल और स्थिर पर्वत मृत्यु वेफ बन्धनों का निवारण करें। प्राणशत्तिफ विभि प्रकार वेफ क्रियाकलापों में सचेष्ट होता हुआ हमारी आयुष्य वृ(में संलग्न रहे, इन्द्रिय शत्तिफयाँ भी सतत हममें चेष्टाशील रहें।।30।।

17. रात्रिसूक्तम् ;19.50द्ध

)षि-गोपथ। **देवता**-रात्रि। **छन्द**-अनुष्टुप्।

'अध रात्रि तृष्टधूमम्' इति सूक्तस्य रात्रीकल्पे रात्र्युपस्थाने जपे च विनियोगः पूर्वसूक्तेन सह उक्तः।

संहिता-पाठः

अधङ्घ रात्रि तृदृष्टधूङ्घममशीर्चषार्णचमहिं. कृणु।
अचक्ष्यौ वृकङ्घस्यच निर्ज.ह्याचस्तेनच तं द्रुङ्घफ्पदे जेङ्घहि।।1।।

पद-पाठः

अधङ्घ। रचत्रिच तृदृष्ट(धूङ्घमम्। अचशीर्चषार्णङ्घम्। अहिङ्घम्। कृदणुद्।
अचक्ष्यौ। वृकङ्घस्य। निः। जचह्याः। तेनङ्घ। तम्। द्रुङ्घकृफ्पदे। जचहिच।।1।।

सा0 भा0: एषा)क् 'आ रात्रि पार्थिवम्' ;अ0 47, 8द्ध इति सूक्ते व्याख्याता। अक्ष्यौ निर्जह्याः इत्येतावान् विशेषः। अक्ष्यौ अक्षिणी चक्षुषी निर्जह्याः। जहातिरत्र अन्तर्णीतण्यर्थः। निर्हापयेः निर्मोचयेः। उत्पाटयेरिति यावत्। ओहाक् त्यागे।

हिन्दी अनुवादः-हे रात्रे! जहरीली स छोड़ने वाले साँप को आप छि -मस्तक ;सिर रहितद्ध करें। भेड़िये की दोनों आँखों को दृष्टि विहीन करवेफ उसे वृक्ष वेफ नीचे समाप्त करें।।1।।

संहिता-पाठः

ये तेङ्घ रात्र्यनचड्वाहचस्तीचक्ष्णशृङ्घ ाः स्वाचशवङ्घः।
तेभिङ्घर्नो अचद्य पाङ्घरचयातिङ्घ दुदर्गाणिङ्घ विच हाङ्घ।।2।।

पद-पाठः

ये। तेच। रचत्रिच। अचनचड्वाहङ्घः। तीचक्ष्ण(शृङ्घ ाः। सुद्(आचशवङ्घः।
तेभिङ्घः। नचः। अचद्य। पाचरचयच। अतिङ्घ। दुद्ः(गानिङ्घ। विच हाङ्घ।।2।।

सा0 भा0: हे रात्रि ते तव संबन्धिनो वाहनभूताः तीक्ष्ण शृ ाः निशितविषाणाः स्वाशवः अतिशयेन शीघ्रगामिनो ये अनड्वाहः अनोवहनशक्ताः पुंगवाः सन्ति। तेभिः तैः उक्तलक्षणोपेतैरनड्डि : नः अस्मान् अद्य इदानीं वि हा विश्वेषु सर्वेषु अहःसु रात्रिषु च दुर्गाणि दुर्गमाणि कृच्छ्राणि दुर्जयानि अनर्थजातानि अति पारय अतिक्रामय। यथा दुस्तरं नद्यादिकम् अनड्वाहः फ्रषांस्तारयन्ति एवम् एभिः अस्मान् शत्रुकृतारिष्टेभ्यस्तारयेति।

हिन्दी अनुवादः-हे रात्रे! तीव्रगामी, तीखे सींगों से युत्तफ भारवाहक आपवेफ जो बैल हैं, उनसे हमें सभी संकटों से पार करें।।2।।

संहिता-पाठः

रात्रिङ्घरात्रिचमरिष्ङ्घयन्तचस्तरेङ्घम तचन्वा(क्चयम्।

गचम्भीचरमप्लद्वा इव्च न तद्वरेयुद्दराद्वतयः।।३।।

पद-पाठः

रात्रिद्वम्(रात्रिम्। अरिद्विष्यन्तः। तरेद्वम। तचन्वा(। व्चयम्।
गचम्भीचरम्। अपद्वल्वा(इ्व। नं तचरेव्चयुद्दः। अराद्वतयः।।३।।

सा० भा०: अत्र परोक्षवादः। रात्रिरात्रिंम्। 'नित्यवीप्सयोः' ;पा *8, 1, 4*द्ध इति द्विर्वचनम्। सर्वं रात्रिम् अरिष्यन्तः गमिष्यन्तः। आगामिरात्र्यपेक्षा भविष्यत्प्रयोगः। वयं तन्वा स्वशरीरेण। तनोति विस्तारयति बुफलम् इति वा तनुशब्दः पुत्रवाची। पुत्रादिभिः सह तरेम। रात्रिरेव कर्म। सर्वस्या रात्रेः पारम् अश्नुवीमहित्यर्थः। अरातयः अस्मदीयाः शत्रवस्तु न तरेयुः रात्रिं नातिक्रामेयुः। रात्रावेव विनष्टा भवन्तु। अत्र दृष्टान्तः-गम्भीरम् अप्लवा इवेति। प्लवः तरणसाधनम् उड्डपम् तद्रहिता जना यथा गम्भीरम् अगाधं नद्यादिवंफ मध्येनदि निमज्जन्ति एवं त्वद्रक्षरूप्लव- राहित्यात् रात्रिमध्य एव ते विनश्यन्तु इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे रात्रे! हम शरीरों से सुरक्षित प्रत्येक रात्रि से पार हों, शत्रु नौकारहित यात्रियों की तरह पार न हो सवेंफ।।३।।

संहिता-पाठः

यथाद्व शाद्वम्याकद्वः प्रच्पतद्व पच्चवान् नानुद्वव्चिद्यतेद्व।
एच्चवा राद्वत्रिच प्र पाद्वत्चय यो अचस्माँ अद्वभ्यघाचयति।।४।।

पद-पाठः

यथाद्व। शाचम्याकद्वः। प्रच(पतद्वन्। अचपच्(वान्। न। अचनुद्द(व्चिद्यतेद्व।।
एच्चव। राचत्रिच। प्र। पाचत्चयच्च। यः। अचस्मान्। अचभिच(अचघाचयतिद्व।।४।।

सा० भा०: शाम्याकः श्यामाकाख्यो धान्यविशेषः। स यथा प्रपतन् प : सन् निपतन् अपवान् अपकर्षवान् दुर्बलो निःसारो नानुविद्यते अवस्थितिं न लभते। नोपलभ्यते। विनश्यतीति यावत्। एव एवम् हे रात्रि त्वं प्र पातय प्रकर्षेण अवा मुख्रं निपातय। तम् आह-यः शत्रुः अस्मान् अभ्यघायति अभिलक्ष्य अघं हिंसालक्षणं पापं कर्तुम् इच्छति हिनस्ति। तं प्रतापयेति संबन्धः।

हिन्दी अनुवादः-श्यामाक ;साँवाद्ध नामक अ वेफ एक बार ;जमीन परद्ध गिरने वेफ बाद पुनः उसको ढूँढ़कर एकत्र कर पाना सम्भव नहीं होता। हे रात्रे! जो हमारे पास पाप की दुर्भावना से आ रहा है, उसे आप साँवा की भाँति नष्ट कर दें।।४।।

संहिता-पाठः

अपद्व स्तेचनं वासोद्व गोअचजमुद्दत तस्कद्वरम्।
अथोच यो अर्व.तः शिरोद्वभिच्धायच निनीद्वषति।।५।।

पद-पाठः

अपद्व। स्तेचनम्। वासद्वः। गोच(अचजम्। उ्चत। तस्कद्वरम्।
अथोच इतिद्व। यः। अर्व.तः। शिरद्वः। अचिभच(धायद्व। निनीद्वषति।।५।।

सा० भा०: यः स्तेनः वासः वहं गोअजम्। द्वन्द्वैकव वः। स्पफोटायनव्यतिरिक्ताचार्य- मते अव देशाभावः। गा अजां निनीषति तं स्तेनम् अप। उपसर्गश्रुतेर्योग्य- क्रियाध्याहारः। अपगमय। उत अपि च तस्करम् चोरम् अपसारय। अथो अपि च यः तस्करः अर्वतः अश्वान् शिरः शिरांसि अभिधाय। अभिपूर्वो दधातिर्बन्धने वर्तते। रज्ज्वदिना ब(वा निनीषति अपजिहीर्षति तं तस्करम् अपजहीति। स्तेनतस्करयोः पयार्यत्वेपि अपहार्यद्रव्यगौरवेण पृथगपहननम् उक्तम् इति वेदितव्यम्।

हिन्दी अनुवादः-हे रात्रे! आप उन सभी प्रकार वेफ अपहर्त्ताओं को, जो वह्र, गौ, बकरी वेफ साथ-साथ घोड़ों को रस्सी से बाँधकर ले जाते हैं, उन्हें आप दूर हटाएँ।।५।।

संहिता-पाठः

यद्चद्या राद्वत्रि सुभगे व्चिभजचन्त्ययोच वसुद्व।

यदेचतदचस्मान् भोङ्कजयच यथोदचन्यानुद्पायङ्कसि।।6।।

पद-पाठः

यत्। अचद्य। रचत्रिच। सुद(भ्चगेच। वि(भजङ्कन्ति। अयङ्कः। वसुङ्क।
यत्। एचतत्। अचस्मान्। भोचजचयच। यथाङ्क। इत्। अचन्यान्। उचपच(अयङ्कसि।।6।।

सा0 भा0: सुभगे सौभाग्यवति भगस्य वा पत्नि हे रात्रि अद्य अस्मिन् काले यद् अयः अयोमयं वस्तु वसु कनकादिवंफ च विभजन्ति विश्लेषयन्ति पृथक्युफर्वन्ति अपहरन्ति। शत्रव इत्यर्थः। तद् एतत् वसु। यच्छब्दो वाक्यालंकारे। अस्मान् धनस्वामिनः भोजय त(नस्य भोक्तृत्वं संपादयं भुजेर्हेतुमण्णिच्। तद् धनम् अस्मभ्यम् आहरेति यावत्। यथा येन प्रकारेण। इच्छब्दः अवधारणे। अन्यान् पदार्थान् वासोगोजादीन् शत्रुभिरपहृतान् उपायसि। अयतिरत्र अन्तर्णीतण्यर्थः। उपगमयसि।

हिन्दी अनुवादः-स्वर्ण आदि वैभव को बाँटने वाली हे सौभाग्यवती रात्रे! आप अपना धन हमें प्रदान करेंऋ हम उसका उपयोग कर सवेंफ। वह धन हमारे शत्रुओं को न प्राप्त हो।।6।।

संहिता-पाठः

उचषसेङ्क नःच परिङ्क देहिच सर्वा.न् रात्र्यनाचगसङ्कः।
उचषा नोच अ ेच आ भङ्कजाचदहचस्तुभ्यं· विभावरि।।7।।

पद-पाठः

उचषसेङ्क। नचः। परिङ्क। देचहिच। सर्वा.न्। रचत्रिच। अचनाचगचसङ्कः।
उचषाः। नचः। अ ेङ्क। आ। भ्चजाचता। अहङ्कः। तुभ्यङ्कम्। विचभाचवचरिच।।7।।

सा0 भा0: हे रात्रि अनागसः अनपराधान् त्वद्विषये अनादरम् अनाचरतः स्तुतिकर्तृन् सर्वान् नः पशुपुत्रमित्रादिसकलान् अस्मान् उषसे प्रभातकालाय परि देहि रक्षणार्थं प्रयच्छ। उषषः कालपर्यन्तं पालयेति यावत्। उषाः च नः अस्मान् अ े प्रातरादि साया   कालपर्यन्ताय दिवसाय प्रकाशवते आ भजत् आभजतु। परिपालयत्विति यावत्। अहः अपि उक्तलक्षणम् हे विभावरि विशेषेण भासमाने रात्रि तुभ्यं परिददातु। एवम् अनवरतं परस्परानुपदित्वेन आवर्तमानौ अहोरात्रौ अस्मान् शत्रुबाधापरिहारेण पशुधनादिसमेतान् वुफरुताम् इति तात्पर्यार्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे रात्रे! हम निष्पाप स्तोताओं को आप उषा वेफ नियन्त्रण में सौप दें, उषा दिन को प्रदान कर दे, दिन हमें संरक्षण प्रदान करता हुआ पुनः आपको सौप दे। हे तेजस्विनी रात्रे! इस प्रकार आप हमारी सुरक्षा करें।।7।।

18. दुःस्वप्ननाशनम् ;19.57द्ध

)षि-यम। **देवता-**दुःस्वप्न।

'यथा कलां सपफम्' इति सूक्तेफन पुरोहितो दुःस्वप्नदर्शिनं राजानम् अभिमन्त्रयते।

संहिता-पाठः

यथाद्व क्चलां यथाद्व शच्पफं यथच्र्णं संचनयद्वन्ति।
एच्वा दुद्दष्व्पन्यंच्च सर्वच्मप्रिद्वयेच्च सं नद्दयामसि।।1।।

पद-पाठः

यथाद्व। क्चलाम्। यथाद्व। शच्पफम्। यथाद्व।)च्णम्। सच्म्{नयद्वन्ति।
एच्व। दुद्दः{स्प्न्यद्दम्। सर्व॰म्। अप्रिद्वये। सम्। न्चयाच्मच्सि्च।।1।।

सा0 भा0: यथा अवदानार्थं संस्चुफर्वन्त)त्विजः हतस्य पशोः कलां शपफम् इति अनवदानीयान्य ानि सहादाय अन्यत्र संनयन्ति। यथा वा प्रवृ(म्)णं संनयन्ति अपगमयन्ति उत्तमर्णाय प्रत्यर्पयन्ति एवा एवं दुष्प्प्यम् कष्टस्वप्ननिमित्तवंफ सर्वम् अनर्थजातम् आप्त्ये अपां पुत्रे त्रिताख्ये महर्षौ सं नयामसि संनयामः स्थापयामः प्रमार्जयामः।

हिन्दी अनुवादः-जिस प्रकार ;चन्द्रमा कीद्ध कलाएँ ;क्रमशःद्ध बढ़ती-घटती हैं, जैसे ;अ वेफद्ध खुरों से ;कदमों से क्रमशःद्ध मार्ग तय किया जाता है तथा जिस प्रकार ण ;क्रमशःद्ध चुकाया जाता हैऋ उसी प्रकार हम दुःस्वप्नजन्य सभी अनिष्टों को अप्रिय शत्रुओं पर पेफकते हैं।।1।।

संहिता-पाठः

सं राजाद्वनो अगुद्दः समृद्दणान्यद्वगुद्दः सं वुफद्दष्ठा अद्वगुद्दः सं क्चला अद्वगुः।
समच्स्मासुद्द यद् दुद्दष्व्पन्यंच्च निर्द्धि॰ष्चते दुद्दष्व्पन्यं सुवाम्।।2।।

पद-पाठः

सम्। राजाद्वनः। अ्चगुद्दः। सम्।)च्णनिद्व। अ्चगुद्दः। सम्। वुफद्दष्ठाः। अ्चगुद्दः। सम्। क्चलाः।
अ्चगुद्दः। सम्। अ्चस्मासुद्व। यत्। दुद्दः{स्वप्न्यम्। निः द्धिच्षच्ते। दुद्दः{स्वप्न्यद्दम्। सुद्दवाच्मच्।।2।।

सा0 भा0: यथा राजानः परराष्ट्रं विनाशयितुं समगुः संयन्ति संहता भवन्ति।)णानि बहूनि समगुः संयन्ति। एकस्मिन्नृणे अनपसारिते उपर्युपरि)णानि बहूनि भवन्तीति प्रसि(:। वुफष्ठाः समगुः। वुफष्ठो नाम त्वग्दोषः। तदुपलक्षिता बहवो रोगाः। एकस्मिन् वुफष्ठरोगे अचिकित्सिते तस्योपरि पिटकव्रणादीनि भवतीति प्रसि(:। कलाः अनुपादेयावयवोपलक्षणम्। यथा वर्जनीयाः पश्वाद्यवयवा जीर्णवृफपादिषु समगुः संहता भवन्ति। एवम् अस्मासु यद् दुःष्वप्यम् दुःस्वप्ना- निमित्तकम् अनर्थजातं सम् अगात् इति एकवचनेनुष :। समितं संहतं वर्तते तद् दुःष्वप्न्यम् अरिष्टजातं द्विषते अस्मद्द्वेष्ट्रे निः सुवाम अस्मत्तो निःसार्य प्रेरयाम। षू प्रेरण। तौदादिवंफः।

हिन्दी अनुवादः-जिस प्रकार राजा ;यु(वेफ लिएद्ध संघब(होते हैं, जैसे णभार ;थोड़ा-थोड़ा जुड़ते हुएद्ध इकट्ठा हो जाता है, जैसे वुफष्ठ आदि रोग ;थोड़ा-थोड़ा करवेफद्ध बढ़ जाते हैं तथा कलाएँ संयुक्तफ होकर ;पूर्ण चन्द्र काद्ध आकार बनाती हैं, उसी प्रकार दुःस्वप्न बढ़ते हैं। हम दुःस्वप्नों को द्वेष करने वालों की ओर धवेफलते हैं।।2।।

संहिता-पाठः

देवाङ्कनां पत्नीनां गर्भच यमङ्कस्य करच यो भचद्रः स्वङ्कप्न।
स ममच यः पाचपस्तद् द्विङ्कषचते प्र हिङ्कण्मः। मा तृदृष्टानाङ्कमसि कृष्णशवुफदनेर्मुखङ्कम्।

पद-पाठः

देवाङ्कनाम्। पचत्नीचनाचम्। गचर्भच। यमङ्कत्य। कचरच। यः। भचद्रः। स्वचप्नच। सः। ममङ्क। यः। पाचपः। तत्। द्विचषचते। प्र। हिचण्मःच। मा। तृदृष्टानाङ्कम्। अचसिच। कृदण्णच(शचवुफदनेः। मुखङ्कम्।।3।।

सा0 भा0: हे देवानां पत्नीनां गर्भ। दीव्यन्ति क्रीडन्तीति देवा गन्धर्वाः। पत्नीशब्देन अप्सरसः। गन्धर्वाप्सरसां गर्भ पुत्र। ता हि महाजलवृक्षादिस्थानेषु स्थित्वा पुरुषान् उन्मादयन्तीति तैत्तिरीयश्रुतिप्रसि(: ;तु0 तै0 3, 4, 8, 4द्ध। अत्रापि उन्मादनयोगात् तत्पुत्रत्वेन स्वप्नस्य व्यपदेशः। हे यमस्य कर। यथा प्रेताधिपतिः स्वीयेन हस्तेन यं वेफचन वध्यं गृहीत्वा घातयति एवं दुःस्वप्नेनापि तथा करोतीति स्वप्नस्य तत्करत्वव्यपदेशः। एवंप्रभाव हे स्वप्न त्वदीयो भद्रः म लकारी यः अंशोऽस्ति सोऽशो ममास्तु। यः पापः क्रूरः अनिष्टकारी अंशः तं द्विषते शत्रवे प्र हिण्मः प्रेरयामः। कृष्णशवुफनेः। कृष्णः पक्षी वायसः। तस्य मुखम् मुखवन्मुखं वायसमुखभूतः स्वप्नत्वं बाधको मा। मा भवेत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे देवपत्नियों वेफ गर्भ ;पुत्रद्ध, यम वेफ हाथ, स्वप्न! आप हमें अपना मंगलप्रद भाग प्रदान करें। तथा आपवेफ अनिष्ट भाग को हम शत्रुओं की ओर प्रेरित करते हैं। हे स्वप्नः! आप पक्षी वेफ मुख दर्शन वेफ समान न हों।।3।।

संहिता-पाठः

तं त्वाङ्क स्वप्नच तथाच सं विङ्कद्मच स त्वं स्वचप्ना ङ्क इव काचयम ङ्क इव नीनाचहम्।
अचनाचस्मावंफ देङ्कवपीचयुं पियाङ्करुं वफ्च । यदचस्मासुङ्क दुदृष्वप्न्यं यद् गोषुद यच्चङ्क नो गृदहे।।4।।

पद-पाठः

तम्। त्वाच। स्वचप्नच। तथाङ्क। सम्। विचद्मच। सः। त्वम्। स्वचप्नच। अ ङ्कः(इव। काचयम्।

अ ङ्कः(इव। नीचनाचहम्। अचनाचस्माचकम्। देचवच(पीचयुम्। पियाङ्करुम्। वचफ्च। यत्। अचस्मासुङ्क। दुदः(स्वप्न्यङ्कम्। यत्। गोषुङ्क। यत्। चच। नःच। गृदहे।।4।।

हिन्दी अनुवादः-हे स्वप्न! आपवेफ सम्बन्ध में हम भली प्रकार जानते हैं। जिस प्रकार घोड़ा शरीर को झटककर धूलि को झाड़ देता है और काठी पर रखी वस्तु को गिरा देता है, उसी प्रकार गौओं तथा गृह से सम्बन्धित हमारे दुःस्वप्नों वेफ प्रभाव को आप हमसे भि   देवत्व विरोधी दुष्टों पर पेंफक दें।।4।।

संहिता-पाठः

अचनाचस्माचकस्तद् देङ्कवपीचयुः पियाङ्करुर्निचष्कमिक्च प्रतिङ्क मु ताम्।
नवाङ्करत्नीनपङ्कमया अचस्मावंफच ततःच परिङ्क। दुदृष्वप्न्यंच सर्वं द्विषचते निर्दयामसि।।5।।

पद-पाठः

अचनाचस्माचकः। तत्। देचवच(पीचयुः। पियाङ्करुः। निचष्कम(इङ्कव। प्रतिङ्क। मुद चताचम्। नवङ्क।
अचरत्नीन्। अपङ्क(मियाः। अचस्माकङ्कम्। ततङ्कः। परिङ्क। दुदः(स्वप्न्यङ्कम्। सर्वम्। द्विचषचते। निः। दययाचमचसिच।।5।।

सा0 भा0: हे स्वप्न तं तादृशं त्वा त्वां तथा तेन प्रकारेण तदर्थम् उत्पन्न आगत इति सर्वं सं वि   जानीमः। हे स्वप्न स त्वम् अ : यथा स्वकीयं रजोधूसरं कायं धुनोति यथा च अ : नीनाहम् पल्याणकवचादिकम् अवकिरति एवम् अस्मावंफ पियारुम्। पीयतिर्हिंसाकर्मा। बाधकम् न वेफवलम् अस्माकमेव बाधवंफ विंफ तु देवपीयुम्। देवानां बाधवंफ यज्ञविघातिनम् अव वप। तिरस्वुफर्वित्यर्थः। दुःस्वप्नपफलं तस्यास्त्विति यावत्। अस्मासु अस्मावंफ वपुषि यद् दुष्वप्न्यं वर्तते यत् च गोषु गवाम् अनर्थसूचवंफ दुष्वप्न्यं यच्च नः अस्मदीये गृहे वर्तते ;4द्ध तद् अस्माकम् अरिष्टम् अव। गमयेति शेषः। तद् अरिष्टजातं देवपीयुः पियारुः शत्रुः निष्कमिव सौवर्णम् आभरणमिव प्रति मु   ताम्। स्वशरीरे धारयत्वित्यर्थः। अस्मावंफ संबन्धि दुष्वप्न्यं नवारत्नीन् अपमयाः नवारत्निपर्यन्तम् अपसारय। यथा तत्संस्पर्शो न भवति तथा वुफर्विति वक्तुं नवारत्निप्रमाणम्। प्रर्यन्तम् उक्तं वेदितव्यम्। ततः अनन्तरं सर्वम् उत्पन्नं दुष्वप्न्यम् अप्रिये द्वेष्ये

संनमयामसि प्रेस्याम:।।8।।

हिन्दी अनुवादः-हे देव! हमसे भि जो देवों वेफ निन्दक दुष्ट शत्रु हैं, वे दु:स्वप्न जन्य वुफप्रभाव को आभूषण वेफ समान धारण करें। दु:स्वप्न से उत्प वुफप्रभाव को आप हमसे नौ हाथ तक दूर हटाएँ। दु:स्वप्नजन्य दुष्प्रभाव को हम विद्वेषी शत्रुपक्ष की ओर प्रेरित करते हैं।।8।।

19. वुफन्तापसूक्तम् ;*20.127*द्ध

बीसवें काण्ड के अन्त में *127* से *136* तक के सूक्तों को कुन्तापसूक्त कहा गया है। कुछ आचार्य इन्हें खिल सूक्त भी कहते हैं। आहवनिय यज्ञों के बारहदिवसीय अनुष्टानों में छटे दिन इनके पाठ का विधन है।

पृष्ठ स्य षष्ठे{यहनि 'इदं जना उपे श्रुत' इति वुफन्तापम् अर्धर्चशः शंसति। तत्र प्रथमा तुर्दश)चः पदावग्राहं शंसति। तद् उक्तं वैतान-''इदं जना उप श्रुत' इति वुफन्तापम् अर्धर्चशः। शतुर्दश पदावग्राहम्'' ;वैताश्रौ *32, 19*द्ध इति।

संहिता-पाठः

इ्यदं जनाच उपद्व श्रुतच नराचशंसच स्तविह्नष्यते।
ष्चष्टिं सचह द्व नव्चतिं चद्व कौरम्च आ रुच्शमेद्वषु द हे।।1।।

हिन्दी अनुवादः-हे जनो-लोगो! नरों ;इन्द्रादि देवोंद्ध की प्रशंसा में स्तवन किये जाते हैं, उन्हें सुनो। हे कौरम ;कर्मट-नायकद्ध! हम *6090* रुशमों ;वीरोंद्ध को पाते या नियुत्तफ करते हैं।।1।।

संहिता-पाठः

उष्ट्रद्दा यस्यद्व प्रवाचहणोद्व व्चधूमद्वन्तो द्विचर्दशद्व।
व्चष्र्मा रथद्वस्यच नि जिह्नहीडते दिचव ईचषमाद्वणा उपचस्पृशद्वः।।2।।

हिन्दी अनुवादः-बीस ऊँट अपनी वधुओं ;शत्तिफयोंद्ध सहित उस ;नरद्ध वेफ रथ को खींचते हैं। उस रथ वेफ सिर द्युलोक को स्पर्श करने की इच्छा वेफ साथ चलते हैं।।2।।

संहिता-पाठः

एचष इ्चषायद्व मामहे शचतं निचष्कान् दशच सजद्वः।
त्रीणिद्व शचतान्यर्व.ता सचह चा दशच गोनाद्वम्।।3।।

हिन्दी अनुवादः-इस ;नर श्रेष्ट नेद्ध मामह षि को सौ स्वर्ण मुद्राओं, दस हारों, तीन सौ अ ों तथा दस हजार गौओं का दान दिया था।।3।।

संहिता-पाठः

वच्यद्वस्वच रेभद्व वच्यस्व वृद्दक्षे न पच ` शचवुफनद्वः।
नष्टेद्व जिचहा चद्वर्चरीति क्षुद्दरो न भुरिजोद्वरिव।।4।।

हिन्दी अनुवादः-हे स्तोता ;रेभद्ध! बोलो-पाठ करो। ;पाठ वेफ समयद्ध ओष्ठ और जिहा जल्दी-जल्दी चलते हैं, जैसे पवेफ पफल वाले वृक्ष पर पक्षी ;की चोंचद्ध और वैफचियों वेफ पफल चलते हैं।।5।।

संहिता-पाठः

प्र रेचभासोद्ब मनीचषा वृषाच गावद्ब इवेरते।
अचमोचत्चपुत्रद्बका एचषामचमोतद्ब गाच इवाद्बसते।।6।।

हिन्दी अनुवादः-स्तोता शत्तिफसम्प वृषभों वेफ समान गतिमान् हो रहे हैं, इनवेफ गृह, सुसन्तति एवं गवादि पशुओं से युत्तफ हैं।।6।।

संहिता-पाठः

प्र रेद्बभ्च धीं भद्बरस्व गोद्बविदं· वसुद्बविदद्बम्।।
देचक्चत्रेमां वाचं· श्रीणीचहीषुद्बर्नावीद्बरस्चस्तारद्बम्।।6।।

हिन्दी अनुवादः-हे स्तोमागण! आप गोधन उपलब्ध करने वाली और ऐ र्य सम्पदा की प्राप्तिभूत प्रेरक बु(को धारण करें। जिस प्रकार बाण वेफ संधानकर्ता मनुष्य का संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वाणी आपको संरक्षण प्रदान करे। देवताओं वेफ समीप आप इन ोत्रों का गायन करें।।6।।

संहिता-पाठः

राज्ञोद्ब विश्वक्चजनीद्बनस्च्य यो देचवोमर्त्यांच अतिद्ब।।
वैचश्वाचनचरस्च्य सुष्टुद्बत्तिचमा सुद्बनोताद्ब परिचक्षितद्बः।।7।।

हिन्दी अनुवादः-सर्वहितकारी, सभी पर शासन करने वाले एवं भली प्रकार परीक्षित राजा की श्रेष्ठ स्तुतियों का श्रवण करेंऋ क्योंकि मनुष्यों में श्रेष्ठ होन वेफ कारण राजा देवतुल्य होता है।।7।।

संहिता-पाठः

पचरिचच्छिन्नः क्षेमद्बमकरोचत् तमच आसद्बनमाचचरद्बन्।
वुफलाद्बयन् कृद्बण्वन् कौरद्बव्यःच पतिचर्वदति जाचययाद्ब।।8।।

हिन्दी अनुवादः-कौरव ;कर्मठद्ध पुत्र गृह निर्माण करते हुए अपनी पत्नी कहते हैं कि शोभन राज सिंहासन पर आसीन होकर परीक्षित राजा ;अथवा अग्निद्ध ने हमारा कल्याण किया।।8।।

संहिता-पाठः

क्चतचरत् तच आ हद्बराणिच दधिच मन्थां· परिच श्रुतद्बम्।
जाचयाः पतिंच वि पृद्बच्छति राचष्ट्रे राज्ञद्बः परिचक्षितद्बः।।9।।

हिन्दी अनुवादः-परीक्षित ;वि स्त राजा अथवा यज्ञाग्निद्ध राष्ट्र ;क्षेत्र या प्रकाशद्ध में ही पति से पूछती है कि दही, मट्ठा या रस आदि में आपवेफ लिए कौन सी वस्तु प्रस्तुत की जाए?।।9।।

संहिता-पाठः

अचभीवस्चः प्र जिद्बहीतेच यवद्बः पच : पचथो बिलद्बम्।
जनचः स भचद्रमेधद्बति राचष्ट्रे राज्ञःद्ब परिचक्षितद्बः।।10।।

हिन्दी अनुवादः-जिस प्रकार पक्व जौ उदररूपी स्थल में जाता है, उसी प्रकार परीक्षित वेफ राज्य में सभी प्राणी कल्याण को प्राप्त होते हैं॥10॥

संहिता-पाठः

इन्द्रः कारुमबूबुधदुत्तिष्ठ्च वि चराच जनम्।
ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत् ते पृणादरिः॥11॥

हिन्दी अनुवादः-इन्द्रदेव ने स्तोता को प्रेरित किया कि वे उठ खड़े हों, जन-जागरण हेतु समाज में विचरें, ;अनीति वेफ प्रतिद्ध उग्र स्वभाव वाले मुझ इन्द्र की स्तुति करें। सभी शत्रु तुम्हारे समीप आत्मासर्पण करेंगे॥11॥

संहिता-पाठः

इह गावः प्र जायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः।
इहो सहस्रदक्षिणोपि पूषा नि षीदति॥12॥

हिन्दी अनुवादः-यहाँ मनुष्य, सन्तति और अ प्रचुर संख्या में उत्प हों, गौएँ अपने गोवंश को बढ़ाएँ। हजारों प्रकार वेफ अनुदानों वेफ दाता पूषादेव यहाँ प्रतिष्ठित हैं॥12॥

संहिता-पाठः

नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत्।
मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ई.शत॥13॥

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रदेव! गौएँ यहाँ हानिरहित हों, गोपालक भी हानिरहित हों, शत्रु और चोर भी इनवेफ स्वामी न बनें॥13॥

संहिता-पाठः

उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम्।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन॥14॥

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रदेव! हम आपको कल्याणकारी वाणी से हर्षित करते हैं, हम आपको सूत्तफ द्वारा भी हर्षित करते हैं। आप हमारे स्तोत्रों का ;अन्तरिक्ष सेद्ध श्रवण करें, हम कभी विनष्ट न हों॥14॥

तं प्रतिगिरेति प्रति वुफरुत। ;? तं प्रतिगिरति प्रकृतिवद्द्ध ओथामो- दैवेति। प पदा चतुर्दशी। एवेफन द्वाभ्यां वा प्रणौति। ;तु0 आश्रौ0 8, 3, 11ऋ 12द्ध।

20. स्वराजपुनः स्थापन सूत्तफ ;3.3द्ध

)षि-अथर्वा। **देवता-**अग्नि, इन्द्र, वरुण, सोम आदि।

'अचिक्रदत्' इति सूक्तेन शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशार्थं शत्रुसेनाकारं पुरोडाशम् उदवेफषु दर्भान् संस्तीर्य तत्र निनयेत्। ततो निमज्जनार्थं तं पुरोडाशं लोष्टेन पूरयेत्।

तथा अनेन सूक्तेन स्वराष्ट्रप्रवेशार्थं क्षीरौदनं संपात्य अभिमन्त्र्य राजानम् आशयेत्।

संहिता-पाठः

अचिक्कत्रफदत् स्वपा इफह भुवक्चदग्नेच व्यर्(चस्व रोदक्सी उरूचची।
युक्ज्जन्तुक त्वा मक्रुतोक् विच वेक्दस्च आमुं नक्यच नमक्सा रचतहक्व्यम्।।1।।

पद-पाठः

अचिक्क्रदत्। स्वर्(पाः। इफह। भुदक्चत। अग्नेक्। वि। अचचस्व। रोदक्सीच इतिक्। उचरूचची इतिक्।
युक्ज्जन्तुक्। त्वाच। मक्रुतक्ः। विच वेक्दसः। आ। अचमुम्। नचयच। नमक्सा। रात्च(हक्व्यम्।।1।।

सा0 भा0: हे अग्ने असौ स्वराष्ट्रात् प्रत्युतो राजा अचिक्रदत् पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशाय त्वाम् आह्यति। प्रार्थयत इत्यर्थः। कदि त्रफदि क्लदि आह्याने रोदने च। अस्माद् ण्यन्तात् लु र्चा रूपम्। 'अग्नित्यम् आगमशासनम्' इति नुमभावः। स त्वदनुग्रहात् इह स्वराष्ट्रे स्वपाः स्वकीयानां प्रजानां पालकः सुकर्मा वा भुवत्। तद्रक्षणार्थं त्वं च उरुची उरुच्यौ उर्व नेा। व्यापनशीले इत्यर्थः। ऊरुपूर्वाद् अ तेः *ि न्ह्। ईदृशौ रोदसी द्यावापृथिव्यौ व्यचस्व व्याप्नुहि। व्यचतिर्व्याप्तिकर्मा। अपि च विश्ववेदसः सर्वविषयज्ञानयुक्ता मरुतः एत ामान एकोनप ाशत्संख्याका देवाः हे अग्ने त्वा त्वां यु न्तु प्राप्नुवन्तु। त्वत्सहाया भवन्तु इत्यर्थः। विश्ववेदस इति। विद ज्ञाने इत्यस्माद् भावे असुन्। नमसा नमस्कारेण युक्तं रातहव्यम् दत्तविष्कम् अमुम् उक्तलक्षणं राजानम् आ नय पुनः स्वराष्ट्रं प्रापय।

हिन्दी अनुवादः-हे अग्निदेव! यह ;जीव या पदेच्छु व्यक्तिफ या राजाद्ध स्वयं का पालन-रक्षण करने वाला हो-ऐसी घोषणा की गई है। आप सम्पूर्ण द्यावा-पृथिवी में व्याप्त हों। मरुद्‌गण और वि ेदेवा आपवेफ साथ संयुक्तफ हों। आप नम्रतापूर्वक हविदाता को यहाँ लाएँ, स्थापित करें।।1।।

संहिता-पाठः

दूक्रे चिचत् सन्तक्मरुषासच इन्द्रचमा च्याक्वयन्तु सचख्यायच विप्रक्म्।
यद् गाक्यचत्रीं बृक्हचतीमचर्वफमक्स्मै सौत्रामचण्या दधृक्षन्त देचवाः।।2।।

पद-पाठः

दूक्रे। चिचत्। सन्तक्म्। अचरुषासक्ः। इन्द्रक्म्। आ। च्यचवयचन्तुद्। सचखायक्। विप्रक्म्।
यत्। गाचयचत्रीम्। बृक्हचतीम्। अचर्वफम्। अचस्मैच। सौचत्राचमचण्या। दधृक्षन्त। देचवाः।।2।।

सा0 भा0: अरुषासः आरोचमानाः दीप्यमानाः। 'अरुषीरारोचनाद् इति यास्कः ;नि 12, 7द्ध)त्विजः दूरे सन्तम्। चित्शब्दः अप्यर्थे। स्वर्गे वसन्तं विद्यमानमपि विप्रम्। मेधाविनामैतत्। मेधाविनम् इन्द्रं सख्याय अस्य राज्ञः सखिकर्मणे साहा याचरणाय। आ च्यावयन्तु आगमन्यतु। आनेतव्यस्येन्द्रस्य आधिक्यं दर्शयति-यत् यस्मात् कारणाद् देवाः प्रसि(ा अस्मै इन्द्राय गायत्रीम् सोमाहरणादिना प्रख्यातवीर्य गायत्र्याख्यं छन्दः बृहतीम् अस्मान्न्यूनाधिकाक्षराणाम् अन्येषां छन्दसां प्रधानभूताम्। अर्वफम् अर्चनसाधनभूतं मन्त्रात्मवंफ बृहदुक्थात्मवंफ शस्त्रम् सौत्रामण्या। सुष्ठु त्रायत इति सुत्रामा इन्द्रः। तद्देवत्यया क्रियया दधृषन्त अधारयन्। गायत्र्यादिभिरिन्द्रम् अतिशयितवीर्यम् अवुफर्वन्नित्यर्थः। यद्वा गायत्र्यादिकम् अस्मा इन्द्राय। प्रायच्छन् इति शेषः। तथा सौत्रामण्या एतन्नामवेफन हविर्यज्ञेन देवा दधृषन्त। पूर्वं वि स्तावयवम् इन्द्रं पुनः सर्वावयवोपेतम् अवुफर्वन्नित्यर्थः। तस्माद् अतिशयितवीर्ययोगात् तमेव आ च्यावयन्तु इति संबन्धः।

हिन्दी अनुवादः-हे तेजस्विन्! आप इस तेजस्वी की मित्रता वेफ लिए दूरस्थ ज्ञानी इन्द्रदेव को यहाँ लाएँ। समस्त देवताओं ने गायत्री छन्द, बृहती छन्द तथा सौत्रामणी यज्ञ वेफ माध्यम से इसे धारण किया है।।2।।

संहिता-पाठः

अच स्त्वाच राजाच वरुक्णो हयतुद सोमक्स्त्वा हयतुच पर्व.तेभ्यः।
इन्द्रक्स्त्वा हयतु विचड्भ्य आचभ्यः श्येचनो भूचत्वा विशच आ पक्तेचमाः।।3।।

पद-पाठः

अचत(भ्यः। त्वाच। राजाक्। वरुक्णः। हचयचत्च। सोमक्ः। त्वाच। हचयचत्च। पर्व.तेभ्यः।
इन्द्रक्ः। त्वाच। हचयचत्च। विचट्(भ्यः। आचभ्यः। श्येचन। भूक्त्वा। विशक्ः। आ। पचत्च। इचमाःच।।3।।

सा0 भा0: हे परैरवरु(राष्ट्र राजन् त्वा त्वां वरुणो राजा अद्भ्यः स्वसंबन्धिनीभ्यः सकाशाद् हयतु आकारयतु। अ इति। तथा सोमः लतारूपेणावस्थितः पर्वतेभ्यः स्वनिवासस्थानेभ्यः त्वा त्वां हयतु। इन्द्र विट्पतिः। 'स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। वृषेन्द्रः' ;अ0 1, 21, 1द्ध इति श्रूयते। आभ्यः यासु प्रजासु त्वम् इदानीं निवससि आभ्यो विड्भ्यः प्रजाभ्यः सकाशात् त्वा त्वां हयतु। राज्यभ्रष्टस्य राज्ञः त्रीणि निवासस्थानानि संभावितानि। समुद्रमध्यं पर्वताः देशान्तरं वा। तेभ्यः सर्वेभ्यः स्वकीयेभ्यो वरुणादयस्त्वाम आहयन्तु। पुनः स्वराज्यप्रवेशायेत्यर्थः। एवं तैर्दैवैराहूतस्त्वम् इमाः स्वकीयाः पूर्वं पालिता विशः प्रजाः श्येनो भूत्वा। श्येनः पक्षिविशेषः। स इव शीघ्रगतिः परैरनाधर्षित भूत्वा आ पत आगच्छ।

हिन्दी अनुवादः-हे तेजस्विन्! वरुणदेव जल वेफ लिए, सोमदेव पर्वतों वेफ लिए तथा इन्द्रदेव प्रजाओं ;आश्रितों को प्राणवान् बनानेद्ध वेफ लिए आपको बुलाएँ। आप श्येन की गीत से इन विशिष्ट स्थानों पर आएँ।।3।।

संहिता-पाठः

श्येचनो 'हव्यं नद्दयघ्त्वा परद्दस्मादन्यक्षेद्दत्रे अपद्दरु(ंच चरद्दन्तम्।
अर्चि नाच 'पन्थौद्द कृणुतां सुद्दगं तद्द इचमं सद्दजाता अभिचसंविद्दशध्वम्।।4।।

पद-पाठः

श्येचनः। हचव्यम्। नचयघ्चतुद्द। आ। परद्दस्मात्। अचन्यच्(क्षेचत्रे। अपद्दरु(म्। चरद्दन्तम्।
अचश्विनाद्द। पन्थाद्दम्। कृदणुदताचम्। सुद्द(गम्। तेच। इचमम्। सुद्द(जाचताचः। अचभिच(संविद्दशध्वम्।।4।।

श्येनः शंसनीयगतिः द्युस्थानो देवः अन्यक्षेत्रे परराष्ट्रे अवरु(म् शत्रुभिर्निरु(चरन्तम् वर्तमानम् अत एव हव्यम् ह्वातव्यम्। ईदृशं तं राजानं परस्मात् परराष्ट्राद् आ नयतु स्वदेशं प्रति प्रापयतु।

तथा हे राजन् तव अ ना अश्विनौ देवौ पन्थाम् पन्थानम्। छान्दसम् आत्वं नलोपो वा। आगमनमार्गं सुगम् सुखेन गन्तुं योग्यं निरोधकशत्रुशून्यं कृणुताम् वुफरुताम्। सुगम् इति। हे सजाताः समानजन्मानो बन्धवः यूयम् इमम् पुनः स्वराष्ट्रं प्रविष्टं राजानम् अभिसंविशध्वम् अभितः सर्वतः प्रविश्य संविशध्वम् उपविश्य सेवध्वम्। विशेर्व्यत्ययेन आत्मनेपदम्।

हिन्दी अनुवादः-स्वर्ग में निवास करने वाले देवता, अन्य क्षेत्रों में विचरने वाले हव्य ;बुलाने योग्य या हवनीयद्ध को श्येन वेफ समान द्रुतगति से अपने देश में ले आएँ। हे तेजस्विन्! आपको मार्ग को दोनों अ ीवुफमार सुख से आने योग्य बनाएँ। सजातीय ;व्यक्तिफ या तत्त्वद्ध इसे उपयुक्तफ स्थल में प्रविष्ट कराएँ।।4।।

संहिता-पाठः

हयद्दन्तु त्वा प्रतिजचनाः प्रतिद्द मिचत्रा अद्दवृषत।
इचन्द्राचग्नी वि `द्द देचवास्ते चिवशि क्षेमद्दमदीधरन्।।5।।

पद-पाठः

हद्दयन्तु। त्वाच। प्रचतिच(जचनाः। प्रतिद्द। मिचत्राः। अचवृद्दषचत्च।
इन्द्राचग्नी इतिद्द। विश्वेद्द। देचवाः। ते। चिवशि। क्षेमद्दम्। अचदीचधचरन्।।5।।

प्रतिजनाः हे राजन् त्वा त्वां वयन्तु सांतत्येन सेवन्ताम्। तथा प्रतिमित्राः वुफलानि मित्राणि अवृषत विरोधं परित्यज्य संभजन्ताम्। इन्द्राग्नी वि े देवा विशि। जातावेकवचनम्। विक्षु प्रजासु ते तव क्षेमम् रक्षणम् अदीधरन् धारयन्तु वुफर्वन्तु। धारयतेर्ण्यन्तात् लु चि रूपम्।

हिन्दी अनुवादः-हे तेजस्विन्! प्रतिवूफल चलने वाले भी ;आपका महत्त्व समझकरद्ध आपको बुलाएँ। मित्रजन आपको संवर्ि(त

करें। इन्द्राग्नि तथा वि ेदेवता आपवेफ अन्दर क्षेम ;पालन-संरक्षणद्ध की क्षमता धारण कराएँ।।5।।

संहिता-पाठः

यस्तेद्ब हवं. क्व्यिवदद्बत् सजात्यतो य च्च निष्ट द्बः।
अपाद्ब मिन्द्रच तं कृद्दत्वाथेचममिचहावद्ब गमय।।6।।

पद-पाठः

यः। तेच। हवद्बम्। वि(विदद्बत्। सच(जात्यतः। यः। च्च। निष्ट द्बः।
अपाद्ब म्। इ्चन्द्रच। तम्। कृद्दत्वा। अथद्ब। इ्चमम्। इ्चह। अवद्ब। गच्मच्चयच।।6।।

हे राजन् ते तव हवम् स्वराष्ट्रप्रवेशविषयं पुनराहानं यः सजातः समानजन्मा। समबल इत्यर्थः। य निष्ट : नीचः। निकृष्टबल इत्यर्थः। अनयोरन्तरः कि द् विवदत् विवदेत् नानुमन्येत। विपूर्वाद् वदेर्लेटि अडागमः। हे इन्द्र तम् उभयविधं शत्रुम् अपा म् अपगतं बहिष्कृतं कृत्वा अथ अनन्तरम् इमम् प्रकृतं राजानाम् इह अस्मिन् राष्ट्रे अव गमय बोधय। अस्य राष्ट्रस्य अयमेव राजेति प्रख्यापयेत्यर्थः।

हिन्दी अनुवादः-हे इन्द्रदेव! सभी विजातीय और सजातीय जन आपवेफ आह्नीय पक्ष की समीक्षा करें। उस ;अवांछनीयद्ध को बहिष्कृत करवेफ, इस ;वांछनीयद्ध को यहाँ ले आएँ।।6।।

Unit IV-V

वेदा - भूमिका

वेद एक दुरूह विषय है। उसका अर्थ जानने वेफ लिए अनेक विषयों का परिचय होना आवश्यक माना गया और वेदज्ञान में उपकारक जिन ग्रन्थों की रचना हुई उन्हें वेदा नाम से पुकारा गया है। 'अ ' शब्द का अर्थ है 'उपकारक'-पअंग्यन्ते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अ ानिय जिनवेफ द्वारा किसी वस्तु वेफ स्वरूप को जानने में सरलता हो उन्हें 'अ ' कहते हैं। वेदा नाम की रचनाओं में वेद का मुख्यतः दो दृष्टियों से अध्ययन किया गया है-भाषाविषयक अथवा अर्थज्ञान सम्बन्धी-जिनवेफ अन्तर्गत निरुक्त, व्याकरण, छन्द, शिक्षा नाम की रचनाएँ आती हैं। दूसरी दृष्टि कर्मकाण्डविषयक है। इस प्रकार की वेदा रचनाएँ कल्प और ज्योतिष हैं। वेदा वेफ अन्तर्गत छः प्रकार की रचनाएँ आती हैं-

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष। वैदिक मंत्रो वेफ शु(और स्वर वेफ नियम वेफ अनुसार उच्चारण करने वेफ लिए शिक्षाशाह्न का ज्ञान आवश्यक होता है। वेद का मुख्य प्रयोजन कर्मकाण्ड या यज्ञक्रिया है, जिसका व्यवस्थित विवेचन 'कल्प' नाम वेफ वेदा में किया गया है। शब्द की रचना वेफ ज्ञान वेफ लिए, 'व्याकरण' वेदा का अध्ययन अनिवार्य है। वैदिक पदों वेफ निर्वचन का ज्ञान 'निरुक्त' से होता है। अधिकांश वैदिक रचनाएँ छन्दों में हैं। उनका शु(पाठ तभी हो सकता है। जब छन्द का ज्ञान हो, मात्राओं और अक्षरो का ज्ञान हो और इसवेफ लिए 'छन्दःशाह्न' भी वेदा है। यज्ञों का अनुष्टान नक्षत्रों वेफ अनुसार होता है। और नक्षत्रों वेफ ज्ञान वेफ लिए ज्योतिष भी एक सहायक शाह्न है। इस प्रकार इन छः वेदा ों का अपना विशिष्ट प्रयोजन है।

पमन्त्रों वेफ उचित उच्चारण वेफ लिए शिक्षा का, कर्मकाण्ड और यज्ञीय अनुष्टान वेफ लिए कल्प का, शब्दों वेफ रूपज्ञान वेफ लिए व्याकरण का, अर्थज्ञान वेफ लिए शब्दों वेफ निर्वचन वेफ निमित्त निरुक्त का, वैदिक छन्दों की जानकारी वेफ लिए छन्द का तथा अनुष्टानों वेफ उचित कालनिर्णय वेफ लिए ज्योतिष का उपयोग है और इनकी उपयोगिता वेफ कारण ये छहों 'वेदा ' माने जाते हैं।य

कल्प

वेद का प्रमुख प्रयोजन यज्ञ है। इस दृष्टि से 'कल्प' वेदा का महत्त्वपूर्ण स्थान है यज्ञों का विवेचन तो ब्राह्मण ग्रन्थों में भी किया गया है, किन्तु वे विवेचन इतने जटिल हो गये थे कि उनको और स्पष्ट करने वेफ लिए कल्पसूत्रों की रचना अनिवार्य हो गयी थी। पकल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगो(त्रय जिसमें यज्ञ वेफ प्रयोगों का समर्थन या कल्पना की जाये। अथवा कल्प वेदविहित कर्मों की क्रमपूर्वक व्यवस्था करने वाला शाह्न है।

पकल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्वेण कल्पनाशाह्नम्।य

सूत्र साहित्य

सूत्र साहित्य भारतीय वा ्मय का एक अनूठा वर्ग है और यह अपनी विशिष्ट शैली वेफ कारण अन्य प्रकार की रचनाओं में सबसे भि है। वैदिक साहित्य में सूत्रों के काल अध्ययन और चिन्तन की एक परम्परा का प्रतिनिधि है। सूत्र साहित्य एक ऐसी शृ ला है जो वैदिक साहित्य को परवर्ती संस्कृत साहित्य से जोड़ती है जैसा कि मैक्समूलर ने कहा है, इन सूत्रों की शैली का परिचय उसी व्यक्तिफ को मिल सकता है जिसने इन्हें समझने का प्रयत्न किया है और इनका शाब्दिक अनुवाद तो सम्भव हो ही नहीं सकता ।

सूत्र का अर्थ है-धागा, और सूत्रों में छोटे, चुस्त, अर्थगर्भित वाक्यों को मानो एक धागे में पिरोकर रखा जाता है। संक्षिप्तता इनकी विशेषता है। प मी विद्वानों ने इन सूत्रों की शैली पर बहुत आलोचनात्मक ढंग से विचार किया है। प्रो0 मैक्समूलर ने 'हिस्ट्री आपफ एंशियण्ट संस्कृत लिटरेचर' नाम की पुस्तक में सूत्र साहित्य वेफ सन्दर्भ में लिखा है-

है किन्तु इन रचनाओं में अन्विति या अर्थ वेफ विकास जैसी कोई वस्तु नहीं हैद्ध।

कोलब्रूक ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्तफ किया है-

म्अमतल चचंतमदज पउचसपबपजल व कमेपहद अंदपीमे पद जीम चमतचसमगपजल व जीम जतनबजनतमण जीम मदकसमे चनतेनपज व मगबमचजपवदे दक सपउपजंजपवदे व कपेरवपदे जीम हमदमतंस चतमबमचजेण जींज जीम तमंकमत बंददवज ममच पद अपमू जींपत पदजमदकमक बवददमबजपवद दक उनजनंस तमसंजपवदण भ्म वदकमते पद द पदजमतपबंजम उंमए दक जीम बसनम जव जीम संइलतपदजी पे बवदजपदनंससल सपचचपदह तिवउ पे दके

;इस शैली की बाहर से दिखायी पड़नेवाली सरलता रचना की जटिलता में लुप्त हो जाती है। अपवादों एवं बाधों की अनन्त शृंखला सामान्य सि(ान्त को इतना व्यवच्छि कर देती है कि पाठक उनवेफ अभिप्रेत सम्बन्ध तथा पारस्परिक अन्विति को ध्यान में नहीं रख सकता। पढ़नेवाला पेचीदा भूलभुलैया में चकित होकर रह जाता है और इससे निकलने का संवेफतचि निरन्तर उसवेफ हाथों से छूटता रहता है।द्ध

सूत्र रचनाओं में शास्त्रीय विषय को व्यवस्थित रूप में संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उसे याद किया जा सवेफ। विण्टरनित्ज वेफ शब्दों में 'वि वेफ सम्पूर्ण साहित्य में इन सूत्रों की तरह की कोई रचना नहीं है। इस प्रकार की रचनाओं में यथासम्भव थोड़े से शब्दों में सि(ान्त को व्यक्तफ करना ही रचयिता का उद्देश्य होता है, भले ही स्पष्टता और बोधगम्यता का बलिदान करना पड़े। वैयाकरण पत लि का यह कथन प्रायः उद्धृत किया जाता है कि फ्सूत्रकार आधी मात्रा की बचत पर उतना ही आनन्दित होता है जितना पुत्रजन्म पर।1

; जीमतम पे चतवइंइसल दवजीपदह सपाम जीमेम नजतें व प्दकपंदे पद जीम मदजपतम सपजमतंजनतम व जीम वतसकण प्ज पे जीम जें व जीम नजीवत व नबी वता जव ल उनबी चवेपइसम पद मि वतके चवेपइसमए मअमद ज जीम मेचमदेम व बसमंतदमे दक पदजमससपहपइपसपजलण भ्पेजवतल व प्दकपंद स्पजमतंजनतमए चण 235द्ध

सूत्रों की शैली की आलोचनाएँ इस सीमा तक की गयी है कि प्रो0 मैक्स मूलर ने भी इन्हें नीरस कहने में संकोच का अनुभव नहीं किया है। अपने ग्रन्थ फहिस्ट्री आपफ एंशियेण्ट संस्कृत लिटरेचरय में उन्होंने कहा है-

जीमतम पे दव सपमि दक दव चपतपज पद जीमेम नजतेंए मगबमचज जि मपजीमत जमंबीमत वत तनददपदह बवउउमदजंतलए इल पबी जीमेम वतो तम नेनंससल बबवउचंदपमकए दल पउचंतज जव जीमउण चंहम 85ण

सूत्र रचनाओं की शैली वेफ विषय में जितनी आलोचना क्यों न हो, इस विषय में दो मत नहीं हो सकता कि मौखिक उपदेश वेफ समय इनकी संक्षिप्त शैली एक आवश्यकता बन गयी और इनकी विशिष्ट शैली वेफ कारण ही इनमें से अधिकांश की रक्षा हो सकी, अन्यथा लेखन वेफ अभाव में इसका सर्वथा लोप ही हो गया होता। सूत्रों की इस विशिष्ट शैली वेफ अन्तर्गत ही एक नये प्रकार की पारिभाषिक शब्दावली का भी विकास हुआ। इसका समीकरण मैक्स मूलर ने बीजगणित वेफ सूत्रों से किया है। इस विशिष्ट शब्दावली को 'परिभाषा' अध्याय वेफ अन्तर्गत पढ़ा जाता है। व्याकरण वेफ सूत्रों में तो यही विशिष्ट शब्दावली ही अर्थबोध की वुफ ी बन गयी है। मैक्स मूलर ने इस परिभाषावली वेफ विषय में कहा है-

जीमल बवपद दमू पदक व संदहनंहमए पा संदहनंहम पज बंद इम बंससमकए इल पबी जीमल नबबममक पद तमकनबपदह जीम विसम लेजमउ व जीमपत जमदमजे जव उमतम सहमइतंपब वितउनसेण

सूत्र साहित्य की प्राचीन रचनाओं में अनेक शताब्दियों वेफ ज्ञान का भण्डार एकत्र किया गया है। वे शताब्दियों वेफ चिन्तन, मनन और अध्ययन वेफ परिणाम हैं। और उन्हें जो रूप प्राप्त हुआ है वह भी अनेक शताब्दियों की अनवरत परम्परा का परिणाम है भारतीय परम्परा में वेद को श्रुति कहा गया है और वह अपौरुषेय माना गया है, अर्थात् वेदान्तर्गत प्राचीन रचनाएँ-संहिता, ब्राह्मण-मनुष्यकृत रचनाएँ नहीं हैं। वे)षियों द्वारा दृष्ट हैं, उनवेफ द्वारा रचित नहीं हैं। सम्पूर्ण वेदा साहित्य वेद पर आधृत होने पर भी श्रुति से भि है और उसे अपौरुषेय न मानकर आचार्यों की रचनाओं वेफ रूप में स्वीकार किया गया है। कल्प वेफ अन्तर्गत आनेवाली सूत्रशैली की रचनाएँ भी श्रुति से भिन्न हैं। पौरुषेय न मानकर आचार्यों की रचनाओं वेफ रूप में स्वीकार किया गया है। कल्प वेफ अन्तर्गत आने वाली सूत्रशैली की रचनाएँ भी

तथाश्वलायन-बौधायनापस्तम्बकात्यायनप्रभृतीन् ग्रन्थकारत्वेन।´

श्रुति वेफ विपरीत स्मृति में न वेफवल सूत्र रचनाएँ आती हैं, अपितु मनु, याज्ञवल्क्य, पाराशर आदि वेफ श्लोक में निब(ग्रन्थ भी आते हैं, जिन्हें स्पष्टतः स्मृति कहा गया है।

स्मृति का आधार भी श्रुति ही है। श्रुति से स्वतन्त्र रूप में स्मृति की प्रामाणिकता नहीं होती। जैसा कि वुफमारिल ने कहा है इनवेफ नाम से ही यह तथ्य स्पष्ट है-

पूर्वविज्ञानविषयज्ञानं स्मृतिरिहोच्यते।
पूर्वज्ञानाद्विना तस्याः प्रामाण्यं नावधार्यते।।

इस प्रकार सूत्रों वेफ दो विस्तृत वर्ग किये जाते हैं-श्रौतसूत्र और स्मार्तसूत्र। इनमें श्रौतसूत्र तो वो हैं जिनवेफ ोत श्रुति में मिलते हैं। और स्मार्त वे हैं जिनका इस प्रकार का कोई ोत नहीं है। यह स्मरणीय है कि किया गया है, उन्हीं का प्रतिपादन श्लोब(स्मृतियों में भी किया गया है।

सूत्र भी स्मृति हैं इस सम्बन्ध में वुफमारिल का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय है-

यद्यपि स्मृतिशब्देन ना ानामभिधेयता।
यथाप्येषां न शाहत्वप्रमाणत्वरिराक्रिया।।

सूत्रों वेफ साथ भी)षियों वेफ नाम संयुक्तफ हैं, किन्तु ये नाम व्यक्तियों वेफ द्योतक हैं, चरण वेफ नहीं।

्यथा च कठादिचरणैरनादिभिः प्रोच्यमानानामनादिवेद- शाखानामनादिसमाख्यासम्भवो नैवं नित्यावस्थितमशकादि-गोत्रचरणप्रवचननिमित्तसमाख्योत्पत्तिः। मशकबौधायनापस्तम्बादिशब्दा ह्यादिमदेकद्रव्योपदेशिन इति न तेभ्यः प्रकृतिभूतेभ्यो(नादिग्रन्थविषय- समाख्याव्युत्पादनसम्भवः।।´

वैदिक साहित्य में कल्प को वेदा वेफ अन्तर्गत रखा गया है। 'चरणव्यूह१ वेफ अनुसार-'शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषम्' ये वेदा हैं। आपस्तम्ब ने इन्हें इस क्रम में गिनाया है 2. 4. 8 ्षडंगो वेदः कल्पो व्याकरणं ज्योतिषं निरुक्तं शिक्षाय कल्प सबसे पूर्ण वेदा है, इसवेफ अन्तर्गत सूत्रों का विशाल भण्डार समाहित है। ये सूत्र यज्ञ वेफ नियमों वेफ विषय में हैं। इनवेफ महत्त्व वेफ विषय में मैक्स मूलर ने ठीक ही कहा है-्फकल्पसूत्रों का वैदिक साहित्य वेफ इतिहास में अनेक कारणों से महत्त्व है। वे न वेफवल साहित्य वेफ एक नये युग वेफ द्योतक हैं और भारत वेफ साहित्यिक एवं धार्मिक जीवन वेफ एक नये प्रयोजन वेफ सूचक हैं, अपितु उन्होंने अनेक ब्राह्मणों वेफ लोप में योग दिया, जिनका अब वेफवल नाम ही ज्ञात है।´

जीम ज़ंसच.ेनजतें ंतम पउचवतजंदज पद जीम ीपेजवतल वि टमकपब सपजमतंजनतम वित उवतम जींद वदम तमेंवदए जीमल दवज वदसल उंता ंदमू चमतपवक वि सपजमतंजनतमए ंदक ंदमू चनतचवेम पद जीम सपजमतंतल ंदक तमसपहपवने सपमि वि प्दकपंए इनज जीमल बवदजतपइनजमक जव जीम हतंकनंस मगजपदबजपवद वि जीम दनउमतवने ठतीउंदेंए ूीपबी जव ने ंतम जीमतमवितम वदसल ादवूद इल दंउमण
च्हम 166

वेद की सहायता या अध्ययन वेफ बिना भी कल्पसूत्रों वेफ आधार पर यज्ञ किये जा सकते हैं, किन्तु सूत्रों की सहायता वेफ बिना ब्राह्मण या वेद वेफ याज्ञिक विधान का ज्ञान प्राप्त करना कठिन ही नहीं, असम्भव है। वुफमारिल ने कल्पसूत्र वेफ महत्त्व वेफ विषय में कहा है-

वेदादृते(पि वुफर्वन्ति कल्पैः कर्माणि याज्ञिकाः।
न तु कल्पैर्विना वेफचिनमन्त्रब्राह्मणमात्रकात्।।

भेद है। वुफछ कारण सूत्रों की भिन्नता भी है। अतः कई स्थानों पर जहाँ शाखा का भेद है वहाँ सूत्र का भी भेद है। यही बात महादेव ने हिरण्यवेफशिसूत्र टीका में कही है-

ष्तत्र कल्पसूत्रं प्रतिशाखं भिन्नमभिन्नमपि क्वचितू शाखाभेदे- ¹ध्ययनभेदाद्वा सूत्रभेदाद्वा। आ लायनीयं कात्यायनीयं च सूत्र हि भिन्नाध्ययनयोर्द्वयोः शाखयोरकैकमेव। तैत्तिरीयवेफ च समानाम्नाये समानाध्ययने नानासूत्राणि। अनेन च सूत्रभेदे शाखाभेदः शाखाभेदे च सूत्रभेदे इति परम्पराश्रय इति बाव्यम्॥

इसी आचार्य ने अर्वाचीन कहे जानेवाले सूत्रों की प्राचीनता वेफ विषय में भी एक नवीन बात कही है कि वे सूत्र भी जिनवेफ रचयिता अर्वाचीन मालूम पड़ते हैं, वस्तुतः शाश्वत हैं और प्राचीन)षियों से निःसृत हैं।

’न हि सूत्राणां कर्तृसम्बन्धिसंज्ञाघतनी किन्तु नानाकल्पगतासु तत्तन्नामकर्षिव्यत्तिफषु नित्या तत्प्रणीतसूत्रेषु च नित्यां जातिमवलम्ब्य तिष्ठति यथा पुरुषनामाङ्कितशाखासु संज्ञा।‘

कल्पसूत्र मुख्यतः चार प्रकार वेफ हैं-

1-श्रौतसूत्र-श्रौत अग्नि से होनेवाले बड़े यज्ञों का विवेचन करने वाले सूत्र।

2-गृह्यसूत्र-गृह्य अग्नि में होनेवाले घरेलू यज्ञ का उपनयन, विवाह आदि संस्कारों का विवेचन कारनेवाले सूत्र।

3-धर्मसूत्र-चारों आश्रमों , चारों वर्णों तथा उनवेफ धार्मिक आचारों का तथा राजा वेफ कर्तव्यों का वर्णन करनेवाले सूत्र।

4-शुल्बसूत्र-यज्ञ में वेदि आदि वेफ निर्माण-विधि का वर्णन करनवाले सूत्र।

कल्पसूत्रों वेफ शाखाभेद

कल्पसूत्रों की रचना वेफ पहले ब्राह्मणग्रन्थों की विभिन्न शाखाएँ या चरण थे। ब्राह्मणों में किसी सूत्र का उल्लेख नहीं है, किन्तु ऐसा कोई सूत्र नहीं है, जिसमें ब्राह्मणों की विविध शाखाओं वेफ नामों का उल्लेख न हो। सूत्रों की रचना वेफ साथ-साथ वुफछ नयी शाखाओं या चरणों का विकास हुआ। आश्वलायन और कात्यायन की शाखाएँ ऐसी ही हैं। वुफछ सूत्र तो प्राचीन हैं और उनका सम्बन्ध ब्राह्मणग्रन्थों की शाखाओं से ही है। सूत्ररचनाओं वेफ तिथिक्रम वेफ विषय में प्रो0 मैक्स मूलर ने इस तथ्य की ओर संवेफत किया है कि शाखाओं की परम्परा वेफ आधार पर भी सूत्रों वेफ काल का संवेफत किया गया है। उदाहरण वेफ लिए तैत्तिरीय शाखा का प्राचीनतम सूत्र बौधायन का है। उनवेफ बाद भारद्वाज, आपस्तम्ब, सत्याषाढ, हिरण्यवेफशी, बाधूल और वैखानस वेफ सूत्र हैं। इनमें अन्तिम दो को छोड़कर अन्य वेफ नाम पर विभिन्न चरणों का नाम पड़ा है। यद्यपि कोई भी सूत्र किसी चरण की स्थापना का उद्देश्य लेकर नहीं रचा गया था, तथापि इसे विभिन्न वर्गों ने एक नये चरण का रूप दे दिया।

शाखाओं की भिन्नता स्वाध्याय वेफ आधार पर उत्पन्न हुई है। आ लायन और कात्यायन वेफ कल्पसूत्र दोनों शाखाओं में समान हैं, किन्तु तैत्तिरीयसंहिता से सम्ब(सूत्र भिन्न-भिन्न शाखाओं वेफ हैं। कभी-कभी सूत्र वेफ भेद वेफ साथ ही शाखाभेद की उत्पत्ति हुई है।

हिरण्यवेफशी-सूत्र वेफ व्याख्याकार महादेव ने तो सूत्रों का सम्बन्ध भी अपौरुषेय कही जानेवाली वैदिक रचनाओं से जोड़ा है-

ष्यथाध्ययनभेदाच्छाखाभेदो¹नादिरेव सूत्रभेदादपि। न हि सूत्राणां कर्तृसम्बन्धिसंज्ञाघतनी किन्तु नानाकल्पगतासु तत्त ामकषिव्यत्तिफषु नित्या तत्प्रणीतसूत्रेषु च नित्यां जातिमघवलम्ब्य तिष्ठति यथा पुरुषनामाङ्कितशाखासु संज्ञा॥ष्

इस प्रकार महादेव ने शाखा से मंत्रों और ब्राह्मणों की परम्परा का अर्थ लिया है। शाखा वेफ अन्तर्गत अ भी आ सकता है और उसवेफ होने पर भी हम उसे वेद मान सकते हैं।

ष्ननु स्वाध्यायैकदेशो मन्त्रब्राह्मणात्मकः शाखेत्युच्यते। तयोर्मन्त्रब्राह्मणयोरन्यतरभेदेन वेदे¹वान्तरशाखाभेदः स्यादिति चेत्। सत्यम् यथा सा : स्वाध्यायो वेदशब्दवाच्य एवं शाखापि सा ैव वेदैकत्वेन शाखान्तरत्वं लभते। तत्रा स्य सूत्रस्य

1. आपस्तम्ब,	मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।
2. बौधायन,	मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।
3. सत्याषाढ हिरण्यवेफशी,	मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।
4. मानवसूत्र,	विस्तृत ग्रन्थों में उपलब्ध।
5. भारद्वाजसूत्र,	उ(ृत।
6. वाधूलसूत्र,	उ(ृत।
7. वैखानससूत्र,	उ(ृत।
8. लौगाक्षिसूत्र,	उ(ृत।
9. मैत्र-सूत्र,	उ(ृत।
10. कठसूत्र,	उ(ृत।
11. वाराहसूत्र,	उ(ृत।

शुक्लयजुर्वेद :

1.कात्यायन-सूत्र, मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।

सामवेद :

1. मशक आर्षेय कल्प, मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।
2. लाट ायन-सूत्र ;कौथुमद्ध, मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।
3. द्राह्यायणसूत्र ;गणायनीयद्ध मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।

)ग्वेद :

1. आ लायनसूत्र, मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।
2. शांख्यायनसूत्र, मूल तथा व्याख्या उपलबध।
3. शौनकसूत्र, मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।

अथर्ववेद :

1. कौशिकसूत्र, मूल तथा व्याख्या उपलब्ध।

गृह्यसूत्र

सूत्र साहित्य वेफ अन्तर्गत श्रौतसूत्र वेफ अतिरिक्त गृह्य और सामयाचारिकसूत्र भी आते है। गृह्यसूत्रों और सामयाचारिक अथवा धर्मसूत्रों को स्मार्तसूत्र वेफ वर्ग में रखा जाता है।

प्रतिपाद्यविषय

गृह्यसूत्रों में मुख्यतः उन याज्ञिक कर्मों और संस्कारों का वर्णन है, जिनका सम्बन्ध मुख्यतः गृहस्थ से है। एक ओर जहाँ श्रौतसूत्रों में दर्श, पूर्णमास, पिण्डपितृयाग, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, निरूढ पशु, सोमयाग, सत्र, गवामयन, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणी, अ मेध, पुरुषमेध, एकाहयाग, अहीन नाम वेफ यज्ञों का विवेचन है, तो दूसरी ओर धर्मसूत्रों में चार वर्णों और चार आश्रमों वेफ कर्तव्यों का, शिष्टाचार, राजा वेफ कर्तव्य, अतिथिसत्कार, प्रायर्ा त और सम्पत्ति और सम्पत्ति वेफ उत्तराधिकार से सम्ब(नियमों का विवेचन है। किन्तु गृह्यसूत्रों वेफ विषय विविध हैं। इनमें संस्कारों का वर्णन प्रधान होने पर भी अनेक सामाजिक प्रथाओं और रीति-रिवाजों वेफ भी वर्णन हैं। प महायज्ञ, श्रा(कर्म

का वर्णन। गृह्यसूत्रों वेफ अन्तर्गत अनेक रोचक कर्मों का भी वर्णन किया गया है। इन कर्मों का सम्बन्ध प्रथाओं और रीतिरिवाजों से है। विण्टरनित्स वेफ शब्दों में-

जीम बवदजमदजे व जीम ळीतलेंजपजतें तम ेजपसस उवतम उंदपविसक ंदक पद ेवउम तमेचमबजे उवतम पदजमतमेजपदहण जीमल बवदजंपद कपतमबजपवदे वित ंसस नेंहमेए बमतमउवदपमे ंदक ेंबतपपिबमे इल अपतजनम व ीपिबी जीम सपमि व जीम प्दकपंद तमबमपअमे ीपहीमत ेंदबजपजलए ंिज जीम प्दकपंदे बंसस ेंउेंतंए तिवउ जीम उवउमदज ीमद ीम पे बवदबमपअमक पद जीम ूवउइण जपसस जीम ीवनत व ीपे कमंजी ंदक ेजपसस नितजीमत जीतवनहीज जीम कमंजी बमतमउवदपमे ंदक बनसज व जीम ेवनसण चंहम 238

'गृह्य' शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की गयी है। आ लायन- गृह्यसूत्र की व्याख्या वेफ अनुसार गृह का अर्थ घर और पत्नी है। जैसे 'सगृहो गृहमागतः' में 'गृह' का प्रयोग 'पत्नी' और 'घर' दोनों ही अर्थों में हुआ है। गृह्यकर्म उस अग्नि में किये जाते हैं जो अग्नि विवाह वेफ समय प्रज्ज्वलित की जाती है। जो अग्नि विवाह वेफ समय प्रज्वलित की जाती है इस अग्नि या अग्नि की वेदी को गृह्य कहते हैं। किन्तु जैसा कि मैक्स मूलर का कथन है 'गृह' का पत्नी अर्थ होने में सन्देह है, अपितु उपर्युक्तफ प्रयोग में परिवार का ही अर्थ प्रतीत होता है। गृह्य का मौलिक अर्थ घर अथवा अग्नि की वेदी भी माना गया है, बड़े यज्ञों में अग्नि की कई वेदियाँ बनायी जाती थीं लेकिन गृह्यकर्मों में अग्नि की एक ही वेदी होती थी।

ळीीलंए जीमतमवितमए चतवइंइसल उमंदज वतपहपदंससल जीम ीवनेम वत जीम उिपसल.हतींए ीवनेमए ंदक पज ूं पद वचचवेपजपवद जव जीम हतमंज ेंबतपपिबमे वित ूीपबी मअमतंस ीमंतजी ूमतम तमुनपतमकए ंदक ूीपबी ूं बंससमक *टपजंदपां*एजीज जीम कवउमेजपब बमतमउवदपमे ूमतम बंससमक हतीलंए ं चमतवितउमक इल उमंदे व वदम कवउमेजपब पितमण मैक्स म्यूलर।

गोभिलसूत्र में इन कर्मों को 'गृह्यकर्माणि' कहा गया है और व्याख्याकार ने गृह्य का अर्थ स्मृति वेफ आधार पर किये जानेवाले कर्म अथवा 'पत्नी वेफ साथ किये जाने वाले कर्म' अर्थ ग्रहण किया है-

प्अथातो गृह्यकर्माण्युपदेक्ष्यामः ।।7।। गृह्यशब्देन स्मार्ताग्निरुच्यते। तस्मिन् यानि कर्माणि तानि गृह्यकर्माणि। दीर्घत्वं छान्दसम्। अथवा गृह्या स्मृतिः, तस्यां यानिकर्माणि। अथवा गृह्या पत्नी। तया सहितस्य यानि कर्माणि।ब्

गृह्यसूत्रों वेफ अनुसार जो कर्म किये जाते हैं उनका सामान्य नाम पाकयज्ञ है। 'पाक' का अर्थ पकाना नहीं है अपितु छोटा या पूर्ण अर्थ है। हरदत्त का भी कथन है प्पाकशब्दोऽल्पवचनःब् छोटे वेफ अर्थ में यह प्रयोग उद्धृत किया गया है। 'योऽस्मात् पाकतरः' व्याख्याकार वेफ अनुसार इसका अर्थ पूर्णता है। ये कर्म मनुष्य को योग्यता प्रदान करते हैं। सुदर्शनाचार्य वेफ अनुसार प्पावेफन पक्वेन चरुणा साध्यो यज्ञः। पाकयज्ञ वेफ अन्तर्गत निम्नलिखित संस्थाएँ आती हैं-आपौसनहोम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिश्रा(, सर्पबलि, ईशानबलि। गृह्यसूत्रों में जिन कर्मों का वर्णन है वे आचारलक्षण हैं। इनका ज्ञान प्रयोग या आचार से होता है, श्रुति से नहीं। 'आपस्तम्बगृह्यसूत्र' का प्रथम सूत्र है-

प्अथ कर्माण्याचाराद्यानि गृह्यन्ते।ब्

'अनावुफला' वृत्ति वेफ रचयिता हरदत्त वेफ शब्दों में-

प्द्विप्रकाराणि कर्माणि-श्रुतिलक्षणानि आचारलक्षणानि च। तत्र श्रुतिलक्षणानि व्याख्यातानि। अथेदानीं यानि कर्माणि विवाहप्रभृतीनि आचारात् प्रयोगात् गृह्यन्ते, ज्ञायन्ते, न प्रत्यक्षश्रुतेः, तानि व्याख्यास्यामः।ब्

पाकयज्ञ वेफ भी कई विभाग किये गये हैं। पारस्करगृह्यसूत्र में पाकयज्ञ का वर्गीकरण चार वर्गों में किया गया है-हुत, आहुत, प्रहुत और प्राशित। बौधायनगृह्यसूत्र वेफ अनुसार पाकयज्ञ सात प्रकार वेफ हैं, हुत, प्रहुत, आहुत, शूलगव बलिहरण, प्रत्यवरोहण तथा अष्टकाहोम। यज्ञ में आहुति देने को हुत कहा जाता है। आहुति वेफ उपरान्त ब्राह्मणों को दक्षिणा देने पर प्रहुत होता है। यदि उसवेफ उपरान्त कर्म करनेवाला उपहार प्राप्त करे तो आहुत होता है जैसे उपनयन और समावर्तन में।

गृह्यसूत्रों में 11 से लेकर 18 संस्कारों तक का विवेचन किया गया है। पारस्करगृहासूत्र में निम्नलिखित 13 संस्कारो का विवेचन है-विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अ प्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, वेफशान्त, समावर्तन, अन्त्येष्टि।

विभिन्न वेदों के गृह्यसूत्रों के विषय में संक्षिप्त विवरण अपेक्षित है-

वेद

)ग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्ववेद

)ग्वेदीय गृह्यसूत्र

;ग्द्ध आ लायनगृह्यसूत्र-)ग्वेद से संब(आश्वलायनगृह्यसूत्र में चार अध्याय हैं, जिनका विभाजन कई खण्डों में किया गया है। इसमें प्राचीन आचार्यों के नाम मिलते हैं और वेद के अध्ययन के नियमों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। हरदत्त की व्याख्या के साथ यह गृह्यसूत्र अनन्तशयन ग्रन्थमाला में प्रकाशित है।

;द्ध शा ायनगृह्यसूत्र-)ग्वेद से संब(दूसरा गृह्यसूत्र शा ायन- गृह्यसूत्र है। संस्कारों के वर्णन के अतिरिक्त इस गृह्यसूत्र के छः अध्यायों में गृहनिर्माण, गृहप्रवेश आदि का भी वर्णन है। इस गृह्यसूत्र की रचना सुयज्ञ ने की है। इसका अंग्रेजी अनुवाद ओल्डेन बर्ग ने किया है।

;द्ध कौषितकिगृह्यसूत्र-प्रायः शा ायन और कौषीतक शाखा को एक ही माना जाता रहा है, किन्तु शा ायन शाखा के गृह्यसूत्र के अतिरिक्त कौषीतक शाखा का भी कौषीतकि-गृह्यसूत्र उपलब्ध हुआ है। इसके रचयिता शाम्भव्य के नाम के आधार पर इस गृह्यसूत्र को शाम्भव्यगृह्यसूत्र भी कहा गया है। इस गृह्यसूत्र में शा ायन गृह्यसूत्र में वर्णित विषय की दृष्टि से समानता अवश्य उपलब्ध होती है, तथापि दोनों सर्वथा भि हैं। कौषीतकगृह्यसूत्र में ऽ अध्याय हैं। इनमें प्रथम 4 अध्याय विषय की दृष्टि से शा ायनगृह्यसूत्र के अनुरूप हैं। यह गृह्यसूत्र 1944 ई0 में मद्रास विश्वविद्यालय से संस्कृत ग्रन्थावली में प्रकाशित हुआ है।

की कई व्याख्याएं हुई हैं। इसवेफ पाँच व्याख्याकार हैं-कर्क, जयराम, हरिहर, गदाधर तथा विश्वनाथ। कर्कभाष्य वेफ साथ पारस्करगृह्यसूत्र का संस्करण चौखम्बा संस्कृत सीरीज में प्रकाशित हुआ है। पाँच भाष्यों वेफ साथ इस गृह्यसूत्र का संस्करण गुजराती प्रेस बम्बई से प्रकाशित है।

;2द्ध बौधायनगृह्यसूत्र-कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का गृह्यसूत्र बौधायनगृह्यसूत्र है। इसवेफ अतिरित्तफ इस शाखा वेफ चार और गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं। बौधायनगृह्यसूत्र अपने श्रौत तथा कल्प वेफ साथ इस प्रकार संब(है कि सम्पूर्ण कल्प एक ग्रन्थ वेफ रूप में प्रतीत होता है। इस गृह्यसूत्र का प्रकाशन गवर्नमेण्ट ओरियण्टल लाइब्रेरी मैसूर से हुआ है।

;3द्ध आपस्तम्बगृह्यसूत्र-आपस्तम्बगृह्यसूत्र भी कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से संब(है। आपस्तम्बकल्प का प्रश्न 25, 26 गृह्यसूत्र है। इस गृह्यसूत्र में आठ पटल और तेईस खण्ड हैं। इसका सम्पादन डॉ0 विण्टरनित्स ने 1887 में किया और चौखम्बा संस्कृत सीरीज में इसका पहली बार प्रकाशन 1928 में हुआ। इसका हिन्दी अनुवाद युत्तफ संस्करण प्रस्तुत है। ओल्डेनबेर्ग ने इसका अंग्रेजी अनुवाद 'सेक्रेड बुक्स आपफ दि इस्ट' गन्थमाला 30 में किया है। इस गृह्यसूत्र वेफ विषय में विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा।

;4द्ध हिरण्यवेफशी-गृह्यसूत्र-कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का तीसरा गृह्यसूत्र हिरण्यवेफशीगृह्यसूत्र भी उपलब्ध है। इसे सत्याषाढ़गृह्यसूत्र भी कहते हैं। इसका प्रथम संस्करण डॉ0 क्रिष्टे ने वीयना से निकला था और इसका अंगेजी अनुवाद भी 'सेक्रेड बुक्स आपफ दि इस्ट' ग्रन्थमाला 30 में हुआ है।

;5द्ध भारद्वाजगृह्यसूत्र-कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का एक अन्य गृह्यसूत्र भारद्वाजगृह्यसूत्र है। यह लन्दन से 1913 ई0 में प्रकाशित हुआ है।

;6द्ध मानवगृह्यसूत्र-कृष्णयजुर्वेद की मैत्रायणी शाखा का यह गृह्यसूत्र अष्टावक्रभाष्य वेफ साथ गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज में प्रकाशित है।

;7द्ध काठकगृह्यसूत्र-काठकगृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा से संब(है। इसे लौगाक्षिगृह्यसूत्र भी कहते हैं। इसमें 73 कण्डिकाएँ हैं अथवा पाँच अध्याय हैं। इसे चारायणीय सूत्र भी कहते हैं। इसकी तीन टीकाएँ उपलब्ध हैं। डॉ0 कैलैण्ड ने इसका संस्करण लाहौर से प्रकाशित कराया था।

;8द्ध वाराह गृह्यसूत्र-वाराह गृह्यसूत्र कृष्णयजुर्वेद की चरक शाखा से सम्ब(मैत्रायणी का सूत्र है। इसमें 17 खण्ड हैं। यह गृह्यसूत्र पहले डॉ0 सामशाही तथा बाद में डॉ0 रघुवीर द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित है।

;9द्ध अग्निवेश्य गृह्यसूत्र-अग्निवेश ऋषिप्रणीत यह गृह्यसूत्र कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित है जो तीन प्रश्नों में निहित है। इसमें अन्य गृह्यसूत्रों से भिन्न यति-संस्कार संन्यासविधि, वाप्रस्थ विधि तथा व्यासवलि आदि का निरूपण किया गया है। त्रावणकोर विश्वविद्यालय से 1940 में वैद्यशाह्र निपुण ल्प्दृ ٴ्वप टमतउ द्वारा त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित है।

;10द्ध वैखानस गृह्यसूत्र-यह कृष्ण यजुर्वेद की वैखानस शाखा से सम्बन्धित है तथा आनन्द आश्रम संस्कृत सीरीज में अन्य गृह्यसूत्रों वेफ साथ प्रकाशित है।

सामवेदीय गृह्यसूत्र

;1द्ध गोभिलगृह्यसूत्र- सामवेद से संब(गृह्यसूत्रों में गोभिलगृह्यसूत्र प्रमुख है। यह सबसे प्राचीन है और कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें सामवेद और मन्त्रब्राह्मण वेफ मन्त्रों वेफ उ(रण हैं। इसका संस्करण कलकत्ता से प्रकाशित है।

;2द्ध खदिरगृह्यसूत्र-सामवेद को राणायनीय शाखा का गृह्यसूत्र खदिरगृह्यसूत्र है जो गोभिलगृह्यसूत्र से मिलता-जुलता है। यह मैसूर से प्रकाशित है।

;3द्ध जैमिनीयगृह्यसूत्र-सामवेद से संब(जैमितीय गृह्यसूत्र दो खण्डों में विभत्तफ है। प्रथम खण्ड में 24 कण्डिकायें है और द्वितीय खण्ड

;द्ध कौशिकगृह्यसूत्र-अथर्ववेद से संब(वेफवल एक ही गृह्यसूत्र उपलब्ध है कौशिकगृह्यसूत्र। इसमें 14 अध्याय हैं। इस गृह्यसूत्र की दो व्याख्याएँ उपलब्ध होती हैं जिनवेफ लेखक हारिल और वेफशव हैं। इसमें यातुविद्या अथवा प्राचीन काल वेफ जादू की अनेक क्रियाओं का वर्णन है और अथर्ववेद वेफ कई आभिचारिक सूत्तफों को समझने में सहायता मिलती है। वैद्यकशास्त्र वेफ विषयों पर भी इस गृह्यसूत्र से प्रकाश पड़ता है। इसका संस्करण ब्लूमपफील्ड ने 1890 में अमेरिका से प्रकाशित कराया और हिन्दी अनुवाद वेफ साथ संस्करण 1942 में मुज़्फ़रपफरपुर से प्रकाशित हुआ है।

गृह्यसूत्रों का उद्भव और विकास

यद्यपि गृह्यसूत्रों में मुख्य रूप से आर्यों वेफ दैनिक धार्मिक जीवन से सम्ब(उन कृत्यों का वर्णान किया गया है, जो गृह्य-अग्नि वेफ माध्यम से गृह में ही सम्प होते हैं, तथापि वैदिक आर्यों वेफ प्राचीन सामाजिक तथा गृह्य जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालने वेफ कारण इनका गौरव और भी बढ़ गया है। वस्तुतः आर्यों का सामाजिक और गृह्य जीवन भी उनवेफ धार्मिक विचारों और क्रियाकलापों से इतना ओत-प्रोत था कि दोनों को एक-दूसरे से पृथक् करना असम्भव है। उनवेफ जीवन की प्रत्येक घटना और क्रिया में धार्मिक विश्वासों और श्र(ा पर अधृत थी। जीवन की छोटी से छोटी घटना भी किसी धार्मिक कृत्य से सम्ब(थी।

किन्तु यह न समझना चाहिए कि यह धर्मपरायणता वेफवल भारतीय आर्यों की निजी विशेषता है, इन गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित अनेकों क्रियाकलापों वेफ समानान्तर कर्मकाण्डीय क्रियाकलाप और रीति-रिवाज अन्य भारोपीय जातियों में भी दृष्टिगोचर होते हैं। यूनानियों, रोमनों, जर्मनों और स्लावों वेफ विवाह-संस्कारों से तुलना करने पर पता चलता है कि भारोपीय आर्यों में परस्पर भाषागत सम्बन्धों से भी बहुत गहरे सामाजिक और धार्मिक सम्बन्ध विद्यमान हैं।[1]

संसार की सभी आदिम जातियां अपने धार्मिक जीवन में पदार्पण को द्वितीय जन्म समझती थीं, और देवताओं को प्रस करने हेतु अग्नि में हविष्य प्रदान करने की प्रथा यूनान और इटली में भी पायी जाती थी। विवाह वेफ समय पति-पत्नी द्वारा लाजा होम जैसी प्रथाएं भारोपीय आर्यों में प्रचलित थीं।

रोमन लोगों में अग्नि में हविष्य प्रदान करने से पूर्व दम्पती द्वारा बाएं से दाहिने अग्नि की परिक्रमा करने की प्रथा थी। भारतीय पाणिग्रहण की प्रथा से बहुत मिलती जुलती फ्हेक्स्ट्रेरम जंक्शोय् प्रथा रोमनों में प्रचलित थी। विवाह में पति द्वारा पत्नी वेफ शिरोविमोचन कर्म, सप्तपदी कर्म तथा नवविवाहित जोड़े पर यव आदि अ उछालने की प्रथा भी भारोपीय आर्यों में किसी न किसी रूप में प्रचलित थी[2]। दो काष्ठों में परस्पर संघर्ष द्वारा अग्नि उत्प करने का कृत्य और भी प्राचीन सि(होता है। इसी प्रकार वेदि-निर्माण वेफ समय पांच प्रकार वेफ पशुओं वेफ सिरों को वेदी की नींव में चुनने की प्रथा भी अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित इस विश्वास पर आधृत थी कि जब किसी मनुष्य या पशु की बलि न दी जाये, वास्तु-निर्माण का कार्य चिरस्थायी नहीं हो सकता[1]। इसवेफ अतिरिक्त यौवन में पदार्पण करते ही दीक्षा ग्रहण करने का भी रिवाज उनमें था[2]।

इन तथ्यों से सि(होता है कि वुफछ गृह्यकर्म अत्यन्त प्राचीन काल से आर्यों वेफ जीवन में घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं, जो विभि दिग्दिगन्तरों में प्रसरण करते हुए आर्यों वेफ साथ-साथ परम्परा वेफ रूप में प्रचलित रहे, किन्तु विविध आचार-व्यवहार वाली नाना जातियों वेफ साथ सम्पर्वफ में आने वेफ कारण इन परम्पराओं का विकास नाना रूपों में हुआ। आर्यों वेफ रीति-रिवाजों में से वुफछ-एक में सम्पर्क-जन्य परिवर्तन हुए और वुफछ-एक अन्य आर्येतर रीति-रिवाजों ने आर्यों वेफ सामाजिक तथा धार्मिक जीवन में इस प्रकार घर कर लिया कि आज उन्हें पृथक् रूप में देख सकना दुष्कर हो गया है। समय वेफ साथ-साथ ये नवागन्तुक रीति-रिवाज तथा धार्मिक कृत्य आर्यों वेफ जीवन में सदा वेफ लिए समुद्र में बूंद वेफ समान इस प्रकार विलीन हो चुवेफ हैं कि इन बाह्य, किन्तु समाज में ब(मूल, विचारों का उन्मूलन गृह्यसूत्रकार भी न कर सवेफ, न ही उन्होंने ऐसा करना अभीष्ट ही समझा। विवाह-संस्कार का वर्णन करते हुए पा. गृ. सू. ;1. 8, 11-13द्ध में कहा गया है कि विवाह और श्मशान कृत्यों में ग्राम में प्रचलित रीति-रिवाजों को करना चाहिये।[3]

इस विषय में यह स्मरणीय है कि सभी आर्य कबीलों तथा वुफलों वेफ रीति-रिवाज एक से नहीं थे। ग्राम प्रायः एक ही वुफल वेफ जन समूह को कहते थे।

इस प्रकार आश्व. गृ0 सू0 में भी कहा गया है कि विवाह वेफ विषय में जनपदों तथा ग्रामों से अन्य प्रकार वेफ धर्म प्रचलित हैं, उन्हीं

इन गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित कृत्य प्रायः समन्त्रक होते है। उनमें से वुफछ मन्त्र तो तत्तद् गृह्यसूत्र से सब(संहिता से लिये जाते हैं, वुफछ मन्त्र संहिताओं से भी ग्रहण किये गये हैं, किन्तु बहुत बड़ी संख्या ऐसे मन्त्रों की भी है, जो या तो अन्य वैदिक ग्रन्थों से संगृहीत हैं, अथवा तत्तत्-कार्य-विशेष वेफ लिये रचे गये हैं और मन्त्र पाठों वेफ रूप में संगृहीत होते हैं। इसवेफ अतिरिक्तिफ बहुत से मन्त्र ऐसे भी हैं, जिनवेफ ोत का आज हमें कोई ज्ञान नहीं। भि -भि गृह्यसूत्रों वेफ विवाह प्रकरणों में संकलित इन मन्त्रों का ब्योरेवार विभाजन अधोलिखित तालिका से स्पस्ट हो जाएगा-

सूत्र ग्रन्थ	मन्त्र	संहिता से	मन्त्र पाट से	अन्य ोत से	अज्ञात ोतों से
आश्व. गृ.	21	)ग्वेद 14	3	1	1
भार. गृ.	119	तै. सं. 9	43	54	13
हि. गृस.	119	तै. सं. 9	43	54	13
बौ गृ.	150	तै. सं. 14	59	-	77
वैख्रा. गृ.	160	तै. सं.-1,)क्सं 27, अथर्व-1, वा. सं. 216 =31	75	38	
गो. गृ.	55	साम-1	48	6	-
कौ. सू.	131	अथर्व. 111			20

इस तालिका से पता चलता है कि इन गृह्यसूत्रों में जहां अनेकों मन्त्रों वेफ विषय में कोई निश्चय नही किया जा सकता, और अनेकों मन्त्र तत्तत्कर्म को लक्ष्य में रख कर रचे गये हैं, वहां ऐसे मन्त्र भी कर्मों में विनियुक्तिफ हैं, जिनकी प्राचीनता प्राचीनतम वैदिक काल तक पहुंचती है।)ग्. 10,85 में विवाह कृत्यों का उल्लेख होने वेफ कारण और इन मन्त्रों का पश्चात्वर्ती गृह्यकर्मों में एतदर्थ विनियुक्तिफ होने से यही सि(होता है कि गृह्यों की परम्परा)ग्वैदिक काल को स्पर्श करती है। इसी प्रकार गृह्यसूत्रों में विवाहित अन्त्येष्टि कर्मों का मूल हमें)ग्वेद वेफ दशम मण्डल वेफ चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें सूक्तिफों में मिलता है।

)ग्वैदिक काल में गृह्यकृत्यों की स्थिति वेफ विषय में प्राध्यापक ओल्डनबर्ग ने कल्पना की थी कि क्योंकि गृह्यकर्मों का क्षेत्र सोम सम्बन्धी यागों से छोटा और क्रिया कलाप अपेक्षाकृत सरल हैं, अतः उन गृह्यकर्मों में वैदिक)चाओं का प्रयोग नहीं होता था और ये कर्म अत्यन्त सादे ढंग से, सम्भवतः छोटे-छोटे गद्यात्मक मन्त्रों वेफ द्वारा सम्प कर लिये जाते थे[1]।

इस कल्पना की पुष्टि वेफ लिए इस विद्वान् आलोचक की स्थापना यह है कि गृह्यसूत्रों में विनियुक्तिफ मन्त्रों में से यद्यपि वुफछ वस्तुतः प्राचीन हैं, तथापि इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि इनकी रचना गृह्यकर्मों वेफ प्रतिपादन वेफ लिए ही की गई थी। कर्मों वेफ साथ उनवेफ सम्बन्ध का अध्ययन करने से तो उल्टा यही परिणाम निकलता है कि वुफछ एक ऐसे मन्त्र अवश्य हैं, जो गृह्यकर्मों में विनियोगार्थ ही निर्मित किये गये थे, किन्तु ये मन्त्र अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। इनमें से अधिकांश मन्त्र तो पश्चात्कालिक संहिताओं में, विशेषतः अथर्ववेद में, उपलब्ध होते हैं। अन्य मन्त्रों वेफ मूल ोत का ही पता नहीं चलता। अतः)ग्वैदिक काल वेफ अन्तिम काल में सोमयाग वेफ अनुसरण पर ही गृह्यकर्मों में भी)चाओं का प्रयोग होने लगा था[2]।

अपनी इस अन्तिम मान्यता को पुष्टि वेफ लिए प्राध्यापक महोदय ने दो तर्वफ प्रस्तुत किये हैं। एक तो यह है कि विवाह और मृत्यु सम्बन्धी)चाएं)ग्वेद वेफ दशम मण्डल में पायी जाती और दूसरा यह कि ये गृह्य-प्रतिपादक)चाएं अनुष्टप् छन्द में विरचित हैं, जिससे इनकी अर्वाचीनता सि(होती है[3]। किन्तु डा. विण्टरनित्स ने ओल्डनबर्ग की इस मान्यता का प्रतिवाद किया है। उनवेफ मतानुसार यह कल्पना अत्यन्त असम्भावनीय है कि किसी भी काल में विवाह और मृत्यु से सम्ब(कृत्य वैदिक)चाओं वेफ बिना भी सम्प होते थे। कई एक कर्म तो

1 fo.VjfuRl ¶Vk;u, dEisjfVo LVMh vk;jOb.Mks;wksfi;u dYpj] fo~Ikois'kv jsiOisal VoeS jst&dYpj]

सामयाग सरल ओर संक्षिप्त गृह्यकर्मों से अवश्य ही प्राचीनतर कर्म है। सम्भावनीय विचार तो यह है कि वैदिक काल में काव्य की दो समानान्तर धाराएं प्रवाहित थीं। एक तो)ग्वेद की कला-पूर्ण, अलंकार-प्रधान धारा थी और दूसरी जनसाधारण में प्रचलित लोककाव्यधारा, जिसका प्रतिनिधित्व अथर्ववेद और गृह्यमन्त्र करते हैं। ये दोनों धाराएं कभी एक दूसरे वेफ पास आ जाती थीं तो कभी दूर हट जाती थीं। जहां तक अनुष्टुप् छन्द वेफ प्रयोग का सम्बन्ध है, हमें स्मरण रखना चाहिये कि ये मन्त्र जनसाधारण की थाती थे। दूसरे, मन्त्रपाठ पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि इनमें व्याकरण वेफ समान ही छन्दो रचना वेफ नियमों की जी खोलकर अवहेलना की गयी है। अतः इन तर्कों वेफ आधार पर गृह्यसूत्रों वेफ विकास-क्रम का निर्णय करना उचित नहीं[6]।

यदि ओल्डनबर्ग वेफ उत्तफ विचार को मान भी लिया जाये कि गृह्यकर्मों में प्रयुत्तफ मन्त्र)ग्वेद वेफ प्राचीन भागों से अर्वाचीन हैं, तो भी इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि इन मन्त्रों की रचना से पूर्व गृह्यकर्मों में इसी प्रकार वेफ अन्य मन्त्रों का प्रयोग नहीं होता था। यह सर्वथा असम्भव नहीं कि जनसाधारण में प्रचलित और प्रसि(उन मन्त्रों को)ग्वेद जैसे असाधारण और कलापूर्ण काव्यात्मकसंग्रह में स्थान देना आवश्यक न समझा गया हो[1]। ई0 डबल्यू, पफे[2] तथा वी. एम. आप्टे[3] द्वारा गृह्यसूत्रों में विनियुत्तफ मन्त्रों वेफ वर्गीकरण का प्रयत्न किया गया है, किन्तु इस प्रकार वेफ वर्गीकरण का कोई उचित आधार न होने वेफ कारण दोनों प्रयत्न असपफल रहे हैं। इस प्रकार वेफ किसी भी वर्गीकरण वेफ मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह है कि एक ही मन्त्र परस्पर असम्ब(, विविध क्रिया-कलापों में विनियुत्तफ होता देखा जाता है। ऐसे मन्त्रों का कर्मों में विधान पाया जाता है, जिनका उन कर्मों वेफ साथ दूर का भी सम्बन्ध दृष्टिगोचर नहीं होता। कभी-कभी तो विनियुत्तफ मन्त्र में किसी वर्ण समूह का कर्म में प्रयोज्य वस्तु वेफ साथ उच्चारण साम्य को ही विनियोग का आधार माना गया है, जो अत्यन्त हास्यापस्द है। यथा, विवाह वेफ अवसर पर वर-वधू वेफ साथ-साथ दधिभक्षण का विधान इस मन्त्र से किया गया है[4] ;जिसमें प्रयुत्तफ दधिक्राव्णः ;आवस्यद्ध शब्द दधिभक्षण वेफ साथ वेफवल दधि शब्द पर आधृत वर्ण-साम्य-सम्बन्ध वेफ अतिरित्तफ और कोई सम्बन्ध नहीं हैद्ध-दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत् प्रण आयूषि तारिषत्   ;)ग्वेद 4, 39, 6द्ध 11 फ्जिस दधिक्रावा नामक विजयशाली, वेगवान् अश्व की हमने स्तुति की है वह हमारे मुखों को सुरभित करें तथा हमारी आयु की वृ(करेंग्। आश्चर्य की बात यह है कि)ग्वेद अथवा वा. सं. प्रभृति संहिताओं वेफ भाष्यकारों में से किसी ने भी फ्दधिक्रावाग् का अर्थ दही को पचाने वाला फ्वैश्वानरग् नहीं किया।

इसी प्रकार)ग्वेद ;8, 101, 15द्ध वेफ माता रुद्राणाम् प्रभृति मन्त्र का विनियोग गृह्यसूत्रों में मधुपर्वफ वेफ प्रसंग में अतिथि द्वारा गौ को मुत्तफ करने वेफ लिए किया गया है, किन्तु गृ. सू. ;1, 2, 27द्ध में इसी मन्त्र का विनियोग गौ का वध करने वेफ लिए गया है ये दोनों परस्पर वि(विनियोग तो विस्मय-जनक हैं ही, इनमें से किसी भी विनियोग का मन्त्रार्थ वेफ साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यजुर्वेद वेफ साथ कर्मों से सम्ब(सामग्री का प्रायः अभाव है। पाकयज्ञ आदि वुफछ पारिभाषिक शब्दावली[5] वेफ अतिरित्तफ गृह्यसूत्रों वेफ विकास वेफ विषय में इस वेद में कोई जानकारी नहीं पाई जाती । दूसरी ओर अथर्ववेद वेफ मन्त्रों की रचना मुख्य रूप में गृह्यकर्मों वेफ लिए की गयी प्रतीत होती है। इसवेफ मन्त्र ब्राह्मणों अथवा श्रौतसूत्रों में प्रतिपादित किसी भी महत्वपूर्ण यज्ञ में विनियुत्तफ नहीं किये गये। अधिकांश मन्त्र विवाह, चतुर्थीकर्म, गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, उपनयन, गोदान, अन्त्येष्टि, अष्टका, वास्तुनिर्माण प्रभृति कर्मों वेफ अतिरित्तफ अनेक प्रकार वेफ जादू-टोनों, यन्त्र-तन्त्र विषयक क्रिया-कलापों से सम्ब(हैं। सच पूछा जाये तो गृह्यकर्मों का विकसित रूप परिलक्षित होता है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अथर्ववेदीय गृह्यतन्त्र वेफ प्रतिपाद्य विषय भी अवश्य ही)ग्वेदकालिक गृह्यतन्त्र से उत्तरवर्ती हैं, अपितु कई विषयों में अथर्ववेदीय गृह्यतन्त्र)ग्वेदी गृह्यतन्त्र से भी प्राचीन कहे जा सकते हैं।[7]

ब्राह्मण ग्रन्थों में गृह्यकर्मों से सम्ब(परिभाषिक शब्दावली वेफ प्रयोग से सि(होता है कि उस समय तक गृह्यकर्म प्रर्याप्त रूप से विकसित हो चुवेफ थे[8]। ऐ0 ब्रा0 में तो गृह्याग्नि का उल्लेख इसवेफ पारिभाषिक अर्थ में किया गया है[9]। आग्रयणेष्टि प महायज्ञ उपनयन, गर्भाधान, सोष्यन्तीकर्म, आयुष्यकर्म, मेधाजनन, नामकरण प्रभृति प्रायः सभी गृह्यकर्म श0 ब्रा0 में उल्लिखित हैं[1]।

हिल्लेब्राण्ट का अनुमान है कि वर्तमान श्रौतकर्म-प्रतिपादक ब्राह्मणों वेफ समान ही गृह्यकर्म-प्रधान ब्राह्मण भी कभी रहे होंगे, जिनसे

---

1 ,0 ,0 eSdMkWuy] fg0 l0 fyV~ i`0 263&264

2 ogh i`0 253

3 ¶[kzkeqpua poQ;q¡%A fookg&'e'kku;ksxzkZeizkfo'kkrkfnfropukr~] rLekÙk;ks%xzke%izeka.kfefr Jqrs%A,

4 vFk [kyw Pookt ;ujn&ekekZ xzkeèkek'p] rku w fookos izrh;kr~A ;Ùkq lekuam~ o{;ke% (1] 5] 1&2)

की सत्ता का सि(नहीं किया जा सकता, अन्यथा वर्तमान ब्राह्मणों में भी गृह्यकर्म-विषयक कुछ न कुछ सवफत अवश्य मिलता है।[1] डा. हॉग ने स्पष्ट शब्दों में हिल्लेब्राण्ट वेफ मत का समर्थ किया है। यद्यपि इस समय ऐसे गृह्य-ब्राह्मणों की पृथक् सत्ता का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त नहीं होता, तो भी वर्तमान गृह्य-सूत्रों में अनेक कर्मों वेफ विषय में ब्राह्मणों वेफ प्रमाण दिये गये हैं।[2] किन्हीं लुप्त ब्राह्मणों वेफ विषय में भी हम गृह्यसूत्रों से महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती हैं। गो. गृ. सू. ;3, 2, 6द्ध में गौरकि-ब्राह्मण और भार, गृ0सू0 ;3, 18द्ध में शाट्यायनि ब्राह्मणों, बौ0 गृ0 सू, में शाट्यायनक ;2, 5, 25द्ध वेफ स्पष्ट उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि गृह्य विषयों पर प्रकाश डालने वाले ब्राह्मणग्रन्थ अवश्य विद्यमान थे। इसवेफ अतिरिक्त गृह्य सूत्रों में आत्रेय, काशकृत्स्न, औपमन्यव प्रभृति अनेक प्राचीन आचार्यों वेफ मत उद्धृत किये गये हैं[3] । अतः सि(होता है कि गृह्यसूत्रों में प्रतिपादित विषयों पर विचार विमर्श सूत्रों से बहुत पहले से होता आ रहा था।

गृह्यसूत्रों पर ब्राह्मण ग्रथों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। और इस पर कोई आश्चर्य भी नहीं होना चाहिये, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः सभी वेदांगों वेफ बीज विद्यमान हैं। गृह्यसूत्रों में प्रयुक्त अनेक पारिभाषिक शब्द ब्राहाणों में पहले ही प्रयुक्त हो चुवेफ हैं। यथा आघारौ, आज्यभागौ, परिस्तरण, पर्युक्षण, अवदान, पर्यग्निकरण, प्राचीनावीति प्रभृति। चतुरवत्ती तथा पंचावत्ती का मूल ब्राह्मण में ही पाया जाता है। होम वेफ अनुष्टान की प्रक्रिया भी ब्राह्मणों से ही ग्रहण की गयी है। गृह्यसूत्रों की विशेषता ब्राह्मणोक्त कर्मकाण्ड वेफ सरलीकरण में दृष्टिगोचर होती है। आग्रयण, दर्शपूर्णमास, अन्त्येष्टि और श्रा(तो सीधे ब्राह्मणों से ही ग्रहण किये गये हैं।

श्रौत कर्म तो वेफवल आहिताग्नि वेफ लिए विहित हैं, किन्तु गृह्य कर्म आहिताग्नि और अनाहिताग्नि दोनों वेफ लिए अनुष्टेय हैं। श्रौत आग्रयण में तो पुरोडाश और चरू की आहुति दी जाती हैं, किन्तु गृह्य आग्रयण में वेफवल स्थालीपाक का विधान है। श्रौत दर्शपूर्णमास में पुरोडाश का प्रयोग किया जाता है और कई)त्विजों की सहायता से दो दिनों में समाप्त होता है, जबकि गृह्यकर्म पति-पत्नी द्वारा ही स्थालीपाक की आहुति देकर सम्प किया जा समता है। अन्त्येष्टि क्रिया आहिताग्नि और अनाहिताग्नि दोनों वेफ लिए विहित है। इस विषय में गृह्यसूत्रों ने ब्राह्मणों का इतनी दूर तक अनुसरण किया है कि आश्व0गृ0सू0 ने आहिताग्नि की अन्त्येष्टि की प्रक्रिया ही नहीं, अपितु वाक्य भी श0ब्रा0 से शब्दशः ग्रहण कर लिये हैं।

श्रा(की सम्पूर्ण प्रक्रिया ब्राह्मणों वेफ पिण्डपितृया पर ही आधृत है और गृह्यसूत्रों श्रौतसूत्रों का भी इस विषय में बहुत कुछ अनुकरण किया है। गो0गृ0सू0 तथा को0गृ0 सू. दोनों में श्रा(का वर्णन पिण्डपितृयज्ञ वेफ रूप में ही किया गया है।

अनेक गृह्य विषयों वेफ वर्णन में ब्राह्मणों को आधार माना गया है। पंच महायज्ञों वेफ वर्णन में आश्व0गृ0सू0 ने श0ब्रा0 का बहुत अधिक अनुसरण किया है। पा0गृ0सू0 का उपनयन श0ब्रा0 वेफ अनुरूप है। इसी प्रकार पुंसवन, जातकर्म तथा इन्द्रयज्ञ वेफ वर्णन में भी पा0गृ0सू0 शतपथ ब्रा0 का)णी है।

जैसे श्रौतसूत्र संहिताओं से सम्ब(हैं, उसी प्रकार गृ0 सू0 भी मन्त्रपाठों से सम्ब(हैं। आश्व0 गृ0 सू0 बौ0गृ0 सू0, आप0 गृ0 तथा वैख्रा0गृ0 सूत्रों वेफ मन्त्रपाठ तो उपलब्ध हैं, सम्भवतः अन्यों वेफ भी रहे होंगे। ओल्डनबर्ग ने तो मन्त्रपाठों और गृ0 सूत्रों की रचना एक ही व्यक्ति से और एक ही योजना वेफ अन्तर्गत मानी है, जिसका विण्टरनिट्स ने विरोध किया है। उनवेफ विचार में मन्त्र संहिताएं गृह्यसूत्रों से पूर्व विद्यमान थीं। क्नावर वेफ अनुसार गो. गृ. सू. वेफ सामने लिखित मन्त्र पाठ रहा होगा[2] । विण्टरनिट्स ने इसका विरोध किया।

कहीं-कहीं गृह्यसूत्रों तथा श्रौतसूत्रों में साम्य पाया जाता है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि अधिकतर श्रौतसूत्रों और गृह्यसूत्रों वेफ रचियता एक ही व्यक्ति हैं। वहां गृह्यसूत्रकारों ने मन्त्र विनियोगों वेफ विधान में श्रौतसूत्रों की परम्परा का ही अनुसरण किया है, यथा)गवेद ;1, 90,-द्ध वेफ फ्मधुवाता)तायतेय प्रभृति तीन मन्त्रों का विनियोग कुछ गृह्यसूत्रों ने मधुपर्वफ वेफ आलोडनार्थ किया है[3]। आश्व. गृ. सू. ;1, 24, 14द्ध में अतिथि द्वारा इसवेफ वेफवल अवलोकनार्थ तथा कौ. सू. ;91, 1द्ध में वेफवल अभि मन्त्रणार्थ विधान किया गया है। इन्हीं का प्रचीनतम विनियोग श. ब्रा. ;14, 9, 3, 11-13द्ध में मन्थपान वेफ लिए तथा श्रौतसूत्रों में वेदि-चयन वेफ समय मधु-मिश्रित दधि से वूफर्म वेफ अवलेपनार्थ विहित है। इस प्रकार उभयविध सूत्रों में दधि और मधु दोनों समान पदार्थों वेफ साथ इन मन्त्रों का सम्बन्ध जोड़ा गया है।

1- ,l0 ch0 bZ0] 30 Hkwfedk] i`0 9&10
2- l0 ch0 bZ0] 30 Hkwfedk] i`0 &10

पड़ने पर समय-समय पर गृह्य-सूत्रकार अपनी रुचि वेफ अनुसार अपनी रचनाओं वेफ लिए मन्त्र चयन कर लेते थे और जिनका संग्रह, उनकी लोक में प्रसि(तथा प्रचलन वेफ कारण, आवश्यक नहीं समझा गया होगा। प्रथम मान्यता वेफ पक्ष में अनेक ऐसे वचन प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जो गृह्यसूत्रों में प्रमाण वेफ रूप में उद्धृत किये गये हैं[4]।

द्वितीय विचार का प्रतिपादन बू र ने किया है[5], जो यद्यपि धर्मसूत्रों वेफ विषय में व्यक्तफ किया गया है किन्तु गृह्यसूत्रों पर भी लागू होता है। काणे ने बू र वेफ विचार का विरोध तो किया है[6], किन्तु कोई प्रबल युक्तिफ नहीं दी।

गृह्यसूत्रों में मन्त्रों को उद्धृत करने की एक समान प(ति का अनुसरण नहीं किया गया। वुफछ सूत्र तो अपनी शाखा की संहिता वेफ मन्त्रों को प्रतीक रूप में उद्धृत करते हैं तथा अन्य ोतों से संगृहीत मन्त्रों को सकल पाठ वेफ रूप में। वुफछ मन्त्रों अथवा मन्त्र-समूहों को उनवेफ परम्परागत नामों से उद्धृत किया जाता है, यथा-आपोहिष्ठीय, अस्यवामीय, स्वस्त्ययन शान्तातीय प्रभृति। वुफछ सूत्रों में किसी विशिष्ट देवता से सम्ब(मन्त्रों का विधान किया गया है। ऐसी स्थिति में इन मन्त्रों का ज्ञान वेफवल गृह्य परम्परा वेफ आधार पर होता है, जिसकी जानकारी प्रायः भाष्यकारों की सहायता से ही हो पाती है। वृषोत्सर्ग वेफ समय रुद्र सम्बन्धी मन्त्रों वेफ विषय में विभि गृह्यसूत्रों वेफ भाष्यकारों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है, क्योंकि प्रत्येक भाष्यकार अपनी शाखा वेफ अनुसार इन मन्त्रों का विधान करता है। शां. गृ. संग्रह वेफ अनुसार एक मन्त्र)ग्वेद 1: 43: 1: 4. 2: 33: 7: 46. हैं, जबकि पा. गृ. सू. वेफ भाष्यों वेफ अनुसार ये वा. सं. वेफ सोलहवें अध्याय वेफ मन्त्र हैं, और काठ0 गृ0 सू0 भाष्य में काठ. सं. वेफ 17: 11-16, अनुवाकों का विधान किया गया है। आप. गृ. सू. में तो प्रायः मन्त्र का प्रतीक भी दिया गया। वहां तो वेफवल संहिता में मन्त्र की क्रम-संख्या से निर्देश किया गया है, यथा-आदितो द्वाभ्याम् ;1, 4, 2द्ध तृतीयाम् चतुर्थ्याम् इत्यादि।

गृह्यसूत्रों वेफ विकास वेफ विषय में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इनमें कहीं तो समय वेफ साथ-साथ विस्तार और जटिलता आयी है, तो कहीं संक्षेप और सरलता। विवाह में आश्व0 गृ0 सू0 में वेफवल 21 मन्त्रों का विनियोग विहित है, जबकि पश्चात्कालिक किन्तु अनतिदूरवर्ती शां0 गृ0 सू0 में 123 मन्त्रों का विधान है। दूसरी ओर पूर्वकालिक गो0 गृ0 सू0 की अपेक्षा उत्तरकालिक खादिर गृह्यसूत्र में संक्षेप की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है[1]। यह संक्षेप या विस्तार कालक्रम पर निर्भर न होकर व्यक्तिफ और उसवेफ दृष्टिकोण पर निर्भर करते प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार यद्यपि गृह्यसूत्रों वेफ विषय अत्यन्त प्राचीन हैं और इन विषयों पर रचनायें भी बहुत प्राचीन काल से चली आ रहीं हैं, तो भी वर्तमान गृह्यसूत्रों को मूल नहीं माना जा सकता। अनेक परिवर्तनों, परिवर्धनों और काट-छाँट वेफ बाद ये हम तक पहुंचे हैं[2]। इस प्रकार कह सकते हैं कि गृह्यसूत्रों को अपना वास्तविक रूप सूत्रकाल में ही मिला।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि विषय और रचनाकाल की दृष्टि से ये गृह्यसूत्र एक दूसरे से बहुत दूरस्थ नहीं कहे जा सकते हैं[3]। इनमें एक से विषयों का प्रतिपादन प्रायः एक सा ही किया गया है। भाषागत वैषागत वैषम्य भी बहुत अधिक नहीं है। पिफर भी धार्मिक और सामाजिक विचारधारा और परिस्थितियों का अन्तर अवश्य लक्षित होता है।

गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों में परस्पर सम्बन्ध

---

1 jkexksiky] bf.M;k vk;iQ oSfnd dYilw=kkt] i`0&16

2 ½osn eU=kkt bu fn x`ãlw=kkt] 1899

3 ½XoSfnd eU=kkt buns;j fjpoqvy lS`Vx bu fn x`álw=kkt] cqysfVu vk;iQ MsDdu~ dkWyst fjlpZ baflVV~;`V] Hkkx 1] i`0&14-44

4 'kka0 x`0 lw0 1] 17] 1] dk0 x`0 lw0 28] 5] ck0 x0 15] 2 ik0 x`0 lw0 2] 10] 16

5 rS0 la0 1% 7% 1% 3] 6% 5% 4]

6 Cywe iQhYM ,l0 ch0 bZ0] 42] i`0&43

7 rc0 lw;ZdkUr] dkSFkqe x`0 lw0] Hkwfedk i`0&26

हो चुकी, अब गृह्य कर्मों की व्याख्या करेंगे[1]। आप० गृ० सू० में तो आप० श्रौ० सू० का उल्लेख किया गया है[2]। शां० गृ० सू० ;1, 1, 13द्ध में तो शां० श्रौ० सू० वेफ यज्ञोपवीत सम्बन्धी नियमों का आवर्तन गृह्यकर्मों में भी करने का आदेश इसलिए दिया गया है कि दोनों एक ही कल्प से सम्ब(हैं[3]। इसी प्रकार पा० गृ० सू० ;1, 18, 1द्ध, का० श्रौ० सू० ;4, 12,21द्ध का उल्लेख करता है। अतः एक ही कल्प से सम्ब(श्रौत और गृह्यसूत्रों में परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध सि(होता है।

श्रौत और गृह्यसूत्रों में मुख्य अन्तर यह है कि श्रौतसूत्रों में ऐसे कर्मों का विधन किया गया है जो मुख्यतः आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन अग्नियों की सहायता से सम्पन्न किये जाते हैं और गृह्यसूत्रों में एक ही अग्नि का प्रयोग किया जाता है। दूसरे, श्रौतकर्मों को करने वेफ लिए चार से लेकर सोलह या सत्रह)त्विजों तक की सहायता लेनी पड़ती है, जबकि गृह्यकर्मों को यजमान स्वयं की किसी अन्य)त्विज की सहायता वेफ बिना सम्पन्न कर सकता है। यदि उसे कार्यवशात कहीं बाहर जाना पड़े या किसी कारणवश वह स्वयं कर्म करने में असमर्थ हो, हो उसवेफ स्थान पर उसकी पत्नी, पुत्र, शिष्य या पुरोहित कोई भी उसे सम्प कर सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों परस्पर सर्वथा भिन्न हैं। दर्शपूर्णमास, अन्त्येष्टि कर्म, आग्रयणेष्टि तथा मधुपर्वफ जैसे महत्वपूर्ण कर्म दोनों में विहित हैं। अतः कोई कर्म श्रौतसूत्रों में वर्णित होने मात्र से ही गृह्यसूत्रों से वहिष्कृत नहीं हो जाता, न ही गृह्यसूत्रों में उसका वर्णन अनुपयुक्तफ या असंगत ही कहा जा सकता है। अन्त्येष्टि कर्म पर ही दृष्टिपात करें तो पता चलता है कि आहिताग्नि की अन्त्येष्टि क्रिया में एक ही अग्नि से सम्पूर्ण कर्म सम्प किया जाता है[4]। अतः अन्त्येष्टि कर्म को श्रौत कर्म नहीं कहा जा सकता, तो भी उसका वर्णन श्रौतसूत्रों में भी किया गया है। दूसरे, यह कर्म प्रेत वेफ सम्बन्धियों द्वारा किया जाता है, पुरोहितों द्वारा नहीं। श्रौतसूत्रों का क्षेत्र इस विषय में सीमित है, क्योंकि उनमें वेफवल आहिताग्नियों की अन्त्येष्टि का विधान किया गया है। अतः डा० क्लावर का यह मत समीचीन नहीं कहा जा सकता कि अन्त्येष्टि वफर्म गृह्यसूत्रों वेफ क्षेत्र का विषय नहीं है।

वस्तुतः मन्त्रों वेफ विनियोग वेफ विषय में गृह्यसूत्र श्रौतसूत्रों का स्पष्ट अनुकरण करते हैं। इन समानताओं और परस्पर आधार आधेय-भाव मुख्य कारण यह है कि एक ही शाखा वेफ कल्पसूत्रों वेफ रचियता एक ही व्यक्ति हैं। किन्तु पारस्कर, खादिर ओर गोभिल गृह्यसूत्रों वेफ कर्त्ता पारस्कर, खादिर और गोभिल हैं, जबकि इनवेफ श्रौतसूत्रों वेफ रचयिता क्रमशः कात्यायन, द्राह्यायण और लाट यन हैं। इस विषय पर पाश्चात्य विद्वानों में वैमत्य पाया जाता है। डा० बू र तो भारतीय मत वेफ पोषक हैं, क्योंकि गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों में परस्पर एक दूसरे वेफ संवेफत पाये जाते हैं। दूसरे इनकी भाषा तथा रचना शैली भी एक ही की ओर संवेफत करती है[5]।

डा० ओल्डनबर्ग ने इस मत का विरोध किया है। उनवेफ अनुसार यद्यपि इन गृह्य तथा श्रौत सूत्रों में परस्पर अनेक प्रकार की समानताएं दृष्टिगोचर होती है, तो भी इन समानताओं और पारस्परिक संवेफतों वेफ आधार पर उनका समानकर्तृत्व सि(नहीं किया जा सकता। क्योंकि उसी शाखा का कोई अन्य व्यत्तिफ भी दोनों में पारस्परिक साम्य और एकसूत्रता को स्थिर करने का स्वाभाविक सपफल प्रयास कर सकता था, जिसमें कहीं-कहीं विरोध तथा विभेद का अनायास ही आ जाना भी उतना ही स्वाभाविक है, और ध्यानपूर्वक देखने से इन सूत्रों में परस्पर ऐसे विरोध, इतनी असंगतियां, आवृत्तियां आदि सामने आती हैं, जो सि(करती हैं कि इनवेफ कर्ता एक नहीं हो सकते। किन्तु इस विषय में अन्तिम निर्णय करने वेफ लिए अभी और पुष्ट प्रमाणों को अपेक्षा हैं[1]।

आश्वलायनगृह्यसूत्र

)ग्वेद की आश्वलायन शाखा से सम्ब(आश्वलायन गृह्यसूत्र वेफ चार अध्याय है। तृतीय अध्याय ;3,3द्ध में)षि-तर्पण वेफ प्रकरण में महत्वपूर्ण आचार्य-वंशावली दी गयी है। तृतीय अध्याय ;3,2द्ध में वेदाध्ययन वेफ विशेष नियम और उपाकर्म या श्रावणी का वर्णन भी महत्वपूर्ण है;3,4द्ध किन्तु इस बात का सन्देह किया जाता है कि इस गृह्यसूत्र में वुफछ सूत्रों का प्रक्षेप बाद में किया गया हैं[2], जिस कारण प्रकरणानुसार

---

1 'k0 czk0 11] 5] 6] 1% 11] 5] 4] 1 % 14] 9] 4] 17

2 fjPcyw fyÚw] i`0&23

3 U;w&;aM&dksyeksaMLiQsjih0 15

4 ,l0 ch0 bZ0 30] Hkwfedk i`0&17&18

5 vk'o0 x`0 lw0 1] 1] 5_4] 6] 8 ckS0 x`0 lw0 1] 3] 8_1] 7] 36] vki0 l`0 lwl0 3] 8] 12&6]

प्रथम अध्याय-पाकयज्ञ, सायं-प्रातः सि(-हविष्य-होम, विवाह, पार्वणस्थाली-पाक, पुंसवन, सीमन्तोनयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चौलकर्म, गोदान, उपनयन, ब्रह्मचर्य-व्रत तथा मधुपर्वफ।

द्वितीय अध्याय-श्रवणा, आश्वयुजी, अष्टका, वास्तु निर्माण तथा गृह्य प्रवेश।

तृतीय अध्याय-पंचमहायज्ञ,)षि-तर्पण, वेदाध्ययन, उपाकर्म, समावर्तन तथा राजसन्नाहन।

चतुर्थ अध्याय-दाहकर्म, श्रा(तथा शूलगव।

आश्वलायन शौनक वेफ शिष्य थे, किन्तु आश्वलायन ने अपना कल्पसूत्र नष्ट कर दिया[1]। आश्वलायन गृह्य और श्रौत दोनों में गुरु वेफ विचारों का उल्लेख भी किया गया है[2]।

शौनकीय बृहद्देवता ;4, 139द्ध में आश्वलायन की सम्मति का उल्लेख किया गया है[3]। कात्यायन ने सर्वानुक्रमणी में बृ. दे. से बहुत सहायता ली है। सर्वानुक्रमणी वेफ अनेकों प्राचीन और आपाणिनीय प्रयोगों वेफ कारण कात्यायन को प्राक्-पाणिनीय कहा जाता है,[4] अतः बृ. दे में आश्वलायन का उल्लेख प्राक्-प्राणिनी होने का प्रमाण है।

ऐ0 आर0 का प म अध्याय सूत्र रूप में है और षड्गुरुशिष्य वेफ मतानुसार यह अध्याय आश्वलायनकृत है[5]। कीथ ने भी स्वीकार किया है कि ऐ0 आर0 ;5, 3, 2द्ध में आश्व0 श्रौ0 सू0 ;1, 5, 17द्ध वेफ संवेफत हैं, और कि आश्वलायन द्वारा इस अध्याय की रचना प्रमाणित होती है[6]। और क्योंकि ऐ0 आर0 पाणिनि से पूर्व माना जाता है, अतः आश्वलायन प्राक् पाणिनी अवश्य है। इसवेफ अतिरिक्त आश्व0 गृ0 सू0 की रचना शैली कहीं-कहीं ब्राह्मण शैली से मिलती है, अतः आश्व0 गृ0 सू0 सर्वप्राचीन सूत्रकाल की रचना है।

आश्व0 गृ0 सू0 और शां0 गृ0 सू0 वेफ सम्बन्धों पर विचार किया जाये, तो सर्वप्रथम हमें ध्यान रखना चाहिये कि आश्व0 गृ0 सू0 और शां0 गृ0 सू0 दोनों ही अपने अपने श्रौत सूत्रों से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं और दोनों शाखाओं वेफ श्रौत और गृह्यसूत्रों वेफ रचियता भी क्रमशः आश्वलायन ओर शांखायन ही हैं। वस्तुतः आश्व0 श्रौ0 सू0, शां0 श्रौ0 सू0 से प्राचीन है। अतः आश्व0 गृ0 सू0 भी शां गृ0 सू0 से प्राचीन ठहरता है। यद्यपि आश्व0 गृ0 सू0 और शां0 गृ0 सू0 वेफ रचनाक्रम को हिल्लेब्राण्ट ने उलटने का प्रयास किया है[7], तो भी रचना-शैली को देखा जाय तो शां0 गृ0 सू0 की शैली आश्व0 गृ0 सू0 की शैली से संक्षिप्ततर है और इसमें शब्दों की बचत करने की दृष्टि से क्त्वान्त, क्तान्त और भावाविकरण का प्रचुर प्रयोग किया गया है[8]। दूसरे शां0 गृ0 सू0 में जातपात पर अधिक बल दिया गया है। यथा चूडाकरण संस्कार में बालक की आयु वेफ विषय में ;1, 28द्ध, उपनयन में सावित्री प्रशिक्षण वेफ विषय में ;2, 5द्ध और विवाह वेफ अन्त में उपहार वेफ विषय में ;1, 14द्ध। अश्वलायन ने आश्व0 श्रौ0 सू0, आश्व0 गृ0 सू0 तथा ऐ0 आर0 वेफ पंचम अध्याय की रचना की थी और शंखायन ने शां0 श्रौ0 सू0 तथा शा0 गृ0 सू0 की। ए0 आर0 और शां0 श्रौ0 सू0 में वर्णित महाव्रत की तुलना करने से ज्ञात होता है कि आश्व श्रौ0 सू0 को उद्धृत करने वाला ऐ0 आर0 शां0 गृ0 सू0 प्राचीनतर है[9]। चौथे आश्व0 गृ0 सू0 को उद्धृत करने वाला ऐ0 आर0 शां0 गृ0 सू0 प्राचीनतर है। चौथे आश्व0 गृ0 सू0 में विवाह संस्कार में वेफवल 21 मन्त्रों का विनियोग किया गया है, जबकि शांखायन गृह्यसूत्र में 123 मन्त्रों का। इससे भी शां0 गृ0 सू0 की अर्वाचीनता का संवेफत प्राप्त होता है। यद्यपि ओल्डनबर्ग ने आश्व0 गृ0 सू0 में शांखायन का उल्लेख होने वेफ कारण शांखायन गृह्यसूत्र को प्राचीनतर माना है। तो भी क्योंकि पश्चात्वर्ती सूत्रकार कर्मकाण्ड तथा संस्कारों को लगातार विस्तृत एवं जटिल बनाने की प्रवृत्ति का परिचय देते हैं, अतः आश्व0 गृ0 सू0 को ही शां0 गृ0 सू से प्राचीनतर मानना उचित है[1] और पिफर एक दूसरे को उद्धृत करने का तर्वफ इसे विषय में प्रमाण नहीं माना जा सकता, क्योंकि आप0 मन्त्रब्राह्मण ;2, 5, 4द्ध बो0 गृ0 सू0 ;1, 4, 25द्ध को उद्धृत करता प्रतीत होता है, किन्तु चूड़ाकरण संस्कार में बौधायन ही आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ;6, 166द्ध को उद्धृत करता प्रतीत होता है, किन्तु वेफवल

---

1 vki0 eU=k&ikB] i`0&32

2 æo xks0 x`0 lw0] Hkkx 2] i`0 &31&31&34

3 ek0 x`0 lw0 1] 9] 14] dk0 x`0 lw0 24] 11] dk0 x`0 lw0 11]26

4 bf.M0 dvilw0] i`0&19

आश्व0 गृ0 सू0 में विनियुत्तफ मन्त्रों का संग्रहण फआश्वलायन मन्त्रसंहिता मेंय् किया गया है, किन्तु आश्व0 गृ0 सू0 में ऐसे बहुत से मन्त्र उपलब्ध हैं, जो आश्व0 मं0 स0 में नहीं पाये जाते और वे उत्तरकालिक प्रक्षेपों की कोटि में आते हैं[4]। वुफछ मन्त्र ब्राह्मण शैली वेफ हैं ;1, 1, 3-4द्ध जो किसी प्रक्रिया में विनियोज्य नहीं हैं, अपितु क्रिया की व्याख्या औचित्य प्रदर्शनार्थ हैं। अन्य गृह्यसूत्रों वेफ समान ही यहां भी ऐसे मन्त्रों का विनियोग किया है, जिनका विनियोग अन्यत्र सर्वथा अन्य सन्दर्भ में विहित है। यथा)ग् 1, 31, 16 को लाट0 श्रौ0 सू0 में आहिताग्नि द्वारा आज्याहुति में विनियोज्य कहा गया है, जबकि ऐसे ही प्रसंग में आश्व0 गृ0 सू0 ने इसे अनाहिताग्नि द्वारा विनियोज्य माना है। कई ऐसे मन्त्र भी यहां विनियुत्तफ हैं, जिनका प्रसंग से कोई सम्बन्ध नहीं है।)ग् 8, 101, 1-4 को राजा यु(में रथ हांकते समय पढ़ता है। ;आश्व. गृ. सू. 3, 12 12द्ध जबकि इनमें मित्रावरूणों से प्रार्थना की गयी है कि अग्नि से संघर्ष न हो। इसी प्रसंग में अमीवर्त सूत्तफ ;)ग्0 10, 174द्ध का भी विनियोग किया गया है जबकि ऐ0 ब्रा0 ;8, 10, 4द्ध में इस सूक्त का विनियोग राजसूय में पुनरभिषेकार्थ किया गया है।

कई ऐसे मन्त्र भी वहां विनियुत्तफ हैं, जो किसी अन्य वैदिक संहिता में नहीं पाये जाते। यथा-आश्व0 गृ0 सू0 3, 12: 13 में सौपर्ण सूत्तफ का विधान किया गया है, जो नारायण वेफ अनुसार प्रधानयन्तु मधुनो धृतस्य है। किन्तु यह न तो किसी संहिता में उपलभ्य है और न ही सुपर्णाध्याय में।

डा0 वी0 एम0 आप्टे ने आश्व0 गृ0 सू0 वेफ निम्नलिखित सूत्रों वेफ मौलिक होने वेफ विषय में सन्देह व्यत्तफ किया है[6]।

अध्याय 1. 1, 3-4ऋ 7, 17: 8, 2-3 :12, 3 : 23, 6-24

अध्याय 2, 6, 5 7 12 14 : 15

अध्याय 3. 6, 5: 7, 8-9 : 12, 12-16

अध्याय 4, 2, 18: 20: 6, 7

किन्तु डा0 सीताराम साहगल ने इनवेफ सन्देह को निराधार घोषित किया है[7]। इनवेफ तर्वफ अधिक संगत हैं। आश्व0 गृ0 सू0 की वुफछ विशेषताएं हैं, जो इसे अन्य अनेक गृह्यसूत्रों से पृथक् करती हैं।

आश्व0 गृ0 सू0 में विवाह संस्कार में बहुत कम मन्त्रों का विनियोग किया गया गया है और इसकी प्रक्रिया भी अति सरल है। इसी प्रकार पुँसवन संस्कार भी अति सरल है। इसमें पति सरसों वेफ दो दाने तथा यव एक दाना पत्नी वेफ दाहिने हाथ में रखता है, जिन्हें पत्नी दधि वेफ साथ तीन बार मन्त्र सहित भक्षण करती है[1]। जातकर्म संस्कार भी अपेक्षाकृत सरल है। इसवेफ अंगभूत वुफमाराभिमन्त्रण संस्कार में पिता वेफवल पुत्र वेफ कन्धों को मन्त्र से स्पर्शमात्र करता है[2]। अन्त्येष्टि संस्कार में शव को श्मशान ले जाते समय शव वेफ पीछे गौ अथवा कृष्णवर्णा या एकवर्णा अजा वेफ अगले वाम पाद में रस्सी बांध कर चलाने और उसवेफ पीछे मृतक वेफ सगे संबन्धियों वेफ चलने का विधान किया गया है[3]। जो अन्यत्र नहीं पाया जाता। अन्त्येष्टि-क्रिया की एक और विशेष्ता यह भी है कि शव वेफ साथ चिता पर पत्नी को लिटा देने का निर्देश किया गया है, जिसे मृतक का शिष्य अथवा वृ(वृषल)ग्0 10, 8, 8 से उठा देता है[4]। आहिताग्नि वेफ यज्ञ-पात्रों को उसवेफ विविध अंगों पर स्थापित करवेफ उसवेफ साथ ही भस्म कर देने का निर्देश किया गया है[5]। आहिताग्नि की चिता तीनों अग्नियों से प्रज्वलित की जाती है[6]।

---

1 lw;ZdkUr] dkSFkqe x`álw=k] izLrkouk] i`0&33&40

2 vkSYMcxZ] ,l0 ch0 bZ0 29] i`0&7] fV0 4] i`0&20 fV0 1-

3 a0 lw;ZdkUr] ogh] i`0&107

4 mÙkQfu oSrkfudkfu] x`ákf.k o{;ke% (vk'o0 x`0 lw0 1%1] 11

5 vki0 x`0 l`0 1] 1] 19 esa vki0 {kkSa0 lw0 1] 11] 6 dk rFkk vki0 x`0 lw0 1] 2] 5] esa vki0 vkS0

वुफर्चों पर पशु वेफ रक्तफ को सर्पों वेफ निमित्त अर्पण करने का विधान है[1]। राजस हन कर्म भी आश्व0 गृ0 सू0 की अपनी विशेषता है, जिसका अन्यत्र किसी भी सम्प्रदाय में उल्लेख्र नहीं किया गया। आश्व0 गृ0 सू0 में ऐसे उ(रण हैं जिनका समानान्तर अन्य किसी भी सम्प्रदाय में उपलब्ध नहीं होता। ये उ(रण मुख्यतया विवाह, स्थारोहण, समावर्तन, काम्येष्टियों, उपनयन, मधुपर्वफ, मेधाजनन, पाकयज्ञप्रशंसा, शूलगव, पशुबन्ध प्रभृति में उपलभ्य हैं।

व्याख्याएं

दिवाकर-सूनु नारायण ने आश्व0 गृ0 सू0 पर फ्विवरणय् की रचना की है। इसने कई श्लोकों वेफ उ(रण दिये हैं, जो आश्व. श्रौ0 सू0 फ्वृत्तिय् वेफ कई श्लोकों की छाया मात्र हैं। आश्व0 श्रौ0 सू0 फ्वृत्तिय् का रचियता भी नारायण है, किन्तु वह नृसिंह ;नरसिंहद्ध का पुत्र है और गार्ग्य गोत्र का है, जबकि हमारा प्रस्तुत नारायण ध्रुव गौत्र का है। दोनों ने ही देवस्वामी वेफ भाष्य का अनुकरण किया है। तो भी दोनों का कर्त्ता एक व्यक्तिफ नहीं माना जा सकता[8]। श्रौतवृत्तिकार नारायण, गृह्यविविरणकार से प्राचीन है[9]। श्रौतवृत्तिकार नारायण, गृह्यविवरणकार से प्राचीन है[10] रेणुदीक्षित ने पारस्कर गृह्यसूत्र की कारिका में अपना काल 1188 शावेफ लिख्रा है। उसने नारायण को उद्धृत किया है[11]। अतः नारायण सन् 1266 ई0 से पूर्वकालिक है।

इनवेफ अनेक संस्कण मुद्रित हो चुवेफ हैं-

1. गृह्यपरिशिष्ट-सहित आर0 विद्यारत्न तथा ए0 वेदान्तवागीश द्वारा सम्पा0 कलकत्ता, 1866-69 ;बी0 आई0द्ध

2. गृह्यपरिशिष्ट-सहित तथा वुफमारिलभट्ट-कृत कारिका सहित बम्बई, 1895

3. गृह्यपरिशिष्ट-सहित तथा वुफमारिलभट्ट-कृत कारिका सहित वासुदेव लक्ष्मण, पणशीकर, बम्बई, 1909

4. गृह्यपरिशिष्ट-सहित तथा वुफमारिल भट्ट कृत कारिका सहित भवानी शंकर सुक्टणकर, बम्बई, 1909

5. गृह्यपरिशिष्ट-सहित जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, 1893

द्वितीय भाष्यकार देवस्वामी हैं जो नारायण वेफ उपजीव्य हैं, अतः उससे प्राचीन हैं। परन्तु इनका भाष्य अभी तक पूर्ण मुद्रित नहीं हो सका इन्हीं देवस्वामी ने आश्व श्रौ0 सू0 पर भी लिख्रा था, जिसका अनुसरण नृसिंहसूनु नारायण गार्ग्य ने अपनी श्रौतसूत्र की वृत्ति में किया है। देवस्वामी ने स्मृतिसंग्रह वेफ वचनों की व्याख्या भी की थी[1]। स्मृतिसंग्रह का समय अष्टमी शती तथा दशमी शती वेफ मध्य में माना गया है[2] प्रपंचहृदय ;त्रि0 सं0 सी, पृ0-39द्ध द्वारा उल्लिख्रित मीमांसा-भाष्यकार देवस्वामी का इस देवस्वामी वेफ साथ अभेद स्थापित करने वेफ प्रयास प्रमाण वेफ अभाव में असपफल हो जाने पर यही कहा जा सकता है, कि इसका स्थितिकाल 1000 ई0 वेफ आसपास हो सकता है[3]। आश्व0 गृ0 सू0 वेफ टीकाकार हरदत्त ने एक भाष्यकार को उद्धृत किया है, जो सम्भवतः हमारा देवस्वामी ही है[4]। हरदत्त का काल लगभग 1100 ई0 है।

इस भाष्य का प्रथम अध्याय रवि वर्मा ने अड्यार से सन् 1994 में प्रकाशित किया है।

तृतीय टीकाकार प्रसि(वैयाकारण, काशिका पर पदमंजरी वेफ कर्ता, हरदत्त मिश्र हैं, जिनको सायण तथा देवराज यज्वा ने बहुधा उद्धृत किया है[5]। इनका काल 1100 ई0 वेफ लगभग आंका गया है[6]। इनकी अनाविला टीका, अतिप्रसि(, स्पष्ट तथा सरल है। इसका सम्पादन त्रिवेन्द्रम से टी0 गणपति शाह्री ने 1923 में किया था।

---

1 oS-x`-lw-5]5

2 ,l-dh-bZ-] Hkkx&2] Hkwfedk i`&15] Hkkx&14 Hkwfedk] i`&30

3 ,l-dh-bZ-Hkkx&30] Hkwfedk i`&32&33

4 ogh] i`&32] fV-2

5 dh-,e-vkIVs] ,VsDV~;wy fØVhtevk;iQ rhv'dk-x`-lw-dh-Mh-lh-vkj-vkbZ-dkdY;we&1] ua-2&4

पारस्करगृह्यसूत्र

शुक्लयजुर्वेद से सम्ब(वेफवल एक पारस्कर गृह्यसूत्र ही प्रसि(है। इसे ‘‘कातीय सूत्र’’ ;जयराम की टीकाद्ध और ’’वाजसनेय गृह्यसूत्र’’ भी कहते हैं[3]। परम्परा वेफ अनुसार कात्यायन का ही नाम पारस्कर था। पारस्कर शब्द की व्युत्पत्ति पाणानि ने एक सूत्र ;6, 1, 57द्ध में की है और कीथ का विचार है कि यह पारस्कर हमारा सूत्रकार हो सकता है[4]। किन्तु महाभाष्य और काशिका वृत्ति में ‘‘पारस्कर’’ को देशवाची शब्द माना गया है। अतः निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पाणिनि ने इस शब्द द्वारा हमारे सूत्रकार का ही स्मरण किया है, तो भी अधिक सम्भावना इसी बात की है, क्योंकि हम और किसी पारस्कर से परिचित नहीं हैं।

पारस्कर गृह्यसूत्र वेफ विषय प्रायः वही हैं, जो क्रमशः 19, 17 और 15 कण्डिकाओं में विभक्तफ हैं। इनमें प्रतिपादित विषयों का विवरण इस प्रकार है-

प्रथमकाण्ड: आवसथ्याधात, उदाहरण, मधुपर्वफ, पाकयज्ञ, नैमित्तिकप्रायश्चित्त, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, मेधाजनन, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन।

द्वितीयकाण्ड: चूडाकरण, वेफशान्त, ;गोदानद्ध उपनयन, स्नातकःव्रत, पंचमहायज्ञ, उपाकर्म, अनध्याय, अध्यायोत्सर्ग लांगलयोजन, श्रवणाकर्म, इन्द्रयज्ञकर्म, पृषातकाकर्म, सीतायज्ञ।

तृतीयकाण्ड: नवा प्राशतकर्म, आग्रहायणी, तीन अष्टकाएं, शालाकर्म, मणिकावधान शिरोरोगभेषज, दासवशीकरण-उपाय, शूलगल, वृषोत्सर्ग, उदककर्म ;मृत संस्कारद्ध, पश्वालम्भ, अवकीर्णि-प्रायश्चित्त ;ब्रह्मचर्यभंग- प्रायश्चित्तद्ध, सभाप्रवेश, रथारोहण, हस्त्यारोहण, अश्वारोहण, उष्ट्रासभारोहण, चतुष्पथ-नदी-नौकाद्याभिमन्त्रण।

इन विषयों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि इस गृह्यसूत्र में श्रा(की चर्चा नहीं की गई। कात्यायन वेफ अष्टादश परिशिष्टों में ‘‘श्रा(कल्प’’ भी सम्मिलित है।

अतः पारस्कर गृह्यसूत्र में इस प्रकार का समावेश नहीं किया गया। अपितु कर्काचार्य और गदाधर दीक्षित वेफ भाष्यों से मण्डित श्रा(सूत्र पृथक् सम्पादित किया गया है। इस पर कृष्णमिश्र-कृत ‘‘श्रा(काशिका’’ भी प्रकाशित हो चुकी है ;रचनाकाल 1448 ई0=1550 संवत्द्ध।

इस सूत्र वेफ रूप में कात्यायन वेफ नाम से प्रसि(एक ‘‘शौचसूत्र’’ तथा ‘‘त्रिकण्डिका सूत्र’’ नामक नित्यस्नानविधि, तथा वापीवूफपतडागादि की प्रति ा से सम्ब(विधान भी दिये गये हैं, किन्तु ये सभी परिशि   कात्यायनप्रणीत नहीं हो सकते।

इस गृह्यसूत्र का शां0गृ0सू0 से घनि   सम्बन्ध है। अनेक स्थलों पर दोनों वेफ सूत्रों में पूर्ण शब्द-साम्य पाया जाता है। शां0 गृ0 ;1, 5, 1-5द्ध और पार0 गृ0 ;1, 4, 1-5द्ध सूत्र सर्वथा समान हैं। इसी प्रकार पार0 गृ0 सू0 1, 3, 29-30 और शां0 गृ0 सू0 2, 5, 2-3 एवं पार0 गृ0 सू0 2, 12, 4 और शां0 गृ0 सू0 4, 5, 17 सर्वथा समान हैं। इन दोनों गृह्यसूत्रों वेफ परस्पर समानान्तर सूत्रों की संख्या बहुत अधिक है। सम्भवतः ये समान सूत्र किसी प्राचीन गृह्यसूत्र से ग्रहण किये गये होंगे, जो अब लुप्त हो चुका है[2] वृषोत्सर्ग वेफ विषय में तो दोनों

---

1 eSDlewyj] fg0 ,0 la0 fy0] i`0–120

2 vk'o0 x`0 lw0 4] 7] 14] vk'o0 vkS0 10 6] 8] 6] 10] 6] 15

3 vk'o x`0 10 2] 6] 12 dk laosQrA

4 eSDMkWuy] c`0 ns0] Hkwfedk] i`0&22&23] dksFk] ,s0 vkj0 Hkwfedk] i`0&21

5 eSdMkWy] lokZuqØ] Hkwfedk i`0&19

6 ,s0 vkj0] vkaXykuqpkn i`0&297] fV0 14] vksYMucsZ] ,l0 ch0 bZ0 29] i`0&154 lsA

7 i`0&25

8 'kka0 x`0 lw0 1] 11] 1&4] 1] 12] 1&2] 1] 21] 1&3] 2] 7] 1&7]

करता है और वृषोत्सर्ग-सम्बन्धी शां0 गृ0 सू0 का वर्णन ही पार0 गृ0 सू0 का ोत प्रतीत होता है। इसवेफ अतिरिक्त दोनों गृह्यसूत्रों में दो दर्जन से अधिक सूत्र समान हैं, जिसमें शां0 गृ0 सू0 वेफ मत्र ही मूलमन्त्र माने जा सकते हैं। यदि हम मधुपर्कवफ विषयक मन्त्रों पर ही दृ पात करें, तो पता चलता है कि पार0 गृ0 सू0 में इन मन्त्रों का स्थान उतना उचित तथा युक्तिफसंगत प्रतीत नहीं होता जितना कि शां0 गृ0 सू0 में है। ऐसा प्रतीत होता है कि पार0 गृ0 सू0 में ये तीनों मन्त्र किसी अन्य ग्रन्थ से उठा कर कण्डिका वेफ अन्त में मूल क्रम में ही रख लिये गये हों। इसी प्रकार शां0 गृ0 सू0 वेफ ;4, 7द्ध और पा0 गृ0 सू0 ;2, 11द्ध की तुलना से पता चलता है कि शां0 गृ0 सू0 वेफ छोटे छोटे सूत्रों ;4, 7, 8 : 21-23, 26, 31, 33, 37, 38द्ध को मिलाकर पार0 गृ0 सू0 ने एक ही दीर्घाकार सूत्र ;2, 11, 6द्ध में समावि कर लिया है। इस प्रकार वेफ अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। अतः इस बात की बहुत सम्भावना है कि पार0 गृ0 सू0 की रचना शां0 गृ0 सू0 वेफ पश्चात् हुई। इस मत की पुि इस तथ्य से भी होती है कि पार0 गृ0 सू0 में शां0 गृ0 सू0 से कहीं अधिक जाति-वाद पर बल दिया गया है। शां0 गृ0 सू0 की रचना आश्व0 गृ0 सू0 से वुफछ पाश्चात्कालिक है, और पिफर पार0 गृ0 सू0 की रचनाशैली आश्व0 गृ0 सू0 की रचना शैली से अधिक संक्षिप्त है। यद्यपि शैली को काल-निर्णय का आधार मानना सर्वथा संगत नहीं कहा जा सकता, तो भी यह एक सहायक तर्वफ तो हो ही सकता है। इसलिए पार0 गृ0 सू0 की रचना शां0 गृ0 सू0 से उत्तरकालिक है। कात्यायन श्रौतसूत्र से पा0 गृ0 सू0 का यदि घनि सम्बन्ध हो तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये, क्योंकि दोनों ही वाजसनेय संहिता से सम्ब(हैं। इनवेफ गहरे सम्बन्धों का एक प्रमाण यह भी है कि परम्परा ने पारस्कर और कात्याायन को एक ही व्यक्ति वेफ दो नाम लिये हैं। पार0 गृ0 सू0 ने का0 श्रौ0 सू0 की ओर अनेक बार संवेफत किया है। इसवेफ अनेक सूत्र का0 श्रौ0 सू0 वेफ सूत्रों वेफ सर्वथा समान हैं, यथा-

पार0 गृ0 सू0 2, 1, 10=का0 श्रौ0 सू0 5, 2, 15
पार0 गृ0 सू0 2, 15, 5=का0 श्रौ0 सू0 18, 4, 23
पार0 गृ0 सू0 2, 15, 6=का0 श्रौ0 सू0 18, 4, 25
पार0 गृ0 सू0 2, 15, 4=का0 श्रौ0 सू0 1, 2, 16
पार0 गृ0 सू0 3, 12, 5=का0 श्रौ0 सू0 1, 1, 15

अतः यह सुनिश्चित है कि पार0 गृ0 सू0 की रचना का0 श्रौ0 सू0 की रचना से उत्तरवर्ती है। कात्यायन का काल आश्वलायन से उत्तरवर्ती है, क्योंकि बृ0 दे0 ;4, 139द्ध ने आश्वलायन ;आश्व0 गृ0 2, 6, 18द्ध वेफ मत का स्प उल्लेख्र किया है, और बृ0 दे0 कात्यायन की सर्वानुक्रमणी का मुख्य ोत रहा है। कात्यायन का काल 600 ई0 पू0 वेफ लगभग आंका गया है। अतः पार0 गृ0 सू0 का काल सबसे अनति दूर पश्चाद्वर्ती मानना उचित है।

पार0 गृ0 सू0 वसि धर्मसूत्र से प्राचीन है, क्योंकि व0 ध0 सू0 ;1, 14-15द्ध और पार0 गृ0 सू0 ;1-4, 8-11द्ध में पर्याप्त साम्य पाया जाता है। और अगले सूत्रों व0 ध0 सू0 ;1, 26-27द्ध में वसि ने पारस्कर ;1, 4, 11द्ध वेफ इस मत का तीव्र विरोध किया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का विवाह शूद्र कन्या से भी हो सकता है, चाहे वह बिना मन्त्र वेफ ही क्यों न किया जाये। व0 ध0 सू0 ;1, 36द्ध में पार0 गृ0 सू0 ;1, 8, 18द्ध वेफ इस मत का भी विरोध किया गया है कि अभ्रातृमयी कन्या से विवाह करने वेफ लिए वर अपने श्वशुर को एक रथ और सौ गौएं देवे।

इससे स्प हो जाता है कि व0 ध0 सू0 की रचना पार0 गृ0 सू0 से पश्चात्कालिक है और दोनों सूत्रों वेफ अन्तरालवर्ती काल में

---

1 lw;ZdkUr] dkS;we x`0 lw0 izLrkouk i`0&33
2 æ0 lw;ZdkUr-dkSFkqe x`0 lw0 i`0&18&82
3 lw;ZdkUr] ogh] i`0&33
4 ch-,e-vkIVs] ,s VSDlpy f0fVte vkiQ nh vk'o0 x`0 lw0 ch-Mh-vkj-cksY;we&1 ua-2&4 i`0&390&410
5 vkV~;k JkS0 lw0] 3] 21] 7 vk'o0 x`0 lw0 1] 23] 25

है, अतः व0 ध0 सू0 और पार0 गृ0 सू वेफ मध्य अपेक्षित सामाजिक परिवर्तनार्थ कम से कम दो ढाई सौ वर्षों का समय अपेक्षित है। अतः पार0 गृ0 सू0 का रचनाकाल 550-450 ई0 पू0 वेफ लगभग हो सकता है।

व्याख्याएँ :-पार0 गृ0 सू0 का महत्व और इसकी लोकप्रियता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसकी एक से एक विस्तृत और विद्वतापूर्ण पांच टीकाएं प्रकाश में आ चुकी हैं।

1. पारस्कर गृह्यसूत्र पर सर्वप्राचीन व्याख्या भर्तृयज्ञ द्वारा विरचित है। यद्यपि वुफछ समय पूर्व तक कर्काचार्य का भाष्य ही सर्वप्राचीन व्याख्यान माना जाता रहा है, किन्तु क्योंकि स्वयं कर्काचार्य ने निर्देश वेफ बिना ही भर्तृयज्ञ वेफ अनेकों विचारों का खुल कर प्रतिवाद किया है, अतः यह सि(है कि कर्वफ से पूर्व ही भर्तृयज्ञ ने अपने भाष्य की रचना की थी। कर्वफ द्वारा भर्तृयज्ञ का ही निराकरण अनेक स्थलों पर किया गया है। इसका स्प प्रमाण हमें गदाधर वेफ भाष्य से प्राप्त होता है, जिसने पारस्कर भाष्य नाम-निर्देश पूर्वक फ्भर्तृयज्ञ-भाष्यय् की स्थान-स्थान पर पच्चीस से भी अधिक बार चर्चा की है। दूसरे, रामकृष्ण ने भी पारस्कर की फ्संस्कार गणपतिय् नामक व्याख्या में पांच छः बार भर्तृयज्ञ को उद्धृत किया है। भर्तृयज्ञ की व्याख्या में अनेक स्थलों पर न वेफवल पारस्कर की शाब्दिक व्याख्या तथा कर्वफ एवम् उसवेफ पश्चाद्वर्ती व्याख्याकारों की व्याख्याओं से ही भेद पाया जाता हैं, अपितु कर्मकाण्डविषयक प(ति में भी वैमत्य परिलक्षित होता है। यथा, पार0 गृ0 ;2, 3, 1 में गायत्र्युपदेश वेफ समय ब्रह्मचारी वेफ स्थान वेफ विषयों में भाष्यकारों में मतभेद है। यथा-पश्चादग्नेगचार्य- स्योत्तरत उपविशति इति जयरामहरिहरौ। पश्चाादग्नेरुपवेशनमिति भर्तृयज्ञकाश्किाकारौ। आचार्यस्य इति गर्गप(तौ। आचार्यस्योत्तरत् इति वासुदेवः'। इसी प्रकार 2, 3, 8-9 में विभिन्न वर्णों वेफ लिए विभिन्न छन्दों की गायत्रियों का प्रतिपादन किया गया है, किन्तु भर्तृयज्ञ ने वा0 सं0 की ऐसी गायत्रियों का विधान किया है, जो अन्यत्र कहीं प्रतिपादित नहीं है।राजन्यार्थं तां सवितुः ;वा0 सं0 सू0 7, 14द्ध तथा वैश्य वेफ लिए युंजते मनः ;वा0 सं0 4, 14द्ध का विधान अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा एकदम नवीन सूचना हैं'। भास्कर मिश्र का त्रिकाण्डमण्डन ;12वीं शती का मध्यद्ध ने भी भर्तृयज्ञ का उल्लेख्र किया है। मेधातिथि ;नवीं शती का मध्यद्ध ने मनु0 8, 3 पर इनका उल्लेख्र किया है। अतः यह अ म शती या इससे पूर्वकालिक माने जाने चाहिये'। अनन्तदेवयाज्ञिक वेफ अनुसार इन्होंनेका0 श्रौ0 सू0 पर भी भाष्य लिख्रा था'।

2. कर्काचार्य की व्याख्या संक्षेप किन्तु स्प ता वेफ कारण विख्यात है। कर्वफ वेफ मत का हेमाद्रि ने स्वरचित श्रा(निर्णय में खण्डन किया है। हेमाद्रि का काल 1250 ई0 आंका गया है। त्रिकाण्डमण्डन ने भी कर्काचार्य को स्वरचित आपस्तम्बध्वनितार्थकारिका में उ(त किया है। त्रिकाण्डमण्डन का काल 1150 ई0 है। अतः कर्वफ का स्थिति समय ग्यारहवीं शती का अन्त अथवा बारहवीं का प्रारम्भ हो सकता है।

3. हरिहर कृत व्याख्या प(ति की शैली पर लिख्री गयी है, जिसमें गृह्यकर्मकाण्ड की विशद व्याख्या की गयी है। इसमें इन्होंने प्राचीन धर्मशास्त्रियों, यथा-मनु, याज्ञवल्क्य, यम, अंगिरा, सुमन्तु, लौगाक्षि प्रभृति वेफ मतों को उद्धृत किया है। इन्होंने मिताक्षरकार विज्ञानेश्वर ;सन् 1150 ई0द्ध वेफ मत को भी उद्धृत किया है। हेमाद्रि ;1250 ई0द्ध ने स्वरचित श्रा(निर्णय में हरिहर को उ(त किया है। अतः हरिहर का काल 1200 ई0 वेफ आसपास मानना चाहिये।

---

1 vk'o0 x`0 lw0 1] 13] 2&4
2 vk'o0 x`0 lw0 1] 15] 3
3 vk'o0 x`0 lw0 4] 2] 4&9 (rq0 dks0 x`0 lw0 5 2] 1&8)
4 vk'o0 x`0 lw0 4] 2] 15&18
5 ogh] 4] 3] 1&18
6 ogh] 4] 4] 1&6
7 vk'o0 x`0 lw0 2] 5] 6% vk'o JkS0 lw0 2] 6] 7
8- vk'o0 x`0 lw0 4] 8] 27
9 lh osykadj] ns'k0 dM0 ,lk- ih- ,e- ,l- ch-] ch] vkj] ,] ,l-] dksY;~e 11 i`0&168^183] ,y] liZ] bf.M0 vkiQ fu:Dr] i`0&36

वेफ पुत्र थे।

5. गदाधर का ¶गृह्यभाष्य॰ भी प्राचीन आचार्यों-यथा-भर्तृयज्ञ, वासुदेव, गंगाधर, रेणुदीक्षित तथा हरिहर-वेफ मतों को उ(त करता है। इन्होंने हरिहर का खण्डन भी किया है और मण्डन भी। एवं प्राचीन आचार्यों-मनु, हारीत, याज्ञवल्क्य, वसि , पराशर, वृ(शातातप, हेमाद्रि प्रभृति को उ(त किया है। इनवेफ अतिरिक्त गदाधर ने रेणुक तथा वासुदेव को भी व्याख्याकारों वेफ रूप में अनेकत्र उद्धृत किया है। अतः इनका काल 1250 ई0 वेफ पश्चात् सम्भवतः चौदहवीं शती में रखा जा सकता है। इनवेफ भाष्य में ज्योतिष-सम्बन्धी विषयों की विशद व्याख्या की गयी है। इन पर भर्तृयज्ञ और जयराम वेफ भाष्यों का अधिक प्रभाव लक्षित होता है। इनवेफ पिता का नाम वामन दीक्षित था।

6. विश्वनाथ रचित ¶गृह्यसूत्र प्रकाशिका॰ भी विशद् व्याख्या है। इसवेफ अन्तिम भाग वेफ लुप्त हो जाने वेफ कारण अन्तिम पांच खण्डों की व्याख्या इनवेफ पितृव्य अनन्त वेफ प्रपौत्र लक्ष्मीधर ने 1635 ई0 में पुनः लिखी, अतः इनका काल सोलहवीं शती वेफ उत्तरार्ध में हो सकता है। यह कश्यप गोत्र वेफ गुजराती नागर ब्राह्मण थे। इनवेफ पिता का नाम नरसिंह और माता का गंगादेवी था। इसवेफ अतिरिक्त भट्ट भास्करकृत ¶आर्यभास्करभाष्य॰ तथा मुरारी मिश्रकृत मन्त्रभाष्य तथा रामकृष्णभट्ट का ¶संस्कार गणपति॰ भी महत्वपूर्ण हैं। आर्यभास्करभाष्य तथा मुरारीकृत मन्त्रभाष्य अप्रकाशित हैं। संस्कारगणपति चौ0 सं0 सी0 वाराणसी से प्रकाशित है।

संस्करण 1. जर्मन अनुवाद सहित, स्टैंज़लर ए0 एपफ0 1876-78

2. एस0 बी0 ई0 ;29द्ध, आंग्लानुवाद, ओल्डनबर्ग, 1886
3. हरिहर व्याख्या सहित, बनारस, 1888
4. हरिहर व्याख्या, लाधाराम शर्मा, बम्बई, 1889
5. पांच व्याख्याओं सहित, महादेव गंगाधर बक्रे 1917
6. पांच भाष्यों सहित गुजराती प्रेस, बम्बई, 1917
7. श्रा(शौचादि कल्पसहित, गोपाल शास्त्री, बनारस 1920
8. पांच भाष्यों सहित, गोपाल शास्त्री नेने, बनारस, 1925
9. पांच भाष्यों सहित, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1927

गृहस्थाश्रम का महत्त्व

सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। वस्तुतः, गृहस्थाश्रम वास्तविक लौकिक कर्म और श्रम का जीवन है और अन्य सभी आश्रम इसी पर आश्रित होते हैं। प्रायः सभी धर्मसूत्रों में गृहस्थाश्रम वेफ महत्त्व को स्प शब्दों में स्वीकार किया गया है। गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है-

¶ऐक्याश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्ष विधानाद् गार्हस्थ्यस्यैव॰

1.3.35।

1 Ie`frpf[Unzdk] Hkkx&2] i`0&289
2 dk.ks] fg0 ?k0 'kk0] Hkkx&1 i`0&242
3 dk.ks] fg0 ?k0 'kk0] Hkkx&1 i`0&281
4 dk.ks] ogh] i`0&347
5 a0 y{e.kl:i] bf.Mflt i`0&37&38
6 csYoYdj] f]IVE]10 i`0&40

उपयोग करते हुए, पत्नी से साथ, मन्त्रों का उच्च या मन्द स्वर से पाठ कर जिन कर्मों वेफ करने का विधान है उन्हें करना चाहिए और इस कारण उनवेफ विपरीत आचरण का निर्देश करने वाले नियमों को वेदज्ञ प्रमाण नहीं मानते हैं।'

फ्त्रैविद्यवृ(ानां तु वेदाः प्रमाणमिति नि ा तत्र यानि श्रूयन्ते व्रीहियवपश्वाज्यपयः कपाल-पत्नी सम्बन्धान्युच्चैर्नीचैः कार्यमिति नैर्वफ़(आचारो{प्रमाणमिति मन्यन्ते।' ;2.23.9द्ध

गृहस्थाश्रम वेफ महत्त्व वेफ विषय में ही आगे कहा गया है-

फ्अथाप्यस्य प्रजानपतिममृतमाम्नाय आह-प्रजामनु प्रजायसे तदुते मर्त्या{मृतमिति।'
फ्हे मरणधर्मा मनुष्यो, तुम अपनी सन्तान में पुनः उत्पन्न होते हो, अतः सन्तान ही तुम्हारे लिए अमरत्व है।'

गृहस्थाश्रम की प्रशंसा में प्रजापति वेफ दूसरे वचन का भी उल्लेख किया गया है-

फ्त्रयी विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं श्र(ां तपो यज्ञमनुप्रदानम्। य एतानि वुफर्वते तैरित्सह स्मो रजो भूत्वा ध्वंसते{न्यत्प्रशंसन्निति।' जो तीनों वेदों का अध्ययन, ब्रह्मचर्य, सन्तानोत्पत्ति, श्र(ा, तप, यज्ञ, तथा दान-इन कर्मों को करता है वह धूल में मिल जाता है।'

इस प्रकार गृहस्थाश्रम का महत्त्व मुख्यतः दो कारणों से है। देवों, पितरों, षियों और मनुष्य वेफ प्रति कर्तव्य, पूजन, तर्पण, बलिकर्म इसी आश्रम में संभव हैं और इसी आश्रम में सन्तान उत्पन्न कर पितृ ण से मुक्तफ होने वेफ लिए विवाह संस्कार की व्यवस्था है। सन्तान वेफवल भौतिक दृ से धन सम्पत्ति वेफ उत्तराधिकार वेफ लिए आवश्यक नहीं है अपितु सन्तान वेफ साथ-साथ धर्म का भी विस्तार होता है।

स्मृतियों में गृहस्थाश्रम की सर्वत्र प्रशंसा की गयी है। मनु वेफ शब्दों में फ्जिस प्रकार समस्त प्राणी अपने जीवन वेफ लिए वायु पर आश्रित हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आश्रित हैं। गृहस्थ ज्ञान तथा अन्न से दूसरे तीनों आश्रमों की सहायता करता है। गृहस्थ अन्य तीनों आश्रमों से श्रे है।'

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः।।
यस्मात् त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहन्।
गृहस्थनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्ये ाश्रमे गृही।।
स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
सुखं चेहेच्छता नित्यं यो{धार्यो दुर्बलेन्द्रियैः।। *3.77.79*

संस्कार

'संस्कार' शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धतु घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है। इसवेफ अनवेफ व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हैं। भिन्न-भिन्न शास्त्रों में संस्कार शब्द वेफ भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण किये गये हैं। इस शब्द वेफ निम्नलिखित अर्थ प्रयोग में देखे जाते हैं-फ्शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, सौजन्य, पूर्णता व्याकरण सम्बन्धी शु(, संस्करण, परिष्करण, शोभा, आभूषण, प्रभाव, स्वरूप, स्वभाव, क्रिया, स्मरणशक्तिफ पर पड़ने वाला प्रभाव, शु(क्रिया, धर्मिक विधन, अभिषेक, विचार, भावना, धरणा, कार्य का परिणाम, क्रिया की विशेषताए' आदि।

वस्तुतः संस्कार का अभिप्राय शु(की धर्मिक क्रियाओं तथा दैहिक एवं बौ(िक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है। इनमें आचार के नियमों का भी समावेश है।

---

1. ae0 ,l0 ch0 bZ 29] ikj0 x`0 lw0 osQ vka xykuqo0 dh fVIif.k;ka A
2. vkSYMucxZ] ,l ch0 bZ0 30] Hkwfedk] i`0&39

को एक उत्तम उद्देश्य की ओर प्रेरित करती हैं। इन क्रियाओं की सामाजिक आवश्यकता है और उसवेफ साथ-साथ धर्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व भी है।

यद्यपि संस्कार किसी-न-किसी रूप में सभी जातियों में हैं, तथापि हिन्दू संस्कृति में संस्कारों की अपूर्व शृंखला देखने को मिलती है। हिन्दू जीवन एक ऐसा अद्भुत जीवन है, जिसका कोई क्षण निरुद्देश्य नहीं, कोई ऐसा क्षण नहीं जो पवित्र न बना दिया गया हो। प्राचीन हिन्दू जीवन की जो रूपरेखा धर्मसूत्रों और गृह्यसूत्रों में मिलती है वह एक ऐसा भव्य प्रासाद है जिसकी प्रत्येक ईंट बड़े सुन्दर और सही ढंग से रखी गयी है।

संस्कारों वेफ धार्मिक महत्त्व वेफ विषय में प्रायः सभी प्राचीन आचार्यों ने अपने मत व्यक्तफ किये हैं। मनु का कथन है-फगर्भाधान वेफ समय किये गये, होम, जातकर्म, चूड़ाकर्म और मौञ्जीबन्धन अर्थात् उपनयन संस्कार वेफ अनु ान से द्विजों वेफ गर्भ तथा बीजसम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं।ग

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीबन्धनैः।
बैजिवंफ गार्भिक ैनो द्विजानामपमृज्यते॥ मनुस्मृति 2.27

मनु वेफ ही अनुसार वे संस्कार वैदिक कर्मों वेफ साथ करने चाहिए इससे इस लोक और परलोक में पुण्य की प्राप्ति होती है-

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥ मनु0 2.26

मनु ने आगे कहा है-

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञै यज्ञै ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

फस्वाध्याय, व्रत, होम, देव- षियों वेफ तर्पण, यज्ञ, सन्तानोत्पत्ति, इज्या तथा प महायज्ञों वेफ अनु ान से यह शरीर ब्रह्मप्राप्ति वेफ योग्य हो जाता है।ग

ऐसी प्राचीन मान्यता रही है कि मनुष्य जन्म से शूद्र ही उत्प होता है लेकिन संस्कारों वेफ बाद वह द्विज हो जाता है-

फजन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।ग संस्कारों को मोक्ष की प्राप्ति का भी साधन माना गया है। मनुस्मृति वेफ टीकाकार मेधातिथि वेफ शब्दों में-

फन हि कर्मभिरेव वेफवलैब्रह्मत्व प्राप्तिः प्रज्ञानकर्म समुच्चयात् किल मोक्षः। एतैस्तु संस्कृतः आत्मनोपासना स्वधिक्रियते।ग

संस्कारों वेफ महत्त्व वेफ विषय में श लिखित का यह विचार भी ब्रह्म वेफ सायुज्य अथवा मोक्ष की प्राप्ति वेफ उद्देश्य को ही व्यक्तफ करता है-

संस्कारैः संस्कृतः पूर्वरुत्तरैरनुसंस्कृतः।
नित्यम गुणैर्युक्तफो ब्राह्मणो ब्राह्मलौकिकः॥
ब्राह्मं पदमवाप्नोति यस्मान्न च्यवते पुनः॥

संस्कारों से संस्कृत तथा आठ आत्मगुणों से युक्तफ व्यक्तिफ ब्रह्मलोक में पहुँच कर ब्राह्मपद को प्राप्त कर लेता है, जिससे वह कभी

---

1 ikj0 x`0 lw0 1] 1] 4&dk- JkS0 lw0 2] 3] 33] ikj0 x`0 lw0 1] 18] 1&dk0 JkS0 lw0 4] 12] 22]
ikj0 x`0 lw0 2] 5] 4]&dk0 JkS0 lw0 25] 1] 12&13] ikj0 :`0 lw0 2] 13] 5&dk0 JkS0 l`0 17]

चित्रकर्म यथानेकै र ैरुन्मील्यते शनैः।
ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्।।

वस्तुतः मनुष्य वेफ व्यक्तिफत्व निर्माण वेफ लिए इन संस्कारों का ऐसा ही महत्त्व है। लोक में चरित्रनिर्माण ही संस्कारों का मुख्य प्रयोजन है। इससे न वेफवल आत्मा का अपितु शरीर का भी श्रेयस् वेफ लिए सही विनियोग होता है। डॉ0 राजबली पाण्डेय वेफ शब्दों में फ्संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं। उनवेफ द्वारा संस्कृत व्यक्तिफ यह अनुभव करता था कि सम्पूर्ण जीवन वस्तुतः संस्कारमय है और सम्पूर्ण दैहिक क्रियाएँ आध्यात्मिक ध्येय से अनुप्राणित हैं। यही वह मार्ग था जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों वेफ साथ स्थापित किया जाता था। जीवन की इस प(ति में शरीर और उसवेफ कार्य बाधा नहीं, पूर्णता की प्राप्ति में सहायक हो सकते थे।य्-हिन्दू संस्कार, पृ0 ३१द्ध।

संस्कृति और संस्कार

संस्कृति और संस्कार दोनों शब्द एक-दूसरे वेफ सन्निकट हैं। अर्थ की दृ से एक साध्य है तो दूसरा साधन। एक जीवन की पूर्णता की ओर इंगित करता है, दूसरा विधि विधानों की ओर। संस्कारों का उद्देश्य है संस्कृत जीवन का निर्माण। संस्कृत जीवन का अर्थ है उन्नत, उदात्त, दिव्य जीवन, मानवता का परिष्करण, दैवी, अतिमानुष विभूतियों का आधार, परम, उज्ज्वल से उज्ज्वल ज्योति स्वरूप शक्तिफ का मानव काया में अवतरण।

संस्कारों का जहाँ अध्यात्मिक महत्व है, वहाँ उनका सामाजिक महत्त्व भी कम नहीं है। एक-एक व्यक्तिफ समाज का एक-एक घटक है। जैसे कई घटकों वेफ व्यवस्थित एकत्रीकरण से व्यक्तिफ का निर्माण होता है, वैसे ही संस्कृत व्यक्तिफयों वेफ संघटन को शि समाज की संज्ञा प्राप्त होती है।

मानव सृ में महान् है, श्रे है। मानव रचना से श्रे तर रचना यहां अन्य नहीं है। मानव रचना में मस्तिष्क सर्व प्रधान है। संस्कार की बात उसी को सूझती है। पशु पक्षी जानते भी नहीं, संस्कार क्या है। मानव वेफ पास सहज ज्ञान है, विकसित ज्ञान है, विकसितज्ञान की परम्परा का ज्ञान है और उस ज्ञान में भी अग्रिम विकास की कड़ियों को जोड़ देने का ज्ञान सामर्थ्य है। इस मानव का यदि संस्कार किया जाये, तो क्या वह ऊर्ध्व मानव, अति मानव की कोटि में नहीं पहुँच सकता? क्या उसवेफ अन्दर निहित गुह्य दैवी अंश उभर कर बाहर नहीं आ सकता? क्या मनुष्य देव और देवों में भी महादेव नहीं हो सकता?

इतिहास कहता है कि संस्कारों वेफ प्रभाव से मनुष्य उन्नत हो सकता है। भु तपश्चर्या द्वारा मनुष्य से देव बने थे। विश्वामित्र तप वेफ प्रभाव से ही राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने थे। श्वेतद्वीप में चित्र शिखण्डी षियों वेफ तप का वर्णन महाभारत में आया है। उन्हें दिव्य अलौकिक ज्योति वेफ दर्शन हुए थे। कठोपनिषद् में जो मानव पितर, गन्धर्व तथा देव कोटियों का उल्लेख है, वह विकास परम्परा को पुष्ट करता है तैत्तिरीय उपनिषद् में श्रोत्रिय तथा अकामहत को मनुष्य, मनुष्य-गन्धर्व, देव-गन्धव, पितृ, आजानज देव, कर्मदेव, देव, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति तथा ब्रह्म वेफ आनन्द की श्रेणी में क्रमशः पहुँचता है, वह उन्नयन वेफ स्तरों को ही प्रकट करता है।

जब विकास सि(है, उन्नयन, निश्चित है, तो उसकी उपलब्धि वेफ लिए साधन सोपान भी अवश्य होने चाहिए। आर्य जाति में संस्कारों की प्रति । इन्हीं साधन सोपानों वेफ रूप में हुई। सांस्कृतिक प्रभविष्णुता को वर्धमान करने में संस्कारों का प्रधान योगदान है। आर्य जाति ने भीषण विजातीय आक्रमणों वेफ संघर्ष में भी अपने संस्कारों का परित्याग नहीं किया। रूढ़ रूपों में ही सही, हम उनसे चिपटे तो रहे। कालान्तर में महर्षि दयानन्द वेफ उदय से संस्कारों का महत्त्व भी हमारे समक्ष स्प हो उठा। हमारे संस्कार जीवित रहे और इसवेफ साथ हम भी। संस्कार ही न रहते तो उद्देश्य को हृदयंगम करने की ओर कौन बढ़ता। अतः लक्ष्य को जीवित रखने वेफ लिए उसवेफ रूढ़गत रूप को जीवित रखना भी आवश्यक है।

आर्य जाति ने अर्थ और काम की अवहेलना नहीं की है, पर उनको जरूरत से ज्यादा मूल्य भी नहीं दिया है। उन्हें उसने साध्य नहीं,

---

1 xnk?kj] ikj0 x`0 lw0 2] 3] 1

2 foLrkjkFkZ ae0 cvnsok mikè;k;&jfor vs[k ¶Hkr`:K———b0 fo0 Dk0 1 12] 3] i`0494&503

आकांक्षाओं एवं आदर्शों को न हम आदर्श समझते हैं और न उन्हें संस्कृति वेफ अन्तर्गत स्थान ही देते हैं। आत्मोपलब्धि ही एक ऐसा आदर्श है जिसकी जाने अनजाने में सभी आकांक्षा करते हैं। आत्म प्राप्ति ही आनन्दोपलब्धि है, अमृत की प्राप्ति है। इसी को आदर्श मानकर जो प्रयत्न किये जायेंगे, वे सह-प्रयत्न होंगे।

संस्कारों से व्यक्ति का अन्तस्तल ही नहीं, सामाजिक वातावरण भी शु(होता है। संस्कृत जीवन की पवित्रता में वह सौरभ है, जो सीमाओं का अतिक्रमण करता हुआ सबवेफ पास पहुँचता है और सबको सौरभ सम्पन्न एवं पवित्र बनाता है। क्षण भर वेफ लिये ही सही, पर उससे सबको पोषण प्राप्त होता है, तृप्ति होती है, शक्ति मिलती है। हमारे संस्कार इसी हेतु यज्ञभावना पर अवलम्बित हैं। पूजा, संगतिकरण और दान प्रमुख विशेषता है।

आर्य जाति ने मानव वेफ आध्यात्मिक निर्माण वेफ लिए जिन संस्कारों की कल्पना की, उनकी आधारशिला अतीव सुदृढ़ तथा गहरी है। संस्कार जन्म वेफ पश्चात् नहीं, उसवेफ पूर्व से ही प्रारंभ हो जाते हैं। सृ वेफ मूल में जिन तु एवं सत्य, सोम एवं अग्नि नाम वेफ तत्त्वों का सहयोग है, वे ही द्विविध तत्त्व मानव जन्म वेफ मूल में भी क्रियाशील रहते हैं। इनका नाम वीर्य और रज है। वीर्य और रज जितने ही शु(होंगे, संतति भी उतनी ही शु(होगी। वीर्य और रज की शु(ता स्वयं संस्कारों पर अवलिम्बत है। संस्कारी माता-पिता वेफ विशु(वीर्य एवं रज से संस्कृत सन्तान का जन्म होता है-इस तथ्य को हमारे पूर्वज भलीभांति अनुभव कर चुवेफ थे। अतः संस्कारों का प्रारंभ गर्भाधान से ही होता है मूल को सींचने से शाखा-पत्र पफल-पूफल सभी आहार प्राप्त कर लेते हैं और हरे-भरे बने रहते हैं।

षोड्श संस्कार ;सामान्य-परिचयद्ध

1. गर्भाधान-जीवन संघर्ष में यद्यपि मृत्यु ही विजयिनी बनती है। सभी प्राणी अन्त में काल-कवलित हो जाते हैं परन्तु दैव ने संसति का जो विधान प्रस्तुत किया है, उसमें जीवन पराजित होकर विजयी बन जाता है। जीवन वेफ जो अणु वीर्य में निहित रहते हैं उनमें मानसिक अणु भी विद्यमान रहते हैं। शास्त्रकारों ने वीर्य को बीज माना है और ही वेफ रज अथवा शोणित को क्षेत्र। संतित का प्रसव एक नहीं, दोनों वेफ सम्मिलन से होता है। सृ वेफ मूल में भी ये दोनों तत्त्व त और सत्य वेफ रूप में विद्यमान रहते हैं। सृ का विकास ही इन्हीं दो तत्त्वों का क्रीड़ा क्षेत्र है। संस्कार की आवश्यकता सर्वत्र है।

संस्कृति वेफ उत्पादन में माता का प्रधान्य है या पिता का। इस विषय में सभी विद्वान एक मत नहीं हैं। यद्यपि गर्भ का पालन पोषण तो माता ही करती है और उत्पत्ति वेफ अनन्तर दो-ढाई साल तक बच्चा उसी की गोद में खेलता, लोरियां सुनता और स्तन-पान द्वारा संवर्(ित होता है ऐसी अवस्था में माता का सुसंस्कृत होना अनिवार्य हो जाता है। संतान कल्याण पथ पर तभी अग्रसर होगी, जब उसे सुसंस्कृत माता का दुग्ध पीने को मिलेगा। इतिहास ने ऐसे उदाहरण सुरक्षित रखे हैं, जिनमें पिता राक्षस हैं, परन्तु माता वेफ सतीत्व और प्रवण अस्तित्व ने सन्तान को सत्-पुरुष वेफ रूप में जन्म दिया है। हिरण्यकशिपु की सन्तान प्र ाद वेफ रूप में आज भी पूज्य एवं सम्मानास्पद बनी हुई है।

माता का स्थान प्रमुख है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु पिता वेफ शुक्र को भी अवहेलनीय नहीं समझा जा सकता। शुक्र में पिता का पूर्णरूप उतर आता है। मानव स्वभाव की विभिन्नता शुक्र वेफ विभेदों का ही परिणाम है। यदि हम संस्कृत सन्तान चाहते हैं तो माता वेफ शोणित की सात्विकता वेफ साथ पिता वेफ शुक्र की सात्त्विकता को भी साथ लेना पड़ेगा। इसवेफ लिए अन्न अथवा आहार की शु(सभी को मान्य है। सत्त्व की शु(ता आहार-शु(पर ही अवलम्बित है। आहार तीन प्रकार वेफ हैं-सात्विक, रजस् और तामस। जिस प्रकार वेफ आहार का सेवन किया जायेगा, शुक्र उसी वेफ अनुरूप बनेगा। हम शुक्र को इसलिए भी प्रधानता देते हैं कि मानव का पूरा आकार उसी में सन्निहित रहता है। अतः माता का रज का जो क्षेत्र है और पिता का शुक्र जो बीज है, संतति की उत्पत्ति में सम-रूप प्रधान माने जाने चाहिए। बीज चाहे जितना अच्छा हो अनुर्वर क्षेत्र में पड़कर पफलप्रद नहीं होगा। इसी प्रकार क्षेत्र अच्छा हो, बीज निकम्मा है तो भी सुपफल हाथ नहीं लगेगा। क्षेत्र भी उर्वर हो और बीज भी अच्छा हो, तभी पफसल अच्छी उग सवेफगी।

संस्कार आचार और विचार दोनों में ही विद्यमान होना चाहिए। अन्न की शु(मन पर प्रभाव डालती है पर कभी-कभी मन की चेतना इतनी प्रबल होती है, कि वह अन्न पर भी हावी हो जाती है, पिफर भी अन्न-शु(का विशेष महत्त्व है। इसमें सन्देह नहीं। छान्दोग्य उपनिषद में मन का निर्माण अन्न से ही माना गया है।

और पवित्र होगी। साथ ही वैयक्तिक विकास के लिए भी पावन भूमिका प्रस्तुत हो जाएगी। गर्भाधान संस्कार में इसीलिए तिथियाँ तथा सहवास के अन्य नियम निश्चित किए गए हैं। सन्तति संस्कृत हो, धार्मिक भावों से ओत-प्रोत हो तथा सदाचार प्रवण हो, ऐसा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य इस संस्कार के अन्दर सन्निहित था सन्तानोत्पत्ति में पितृ ण से उ ण होने का भाव भी विद्यमान रहता था। ण के सम्बन्ध में सभी आचार्य एक मत नहीं हैं। किसी-किसी के मत में पुत्रोत्पत्ति को आवश्यक नहीं समझा गया है। शास्त्रों में ऐसा नियम भी है कि पुरुष चाहे तो गृहस्थी में न जाकर सीधे संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता है, पर वह हमारी सम्मति से नियम नहीं अपवाद है।

संस्कृति का अन्तिम लक्ष्य भूमा है जो अल्पता का विपरीत भाव है। अल्पता या संकीर्णता से निकल कर विशाज बनना, निखिल ब्रह्माण्ड को अपना समझना ही भूमा की अवस्था है। संकीर्णता क्लेश कारक है। सुख भूमा में ही है। भूमा का एक सुदृढ़ व्यापार गृहस्थाश्रम है, जहाँ कहीं का पुरुष और कहीं की स्त्री दोनों मिलकर दाम्पत्य भाव के दृढ़सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। दो मिलकर एक हो जाते हैं। सन्तानोत्पत्ति के साथ भूमा का यह आधार और भी अधिक सुदृढ़ होता है हृदय की अविशालता बढ़ती जाती है और अपने आंचल में एक नहीं अनेक को समेट लेती है।

2. पुंसवन-गर्भ धारण का निश्चय हो जाने के पश्चात् गर्भस्थ शिशु को पुंसवन नामक संस्कार के द्वारा संस्कृत किया जाता था। पुंसवन का अभिप्राय सामान्यतः उस कर्म से था, जिसके अनु ान से पुमान ;पुरुषद्ध का जन्म हो।[3] पुंसवन संस्कार गर्भधारण के पश्चात् तृतीय अथवा चतुर्थ मास में सम्पन्न किया जाता था। गर्भिणी स्त्री को उस दिन उपवास करना पड़ता था। रात्रि में वृक्ष की छाल को कूटकर और उसका रस निकालकर स्त्री की नाक के दाहिने रन्ध्र में 'हिरण्यगर्भ' आदि शब्दों से आरंभ होने वाली चाओं के साथ छोड़ा जाता था।[4] गृह्यसूत्रों के अनुसार उपर्युक्त मंत्रों के साथ कुशकंटक तथा सोमलता भी कूटी जाती थी।

सम्पूर्ण संस्कार का उद्देश्य गर्भस्थ बच्चे के अन्दर उत्साह, वीरता तथा पौरुष के भावों का सन्निवेश करना है। इससे बालक संस्कारी पैदा होगा। औषधियों का प्रयोग गर्भ में पवित्रता का संचार करेगा और मन्त्रोच्चारण मन को निर्मलता प्रदान करेगा। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोनों का परित्याग करके गर्भिणी स्त्री को अपना चित्त सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। इससे सन्तान के सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य दोनों पर प्रभाव पड़ता है।

3. सीमन्तोन्नयन-सीमन्तोन्नयन का अर्थ है सौभाग्य का उन्नयन। पुंसवन् के उपरान्त यह संस्कार सौभाग्य के उत्कर्ष का ही द्योतक है। नारी मनु के शब्दों में पूजनीय है। वेद विवाहित पत्नी को साम्राज्ञी का अभिधान देता है, जिसका अर्थ है सम्यक् रूप से चमकने वाली। गर्भ धारण करके वह और भी सम्मानास्पद बन जाती है और पुत्र प्रसव के साथ तो उसकी मर्यादा बहुत अधिक बढ़ जाती है। पुंसवन में जिस पौरुष और ओज का आधान गर्भ में किया गया था, सीमन्तोन्नयन में उसे और भी बल मिलता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भ के चौथे मास में जब चन्द्रमा पूर्ण्य नक्षत्र से युक्त हो और पक्ष भी आपूयमाण हो अर्थात् जिसमें कोई रिक्तता तिथि न हो, यह संस्कार होना चाहिए। पारस्कर तथा कुछ अन्य गृह्यसूत्रों के अनुसार यह छठवें महीने में होना चाहिए। महर्षि दयानन्द ने स्वरचित 'संस्कार विधि' में पति द्वारा पत्नी के केशों में सुगन्धित तेल डालने का और केशों को संवारने का विधान लिखा है। केश प्रसाधन के लिए उन्होंने उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका, कुशा की मृदु क्षीपी अथवा स्याही पशु के कांटे से पत्नी के केशों को स्वच्छ करने का विधान लिखा है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में भी ऐसा ही विधान है।

गर्भ के दिनों में आयुर्वेद के अनुसार पांचवें महीने में मन का निर्माण होने लगता है शिशु की मानसिक शक्ति के उन्नयन के लिए भी यह संस्कार अपेक्षित है। गर्भिणी स्त्री की इच्छाओं की पूर्ति करना भी इस संस्कार के साथ संयुक्त है। गर्भिणी के प्रिय अभि की पूर्ति से जहाँ उसके मन पर सुखद प्रभाव पड़ता है, वहाँ शिशु की मानसिक निर्मित पर भी अपेक्षित प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। याज्ञवल्क्य स्मृति अनुसार-

दौदस्या प्र"नेन गर्भोदोषमवाप्नुयात।
वैरूप्यं निधनं वा(पि तस्मात कार्यं प्रियं स्त्रियः।। याज्ञवल्क्य स्मृति 3.89

स्त्री का प्रिय अभिलाषित इस अवस्था में पूर्ण होना चाहिए। नहीं तो मन पर दूषित प्रभाव पड़ेगा और परिणामतः गर्भ भी क्षीण हो जाए। सीमन्तोन्नयन संस्कार में पठित निम्नांकित मंत्र भी संस्कार की महत्ता अभिव्यंजित करते हैं-

तेनाह मस्यै सीमान नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि।।

मन्त्र ब्राह्मण ब्रा0 1.51-2

हे स्त्री! तु ऊर्जस्वी वृक्ष वेफ समान उर्जस्विनी और पफलवती हो। जैसे वनस्पति वेफ पत्ते पफलरुपी सम्पदा से संयुक्त होते हैं उसी प्रकार तू संततिरुपी सम्पदा से ओत-प्रोत हो। जैसे प्रजापति अदिति वेफ सीमान्त को सौभाग्य प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं तेरे सौभाग्य का उन्नयन करता हूँ। तेरी प्रजा वृ(ावस्था तक सुखी और समृ(जीवन व्यतीत करे। इस अवसर पर खिचड़ी में पुष्कल घृत डालकर गर्भिणी को खिलाने का भी विधान है। समीप बैठी हुई वृ(स्त्रियाँ गर्भिणी का आशीर्वाद देती हुई कहती हैं-

ॐ वीर सूस्त्वं भक जीव सुस्त्वं भव, जीव पत्नीत्वंभव।

हे मंगलमयी महिला! तू वीर पुत्र पैदा करने वाली बन।
जीवन से संपृक्त सन्तान वाली बन और जीवन की रक्षा करने वाली बन।

अब तक जिन तीन संस्कारों का वर्णन हुआ है, वे उत्पन्न होने वाले वत्स की शारीरिक तथा मानसिक स्वस्थता वेफ सम्पादन वेफ लिए, उसे संस्कारी बनाने वेफ लिए तथा संस्कृतिनि रूप में उत्पन्न होने वेफ लिए लाभकारी हैं। वत्स प्रसव वेफ सूर्य की यह पृ भूमि जिस वैदिक संस्कृति में विद्यमान हो वह निस्सन्देह अतीव उच्चकोटि की संस्कृति है। वेद इसीलिए इस संस्कृति को 'विश्ववारा' कहता है यह विश्व भर वेफ लिए वरणीय है। यदि मानव वेफ निर्माण में इस प्रकार वेफ संस्कार सक्रिय रहे तो विश्व में शान्ति का वातावरण उत्पन्न हो सकता है। हम पल-पल में जिस अशान्ति, कलह, दौर्मनस्य तथा क्लेशकारिणी परिस्थितियों का अनुभव करते हैं। वे ऐसे संस्कारों से निराकृत हो सकती है। मंगलमय जीवन का अभ्युदय इसी विश्ववारा संस्कृति द्वारा संभव है।

4. जातकर्म-जातकर्म संस्कार नाभिबांधन वेफ पूर्व सम्पन्न होता था। जातक का मुख देखकर पिता स्नानकर नन्दी श्रा(और जातकर्म संस्कार सम्पन्न करता था। इस समय का श्रा(शुभ व मांगलिक माना जाता था, क्योंकि इसका प्रयोजन पितरों का सम्मोदन करना था।

प्रसव वेफ पश्चात् गर्भस्थ शिशु जब बाहर आता है, तो माता-पिता वेफ आनन्द की सीमा नहीं रहती। माता को जो प्रसव का क सहन करना पड़ता है, वह शिशु दर्शन से सबका सब समाप्त हो जाता है। पिता भी आ ादित होता है और धर्मशास्त्र वेफ लेखानुवूफल पुत्र वेफ मुख को देखकर पितृ ण से मुक्त हो जाता है।

गृहस्थाश्रम वंश विस्तार का मुख्य आधार है। पुत्र होना तो कल्याण कारक है ही, पर यदि पुत्री भी उत्पन्न हो तब भी वंश वृ(की कामना सपफल हो सकती है। शास्त्र की आज्ञा है कि पिता अपनी पुत्री वेफ पुत्रों को स्ववंश विस्तार का आधार बना सकता है। शास्त्र में पुत्र-पौत्रादि वेफ अभाव में दौहित्र को नाना का श्रा(करने का विधान पाया जाता है। गोद ले लेने पर नाना की सम्पत्ति पर उसका स्वामित्व हो ही जाता है वैसे भी प्रायः सभी स्मृतिकारों ने नाना की सम्पत्ति पर दौहित्र वेफ अधिकार को स्वीकार किया है। अतः पुत्र वेफ रुप में सर्वांशतः और पुत्रों वेफ रुप में अंशतः पितृ ण वेफ मुत्तिफ की समस्या का समाधान है।

जातकर्म संस्कार में गर्भिणी वेफ शरीर पर जल छिड़का जाता है और निम्नांकित मंत्र द्वारा प्रभु से प्रार्थना की जाति है।

ॐ एजतु दश मास्यो गर्भो जरायुणा सह।
यथा{यं वायुरेजति, यथा समुद्र एजती।
स्वायं दशमास्यो असृज्जसयुणा सह। प0 अ0 8, मं0 28

हे प्रभु! जरायु वेफ साथ दश महीने तक गर्भ में रहने वाला यह बालक बाहर आये, जैसे वायु और समुद्र अपनी अभिव्यत्तिफ करते हैं, वैसे ही यह शिशु गर्भ से बाहर आकर अभिव्यत्तफ हो। पुत्र उत्पन्न हो जाने पर दाई बालक वेफ शरीर से जरायु को पृथक् करवेफ मुख, नासिका, कान, आंख आदि वेफ मल को दूर करवेफ कोमल वस्त्र से पोंछ कर नाल छेदन करे। यह नाल नाभि से जुड़ा रहता है। नाल काट कर बालक को उष्ण जल से स्नान कराना चाहिए। पिफर अग्निहोत्र की आवश्यक विधि करवेफ प्रभु का ध्यान करना चाहिए। तत्पश्चात्

सात बार घृत, मधु चटाकर चावल और जौ को सशोधित करवफ पानी वेफ साथ पीस कर और वह्न से छानकर एक पात्र में रख्र ले और उसे अपने अंगु तथा अनामिका से थोड़ा सा लेकर एक बिन्दु बालक वेफ मुख्र में छोड़ दें। ऐसा गोभिल गृह्यसूत्र का मत है। चावल और जौ भी सात्विक अन्न में परिगणित हैं और आयुष्वर्धक हैं। इन्हें आज्य, अन्न और अमृत कहा गया है। बालक मेधावी हो, पु हो और शरीर से दृढ़ हो, इस भाव वेफ बोधक कई मन्त्र इस संस्कार में पढ़े जाते हैं।

5. नामकरण संस्कार-सृ पल-पल में नवीन रूप धारण करती है। प्राचीन व्यतीत होता है और नवीन का आविर्भाव होता है। इस नित नूतन संस्कृति वेफ साथ नवीन-नवीन ईकाइयां अस्तित्व में आती हैं और उनका नामकरण भी करना पड़ता है। यह नाम कभी तो प्राचीन नामों को ही स्मरण कराते हैं और कभी अपनी नवीनता भी प्रदर्शित करते हैं। जब कोई नवीन सम्प्रदाय उट ख्रड़ा होता है तो वह अपनी विशि ता स्थापित करने वेफ लिए कभी सुन्दर अतीत काल की किसी निधि को अपने आंचल में समेटता है और कभी उसवेफ प्रति अपने विरोध को अभिव्यत्तिफ देता है। किसी पददलित जाति का यदि पूर्वकाल स्वर्ण युग रहा है तो वह उसी से प्रेरणा पाकर अपने अवरू(पथ को उन्मुत्तफ करती है और प्रगति वेफ मार्ग पर आरूढ़ हो जाती है। यदि उसका भूतकाल प्रेरणाप्रद नहीं है तो अपने बु(वैभव से वह किसी अभिनव मार्ग की ख्रोज करती है और आगे बढ़ जाती है। आर्य जाति का अतीत स्वर्णिम अतीत है, वहाँ प्रचुर आदर्शों की राशि सन्निहित है। हमारे नामकरण संस्कार पर भी उसकी छाया पग-पग पर अनुभूत होती है।

ऐतरेय उपनिषद् में जैसे पुरुष वेफ शरीर वेफ विविध अंगों में विविध देवताओं को स्थापित किया गया है वैसे सृ वेफ सभी पदार्थ न्यूनाधिक मात्रा में दिव् शत्तिफयों वेफ वेफन्द्र हैं। इनमें से प्रत्येक की सत्ता किसी न किसी दिव् शत्तिफ से सम्बन्धित है। यह देववाद यद्यपि बहुतत्व का सूचक है, पर दार्शनिक सृ ने इस बहुतत्व का एकत्व में पर्यवसान भी किया है। यह एकत्व मूल ोत की ओर इंगित करता है परन्तु सृ रूपी यज्ञ एकत्व नहीं, बहुत्व की अपेक्षा रख्रती है। यहाँ बहुत्व है, यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है। अतः इस बहुत्व वेफ साथ नामों का बहुत्व भी स्वाभाविक है।

प्रत्येक वुफल की एक परम्परा होती है, उस परम्परा की रक्षा करने वेफ लिए भी नाम का चुनाव किया जाता है। कभी-कभी वुफल देवता वेफ नाम पर भी रख्रा जाता है। किसी प्रख्यात सन्त महात्मा अथवा वीर पुरुष वेफ नाम पर भी नाम माता-पिता अपने शिशु का नाम रख्र लेते हैं। नाम में लौकिक भावना वेफ साथ आध्यात्मिक भावना भी लगी रहती है। जीवन की सफलता अथवा समाज में गौरवशाली पद प्राप्त करना दोनों ही नामकरण की पृ भूमि में क्रियाशील रहते हैं। नामकरण वेफ साथ बच्चा समाज का एक घटक बन जाता है समाज में उसकी तथा उसवेफ वुफल की क्या स्थिति है, यह भी हमारी वर्ण व्यवस्था वेफ आधार पर नाम से ही प्रकट हो जाती है। नामकरण संस्कार में पिता बच्चे की नासिका से निकलती हुई श्वास-प्रश्वास को हाथ रख्र कर स्पर्श करता है और कहता है-

को(सि कतमो(सि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनाती तृपाम्
भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।

-यजु0 अ0 6/ मु0 व0

हे वत्स! तू कौन है? कौन सा है? किसका है? किस नाम वाला है? जिस तेरे नाम को हम समझते हैं और तुझको सोम वेफ द्वारा तृप्त करते हैं, सत्चित आनन्द स्वरूप प्रभु हमें प्रजाओं वेफ साथ सुन्दरतापूर्वक पु करे। इस प्रकार बच्चा आनन्द रूप है। आनन्दमयी सत्ताओं में वह अन्यतम है। वह आनन्दरूप प्रजापति का है। उसका नाम आनन्द ही है।

नामकरण संस्कार इस प्रकार बच्चे वेफ सामाजिक महत्त्व को प्रकट करता है उसका नाम सद्गुणों का द्योतक होने वेफ कारण उसे संस्कार अपनी संस्कृति की ओर ले जाता है जब हम बच्चे को नाम लेकर बुलाते हैं तो मानों उसका अन्तःकरण बाह्यरूप में उस नाम वेफ साथ लगा चला जाता है। बच्चे को इन्हीं दो का संस्कार करना है। इन्हीं का परिशोधन उसे उत्कर्ष पथ का पथिक तथा उन्नयनशील बनायेगा।

6. निष्क्रमण-इस संस्कार में बच्चा सूतिका गृह से बाहर निकाला जाता है निष्क्रमण संस्कार को सम्पादित करने का समय जन्म वेफ पश्चात बारहवें दिन से चतुर्थ मास तक है। यम ने तृतीय और चतुर्थ मास वेफ विकल्प को स्प करते हुए कहा है कि तृतीय मास

सूर्य और चन्द्र सौर परिवार के दो प्रमुख अंग हैं। हमारी पृथ्वी वेफ लिए इनका विशेष महत्त्व है। दिन और रात तुओं का क्रम इन्हीं पर अवलंबित है, मानव शरीर वेफ लिए दोनों स्वास्थ्यवर्(क हैं। संवुफचित सीमा से निकालकर विशाल क्षेत्र में प्रवेश करना तन और मन दोनों वेफ लिए हितकर है। बच्चे की दीर्घायुष्म पर भी इसका विशेष प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार यह संस्कार सांस्कृतिक दृ से बच्चे को पवित्र वायु मण्डल का सेवन करता है और उसे दीर्घायुष्य तक पवित्र रहने की प्रेरणा देता है संकीर्णता से विशालता की ओर उन्मुख होना संस्कृत जीवन की प्रमुख विशेषता है।

७. अन्नप्राशन-शरीर की सत्ता में मन, प्राण और वाणी तीन ही प्रमुख हैं। इनमें मन अन्न से बनता है, जल प्राण से बनता है और वाणी तेज से बनती है। जैसे दूध वेफ पिलाने पर उसवेफ सूक्ष्म अंश मक्खन वेफ रूप में ऊपर जाते हैं, वैसे ही अ , जल और तेज वेफ मन्थन का परिणाम उनवेफ सूक्ष्म अंश मन, प्राण और वाणी वेफ रूप में प्रकट होता है मानसिक शक्ति अन्न पर अवलम्बित है। जीवन जल में स्थिर रह सकता है। पर मन अन्न वेफ अभाव में अशक्त हो जाता है। वाणी भी एक अ ुत शक्ति है। इसवेफ बिना सामाजिक व्यवहार नहीं चल सकता। वाणी वेफ द्वारा ही अन्य व्यक्तियों से सम्पर्वफ स्थापित होता है। वाणी की विकसित शक्ति लेखों और ग्रन्थों वेफ रूप में न जाने कब से मानवता की ज्ञान निधि वेफ रूप में सुरक्षित है। यह हम सबका पथ प्रदर्शन करती है। इस प्रकार जीवन वेफ ये तीनों ही अनिवार्य तत्त्व बाह्य वायु मण्डल से उपलब्ध होते हैं। अन्न-प्राशन संस्कार में अन्न वेफ ये तीनों ही रूप विद्यमान हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र वेफ अनुसार-

ष ं मास्यन्न प्राशनम्।।

घृतोदनं तेजस्काम्।

दधि मधु घृत मिश्रित्मन्नप्राशम येत्।

अर्थात् छठे महीने में अन्न-प्राशन करना चाहिए। जिनको अपना बालक तेजस्वी बनाना है, उन्हें इस अवसर पर बच्चे को घृत भात खिलाना चाहिए। किसी-किसी मत में भात वेफ साथ दही, शहद और घी तीनों मिले रहने का विधान कहा गया है।

इस प्रकार संस्कृति वेफ विकास में इन सभी का योगदान अपेक्षित है।

८. चूड़ा-कर्म-मुण्डन संस्कार में जो सांस्कृतिक दृ है। उसका भी अपना महत्त्व है। आर्यसभ्यता में शिखा एवं सूत्र ;यज्ञोपवीतद्ध दोनों सांस्कृतिक महत्त्व रखते हैं। शिखा वेफ सम्बन्ध में वक्तव्य है कि वह मुण्डन वेफ समय तथा द्वितीय बार वेफ मुण्डन वेफ अवसर पर जिस स्थान पर रखी जाती है वह आयुर्वेद वेफ अनुसार समस्त शिराओं का सन्धि स्थान है। वही रोमों का आवर्त है। ऐतरेय उपनिषद् ने इसी स्थान को विवृत्ति नाम का द्वार कहा है आत्मा इसी द्वार से शरीर में प्रवि होती है और मोक्ष वेफ समय इसी को विदीर्ण करवेफ निकलती है। स्थान मर्म स्थान समझा जाता है जिस पर घातक आघात लगते ही मृत्यु हो जाती है। इसी का नाम एक ब्रह्म रन्ध्र भी है। मुक्ति सांस्कृतिक विकास का चरम बिन्दु है। अतः मुण्डन और मुण्डन वेफ समय शिखा का धारण हमें संस्कृति वेफ इस विकास की सूचना देने वाला है। जो प्रथा लक्ष्य की ओर संवेफत करे, वह निस्संदेह श्लाघनीय एवं वरणीय है।

चूड़ा-कर्म संस्कार वैयक्तिफक तथा सामाजिक दृ से संस्कार का स्वस्थकर तथा सौन्दर्यात्मक पक्ष है जिसकी उपादेयता स्वतःसि(है। बढ़े हुए नाखून और बढ़े हुए वेफश स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य दोनों ही दृ यों से हानिकारक है। नखों में स्वतः विष है। यदि उनमें मल भर गया तो वे और भी अधिक अनि कर सकते हैं। वेफश भी विषाक्त हैं। वेफश अपने बढ़े हुए रूप में मल तथा कीटकों को भी जन्म देने वाले हैं, जो शारीरिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं। अतः सभी दृ यों से वेफशों को उनवेफ प्राकृतिक रूप में रहने देना अनि कारक है। संस्कारों में चूड़ा-कर्म, चौल-कर्म अथवा मुण्डन इसीलिए विहित समझा गया है।

सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से उसका एक अन्य पक्ष भी है। यह पक्ष है शारीरिक वृ(वेफ साथ उसका परिमार्जन प्राथमिक अवस्था वेफ परित्याग द्वारा संस्कृति की ओर, विकास की ओर प्रगति करना। सुश्रुत तथा चरक वेफ अनुसार वेफश-कर्तन शोभादायक, अयुष्कर तथा

तेन ते आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये।।

आ0 गृ0 सू0 1/17/12

जिस साधन वेफ द्वारा तू बार-बार रात्रि की ज्योति चन्द्रमा को तथा दिन की ज्योति सूर्य को देखता है, उसी वेफ द्वारा मैं आयुश तथा कल्याण वेफ लिए इस वेफश वपन रुपी को करता हूँ।

9. कर्णवेध-कर्णवेध संस्कार का सम्बंध मुख्य रूप से आयुर्वेद वेफ साथ है। कर्ण का छेदन और उनमें बाली का पहनना अथवा अन्य आभूषण का धारण करना आयुर्वेद वेफ मतानुसार अण्डकोष अथवा अन्त्र वृ(को रोकता है। रक्षा और शोभा दोनों ही इस संस्कार वेफ मूल में कार्य करते हैं। रोग से रक्षा और आभूषण धारण करने से शोभा सम्पन्न होती है। सुश्रुत चिकित्सा स्थान 9.21 वेफ अनुसार अन्त्र-वृ(को रोकने वेफ लिए शंख वेफ उफपर कर्ण वेफ नीचे भाग में शिरा का वेधन करना चाहिए। सुश्रुत वेफ सूत्र स्थान 161 एक विज्ञान सम्मत वर्णन आया है जिससे सूचित होता है कि कान की लौर वेफ वुफछ छिद्र सूर्य वेफ प्रकाश में स्पष्ट दिशाई देते हैं। इन्हीं छिद्रों से कर्णवेध वेफ समय सूचिका पार होनी चाहिए।

यद्यपि यह संस्कार प्रमुखतः रोग निवृति तथा शोभाधान से सम्बन्ध रखता हैऋ तथापि व्यक्तित्व वेफ विकास में जिन न्यूनताओं वेफ निराकरण की बात हम पूर्व लिख चुवेफ हैं, उससे सांस्कृतिक विकास वेफ लिए भी संस्कार उपयोगी सि(हो सकता है।

10. उपनयन-उपनयन का अर्थ है बालक को आचार्य वेफ समीप ले जाना विद्याध्ययन वेफ लिए निर्दिष्ट संस्कार को उपनयन संस्कार करते हैं। बु(विभिन्न स्तरों वेफ कारण उपनयन का समय भी भिन्न-भिन्न है। गृह्यसूत्रों वेफ अनुसार फ्ब्राह्मणय् का आठवें वर्ष, 'क्षत्रिय' का ग्यारहवें वर्ष और वैश्य का बारहवें वर्ष उननयन करना चाहिए। मनुस्मृति में भी यह समय अलग बतलाया गया है अन्तिम अवधि का उल्लेख करते हुए मनु ने कहा है कि ब्राह्मणों का 16 वर्ष तक क्षत्रिय का 23 वर्ष तक वैश्य का 24 वर्ष तक उपनयन अवश्य हो जाना चाहिए। अन्यथा द्विजत्व नहीं प्राप्त होगा और इसकी व्रात्य संज्ञा हो जायेगी। इसलिए ब्रह्मवर्चस की कामना वाले ब्राह्मण बालक का पाँचवे वर्ष में, बल की इच्छा वाले क्षत्रिय बालक का आठवें वर्ष में यज्ञोपवित कर देना चाहिए। गायत्री मंत्र का उपदेश बालक वेफ द्वितीय जन्म का सूचक है। प्राचीन काल में अचार्य, ब्राह्मण वेफ लिए गायत्री छंद में राजन्य वेफ लिए त्रिष्टुप छंद में तथा वैश्य वेफ लिए जनाती छंद में साचित्री का उपदेश करता था।

यज्ञोपवीत वेफ तीन सूत्र हमारे उफपर परम्परा प्राप्त निम्नलिशित तीन)णों को सूचित करते हैं।

;1द्ध देव)ण, ;2द्ध पितृ)ण, ;3द्ध)षि)ण।

माता-पिता ने हमें जन्म दिया, अतएव हम भी कृती पुत्रों को जन्म दें, जिससे प्रभु की यह सृष्टि परम्परा विच्छिन्न न हो, तभी हम पितृ)ण से उ)ण हो सकते हैं। देव अन्न, जल देकर हमारे प्राणों की रक्षा करते हैं। इसलिए यज्ञादि वेफ द्वारा देव)ण से उ)ण होना चाहिए।)षियों ने वेदों और उपनिषदों वेफ रूप में हमें अपने जीवन की सम्पूर्ण ज्ञान सम्पदा प्रदान की है। अतएव विद्वान् बनकर तथा पीढ़ी को विद्वान बनाकर हमें)षि)ण से मुक्त होना चाहिए।

11. वेदारम्भ-उपनयन वेफ पश्चात् आचार्य शिष्य को वेदों की सांग और सरहस्य शिक्षा देते थे। जो वेद वेफ एक अंग का अध्ययन करते थे उन्हें उपाध्याय कहते थे। द्विज वेफ लिए वेदाध्यय अनिवार्य था। जो द्विज इस नियम का पालन नहीं करता था, वह अपने वुफल सहित शुद्रत्व को प्राप्त हो जाता था। माता वेफ उदर से प्रथम जन्य यज्ञोपवीत होने पर द्वितीय जन्म और वेदाध्यय करने पर तृतीय जन्म होता था। हमारे पूर्वजों ने वेद को स्ततः प्रमाण माता है। उनकी दृष्टि में वेद प्रभु की वाणी है ओर धर्म का मूल है। वह मानव को ज्ञान, कर्म ओर भक्ति की ओर उन्मुख करता है वेदांग, उपवेद और ब्राह्मण ग्रन्थ परवर्ती हैं। साक्षातकृत धर्मा)षियों ने वेद रहस्य को समझने में असमर्थ व्यक्तियों वेफ लिए इनका निमार्ण किया है।

इस प्रकार उपनयन वेफ साथ सांस्कृतिक जीवन में जिस प्रत्यक्ष प्रवेश का प्रारंभ हुआ था, वह वेदारंभ में अपने मूल को सुदृढ़ करता है और विश्ववारा वैदिक संस्कृति को अपनाने में सहायक होता है।

थे, उन्हीं का समावर्त्तन हो सकता था। जिन्हें आचार एवं ज्ञान की सम्यक् शिक्षा प्राप्त नहीं होती थी, उन्हें समावर्त्तन का अधिकार नहीं था। तैतिरीय उपनिषद् वेफ अन्तर्गत शिक्षावल्ली में समावर्त्तन का वैदिक रूप उपलब्ध होता है।

13. विवाह संस्कार-स्नातक गरू की आज्ञा से समार्त्तन संस्कार सम्पन्न कर सवर्ण कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। विवाह एक यज्ञ माना जाता था और जो व्यक्ति विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करत था, उसे यज्ञहीन कहा जाता था। मनु वेफ अनुसार मानव को अपनी आयु का आद्य चतुर्थ भाग गुरुवुफल में व्यतीत करना चाहिए, जीवन का द्वितीय भाग विवाह कर पत्नी सहित गृहस्थाश्रम में व्यतीत करना चाहिए। इसवेफ पश्यचात् आयु का तृतीय भाग वन में व्यतीत करना चाहिए। इसवेफ पश्चात् आयु का तृतीय भाग वन में व्यतीत कर चतुर्थ भाग में समस्त सांसारिक संगों का त्यागकर संन्यास ग्रहण करना चाहिए। विवाह वेफ प्रकार-मनु समृति में विवाह वेफ निम्नांकित आठ प्रकार बतलाये गये हैं : *;1द्ध* ब्राह्म *;2द्ध* देव *;3द्ध* आर्ष *;4द्ध* प्रजापत्य *;5द्ध* आसुर *;6द्ध* गान्धर्व *;7द्ध* राक्षस *;8द्ध* पैशच।

आरंभ वेफ चार विवाह प्रशस्त और अन्तिम चार विवाह निन्दित कहे गये हैं। महाभारत में कहा गया है कि प्रारंभ में स्त्रियाँ स्वैरिणी होती थीं। उद्दालक वेफ पुत्र श्वेतवेफतु ने विवाह वेफ द्वारा ही वेफ भोग्यात्व का नियमन किया। विवाह संस्कार में वर वधु अग्नि को साक्षी देकर सात प्रदक्षिणाएं देते हैं। दोनों वुफलों वेफ वृ(पुरुषों वेफ समक्ष एक दूसरे की भावनाओं का आदर करने की प्रतिज्ञा करते हैं और एक दूसरे वेफ साथ परिणय सूत्र में ब(हो जाते हैं। वर वधू का हाथ ग्रहण करते हुए कहता है कि 'मैं सौभाग्य वेफ लिए तेरा पाणि ग्रहण करता हूँ।' विधिवत परिणीता पत्नी को पाणिगृहीता तथा विधि ब्रह्म परिणीता पत्नी को पाणिगृहीता कहते थे सप्तपदी में वर-वधू को दक्षिण पग उठवाकर चलने कि आज्ञा देता है जिसमें ईशान दिशा की ओर वर-वधु दोनों साथ-साथ सात पग में ऐवर्श्य वृ(, चतुर्थ पग में सुख, पंचम पग में सन्तति, छटे पग में)तुओं वेफ अनुवुफल व्यवहार तथा सप्तम पद में सखाभाव वेफ लिए निर्देश किया गया है दोनों सात पद साथ चलकर यज्ञ वुफण्ड की प्रदक्षिणा करते हुए अपने आसन पर विराजमान हो जाते हैं, परन्तु इस बार वधू वर वेफ वामांग की ओर बैठती है। ग्रन्थ बन्धन का भाव है वर और वधू का दाम्पत्य सूत्र में दृढ़ता से आब(होना और दोनों का एक होकर गृहस्थ धर्म का निर्वाह करना।

14. **वानप्रस्थ-** उपनयन संस्कार ने संस्कृति वेफ जिस रूप का प्रत्यक्ष कराया था, विवाह संस्कार में जिसवेफ अन्तः दर्शन हुए थे, वानप्रस्थ आश्रम वेफ अन्तर्गत उसका अतीव प्रोज्ज्वल साधनापरक रूप उपलब्ध होता है वेद ने जिन व्रत और दीक्षा का श्र(ा और तप का तथा ब्रह्मचर्य और सत्य का अनेक बार उल्लेख किया है, वे उपनी समग्र समृ(वेफ साथ वानप्रस्थ आश्रम में ही दृष्टिगोचर होते हैं।

ब्रह्मचर्य आश्रम विद्या, स्वास्थ्य तथा लोक यात्रा वेफ संवाहक व्यावहारिक ज्ञान की उपलब्धि का आश्रय है। गृहस्थ में इसी वेफ आधार पर सामाजिक सम्पर्वफ की शालीनता तथा पारिवारिक जीवन की वुफशलता सि(हो पाती है। गृहस्थ प्रेम का पाठ पढ़ाता है और आत्म विस्तार करता है उसमें एक व्यक्ति की स्वार्थ संकीर्णता स्थिर नहीं रह पाती। वह लुप्त होती है और व्यक्ति अपने साथ और कभी कभी अपने व्यक्तित्व को छोड़कर भी पत्नी, सन्तति तथा परिवार वेफ अन्य व्यक्तियों वेफ स्वार्थो का अधिक ध्यान रखता है। वहाँ निजत्व परत्व में परिणत होता है, वैयक्तिक सम्बध विस्तृत होते हैं और मानव अल्पता से विशालता तथा अणुता से विभुता की ओर प्रयाण करता है उपनिषदों ने जिसे भूमा का नाम दिया है तथा यजुर्वेद ने जिस एकत्त्व की ओर संवेफत किया है

वह गृहस्थाश्रम में अपनी भूमिका बना लेता है। पर भूमिका अवेफली पर्याप्त नहीं है। मानव को तो विकास क्रम में इस एकत्व का सम्पादन करना है। वानप्रस्थ आश्रम इसी वेफ लिए ऐसे उर्वर क्षेत्र का कार्य करता है। जिसमें बीज पड़ते ही पफला-पूफला पादप हाथ आ जाये।

वेद में वानप्रस्थ आश्रम का स्पष्ट उल्लेख हमें नहीं मिलता। मानव को श्र(ा सम्पन्न होकर दीक्षित व्रती एवं तपस्वी होना चाहिए। यह गृहस्थ आश्रमी वेफ लिए भी वांछनीय है। यजुर्वेद *19.30* में सत्य को प्राप्त करने वेफ लिए चार साधनों का वर्णन किया गया है प्रथम साधन व्रत है। जब मनुष्य व्रत लेता है तो वह एक नियम में आब(हो जाता है नियम में बंधकर चलना मानों दीक्षा को प्राप्त करना है। दीक्षा दक्षिण की ओर ले जाती है। अर्थात् मानव अपने साधन पथ में प्रवीणता प्राप्त कर लेता है। यह प्रवीणता उसवेफ अन्तःकरण में अपने पथ वेफ प्रति श्र(ा की भावना उत्पन्न कर देती है। श्र(ालु मानव सत्य को प्राप्त कर लेता है जो उसकी जीवन यात्रा का चरम लक्ष्य है।

वानप्रस्थी की आयु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, चक्षु, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा-ज्ञान, ज्योति, स्वर्ग, आचार सभी यज्ञमय,

समस्त लौकिक सम्भार को छोड़कर जब मानव वानप्रस्थ में प्रवेश करता है, तब उसका प्रभुत्व लक्ष्य समस्त लौकिक आसर्गों का परित्याग ही होता है वानप्रस्थ में पत्नी साथ रह सकती है। वह भी अपने पति वेफ त्याग भाव को बढ़ाने वेफ लिय यत्नशील रहती है। मनु ने जीवन निर्वाह वेफ लिए वानप्रस्थी को भिक्षा लेने की छूट दे रखी है, परन्तु वुफछ आचार्य इसे मान्यता नहीं देते। उनकी सम्मति में वानप्रस्थी को गृहस्थ आश्रम में की हुई अपनी कमाई पर ही अवलम्बित रहना चाहिए। वन में स्वतः जात कन्द-पफल आदि का उपयोग उसवेफ अधिकार वेफ अन्तर्गत है। उसे स्थान परिवर्तन भी नहीं करना हैं। एक ही स्थान पर जमकर उसे त्याग की साधना करनी है। सांसारिक कोलाहल से दूर एकान्त शान्त स्थान का निवास संसार वेफ रहस्यों का उद्घाटन करने वाला है। सामने आये हुए सृष्टि विज्ञान का मनन और अन्तर्निहित श्रुत का चिन्तन उसे ध्यान की निर्मल एकान्त अवस्था की ओर ले जाता है संन्यास की यही आधारशिला है।

यज्ञ की देवी नौका पर आरूढ़ साधक पार्थिव अग्नि वेफ द्वारा भौतिक शरीर का संशोधन करता हुआ जब विज्ञानात्मा का शोधन करने वेफ लिए चैतन्याग्नि पर आरूढ़ होता है, तब वह दुःखोदधि से पार जाता है वह सुकृती इसी दशा में नभ ज्योतिष्मान् उस देवयान पथ का दर्शन करता है जो स्वर्ग की ओर ले जाने वाला है।

धन्य है आर्य संस्कृति का यह देवयान मार्ग। संन्यासी इसी पथ का पथिक बनता है। उसका कोई निवेफतन नहीं, वह अनिवेफत है, यायावर है, परिव्राजक है, बाट्यः अथवा भिक्षु है। अनिवेफतन होते हुए भी वह स्थिर बु(है। स्थान उसका स्थिर नहीं है, पर बु(तो स्थिर है। यायावर होते हुए भी वह अन्तः करण से वेफन्द्रस्थ है। इसी को आप एजत्-अनेजत्, गतिमय-अगतिमय, बाहर भी भीतर भी, आदि किसी नाम से पुकार सकते हैं। सन्यासी का यह लौकिक एंव अलौकिक गुण है। वह आपसे वार्तालाप करता है, भोजन, पान शयन आदि भी करता है विश्व की व्यवस्था का वर्णन और सदाचार का उपदेश भी करता है, पर रहता है वह अपने वेफन्द्र में ही लीन। सब वुफछ छोड़कर उसे सर्वस्व प्राप्त है। आज वह अपने में है और अपना उसमें है-

आज तुम्हारा साथ, तुम्हारे, मेरा मेरे साथ,
आज सिन्धु वेफ हाथ बिन्दु है, सिन्धु बिन्दु वेफ हाथ।।

16. अन्त्येष्टि संस्कार-जीवन एक यज्ञ है। इसवेफ मूल में भी यज्ञ है, मध्य में भी यज्ञ है और अन्त में भी यज्ञ है। बृहदारण्यक उपनिषद् में पंचातिन विद्या का व्याख्यान करते हुए द्यौ, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और ह्री वेफ यज्ञरूप का उल्लेख्र हुआ है। एक में श्र(ा की आहुति पड़ती है, दूसरे में सोम की तीसरे में जल की, चतुर्थ में अन्न की और पांचवें में वीर्य की थी। अन्तिम आहुति पुरुष को जन्म देती है। गर्भ से निकलकर पिण्ड वेफ जो संस्कार होते हैं, उनका प्रतिपादन हम उसवेफ पूर्व संन्यास आश्रम तक कर चुवेफ हैं। ये समस्त संस्कार यज्ञ रूप हैं। अब जिस अंत्येष्टि संस्कार का प्रतिपादन किया जा रहा है, वह भी यज्ञरूप ही है।

यज्ञ उर्फंहोमुच् है। यह हमें पाप से छुड़ाने वाला है। वुफमति पाप की जन्मदात्री है। हमें सुमित प्रदान करता है, यही हमें दीक्षित करता है, तपस्वी बनता है,

मेधा, प्राण तेज, आ ाद, सौम्यता, और ऐश्वर्य देता है। ब्रह्मवेत्ता इसी साधन राशि का आश्रय लेकर ब्रह्मलोक को उपलब्ध करता है उसकी बाणी, मन, चक्षु , श्रोत्र, जिहा, घ्राण, रेत, बु(, आकृति, संकल्प आदि सब यज्ञ रूप बन जाते हैं। वह विरजा एवं आत्मा, ज्योति को प्राप्त का लेता है। अन्तःशक्तियाँ ही नहीं इसवेफ बाह्यकरण और शरीर वेफ अवयव शिर, पाणि, पाद, पृष्ट, उस, उदर, जंघा, शिश्ण, उपस्य, पायु, त्वक, चर्म, मांस, रुधिर मेद, मज्जा, स्नायु, पाद, अस्थि शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अन्नमय, प्राणमय, मनोनय, विज्ञानमय और आन्दमयकोष, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा सभी उनवेफ लिए यज्ञ का रूप धारण कर लेते हैं। अन्त में उसका यज्ञ भी किसी कामना वेफ लिए नहीं, प्रत्युत यज्ञ वेफ लिए ही होता है ऐसा जीवन सांस्कृतिक विकास का जीवन है।

अनेक व्यक्ति मृत्यु वेफ पश्चात् जिस जीवन में प्रवेश करते हैं, वह यज्ञपुरुषों की दृष्टि में वांछनीय नहीं है, पर संस्कृति-सम्पन्न, संस्कारों से विशु(निष्पाप जीवन को व्यतीत करने वाला संन्यासी जिस जीवन में प्रवेश करता है, वह अमृत-जीवन है। वह वांछनीय ही नहीं कल्याण रूप जीवन है। अतः जब वह यहाँ प्रयाण करता है, तब उसवेफ यज्ञरूप बाह्य एवं अन्तः जीवन वेफ अंग अन्त्येष्टि क्रिया वेफ द्वारा अपने सम्बन्धी यज्ञरूपों में ही लीन हो जाते हैं। जो वुफछ उसने लिया था उसे ज्यों का त्यों उसवेफ ...ोत या उद्भव स्थान को वह समर्पित कर

है अपनी इस दीर्घ यात्रा में उसने न जाने कितनी योनियों में प्रवेश किया होगा, कितने लोकलोकान्तरों, दिशाओं और प्रदिशाओं वेफ दर्शन पिफर होंगे। आज वह भविष्य वेफ मोह तथा विगत वेफ शोक से पूर्णतया मुक्त है। उसे सर्वत्र एकत्व का अनुभव हो रहा है। जिसमें समस्त)चार्य और समस्त देव अधिश्रित हैं, आज उसने उसी को जान लिया है, देख्र लिया है। अब वह विचलित नहीं, माश्वस्त है। सर्वत्र उसकी समदृष्टि है, मित्रतुल्य दर्शन है।)तु की प्रथमजा उसे परमात्मा देव वेफ समीप ले जाकर बिटा रही है। सर्वानन्दयुक्त मोक्ष इसी का नाम है।

इस प्रकार जिस जीवनयज्ञ का प्रारंभ हुआ था उसका अन्त होता है। हमारे संस्कार आध्यात्मिक पवित्रता वेफ ही नहीं भौतिक पवित्रता वेफ भी सन्देश वाहक हैं। उनमें आयु, प्राण, शक्ति, शिक्षा आदि की तो पूर्ति होती ही है, सांस्कृतिक विकास का भी योग रहता है। जीवन को नियमित दिशा की ओर मोड़ते हुए वे उसे सुखी बनाने में सहायता देते हैं और विकास की उच्च भूमिका तक पहुँचाकर आत्मा का परमात्मा से मिलन करा देते हैं। वे संस्कार हमारे विश्वास की आधारशिला हैं, समन्वित एंव संतुलित जीवन यापन वेफ साधक हैं, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति वेफ साथ धार्मिक उपलब्धियों वेफ जनक हैं और हमारी चेतना को उसवेफ ोत से मिलाने वाले हैं। संस्कारों का इस प्रकार सांस्कृति विकास वेफ साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। इस समय उसका रूप वुफछ विकृत हो गया है, जिसमें विदेशियों वेफ सम्पर्वफ का विशेष हाथ है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने संस्कारों वेफ विशु(रूप को पुनः जागृत करें और अपने विकास में स्वयं सहायक हों!

आसां गवामगुरुगवीनां संघानुपतिष्टेताहरहर्भूताः स्थेति। गुरोर्गावास्तासु तिष्टन्ति चेन्नोपतिष्टेत। सर्वत्र स्थित्वैवोपस्थेयम्। नोपविश्य। तथा चोक्तम्-

'उपस्थानं तदेव स्यात्प्रणतिस्थानसंयुतम्।' इति। शं मयि जानीध्वमिति सकृदेव वक्तव्यम्। अध्यायपरिसमाप्तिलक्षणार्थं हि द्विर्वचनम्।।

४. जहाँ जहां गायों वेफ समूह दिखाई दें ''आ गुरु गवीनां.....२ वहां-वहां इस मन्त्र का उच्चारण करे।

इति द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

गृहानिति बहुवचनमाप इतिवत्। बीजवतः प्रपद्येतेत्येतावतैव सि(गृहानिति वचनं यत्र गृहे प्रविशति शास्त्रान्तरसंस्कृतं विशीर्णं वा संस्कृत्य तत्राप्येवं प्रविशेदिति। मणिकादिबीजवत्प्रपदानान्तं तत्रापि वुफर्यादित्यर्थः। तेन पूर्वव्याख्या(पि साध्वी।।2।।

2. बीजों ;अन्तोंद्ध को लिए हुए ;बीजवत्द्ध घर में प्रवेश करे।

3. क्षेत्रं प्रकर्षयेदुत्तरैः प्रोष्ठपदैः पफल्गुनीभी रोहिण्या वा।।

पफल्गुनीभिरित्यत्राप्युत्तराभिरित्येवं सम्बध्यते। तेन त्रीणि नक्षत्राणि। नित्यकर्मणां द्रव्यसाध्यत्वाद्दव्यार्थं क्षेत्रं प्रकर्षयेत्। णिच्प्रयोगः स्वयं कृषि निवृत्त्यर्थः। तथा चानापदि गौतमः 'कृतिवाणिज्ये वा स्वयंकृते' इति। मनुरपि ')तामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा' ;अ04.4द्ध इति। 'प्रमृतं कर्षणं स्मृतम्' ;अ0 4.5द्ध इति। अक्षसूक्ते चेयमेव वृत्तिरुक्ता 'अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित्कृषस्व' इति। प्रतिग्रहादयश्चाप- त्कल्पाः। त्रिषु नक्षत्रेषु प्रारभेत।।3।।

3. उत्तरा प्रोष्ठ पद नक्षत्र में अथवा उत्तरा पफाल्गुनी या रोहिणी नक्षत्र में वह खेतो पर हल चलाए अर्थात् खेतों को बोए-

इदं च प्रारम्भदिवसे वुफर्यादित्याह-

4. क्षेत्रस्यानु वा तं क्षेत्रस्य पतिना वयमिति प्रत्यचं जुहुयाज्जपेद्वा।

क्षेत्रस्यानु वा तं देशं गत्वा तत्रोपलेपनादि कृत्वा जुहुयात्। जपेद्वेदं सूक्तं तत्रस्थ एवं। पादग्रहणे(पि सामर्थात्सूक्तग्रहणम्। प्रत्यृचमिति व्याख्यातम्।।4।।

4. खेत की ओर अथवा खेत में फक्षेत्रस्य पतिना वयं आदि मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ प्रत्येक मन्त्र वेफ द्वारा आहुति प्रदान करे अथवा मन्त्रों का जाप करे।

5. गाः प्रतिष्ठमानां अनुमन्त्रयेत मयोभूर्वातो अभिवातू । इति द्वाभ्याम्।।

भक्षणार्थमरण्यं प्रति गच्छन्तीर्गा अनुमन्त्रयेताहरहरात्मीया अन्या वा। न नियमः।।5।।

5. चरागाह को जाती हुई गौवों को देखता हुआ 'मयोभूर्वातो अभिवातुह' इन दो)चाओं से अभिमन्त्रित करे।

6. आयतीः यामामूधश्चतुर्बिलं मधोः पूर्णा घृतस्य च। ता नः सन्तु पयस्वतीर्बहीर्गोष्ठे धृताच्यः। उप मैतु मयोभुव ऊर्जं चौजश्च बिभ्रतीः। दुहाना अक्षितं पयो मयि गोष्ठे निविशध्वं यथा भवाम्युत्तमो या देवेषु तन्वमैरयन्तेति च सूक्तशेषम्।।

भक्षयित्वा ग्रामं प्रत्यागच्छन्तीर्गा अनुमन्त्रयेताहरहर्यासासामित्यृग्भ्यां सूक्तशेषेण च।।6।।

6. चरागाह से लौटती हुई गौवों को फ्यासामूधश्चतुर्बिलं....तन्वमैरयन्तेय् इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करे।

7. आगावीयमेवेफ।।

आयतीनामनुमन्त्रणे 'आ गावो अग्मन्' इत्येतत्सूक्तमेक इच्छन्ति। पूर्वा सामनेन बाधः।।7।।

7. वुफछ आचार्यों वेफ अनुसार फ आगावो अग्मनय् इस मन्त्र से आती हुई गौवों को अभिमनित्रत करे।

8. गणानासामुपतिष्ठेतागुरुगवीनां भूताः स्थ प्रशस्ताः स्थ शोभनाः प्रियाः प्रियो वो भूयासं शं मयि जानीध्वं शं मयि जानीध्वम्।।

इति द्वितीयो(ध्यायः।।2।।

अथ मणिवेफर्(पो निषिञ्चति पूरणार्थं मन्त्रेण।।5।।

5. इसवेफ बाद फ्एतु राजा करूणो....संविशन्तु्य इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ पूर्वस्थापित किये गये मटकों में जल का सेचन कर अर्थात् जल भरे।

6. अथैनच्छमयति।।

एतद्वास्तुशान्तिं करोति।।6।।

6. उसवेफ बाद उन जलों से वास्तु शान्ति करें अर्थात् इन में से जल लेकर इस विधि से शान्ति करे।

कथम्? इत्थमित्याह-

7. व्रीहियवमतीभिरर् हिरण्यमवधाय शन्तातीयेन त्रिः प्रदक्षिणं परिव्रजन्प्रोक्षति।।

अप्सु हिरण्यमवधाय ताभिः प्रोक्षति।।7।।

7. जिन जलों में चावल और जौ डाल दिये गये हैं उनवेफ सोना डाल कर उन सुवर्ण, चावल ओर जौ मिश्रित जलों से 'शान्तातीय सूक्त' का उच्चारण करता हुआ प्रदक्षिण क्रम से तीन बार जल का छिड़काव करे।

8. अविच्छिन्नया चोदकधारया-आपो हि ष्ठा मयोभुवइति तृचेन।।

उक्तार्थे द्वे सूत्रे।।8।।

8. तत्पश्चात् न टूटने वाली जल धारा में उसी क्रम से ;पदक्षिण क्रम सेद्ध तीन बार निनयन करे, आपोहिष्ठें आदि तीन)चाओं से।

9. मध्येऽगारस्य स्थालीपावंफ श्रपयित्वा वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मानिति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वाऽन्नं संस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा शिवं वास्तु शिवं वास्त्विति वाचयीत।।

श्रपयित्वेति वचनमस्मात्स्थालीपाकात्प्रागस्मिन्गृहे पाकान्तरं न श्रपयितव्य मित्येवमर्थम्। भुक्तवतो ब्राह्मणान् 'शिवं वास्तु शिवं वास्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु' इति वाचयीत। ते च तं 'शिवं वास्तु शिवं वास्तु' इति प्रत्यूचुः। उक्तार्थमन्यत्।।9।।

9. गृह वेफ मध्य भाग में अग्नी स्थापना करवेफ उस वुफण्ड में स्थालीपाक तैयार करे तथा फ्वास्तोस्वते प्रतिजानीहि्य आदि चार)चाओं से स्थालीपाक की चार आहुतियां प्रदान करे। तत्पश्चात् अन्न को संस्कृत करवेफ ;शु(करवेफ ब्राह्मणों का भोजन तैयार करे और उन्हे वह भोजन खिलाए तथा उनसे फ्शिवं वास्तु शिवं वास्तु्य यह वाक्य बुलवाए और ब्राह्मण भी इस आशीर्वचन का उच्चरण करे।

दशमं खण्डम्

1. उक्तं गृहप्रप्रदनम्।।

यदुक्तं गृहप्रपदनं 'प्रपद्येत गृहानहं सुमनसः' ;श्रौ0 2.5द्ध इत्यादि तदिदानीमिहापि कार्यमित्यर्थः। अन्ये तु प्राहुः। यदुक्तं मणिकप्रतिष्टापनादि शिवं वास्त्वित्यन्तं तद्गृहप्रपदनसंज्ञंभवति। विंफ सि(भवति? मणिक- स्थापनात्प्रागेव बीजानि स्थापयित्वा तूष्णीं प्रविशेदिति। अपि च शास्त्रान्तरेणा संस्कृतं विशीर्णं वा पुराणं गृहं प्रविशतो मणिकप्रतिष्टापनादि सिध्यति।।1।।

1. 'गृहप्रपदन' अर्थात् विदेश से आने पर वह किस प्रकार गृह में प्रवेश करे यह पहले ही बतलाया जा चुका है।

2. बीजवतो गृहान्प्रपद्येत।।

अस्या गर्तेऽयं विशेषः। अबकां शीपाल चावधाय वुफशानास्तीर्य पश्चादासिञ्चेन्मन्त्रेण। अवधायवचनमवकाशीपालयोरवधानप्राप्त्य-र्थम्।।15।।

15. शीपाल पौधे को मध्य स्तम्भ वेफ लिए खोदे गये गढ़े मे डालेंऋ उसवेफ उफपर पूर्व और उत्तर में अग्रभाग ;पत्तेद्ध रखते हुए वुफशाएं बिछाए और उन पर पअच्युताप भौमाय स्वाहाय् इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ जौ और धान मिश्रित जल का सिंचन करे।

16. अथैनामुच्छ्रियमाणमनुमन्त्रयेतेहैव तिष्ठ निमित्ता तिल्विलास्तामि रावतीं मध्ये पोषस्य तिष्ठन्तीम्। आ त्वा प्रापन्नघायव आ त्वा वुफमारस्तरूण आ वत्सो जायतां सह। आ त्वा परिश्रितः वुफम्भ आ दध्नः। कलशैरयन्निति।।

मध्यमस्थूणां गर्त आधीयमानामनुमन्त्रयेत मन्त्राभ्याम्।।16।।

16. मध्यम स्तमभ ;स्थूणाद्ध को गर्त में ;गढ़े मेंद्ध स्थापित करते समय पइहैव तिष्ठ मिमित्ता....कलशेरयन्प् इस मन्त्र का उच्चारण करे।

नवम खण्डम्

1. वंशमाधीयमानम्।।

अनुमन्त्रयेतेति वर्तते।।1।।

1. जब बांस को या स्थूणा को मध्यभाग में स्थापित किया ;गाड़ाद्ध जाता है। उस समय-

2.)तेन स्थूणामधिरोह वंश द्राघीय आयुः प्रतरं दधाना इति।।

अनेन मध्यस्थूणाया उपर्याधीयमानं वंशमनुमन्त्रयेत। अन्ये तु प्रतिवंश- मावृत्तिमिच्छन्ति।।2।।

2. प)तेन स्थूणामधिरोह वंश द्राधीय आयुः प्रतरं दधानाप् इस मन्त्र का जाप करे।

3. सदूर्वासु चतसृषु शिलासु मणिवंफ प्रतिष्ठापयेत्पृथिव्या अधि सम्भव इति।।

चत शिलाः स्थापयित्वा तासु दूर्वा निधाय ततो मणिवंफ प्रतिष्ठापयेत् मन्त्रेण। मणिको नाम जलधारणार्थो भाण्डविशेषः।।3।।

3. जिन पर दूर्वा बिछाई गई है ऐसी चारों शिलाओं पर जल से भरने वेफ लिए मणिकों ;मटकोंद्ध की स्थापना करे। उस समय पृथिव्या अधि-सम्भवप् उस मन्त्र का जाप करे।

4. अर रो वावदीति त्रेधा ब(ो वरत्रया। इरामु प्रशंसत्यनिराम- पबाधतामिति वा।।

अनया वा प्रतिष्ठापयेत्।।4।।

4. अथवा पअर रो....पबाधताम्प् इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ कलशो की स्थापना करे।

5. अथास्मिन्नप आसेचयेत्। ऐतु राजा वरूणो रेवतीभिरस्मिन्स्थाने तिष्ठतु मोदमानः। इरां वहन्तो घृतमुक्षमाणा मित्रेण सावंफ सह संविशन्तु इति।।

'शं न इन्द्राग्नी' इति सूक्तं शन्तातीयमिति प्रसि(म्। तेन सूक्तेन त्रिः परिव्रजन्प्रोक्षति। सर्वत्र मन्त्रान्ते कर्मारम्भः। सि(हि करणं भवति नासि(म्। परशुना छिनत्तीति परशुवत्। मन्त्रावृत्तिरुक्ता। 'मन्त्रान्ते व्रजनारम्भः प्राचीमारभ्य पर्येति' इति।।11।।

11. ;नींव खोदने से पूर्वद्ध भूभाग पर शमी अथवा उदुम्बर वृक्ष की शाखा को जल में भिगो कर शान्ति करण वेफ मन्त्रोच्चारण वेफ साथ प्रदक्षिण क्रम से जल का छिड़काव ;प्रोक्षणद्ध करता हुआ तीन परिक्रमा करे।

12. अविच्छिन्नया चोदकधारया। आपो हि ष्ठा मयोभुव इति तृचेन।।

त्रिः प्रदक्षिणं परिव्रजन्प्रोक्षति। अत्रापि धारावृत्तिस्तृचावृत्तिश्च। व्रजनगुणत्वात्।।12।।

12. अथवा बिना टुटी हुई जलधरा के द्वारा ;तिनयनद्ध 'आपोहिष्टा मयोभुवस्ता' आदि तीन)चाओं का उच्चारण करता हुआ प्रदक्षिणा करे।

13. वंशान्तरेषु शरणानि कारयेत्।।

यावन्तस्तत्र वंशाः सम्भवन्ति तत्र द्वयोर्द्वयोर्वंशयोरन्तरेषु वुफड् ादिभिः पृथक्कृत्यापवरकादिशरणानि कारयेत्। शरणान्यवान्तरगृहाणि।।13।।

13. एक बासं की दूरी रखता हुआ प्रत्येक गृह ;कमरेद्ध की नींव खोदे। अर्थात् हर कमरे की लम्बाई चौड़ाई एक बांस की दूरी वेफ समान हो।

14. गर्तेष्ववकां शीपालमित्यवधापये ास्याग्निर्दाहुको भवतीति विज्ञायते।

सर्वासां स्थूणानां गर्तेष्ववकां शीपालं चावदध्यात्। एवं कृते नास्याग्निर्दा हुको भवतीति श्रूयते।।14।।

14. स्तम्भ वेफ लिए खोदे गये स्थान पर अवाक पौधें का शीपाल स्थापित करे। ऐसा करने से मकान को अग्नि नहीं जलाती, यह ब्राह्मण में कहा गया है।

15. मध्यमस्थूणाया गर्तेविधाय प्रागग्रोदगग्रान्वुफशानास्तीर्य व्रीहियवम- तीरप आसेचयेत्। अच्युताय भौमाय स्वाहा इति।।

कार्यम्।।3।।

3. गर्त ;गड्ढ़ेद्ध को भरने वेफ बार भी मिट्टी ;खोदी गईद्ध शेष रहती है तो वह भूमि सबसे उत्तम हैं यदि वह भूमि वेफ समतल रहती है। तो वह स्थापन मध्यम श्रेणीका है और यदि वह मिट्टी तल से नीचे तक रहती हैं अर्थात् खोदी गई मिट्टी से यदि गड्ढा नहीं भरता तो ऐसा स्थान उत्तम श्रेणी का है। अर्थात् भवन वेफ लिए उचित नहीं है।

4. अस्तमिते{पां सुपूर्णं परिवासयेत्।

अस्तमिते तमेव गर्तमा : पूरयित्वा तं राशिं परिवासयेत्। ततो व्युष्टायां निरीक्षेत।।4।।

4. सूर्यास्त वेफ बाद वह ;भूस्वामीद्ध मिट्टी से भरे गये ;गर्तद्ध गढ़े को पानी से भर दे।

5. सोदवेफ प्रशस्तमार्द्रे वार्तं शुष्वेफ गर्हितम्।

पूर्वेण तुल्यम्।।5।।

5. प्रातःकाल यदि उस गढ़े में पानी बचा हुआ मिले तो समझें कि वह भूमि ;स्थानद्ध गृह-निर्माण वेफ लिए श्रेष्ट है, यदि गढ़ें में पानी वेफ बजाय गीली मिट्टी हो तो वह स्थान मध्यम हैं और यदि वह स्थान ;गढ़ाद्ध सूखा मिले तो समझें कि वह स्थान अनुपयुक्त ;गर्हितद्ध है। उसे त्याग देना चाहिए।

6. श्वेतं मधुरास्वादं सिकतोत्तरं ब्राह्मणस्य।

सिकतोत्तरं सिकताबहुलमित्यर्थः।।6।।

6. सपफेद रंग की मिट्टी वाला तथा स्वादु मिट्टी वाला तथा उफपर से रेतीला भूभाग ब्राह्मण वेफ लिए उपयोगी है।

7. लोहितं क्षत्रियस्य।।

मधुरास्वादं विकतोत्तरमिति वर्तते।।7।।

7. लाल मिट्टी वाला भूभाग क्षत्रिय वेफ लिए उचित ;श्रेष्टद्ध है।

8. पीतं वैश्यस्य।।

अत्रापि द्वयं वर्तते। श्वेतं लोहितं पीतमिति त्रयो वर्णास्त्रयाणं वर्णानां विशेषाः। अन्यत्सर्वं समानम्।।8।।

8. तथा पीली मिट्टी वाला भूभाग वैश्य वेफ लिए श्रेष्ट अथवा लाभदायक है।

9. तत्सह सीतं कृत्वा यथादिक्समचतुर ं मापयेत्।

एवं पीरक्षितं वास्तु बहुसीतं वुफर्यात्। बहुशः सीतया कर्षयेदित्यर्थः। ततः सर्वासु दिक्षु समचतुर ं स्थण्डिलं वुफर्यात्। चतुर ं चतुष्कोणं मापयेत्वुफर्यात्। सह शब्दो{त्र बहुवाची।।9।।

9. इस प्रकार परीक्षा करवेफ चयन किय गये भूभाग पर हजारों रेखाओं में अर्थात् खूब हल चलाकर उसे चौकौर वर्गाकार भाग ले। अर्थात् भवन निर्माण वेफ लिए वर्गाकार भूभाग का चयन करे।

10. आयतचतुर ं वा।।

प्रागायतं चतुर ं वा वुफर्यात्। आयतं दीर्घम्। तत्रैवं क्रमः-परिस्याध इति चैतानीत्यन्तां बाह्यवास्तुपरीक्षां कृत्वा तत आन्तरीं परीक्षामथैतैर्वास्तु परीक्षेतेत्याद्यायतं चतुर ं वेत्यन्तां कृत्वा यत्र सर्वत्रा{{पो मध्यं समेत्येत्यादि विज्ञेयम्। ततो वक्ष्यमाणं प्रोक्षणं वुफर्यात्।।10।।

10. बाह्य परीक्षा वेफ पश्चात् आन्तरिका परीक्षा में यदि वर्गाकार भूभाग न हो तो आयतकार भूभाग माप लें जो चारों कोणों से समान हो।

11. तच्छमीशाखयोदुम्बरशाखया वा शन्तातीयेन त्रिः प्रदक्षिणं परिव्रजन्प्रोक्षति।

8. बहन्नं ह भवति।।

)f(म वतीत्यर्थः। तस्मादत्रैव कार्यम्।।8।।

8. इस दिशा में अन्न भण्डार बनाया हुआ मकान वेफ मालिक को अन्नवान व समृ(बनाता है।

9. दक्षिणाप्रवणे सभां मापयेत्साf(द्यूता ह भवति।।

यत्र गृही स्वैस्मास्ते स्वजनैरगगन्तुभिश्च सह सा सभा। तां दक्षिणाप्रवणे वुफर्यादुदीच्यां दिशीत्यर्थः। तत्र कृताf(द्यूता द्यूतवर्जिता भवति।।9।।

9. दक्षिण दिशा में सभागृह्य का निर्माण करे। परन्तु उस सभागृह में द्यूत-क्रीड़ा वर्जित है।

दोषाश्च सन्तीत्याह-

10. युवानस्तस्यां कितवाः कलहिनः प्रमायुका भवन्ति।।

अत्र कृता चेद्युवान एव सन्तः प्रमायुका भवन्ति। अल्पायुषो म्रियन्त इत्यर्थः। कलहप्रियाश्च कितवाश्च भवन्ति। ननु द्यूतवर्जितत्वाकथं कितवा इति। उच्यते। कितवा इति दम्भिन इत्यर्थः। तस्मात्तत्र न कार्या। शास्त्रान्तरेf(विहितत्वादनूद्य प्रतिषि(वान्।।10।।

10. वुफछ आचार्यों का मत है कि इस प्रकार के सभागृहों में प्रायः युवक द्यूतक्रीड़ा में प्रवृत्त हो जाते हैं और आपसी कलह एवं विवाद में पड़कर युवावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

क्व तर्हि कार्येत्याह-

11. यत्र सर्वत आपः प्रस्यन्देरन्सा स्वस्त्ययन्यद्यूता च।।

यस्मिन्देशे सर्वाभ्यो दिग्भ्य आप आगच्छन्ति तत्र कार्या सभा। गृहमध्य इत्यर्थः।। सा शुभकर्यद्यूता च भवति।।11।।

11. जिस स्थान पर जल सब ओर से आकर बहता है उस स्थान पर निर्मित किया गया सभागृह का निर्माण करे। वह यजमान वेफ लिए अथवा मालिक वेफ लिए सब प्रकार से भाग्योदय करने वाला तथा द्युतक्रीड़ा आदि से भी अछूता रहता है।

अष्टमं ख्रण्डम्

1. अथैतैर्वास्तु परीक्षेत।।

पूर्वलक्षणासम्भवे कथमुत्तरेषां बलीयस्त्वं स्यादित्येवमर्थोf(थशब्दः। अथ विशिष्टान्येतानीति। वास्तुग्रहणं सभाधिकारनिवृत्त्यर्थम्।।1।।

1. भूस्वामी मकान बनाने से पहले निम्नलिखित विधि से भूमि की परीक्षा करे।

2. जानुमात्रं गर्तं ख्रात्वा तैरेव पांसुभिः प्रतिपूरयेत्।।

गर्तो नामावटः। तैरेव तत उf(तैरेव।।2।।

2. घुटने तक गहरा गर्त ;गडढ़ाद्ध खोदकर उसी मिट्टी से उसे परिपूर्ण कर दें अर्थात् भर दें।

3. अधिवेफ प्रशस्तं समे वार्तं न्यूने गर्हितम्।

पूरिते गर्तादधिवेफ पांसुराशौ प्रशस्तं वास्तु भवति। तेन समे वृत्तिम वति। तस्मान्न्यूने गर्हितं वुफत्सितं भवति। तस्मात्तत्र

1. अब वास्तु परीक्षा का वर्णन करेंगे। अर्थात् घर बनाने से पूर्व वास्तु परीक्षा करनी चाहिए। उसी का उपदेश यहां सप्तम् खण्ड में किया गया है।

एवंलक्षणयुक्ते देशे वास्तु कार्यमित्याह-

2. अनूखरमविवदिष्णु भूम॥

भूमशब्दो भूमिवाचकः। यथा 'यवं' न वृष्टिर्युनत्ति भूम' इति। यत्र विवादो नास्ति तदविवदिष्णु॥2॥

2. जिस भूमि पर मकान बनाना हो वह बंजर तथ विवादित भूमि होनी चाहिए।

3. औषधिवनस्पतिवत्॥

मतुपो वकारश्छान्दः। एवंविधं यद्भूम तत्र वास्तु कार्यम्॥3॥

3. वह भूमि औषधि और वनस्पति उगी हुई हो. वह मकान बनाने वेफ लिए ठीक होगी।

4. यस्मिन्वुफशवीरिणं प्रभूतम्॥

तत्र कार्यम्॥4॥

4. जिस भूमि पर वुफशाएं व वीरण घास प्रचुर मात्रा में उगा हुआ हो।

5. कण्टकिक्षीरिणस्तु समूलान्परिखायोद्वासयेदपामार्गः शाकस्तिल्वकः परिव्याध इति चैतानि॥

समूलान्परिखायोद्वासयेदिति वर्तते। अपामार्गादीनां पुंल्लि त्वादेतानिति वक्तव्य एतानीति नपुंसकवचनमन्यान्यप्येवंप्रकाराणि वास्तुविद्यायां निषिद्धान्युद्वास्यानीत्येवमर्थम्॥5॥

5. उस भूमि से कांटेदार झाड़ियों तथा दूधवाले वृक्षों झाड़ियों को जड़ सहित खोद कर निकालें इसी प्रकार अपामार्ग, शाक, तिल्वक, परिव्याध आदि वनस्पतियों को भी खोद कर बाहर निकाल दे।

6. यत्र सर्वत आपो मध्यं समेत्य प्रदक्षिणं शयनीयं परीत्य प्राच्यः स्यन्देरन्नप्रवदत्यत्सर्वं समृ(म्॥

यस्मिन्देश आपः सर्वाभ्यो दिग्भ्य आगत्य मध्यं प्राप्य ततः प्रदक्षिणं शयनीयं परीत्य प्रा मुख्यो गच्छेयुः। अप्रवदत्यः। नलोपः छान्दसः। अशब्दवत्य इत्यर्थः। एतल्लक्षणयुक्तं वास्तु विद्यावृत्तधनधान्यादिभिः सर्वैः समृ(भवति। एवं ब्रुवतैतत्प्रदर्शितं भवति। सर्वत उच्छ्रितां मध्यतो निम्नामीषच्च प्राक्प्रवणां भूमिं कृत्वा गृहं वुफर्यात्। तत्र प्राच्यां दिशि गृहिणः शयनीयं गृहं वुफर्यात्। शयनीयगृहस्योत्तरतोऽपां शनैः प्रदक्षिणं प्रदक्षिणं निर्गमनार्थं स्यन्दनिकां वुफर्यादिति॥6॥

6. जिस भूमि पर पानी चारों ओर से बीच में इकट्ठा होकर ;वर्षा वेफ समयद्ध दक्षिण की ओर शयन कक्ष वेफ उफपर से पूर्व की ओर बहे वह मकान वेफ लिए उत्तम मानी गई है।

7. समव वे भक्तशरणं कारयेत्॥

येन पथाऽपो निर्गच्छन्ति स देशः समव वः। प्राच्यां दिशीत्यर्थः। तत्र महानसं कारयेच्छयनीयस्योत्तरतः॥7॥

7. जिस दिशा में पानी जाता है। अर्थात् पूर्व दिशा में शयन कक्ष वेफ उत्तर में पाकशाला ;रसोईद्ध तैयार करे। अथवा अन्न भण्डार बनाए।

ननु शास्त्रान्तरे प्राग्दक्षिणस्यां दिशि भक्तशरणं दृष्टमतः कथं प्राच्यां दिशीत्याश क्य प्रकृतस्य स्तुतिमाह-

10. अथवा कोई परिवार वेफ लिए उपयोगी पदार्थ लावे।

11. संसदमुपयायात्।

गृहसमीपमागच्छेदित्यर्थः।।11।।

11. तब संसद में प्रवेश करे।

12. अस्माकमुत्तमं कृधीत्यादित्यमीक्षमाणो जपित्वा(वरोहेत्।

जपित्वा नवरथादवरोहेत्।।12।।

12. फअस्माकयुत्तम कृधिय् यह मन्त्र बोल कर तथा सूर्य की ओर देख कर नयेरथ से नीचे उतरे।

13.)षभं मा समानानामित्यभिक्रामन्।

एतत्सूक्तं गृहं प्रतिपद्यमानो जपेत्।।13।।

13. फ)षमं मा समानानाम्य् इस मन्त्र का जाप करता हुआ घर में प्रवेश करे अथवा संसद गृह में प्रवेश करे।

14. वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा इत्यस्तं यात्यादित्ये।।

जपेदिति शेषः। तस्मिन्नेवाहनि।।14।।

14. सूर्यास्त वेफ समय फवयमधेन्द्रस्य प्रेष्टाय् इस मन्त्र का पाठ करे।

15. तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरिति व्युष्टायाम्।।

जपेत्। त्रीण्येतानि प्रतीकानि मन्त्रसंज्ञकानि। तस्मादुपांशु स्युः। एतावान्- वरथे विशेषः।।15।।

15. सूर्यास्त वेफ बाद सायं काल में तद्वों दिवा दुहितरों विभतिय् इस मन्त्र का जाप करे।

सप्तम खण्डम्

1. अथातो वास्तुपरीक्षा।।

उच्यत इति शेषः। उक्तोऽर्थः। अतःशब्दो हेत्वर्थः। यस्मागृहनिमित्ते समृ(वृ(ि भवतस्तमाद्वास्तुपरीक्षोच्यत इति। तद्येवं काम्यकर्माण्यनर्थ कानि। न। एतदेवं न्यायविदः परिहरन्ति 'तच्चैव हि कारणं शब्द- ेति'।।1।।

अभिमृशेदिति वर्तते। पाणिभ्यां युगपच्चक्रनाभी अभिमृशेन्मन्त्रेण।।2।।

2. 'वामदेव्यमक्ष' यह कहता हुआ अक्ष का स्पर्श करे।

3. दक्षिणपूर्वाभ्यामारोहत्। वायोष्ट्वा वीर्येणा((रोहामीन्द्रस्यौजसा- ((धिपत्येन इति।।

दक्षिणः पादः पूर्वो यतोस्तौ तथोक्तौ। एवं भूताभ्यामारोहेन्मन्त्रेण।।3।।

3. 'वायोष्ट्वा' इस मन्त्र को उच्चारण करता हुआ पहले दाहिना पैर उफपर रख कर चढ़े।

4. रश्मीन्संमृशेदरश्मिकान्वा दण्डेन। ब्रह्मणो वस्तेजसा संगृ ामि सत्येन व संगृ ामि इति।।

रश्मयः प्रग्रहास्तान्स्पृशेत्। अथा यद्यश्वा अरश्मिकाः स्युस्तानेव दण्डेन स्पृशेत्। मन्त्रस्तुभयत्र समान एव। बहुवचनाद्बहुयुगो रथो(त्राभिप्रेत इति गम्यते।।4।।

4. 'ब्राह्मणों वस्तेजसा संगृहानि' इस मन्त्र वेफ द्वारा घोड़े की लगाम या पीछे बन्धी हुई रस्सी को स्पर्श करे अथवा दण्ड रस्सी का स्पर्श करे।

5. अभिप्रवर्तमानेषु जपेत्। सह सनिं वाजमभिवर्तस्व रथदेव प्रवह वनस्पते वीडव ो हि भूया इति।

चशब्दो(ध्याहार्यः। सारथिना नोदिता अश्वा यदेष्टां दिशमभिगच्छन्ति तदा 'सह सनिं' 'वनस्पते' इत्यृचं जपेत्। एतावद्रथारोहणम्।।5।।

5. सारथी वेफ द्वारा रथ हावेफ जाने परी अर्थात् घोड़ों वेफ चलने पर फ्सहसनि....ञ इस मन्त्र का उच्चारण करे।

6. एतया(न्यान्यपि वानस्पत्यानि।।

अभिमृशेदिति शेषः। अन्यान्यपि शकटप्रभृतीनि वानस्पत्यान्यारोक्ष्यन्नेतया तान्यभिमृशेत्। एतयेत्यस्मिन्नसत्यन्यान्यपीत्याद्युत्तरसूत्रस्यैव शेषः स्यात्। तस्माद्योगविभागार्थमेतयेति वचनम्।।6।।

6. इस प्रकार लकड़ी सक बने, अन्य यानों पर ;गाड़ी आदिद्ध पर चढ़ते समय इस प्रकार आचरण करे।

7. स्थिरौ गावौ भवतां वीळु रक्ष इति रथा मभिमृशेत्।

यद्यद मस्यामृचि दृष्टं तत्तदभिमृशेत्। गावौ। अक्षं, ईषां, युगं चेत्यर्थः। इदं चाभिमर्शनं शकटादिषु। न रथे। गावाविति लि ात्। न हि रथस्य गोयुक्तत्वं द्विगोयुक्तं च संभवति। तस्य बहुयुगत्वादश्वयुक्तत्वाच्च।।7।।

7. फ्स्थिरौ गावौ भवतां वीवुफ रक्षञ इस मन्त्र से रथ अथवा गाड़ी वेफ अन्य भागों को स्पर्श करे।

8. सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसमिति नावम्।

आरोहेदिति शेषः आरूहेमेति मन्त्रलि ात्। यदा यदा च नावमारोहत्यु- दकतरणार्थं तदा तदैतया((रोहेत्।।8।।

8. जब 2 नदी पार करते समय नाव पर सवार हो उस 2 समय इसी प्रकार आचरण करता हुआ फ्सुत्रामाणं द्यामनेहसं ञ इस मन्त्र का जाप करे।

9. नवरथेन यशस्विनं वृक्षं "दं वा(विदासिनं प्रदक्षिणं कृत्वा पफलवतीः शाखा आहरेत्।।

नवरथेन यदा गच्छति तदा(यं विशेषः। वानस्पत्यजपान्तं कृत्वेदमपि वुफर्यात्। नवो(नुपभुक्तः। यशस्वी यशसा युक्तः। अविदास्यशोष्यः। आम्रजम्ब्वादिशाखा आहरेत्।।9।।

9. जब नये रथ पर पहली बार आरोहण करे उस समय किसी पफलवती शाखा का आहरण करे तथा विख्यात वृक्ष तथा सदापानी से भरे रहने वाले तालाब की प्रदक्षिण क्रम से परिक्रमा करे।

10. अन्यद्वा कौटुम्बम्।।

अन्यद्वा वुफटुम्बोपयोगि द्रव्यमाहरेत्। आहृत्य ततः।।10।।

10. प्रत्येक महीने को विषय तिथियों को वह पितरों को अन्वष्टका आहुतियाँ प्रदान कर

11. नवावरान्भोजयेत्।।

नवप्रस : प्रकृतं निवर्तयति। तेनान्वष्टक्ये नवावरान्भोजयेन्नियमेन।।11।।

11. तत्पश्चात् कम-से-कम नौ ब्राह्मणों को भोजन खिलाये

12. अयुजो वा।।

अशक्तौ प्रागप्ययुजो भोजयेत्सप्त पञ्च त्रीनेवंफ वा। सप्तपक्ष एकस्यैक इतरयोस्त्रयस्त्रयः। पञ्चपक्ष एकस्य त्रय इतरयोरेवैफकः। इदं चान्वष्टक्य एव।।12।।

12. अथवा इससे कम विषम संख्यां में 1, 3, 5 अथवा 7 ब्राह्मणों को भोजन करायें।

13. युग्मान्वृ(पूर्तेषु।।

पुंसवनसीमन्तोन्नयनचौलकर्मोपनयनविवाहा इति पञ्चाग्न्याधेयादीनि च श्रौतानि वृ(श्रा(य विषय इत्येवेफ। अन्ये षोडश संस्काराः श्रवणकर्मादयश्च श्रौतानि चेत्याहुः। 'अनिष्ट्वा तु पितॄञ्श्रा(वैदिवंफ कर्म ना((भेत्' इति स्मृतेः। वापीवूफपतडागारामाद्युद्यापनादि पूर्तश्रा(स्य विषयः। उभयत्र युग्मान् भोजयेत्।।13।।

13. वृ(से सम्बन्धित विशेष ब्राह्मणों को अवसरों पर किए जाने वाले कर्मों में सम संख्या में ;2, 4, 6, 8द्ध भोजन करायें।

14. अयुग्मानितरेषु।।

पूर्वेद्युरुष्टम्यां काम्य एकोद्दिष्ट इति चतुर्थ्यं विधिः। मासि मासि चेत्यत्रान्वष्टक्यवत्। पार्वणे तु वक्ष्यति। एवमष्टविधेष्वपि श्रा(ेषु ब्राह्मणपरिमाणमुक्तम्।।14।।

14. और शैष सामान्य कर्मों में विषय संख्या में ब्राह्मणों को भोजन खिलायें।

15. प्रदक्षिणमुपचारो यवैस्तिलार्थः।।

वृ(पूर्तेष्विति शेषः। अत्र प्रदक्षिणमिति वनादितश्श्रा(ेषु प्रसव्यमुपचार इति गम्यते। तिलकार्ये यवान्वुफर्यात्। यज्ञोपवीतयुग्मकर्मादीनामुपलक्षण- मिदम्।।15।।

15. इन सामान्य कर्मों में प्रदाक्षिण क्रम की बजाय वाम क्रम से तथा तिलों वेफ स्थान पर जौं की आहुति प्रदान करें।

षष्ठ ख्ण्डम्

1. स्थमारोक्ष्यन्नाना पाणिभ्यां चक्रे अभिमृशेत्। अहं ते पूर्व पादावाल- भेद्बृहद्रथंतरे ते चक्रे।।

इतिकारोऽध्याहार्यः। त्रयाणां वर्णानामिदं समानं भवति। स्थो नाम बहुयुगो मण्डलाकृतिः। यदा स्थमारोहति गमनार्थं ततः पूर्वपक्षे चक्रे पाणिभ्यां नाना अभिमृशेन्मन्त्रेण। नानाग्रहणं युगपदेव दक्षिणेन दक्षिणं सव्येन सव्यमभिमृशेन्न पर्यायेणेत्येवमर्थम्। दूरदेशगमने त्वाद्य एवा((- रोहणोऽयं विधिर्नत्वर्थ प्राप्तेष्वारोहणेषु।।1।।

1. रथ पर आरोह करने से पूर्व अर्थात् बाहर जाने वेफ लिए यदि रथ पर जाना हो तो रथ पर चढ़ने से पहले दोनों हाथों से दो पहियों को स्पर्श करता हुआ, फअहंतेपूर्व पादावाल भेद् बृहन्तरे चक्रेय् इस मन्त्र का उच्चारण करें।

2. वामदेव्यमक्ष इत्यक्षाधिष्ठाने।।

ब्रूयात्। तदा बह् व्यस्तदा वहीनामपि नामानि ब्रूयात्। तेशब्दस्य स्थाने द्वे मातरौ चेद्द्वावित्यूहः। बहव्यश्चेद्ध इत्यूहः। ये शब्दस्य वेफचिदूहेन स्त्रीलि वुफर्वन्ति तद्विचार्यम्। एतत्ते तत ये च त्वामत्रान्वित्यस्यायमर्थः-हे तत, एतत्पिण्डरूपमन्नं तुभ्यं ये चान्ये(त्र त्वामनु यन्ति तेभ्यश्चेत्यर्थः। अनुयायिनश्च यदि स्त्रिय एव स्युस्तदोहो युज्यते। यदि पुमांस एव पुमांसश्च स्त्रियश्च वा तदा न युज्यते। 'पुमान्स्त्रिया' ;पा0 सू0 1.2.67द्ध इति पुंस एकशेषात्। आचार्यणा- प्युक्तम्-'पुंवन्मिथने' ;श्रौ0 3.2द्ध इति। 'अनुयायिनश्च पुमांसश्च स्त्रियचेति प्रतिभाति' इति बौधायनवचनात्। इत्थं हि तेन पिण्डदाने पठितो मन्त्रः-'एतत्ते ततासौ ये ते मातामहा ये त आचार्या ये ते सखायो ये ते गुरवो ये ते ज्ञातयो ये ते(मात्या ये ते(न्तेवासिनस्तेभ्य- श्चैतत्ताभ्यश्च स्वधा नमः' इति। तेनोहो न कार्यः। आपस्तम्बेन तु 'एतते मातरसौ याश्च त्वामत्रानु' इति मन्त्रः पठित इति कृत्वा वेफचिदूहं वुफर्वन्ति। तच्चिन्त्यम्। स्त्रीद्वित्वे युवामत्रानु बहुत्वे युष्मानत्रान्विति। अत्र पितरो(मीमदन्त पितर इत्यत्र च पितृशब्दस्योहो न कार्यः। प्रकृतावसमर्थत्वात्। पिण्डपितृयज्ञो पितर इत्यत्र च पितृशब्दस्योहो न कार्यः। प्रकृतासमर्थत्वात्। पिण्डपितृयज्ञो हि तयोः प्रकृतिः। तत्र च त्रयो(भिधातुमभिप्रेताः। तस्मादनूहः। उभयपिण्डानां च सकृदेवानुमन्त्रणं कार्यम्। शक्यत्वात्। न पृथक्। 'असावभ्य क्ष्वासाव क्ष्वेति' ;श्रौ0 2.7द्ध अत्र च स्त्रीद्वित्वे बहुत्वे चासौशब्दस्योहः। अभ्यञ्जाथाम्, अभ्य ध्वम्, अञ्जाथाम, अ ध्वमिति च यथार्थम्। स्त्रीणां पृथग्वासो दद्यात्। असंसर्गित्वात्। एतद्धः पितर इत्यत्रोहो न कर्तव्यः। असमर्थत्वादेव। मन्त्रावृत्तिरस्त्येव। पितृपिण्डात्स्त्रीपिण्डांश्च सकृदेवोपतिष्ठते। शक्यत्वात्। न पृथक्। अनूहश्च पूर्ववत्। 'मनोन्वाहुवामहे' इत्यादेश्चानूहः पूर्ववत्। 'तस्मादृचं नोहेत्' ;श्रौ0 5.4द्ध इति प्रतिषेधाच्च। प्रवाहणं चोभय पिण्डानां युगपदेव। शक्यत्वात्। अनुहश्च पूर्ववत्।)क्त्वाच्च। 'वीरं मे दत्तस पितरः' ;श्रौ0 2.7द्ध इति पितृणां मध्यमपिण्डमादायानेनैव स्त्रीणामपि मध्य ममाददति। अनूहश्च पूर्ववत्।)क्त्वाच्च। यत्र त्वृच्यूहमिच्छति तत्र विदधाति 'आत्मनि मन्त्रान्संनमयेत्' ;3. 8.7द्ध इति। 'इति नम्रे' ;श्रौ0 2.14द्ध इति च। एवं निनयनवर्ज पितृशब्दस्योहो नास्तीत्युक्तम्। तत्र यद्युच्यते। 'पितृशब्दो बहुवचनान्तः पित्रादींस्त्रीनेव वक्ति। साहचर्यात्। यथा मित्राविति वरूणाविति चोक्ते मित्रावरूणौ प्रतीयेते। साहचर्यात्। तद्वदत्रापि। मातृस्तु वक्तुं न शक्नोति। तत्साहचर्यस्य क्वचिदप्यप्रतीतत्वात्। तस्मादूहः कार्य इति'। तत्र ब्रूमः। असमर्थत्वादूहो नास्तीत्युक्तमेव। वेफवलमभिधानं सम्पादनीयम्। सपिण्डीकरणेन हि प्रेतत्वं निवर्त्य पितृत्वं नाम संस्कारविशेषः शास्त्रगम्यः प्राप्यते। तच्च मातृष्वप्यविशिष्टमिति मातृष्यभिधत्ते पितृशब्दः। एवं च कृत्वैकोद्दिष्टे शास्त्रान्तरदृष्टः पितृशब्दप्रतिषेधो(प्युपपन्नः। ऊहवादिनो(तिप्रस श्चास्ति। मात्रादयस्त्र- यो(पि शब्दाः प्रसज्यन्ते। तेनाप्येवं पुनरपि। नेष्यते बहुविं विचार्य कार्यमित्यलमतिविस्तरेण।।8।।

8. पश्चिम दिशा में खोदे गये स्थानों पर पितरों की पत्नियों को बलि प्रदान करे।

9. एतेन माध्यावर्षं प्रोष्टपद्या अपरपक्षे।।

एतेनेति पूर्वेद्युः प्रभृति कृत्स्नकर्मातिदेशः। एतदुक्तं भवति। प्रौष्टपद्याः समीपे यो(परपक्षस्तत्राष्टम्यां माध्यावर्शं नाम कर्म कर्तव्यम्। तच्चै- तेनाष्टकाकर्मणा व्याख्यातमिति। अत्रापि त्रिष्वहः सु कार्यमित्यर्थः।।9।।

9. इसवेफ बाद माध्यावर्ष कर्म का सम्पादन करे जो माघ मास वेफ कृष्ण पक्ष की पूर्णमासी को सम्पन्न की जाती है। जो प्रोष्ट पद्या वेफ नाम से जानी जाती है।

10. मासि मासि चैवं पितृभ्यो(युक्षु प्रतिष्ठापयेत्।।

अपरपक्ष इत्यत्रापि सम्बध्यते। मध्यवगतत्वस्य विशेषाभावात्प्रयोजन- वत्त्वाच्च। तच्च पूर्वपक्षनिवृत्त्यर्थम्। एवमित्यकृत्स्नोपेदशार्थम्। तेनान्वष्टक्यमिहातिदिश्यते। अनन्तरत्वात्। पितृभ्य इति मातृनिवृत्त्यर्थम्। प्रतिष्ठापयेत्। वुफर्यादित्यर्थः। एतदुक्तं भवति। प्रतिमासमपरपक्षे(युग्मासु तिथिष्वन्वष्टक्यवत्पितृभ्य एव श्रा(वुफर्यादिति। समानकालत्वात्समान- कार्यत्वाच्च पार्वणस्यास्य विकल्पः। एवं वा सूत्रच्छेदः। 'मासि मासि चैवं पितृभ्यः'। प्रतिमासमपरपक्षे(न्वष्टक्य वत्पितृभ्य एव वुफर्यादित्यर्थः। 'अयक्षु प्रतिष्टापयेत्'। श्रा(कर्मणि सर्वमयुग्मासु संख्यासु प्रतिष्टापयेत्। गन्धमाल्यादि सकृद्देयं त्रिः पञ्चकृत्वो वेत्यादि।।10।।

अथवा दो या छह विभाजन करवेफ उनपर सुग और पवेफ हुए चावलों की आहुति प्रदान करे।

१. पूर्वासु पितृभ्यो दद्यात्।।

पूर्वा च लेख्रा च कर्षूः पूर्वाश्च कर्ष्वः। ताः पूर्वाः। एतदुक्तं भवति। द्विलेख्राद्विकर्षुषट्कर्षूपक्षेषु पूर्वस्यां लेख्रायां पूर्वस्यां कर्ष्वां पूर्वासु कर्षूषु पितृभ्यो निपृणीयादिति।।७।।

१. पूर्व दिशा की ओर स्थापित किये गऐ स्थान पर पितरों को अर्थात् फुरुषों को आहुति प्रदान करे।

१. अपरासु स्त्रीभ्यः।।

पूर्ववदेकशेषः। अत्र विंफचिद्वक्तव्यमस्ति। द्वे लेख्रे इत्युक्तम्। पितृषु च स्त्रीषु च पृथक्पृथ ् नवावरा अयुजो वा ब्राह्मणा भवन्ति। 'प्रकृतौ समर्थनिगमेषु ;श्रौ0 3.2द्ध। यजुर्निगदेषु विकृतावूह उक्तः। तेन स्त्रीपात्रेषु तिलावपने तिलोसीति मन्त्रे पितृशब्दस्योहो न कार्यः। प्रकृतावसमर्थत्वात्। पार्वणं हि तस्य प्रकृतिः। तत्र च पित्रादयस्त्र- योऽभिधातुमभिप्रेताः। न च पितृशब्दस्त्रीन्वक्तुं समर्थः। अथोच्यते। तत्रापि पितृपात्रेवास्य प्रकृतिः। उत्तरे विकृती। पितृपात्रे च पितृशब्दः समर्थः। विभक्तिमात्रं त्वसमर्थम्। तेनोत्तरयोः पात्रयोः पितृशब्दस्य स्थाने पितामहप्रपितामहशब्दौ बहुवचनान्तौ वक्तव्याविति। एतदयुक्तम्। समानप्रकरणे प्रकृतिविकृतिभावो नास्तीति ज्ञापितमेत ष्यकारेण 'राज्यायदेना इति तु प्रणयेत्' ;श्रौ0 2.2द्ध इत्यत्रा तेन त्रिष्वपि पितृशब्द एव प्रयोज्य इति सि(म्। यथा तत्र कथंचिद्गौण्या लक्षणया वाऽन्यथा वा त्रीनाह तथैवात्रापि मातृरभिदध्यात्। तेनोहो न कार्यः। अथ तत्रोत्तरयोः पात्रयोरूहोऽभ्युपगम्यते। तर्हि 'शुन्धन्तां पितरः' इत्यत्र त्रयाणं वचनमपार्थक स्यात्। तस्मात्पितृ शब्द एव सर्वदा प्रयोज्य इति सि(म्। 'शुन्धन्तां पितरः' ;श्रौ0 2.6द्ध इत्यत्र तु विभक्तिमात्रसमर्थम्। प्रकृतिस्तु समर्थैव। तेन तस्या ऊहः कार्यः। शुन्धन्तां मातरः शुन्धन्तां पितामह्यः शुन्धन्तां प्रपितामह्यौ प्रपितामह्यौ ये च त्वा' ;श्रौ0 2.6द्ध इत्यत्र यदि द्वे मातरौ स्यातां पितामह्यौ प्रपितामह्यौ वा तदाऽसावित्यत्र द्वयोरपि नामनी

पञ्चमं ख्रण्डम्

1. अपरेद्युरन्वष्टक्यम्।।

अपरस्मिन्नहनि नवम्यामन्वष्टक्यं नाम कर्म कार्यमित्यर्थः।।1।।

1. अष्टका कर्म से अगले दिन अर्थात् नवम् तिथि को अन्वष्टक्य कर्म का सम्पादन करे।

2. तस्यैव मांसस्य प्रकल्प्य दक्षिणप्रवणेऽग्निमुपसमाधाय परिश्रित्योत्त- रतः परिश्रितस्य द्वारं कृत्वा समूलं बर्हिस्त्रिरपसलैरविधुन्वपरिस्तीर्य हवींष्यासादयेदोदनं कृसरं पायसं दधि मन्थान्मधुमन्थांश्च।।

योऽष्टम्यां पशुः कृतस्तस्यैव मांस ब्राह्मणभोजनार्थं प्रकल्प्य संस्कृत्ये- त्यर्थः। भोजनार्थत्वं तु शास्त्रान्तरादवगतम्। दक्षिणा प्रवण इति प्राक्प्रवण- निवृत्यर्थम्। उपसमाधायेति व्याख्यातम्। अग्नितिरस्करण्यादिभिः परि- श्रितयोत्तरतो द्वारं करोति। पुनः परिश्रितस्येति वचनं परिश्रयणस्यानित्यत्व- ज्ञापनार्थम्। अत्रापि पिण्डपितृयज्ञकल्पोऽस्ति। तत्र विशेषमाह-उभौ पस्तीर्योत्यस्मिन्काले समूलं बर्हिगृहीत्वाऽपसलैस्त्रप्रदक्षिणमविधुन्वन्न- कम्पयंस्त्रिः परिस्तृणीयात्। आसादयेदभिघार्य स्थालीपाकमित्यस्मिन्काल एतानि पञ्चाऽऽसादयेत्। एषां नित्ये श्रपणं कार्यम्। गृह्यकर्मणि सर्वत्र चरूणां नित्येऽग्नावेव श्रपणं कार्यं न तु लौकिवेफ। अन्यत्र प्रतिषेधात्। श्रपयित्वैककपालं चेत्यत्र श्रपयित्वेति वचनस्य चरुवर्जितानां धानादीनां नित्याग्निश्रपणनिषेधपरत्वेनापि सम्भवात्। 'सक्तवोदधिमिश्रास्तु दधिमन्थाः प्रकीर्तिताः। मधुमन्थाः। मधुमन्थाः प्रकीर्त्यन्ते मधुमिश्रास्तु सक्तवः।।' उल्लेख्रनकाले द्वे लेख्रे लिख्रेत्। उभे च सकृदाच्छिन्नैरवस्तृणीयात्।।2।।

2. उसी मांस को पका कर अर्थात् जो अष्टमी को पशु याग किया था उसी पशु वेफ मांस से ब्राह्मणों का भोजन तैयार करवेफ, दक्षिण दिशा में भूमि पर अग्नि की स्थापना करवेफ, बिछाई गई वुफशाओं वेफ उत्तर भाग में वुफशाओं का ही द्वार बनाकर अग्नि वेफ चारों ओर तीन बार वुफशायें बिछाकर उन्हें उनवेफ उफपर आहुति वेफ लिए ओदन, कृपर, पायस, दधि मन्थ तथा मधु मन्थ, ;सूक्तूओं में दहि मिलाकर दहि मन्थ और शहद में सक्त् मिलाकर मधु मन्थ तैयार किया जाता है। ये सभी आहुति वेफ लिए स्थापित करे।

3. पिण्डपितृज्ञकल्पेनं।

इदं कर्म पिण्डपितृयज्ञविधानेन कार्यमित्यर्थः। अग्निप्रणयनं पात्रं सोमायेत्यादि मन्त्रकौ। उपस्थानं प्रवहणं निनयाद्यतिदिश्यते।।3।।

3. यजमान पिण्ड पितृ यज्ञ वेफ समान अन्वष्टक कर्म का भी सम्पादन करे।

4. हुत्वा मधुमन्थवर्जं पितृभ्यो दद्यात्।।

इध्माधानान्तं कृत्वा ब्राह्मणपञ्चौचाद्याछादनान्तं कृत्वौदनादिभ्य तुर्भ्योन्मु- त्य मधुमन्थवर्जं धृताक्तमनुज्ञाप्याग्नावहुतिद्वयं हुत्वा मेक्षणमनुप्रहृत्य शेषनिवेदनान्तं कृत्वा पितृभ्यः पिण्डान्निपृणीयादित्यर्थः। पिण्डदाने मधुमन्था अपि ग्राह्याः।।4।।

4. मधु मन्थ को छोड़कर शेष पदार्थों की आहुति पितृ पितरों को प्रदान करे।

5. स्त्रीभ्यश्च सुरा य चाऽऽचामित्यधिकम्।।

मात्रे पितामह्यै प्रपितामह्यै च पिण्डान्निपृणीयात्। तत्र चौदनादिपञ्चभ्यः सुरा चाऽऽचामं चाधिवंफ भवतीत्यर्थः। पित्रादित्रयाणामेव पिण्डपितृयज्ञस्य दृष्टत्वात्तद्विधानं स्त्रीणां न प्राप्नोतीति कृत्वा पिण्डपितृयज्ञकल्पेनेत्येत- दत्रानुवर्तनीयम्। 'ओदनाग्रग्रवं प्राहुरचामं हि मनीषिणः।। गौडी माध्वी च पैष्टी च सुरा तु त्रिविधा स्मृता।' अधिकवचनं पञ्चानामबाधनार्थम्।।5।।

5. पितरों की पत्नियों वेफ लिए सुरा तथा ओदन प्रदान करे।

6. कर्षूष्वेवेफ द्वयोः षटसु वा।।

द्वयोर्लेख्रयोरुभयेषां पिण्डनिपरणमुक्तम्। कर्ष्वो नामावटाः। कर्ष्वो च कर्ष्वश्च कर्ष्वः। तास्वेक इच्छन्ति। यदा द्वे कर्ष्वौ तदाऽऽयते भवतः। यदा षट् तदा परिमण्डलाः। द्वयोरिति वचनात्कर्ष्वावित्येवेफषो लब्धः।।6।।

6. वुफछ आचार्यों वेफ अनुसार भूमि पर रेख्रायें ख्रीचकर तथा जितने भी पितर हों एवं उनकी पत्नियाँ हों उसी संख्या में

इति।।

पशुकल्पेनेति वचनं प्रोक्षणप्रतिषेधः पशुकल्पस्थस्यैव प्रोक्षणस्य भवति न पश्व भूतस्थालीपाकप्रोक्षणस्येत्येवमर्थम्। संज्ञप्येत्ययमनुवादः। उत्खिद्येति वचनमुत्खिद्य सर्वदा(नियैव वपां जुहुयादित्येवमर्थम्। तेनाग्न्या- दिनामधेयेन होम इत्याद्याः पक्षा निरस्ता भवन्ति।।13।।

13. पशु याग वेफ अनुसार परोक्षण एवं अपाकर्मों को छोड़कर शेष सभी कर्मों का अनुष्टान करता हुआ, पशु की वपा का उत्खनन करवेफ फ्वह वपां जात वेदः...ष् इस मन्त्र का उच्चारण करता हुअ ा वपा की आहुति प्रदान करे।

14. अथावदानानां स्थालीपाकस्य च-''अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्'' इति द्वे। ''ग्रीष्मो हेमन्तः)तवः शिवा नो वर्षाः शिवा अभया शरन्तः। संवत्सरोधिपतिः प्राणदो नो(होरात्रे कृणुतां दीर्घमायुः स्वाहा। शान्ता पृथिवी शिवमन्तरिक्षं द्यौर्नो देव्यभयं नो अस्तु शिवा दिशः प्रदिश उद्दिशो न आपो विद्युतः परिपान्तु सर्वतः स्वाहा। आपो मरीचीः प्रवहन्तु नो धियो धाता समुद्रो वहन्तु पापम्। भूतं भविष्यदभयं विश्वमस्तु मे ब्रह्मा(धिगुप्तः स्वाराक्षराणि स्वाहा। विश्व आदित्या वसवश्च देवा रुद्रा गोप्तारो मरुतः सदन्तु। ऊर्जं प्रजाममृतं पिन्वमानः प्रजापतिर्मयि परमेष्ठी दधातु स्वाहा। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यः।।''

स्थालीपाकशब्देनात्र द्रव्यं गृह्यते। एकवचनं जात्यभिप्रायम्। तेनायमर्थः-

पश्व स्थालीपाकस्यावदानानां च स्थालीपाकान्तरस्य चैते सप्त होममन्त्रा भवन्तीति।।14।।

14. तत्पश्चात् निम्नलिखित विधि वेफ द्वारा अवदान भाग तथा स्थाली पाक की आहुति प्रदान करे। फ्अग्नेनय...ष्इन दो मन्त्रों से दो आहुति, 'गृष्मों हेमन्तः...' इस मन्त्र से दो आहुति फ्आपो मरीचि.....ष् इस मन्त्र से दो, फ्विश्वदित्या वसवसश्च. ...ष् आदि मन्त्रों से दो आहुति प्रदान करे।

15. सौविष्टकृत्यष्टमी।।

अष्टमीग्रहणं सर्वदा त्रिष्वपीयमाहुति रष्टमी भवतीत्येवमर्थम्। तेन मन्त्रैरेव होमो न कदाचिन्नामधेयेनेति सि(म्। अपि च यदा पश्व भूत- स्थालीपाकः पृथग्घूयते तदा स्विष्टकृदपि पृथक्कार्य इत्येत्प्रदर्शितं भवति। सर्वत्र च पृथग्घोमे स्विष्टकृदपि पृथक्कार्यः। वस्तुतस्तु पृथग्घोमे ह्यवदानानां सप्त स्थालीपाकस्य च सप्त। ततः सौविष्टकृती पञ्चदशी स्यात्। सहपक्षे त्वष्टमी भवति। एवं च पृथग्घोमनिवृत्त्यर्थमष्टमीग्रहणं वेदितव्यम्।।15।।

15. आठवीं आहुति स्विष्ट्कृत अग्नि को प्रदान करे।

16. ब्राह्मणन्भोजयेदित्युक्तम्।।

ब्राह्मणान्भोयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीतेति यदुक्तं तदिहापि कार्यमित्यर्थः। एतदुक्तः भवति। होमं समाप्य ब्राह्मणपञ्चौचाद्याच्छादनान्तं कृत्वा भोजनार्थादन्नादु(त्य घृताक्तं कृत्वा पाणौ होमं कृत्वा भुक्तवत्स्वनाचान्तेषु पिण्डान्दत्त्वा स्वस्त्ययनं वाचयित्वा श्रा(शेषं समापयेदिति। अथवा ब्राह्मणान्भोजयेदिदमनन्तरे कर्मणीत्युक्तम्। यच्चोक्तं पूर्वेद्युः कर्म तत्र च भोजयेदित्युक्तं द्रष्टव्यमित्यर्थः। इतिशब्दो(त्र भोजनपरामर्शी। इदमष्ट- भ्यां भोजनं श्रा(मित्युपदेशः शास्त्रान्तरे च दृश्यते। तस्माच्छ्रा(मिति सि(म्।।16।।

16. अन्त में पूर्व वर्णित विधि वेफ अनुसार ब्राह्मणों को भोजन कराये।

12. तां हैवेफ वैश्वदेवीं बुवत आगनेयीमेवेफ सौर्यमेवेफ प्राजापत्यामेवेफ रात्रिदेवतामेवेफ नक्षत्रदेवतामेक)तुदेवतामेवेफ पितृदेवतामेवेफ पशुदेवतामेवेफ।।

एतेऽष्टौ देवताविकल्पाः। तत्र यदाऽग्ने यष्टका क्रियते तदा वपापशु- स्थालीपाकावदानानि त्रीण्यप्यग्नये स्वाहेति जुहुयात्। वेफवलस्थालीपाक- मप्यनेनैव जुहुयात्। एवमितरेष्वपि ज्ञेयम्। तत्रानाद्यानां पक्षाणामयुक्तत्व- ज्ञापनार्थमाद्येहशब्दं पठितवान्। मन्त्रास्तावदष्टकार्थत्वेन गृह्यन्ते स्मृति- पारम्पर्येण स्मर्यन्ते। स्मृतिश्च प्रमाणम्। एवमष्टकार्थत्वेन प्रमाणाव- गतेषु मन्त्रेषु तान्परित्यज्याग्न्यादीनां नामधेयेन होम इत्येतदयुक्तमिति हृदि कृत्वा ह शब्दं पठितवान्। तस्मात् सर्वदा मन्त्रैरेव होमः कार्यो न कदाचिदपि नामधेयेनेति सि(म्। एतमेव पक्षमुत्तरत्रापि समर्थयते। वैश्वदेवी ब्रुवत इति बहुदेवत्यां ब्रुवत इति। अयमर्थः-या या मन्त्रेषु लिं नी सा सा सर्वाऽत्र देवता भवति। नैवाग्न्यादय एवैफवैफव देवता- भवतीत्यर्थः। बहुदेवत्यो हि वैश्वदेवशब्दः श्रूयते। यथा 'पशु क्रैतु देवी मनीषेति वैश्वदेवम्' इति। उक्तं च नैरुक्ते-'यत्तु विंफचिद्बहुदैवतं तद्वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते' इति। प्रकारान्तरेणास्माभिर्भाष्यकारमत- मेवानुसृतमिति निरवद्यम्। अपि चैवं व्याख्या। आग्नेयीमेवेफ। तेषामय- मभिप्रायः-'सत्यमष्टकार्थत्वेन मन्त्राणां स्मरणात्सर्वदा मन्त्रैरेव होमः कार्यस्तयाऽप्याग्नेयो भवति। अग्निरेव सर्वेषु मन्त्रेषूपदेश्यो भवतीत्यर्थः। यानि तेषु देवतान्तरवाचीनि पदानि तानि कथंचिद्गौण्या लक्षणया वा योगेन वाऽग्निवाचीनि भवन्ति। यथा प्रयाजानामाग्नेयत्वे समिदादि- शब्दास्तस्यैव कथंचिद्वाचकाः। एवमन्त्रापीति'। एवमुत्तरेष्वपि पक्षेषु योज्यम्। एवं देवताविप्रतिपत्तौ सत्या हशब्दं प्रयुक्तवान्। बहुदेवत्ये तवयमेव पक्षो युक्तः। लक्षणाद्याश्रयणे कारणाभावादिति ज्ञापयितुम्। प्रयाजेषु तु कारणं निरुक्ताद्विज्ञेयम्।।12।।

12. वुफछ आचार्यों का मत हैं कि अष्टका कर्म वेफ देवता विश्वेदवे हैं अथवा अग्नि हैं अथवा वुफछ वेफ अनुसार अष्टका कर्म सूर्य देवता वाला है। वुफछ वेफ अनुसार प्रजापति देवता वाला अथवा रात्रि देवता वाला अथवा नक्षत्र देवता वाला अथवा)तु देवता वाला अथवा पितृ देवता वाला अथवा पशु देवता वाला होता है।

13. पशुकल्पेन पशुं संज्ञप्य प्रोक्षणोपाकरणवर्जं वपामुत्खिद्य जुहुयात्। ''वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहिताः परावेफ मेदसः वुफल्या उपैनान् वन्तु सत्या एता आशिषः सन्तु सर्वाः स्वाहा''

६. 'उदीरतामवर उत्परासः' इत्यष्टाभिर्हुत्वा यावतीभिर्वा कामयीत॥

यावतीभिर्वाधिकाभिः पितृलि काभिः कामयीत तावतीभिर्जुहुयात्। एतदुक्तं भवति। पिण्डपितृयज्ञविधानेनेध्माधानान्तं वुफर्यात्। चरुश्रपणे विशेष उक्तः। ततो ब्राह्मणपच्छौपाद्याच्छादनप्रदानपर्यन्तं पार्वणवत्कृत्वा' ओदनादिभ्यस्त्रिभ्योन्मुत्य घृताक्तं कृत्वानुज्ञाप्याग्नौकरणमन्त्रयोः स्थाने 'उदीरतामवर उत्परासः' इत्यष्टाभिश्चतुर्दशभिर्वा हुत्वा मेक्षण- मनुप्रहृत्य ब्राह्मणेभ्योन्दानादिशेषनिवेदनान्तं पार्वणवत्कृत्वा भुक्तवत्सु पिण्डपितृयज्ञवन्निनयनादिपात्रोत्सर्गान्तं कृत्वा ततः श्रा(शेषं समापये- दिति॥६॥

६. फउदीरतामवर उत्परासःय इस मन्त्र वेफ द्वारा आठ आहुतियाँ प्रदान करवेफ अथवा इच्छानुसार ओर अधिक आहुतियाँ प्रदान करवेफ पितृयज्ञ का सम्पादन करे।

७. अथ श्वोभूतेष्टिकाः पशुना स्थालीपावेफन च॥

अथेत्यानन्तर्यार्थः। श्वोभूतेष्टिम्यामित्यर्थः। या अष्टकाः कार्या इत्युक्तास्ता श्वोभूते पशुना स्थालीपावेफन च कार्या इत्यर्थः। अथाष्टका इत्येतावत्युच्य- मानेथशब्दसम्बन्धात्पूर्वेद्युश्चाष्टकाः कार्या इत्याशङ्का स्यात्। तस्माच्छ्वो- भूतग्रहणम्। पश्व भूतस्य स्थालीपाकस्याविधेयत्वात्स्थालीपाकान्तस- मिदमितिगम्यते। चशब्दाचायं वाशब्दस्य स्थाने द्रष्टव्यः। तेन पशुना वा स्थालीपावेफनवेत्यर्थः। शास्त्रान्तरे च स्पष्टं वचनमस्ति 'पशोरभावे स्थालीपाकः प्रवर्तते' इति॥७॥

७. अगले दिन अर्थात् अष्टमी को यजमान अष्टका कर्म का सम्पादन करे। इस यज्ञ में पशु वेफ द्वारा अथवा स्थाली पाक वेफ द्वारा यज्ञ करे।

८. अप्यनड्वहो यवसमाहरेत्॥

अपिशब्दो विकल्पार्थः। एतदुक्तं भवति। पशुः कार्यस्तस्यासम्भवे स्थाली पाकस्तस्यम्भवेनिड्वहो यवसं प्रयच्छेदिति। शकटवहनसमर्थो बलिवर्दोनिड्वान्॥८॥

८. उसी दिन बैल को जौ प्रदान करें अर्थात् जौ का चारा या जौ भिगो कर पिलाये।

९. अग्निना वा कक्षमुपोषेत्॥

त्रयस्याप्यसम्भवेग्निना वा कक्षं दहेत्॥९॥

९. अथवा अग्नि वेफ द्वारा बैल वेफ कक्ष प्रदेश को ताप पँहुचाये।

१०. एषा मेष्टिवेफति॥

यवसदाने कक्षदहनो चैवं मनसा ध्यायेदित्यर्थः॥१०॥

१०. बैल को जौ खिलाते समय अथवा उसवेफ कक्ष दहन वेफ समय फएषा में अष्टकाय अर्थात् यह मेरा अष्टका कर्म है। ऐसा मन में विचार करे।

११. न त्वेवानष्टकः स्यात्॥

इदमस्य प्रयोजनम्। चत्वारः पक्षा उक्तास्तत्र पूर्वालाभ उत्तरोत्तरः प्रवर्तत इति। एवमप्यष्टकाः कार्याः। न त्वेवानष्टकः। अथवा शास्त्रान्तरे यानि पक्षान्तराण्युक्तानि 'अपि वा अनूचानेभ्य उदवुफम्भमाहरेत्' 'अपि वा श्रा(मन्त्रानधीयीत' इति। तथा वा वुफर्यात्। नत्वेवानष्टकः स्यादित्यर्थः॥११॥

११. चारों पक्षों में किसी भी अष्टमी को अष्टका कर्म का सम्पादन करे ऐसा न हो कि वह अनष्टक अर्थात् बिना अष्टका कर्म सम्पादन वाला बने अर्थात् अवश्य करे।

4. ओदन अर्थात् पकाये गये मिट्टे चावल अथवा भात्त, कृषर अर्थात् तिल मिश्रित ओदन अर्थात् तिल और चावल को पकाकर बनाया गया भात्त कृषर कहलाता है।, पायस दूध में पकायें गए चावल ;खीरद्ध, इन सब की आहुति प्रदान की जाती है।

5. चतुः शरावस्य वा{पूपान्।।

चतुःशरावपरिमितस्य वा धान्यस्य पेषणं कृत्वा{पूपाञ्श्रपयेत्। अपूपाः पिष्टमयाः। बहुसाधनसाध्यत्वादपूपानां स्त्रीकर्तृकत्वाच्च नित्येग्नौ श्रपणं न सम्भवतीति गृहसि(ानामेवोपादनमिच्छन्ति। वाशब्दो विकल्पार्थः। पूर्वाणि वा त्रीणि, इदं वैवंफ द्रव्यमिति। भोजने तु नायं द्रव्यनियमो{पि तु होम एव। 'अष्टका हि चत : स्युः पूर्वाहाणि तथैव च। द्रव्यत्रय- त्वाद्वैकत्वान्न यथासंख्यसम्भवः। प्रत्यष्टवंफ हि पूर्वेद्युस्त्रीणि द्रव्याण्यथापि वा। अपूपद्रव्यमेवंफ वा नान्या व्याख्यानकल्पना'।।5।।

5. अथवा चार श्राव अन्न वेफ भर कर उनको पीस कर उनवेफ अपूप अर्थात् पूड़े बनाकर आहुति प्रदान की जाती है। इस प्रकार, ओदन, कृष्ट, पायस अथवा, अपूप, ये आहुति वेफ द्रव्य हैं।

स्वस्तिशब्दवन्ति स्वस्तयनानि 'आ नो भद्राः। स्वस्ति नो मिमीताम्। पगवतो ये दिधिषन्त आप्यम्' इत्येतानि। अन्नसंस्कारवचनं चरुशेषाद्ब्राह्मणभोजननिवृत्त्यर्थम्। तेनानु प्रवचने चरुशेषादिति सि(म्।।12।।

12. यजमान वुफशाओं वेफ उफपर खड़ा हो कर सूर्य सूक्त एवं स्वास्ति वाचन वेफ मन्त्रों का जाप करवेफ संस्कृत किए गए अन्न में से अन्न पका कर ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा उनसे स्वास्ति वाचन वेफ लिये प्रार्थना करें।

चतुर्थ खण्डम्

1. हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः।।

हेमन्तशिशिरावृतु। अपरपक्षाः कृष्णपक्षाः अष्टका इति कर्मनाम। एतदुक्तं भवति। मार्गशीर्षादिचतुर्षु मासेषु ये कृष्णपक्षाश्चत्वारस्तेषु याश्चत ो(ष्टम्य स्तास्वष्टकाः कार्या इति।)तुद्वयमध्ये यदि मलमास आगच्छति तर्हि तस्मिन्मासे न कर्तव्यमित्येवमर्थ चतुर्ग्रहणम्। अपि च बहुवचनस्य त्रिष्वेव चरितार्थत्वाछास्त्रान्तरदर्शनाच्चोर्ध्वमाग्रहायण्यारित- ो(ष्टका इति ति एवाष्टकाः स्युस्तन्निवृत्त्यर्थं चतुर्ग्रहणम्।।1।।

चतुर्थ खण्ड में अष्टकाकर्म का विधान बतलाया गया है-

1. हेमन्त और शिशिर)तु में आने वाले चार कृष्ण पक्षों की अष्टमी को अष्टका कर्म का सम्पादन करें। अष्टमी तिथि को सम्पन्न किया जाने वेफ कारण इसे अष्टका कर्म कहा जाता है।

2. एकस्यां वा।।

एकस्यामेवाष्टम्यामष्टकाः कार्याश्चतसृषु वेति विकल्पः।।2।।

2. अथवा इन हेमन्त और शिशिर मास वेफ चार कृष्ण पक्षों में से किसी एक अष्टमी को ही अष्टका कर्म सम्पन्न किया जा सकता है।

3. पूर्वेद्युः पितृभ्यो दद्यात्।।

सप्तम्यामित्यर्थः। पितृशब्देनात्र पितृपितामहप्रपितामहा उच्यन्ते। अन्वष्टक्ये 'पितृभ्यो दद्यात्' ;2.5.1द्ध इत्यस्यां चोदनायां पिण्डदानं दृष्टम्। अतश्चोदनासामान्यादिहापि परिगृह्यते। ब्राह्मणभोजनं च कार्यमिति वक्ष्यामः। तेन पूर्वेद्युः पितृभ्यः पिण्डान्भोजनं च दद्यादित्यर्थ। पिण्डदान इतिकर्तव्यतापेक्षास्ति। इह च तस्या अनाम्नानात्प्रकरणान्तरविहितो(पि पिण्डपितृयज्ञकल्पः परिगृह्यते। शक्यते चासौ ग्रहीतुम्। शास्त्रसम्बन्ध- करणात्। अपि चान्वष्टक्ये(पि पिण्डपितृयज्ञकल्पो दृष्टः। स चोदना-सामान्यादिहापि भवति। अत्रैव तर्हि पिण्डपितृयज्ञकल्पेनेति कस्मान्नो- क्तम्। स्त्रीभ्यश्चेत्यत्राधिकारार्थं तत्रोक्तम्, स च कल्पो(-त्राग्नौकरणे पाकयज्ञतन्वस्य बाधको भवति। एककार्यत्वात्। भोजनं तु पार्वणव वति। भोजने(पि तन्वस्यापेक्षितत्वात्। तच्च भोजनं पैतृकमेवेति कृत्वा पार्वणमेव तन्त्रं परिगृह्यते। तस्य पैतृकत्वात्।।3।।

3. अष्टमी से पूर्व अर्थात् सप्तमी तिथि को पितरों को बलि प्रदान करे पितृयज्ञ करे अथवा पिण्ड दान करें एवं ब्राह्मणों को भोजन खिलायें।

तस्य विशेषमाह-

4. ओदनं कृसरं पायसम्।।

पिण्डपितृयज्ञकल्पो भवतीत्युक्तम्। तत्र च नित्येग्नौ चरुश्रपणमस्ति। तस्य स्थान एतानि त्रीणि नित्येग्नौ श्रपयेत्। 'ओदनस्तु प्रसि(स्यात्पायसः पयसा शृतः। ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः। तिलकल्कान्वि- निक्षिप्य शृतो वा कृसरो भवेत्' इति।।4।।

ध्यायात्।।

अर्थध्यानस्य मुख्यत्वेऽपि शब्दध्यानमेव कार्यमित्येवमर्थ मनोग्रहणम्। मन्त्रमुक्त्वा मनसा हेमन्तशब्दं संबु(न्तं ध्यायेन्मन्त्रेण समानाधि- करणत्वाय।।5।।

5. यजमान अग्नि की ओर देखता हुआ "अभ्य नः प्रजापत्येभ्यों....' मन्त्र का जाप करे तथा "शिवों नः सुमना भव" इस मन्त्र से हेमन्त;शरदद्ध)तु का मन में ध्यान करते हुए जाप करे।

6. पश्चादग्नेः स्वस्तरः स्वास्तीर्णस्तस्मिन्नुपविश्य ''स्योना पृथिवीभव'' इति जपित्वा संविशेत्सामात्यः प्राक्शिरा उद ्मुखः।।

यस्मिन्स्तरणे स्वयं शेते स स्वस्तरः। स स्वास्तीर्णो भवति। स्वयमेव तमास्तृणीयादित्यर्थः। तस्मिन्ग्रहणममात्यानामपि तत्रैव प्रापणार्थम्। संविशेदिति। शयीतेत्यर्थः। अमात्याः पुत्रादयो गृह्याः। उद ्मुखवचनं दक्षिणा मुखनिवृत्त्यर्थम्।।6।।

6. अग्नि के पश्चिम भाग में स्वयं भली प्रकार बिछाई गई कुशाओं के ऊपर बैठकर"स्योना पृथिवी भव" मन्त्र का जाप करे तत्पश्चात् कुशाओं पर पूर्व की ओर सिर करके तथा उत्तर की ओर मुंह करके लेट जाये।

7. यथावकाशमितरे।।

अमात्या यथावकाशं प्राक्शिरस उद ्मुखाः संविशेयुरित्यर्थः। उत्तरेण विकल्पार्थमिदम्।।7।।

7. यजमान के सम्बन्धी एवं पुत्रादि भी यथावसर उसका अनुकरण करें।

8. ज्यायाज्यायान्वाऽनन्तरः।।

यो यो यस्माद्यस्माद्वृ(तरः स स गृहिणोऽनन्तरं संविशेत् यथावकाशं वेति विकल्पः।।8।।

8. इस प्रक्रिया में आयु के अनुसार ज्येष्टता का अनुसरण करते हुए इस कर्म का सम्पादन करें।

9. मन्त्रविदो मन्त्राञ्जपेयुः।।

''स्योना पृथिवी'' इत्यारभ्य स्वस्त्यपर्यन्तान्मन्त्रान्मन्त्रविदः सर्वे ब्रू युर्गृह्याः।।9।।

9. मन्त्रों को जानने वाले मन्त्रों का जाप करें। ;स्योनो पृथिवी आदिद्ध

10. संहाय अतो देवा अवन्तु न इति त्रिः।।

संहायेत्युत्थायेत्यर्थः। प्रा ्मुखात् त्रिर्ब्रूयुः।।

10. यजमान तथा अन्य सभी बिछी हुई कुशाओं से उठकर "अतो देवा अवन्तु नः" इस मन्त्र का तीन बार जाप करें।

11. एतां दक्षिणामुखाः प्रत्य ्मुखा उद ्मुखाचतुर्थम्।।

एतामिति वचनं योगविभागार्थम्। इतरथा त्रिदि ्मुखात् त्रिर्ब्रूयुः। चतुर्थं चतुर्वारं त्रिदि ्मुखाः सकृदित्ययमर्थः स्यात्। योगविभागे सति प्रा ्मुखात् त्रिः। त्रिदि ्मुखाः सकृदित्ययमर्थो लभ्यते। त्रिदि ्मुखाश्च यथासंख्येन त्रीन् पादान्ब्रूयुः। चतुर्थवचनं त्रिरधिकारनिवृत्त्यर्थम्। सर्वं प्रायश्चित्तादि समापयेत्। ततो यथाश यं शेरते।।11।।

11. पूर्ववर्णित सूत्र में मन्त्र विधो को मन्त्र का जाप करने का विधान बतलाया गया है। मन्त्रोच्चारण के पश्चात् दक्षिण की ओर, पश्चिम की ओर तथा पूर्व की ओर मुख करके चौथी बार मन्त्र का जाप करें।

12. संहाय सौर्याणि स्वस्त्ययनानि च जपित्वाऽन्नं संस्कृत्य ब्राह्मणान्भोजयित्वा स्वस्त्ययनं वाचयीत।।

संहाय संगत्येत्यर्थः। इदानीं संगतिविधानात्पूर्वं यथाश यं शेरत इति गम्यते। समागम्योदित आदित्ये सौर्याणि स्वस्त्ययनानि च जपेयुः। 'सूर्यो नो दिवः। उदुत्यं जातवेदसम् इति नव। चित्रं देवानाम्। नमो मित्रस्य' इत्येतेषां सौर्यसंज्ञा कृता।

मृगशीर्षेण युक्ता मार्गशीर्षी पौर्णमास्यामिति वर्तते। सामीप्ये चेयं सप्तमी। यथा 'अथाग्नीषोमीयेण चरन्त्युत्तरवेद्याम्' ;श्रौ0 4.11द्ध इति। तेनायमर्थः-

मार्गशीर्ष्याः पौर्णमास्याः समीपे या चतुर्दशी तस्यां प्रत्यवरोहणं नाम कर्म कर्तव्यमिति।।1।।

1. मार्गशीर्ष मास की चतुर्दशी को प्रत्येवरोहण नामक कर्म का सम्पादन करे।

2. पौर्णमास्यां वा।

मार्गशीर्ष्यामिति वर्तते। अत्र त्वधिकरणे सप्तमी। तेन मार्गशीर्ष्या पौर्णमास्यां वेति पूर्वेण सह विकल्पः। भाष्यकारस्त्वित्थं विवृतवान्-मार्ग शीर्षी पौर्णमासी यस्मिन्मासे सोऽयं मार्गशीर्षो मासः। 'सास्मिन् पौर्णमासीति संज्ञायाम्' ;पा0 सू0 4.2.21द्ध इत्यणप्रत्ययः। तस्मिन्मासे भवायां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां वेति विकल्प इत्यर्थः। नन्वेवं सति चतुर्दशीद्वित्वाद् द्विः कर्म प्राप्नोति। न। सकृदेव कार्यम्। 'सकृदेव कृते कृतः शास्त्रार्थः' इति न्यायात्। चतुर्दश्यामित्येकवचनाच्च। पौर्णमास्या सह विकल्पाच्च। नन्वेवमपि शुक्ले कृष्णे वा स्यात्। न पौर्णमासी- साहचर्याच्छुक्ल एवेति।।2।।

2. अथवा मार्गशीर्ष ;माघद्ध मास की पूर्णमासी को प्रत्यवरोहण नामक कर्म करे।

3. निवेशनं पुनर्नवीकृत्य लेपनस्तरणोपस्तरणैरस्तमिते पायसस्य जुहुयुः ''अपश्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च। सप्त च वारूणीरिमाः सर्वाश्च राजबान्धवीः स्वाहा।'' ''न वै श्वेतश्चाभ्यागारेऽहिर्जघान- विंफचन। श्वेताय वैदार्वाय नमः स्वाहा'' इति।।

पुनरिति वचनादाश्वयुजीकर्मण्यपीत्थमेवालङ्करणमिति गम्यते। नवीकृत्य नवमिव कृत्वेत्यर्थः। तच्चैतैरित्याह। लेपनं वुफड ।दीनाम्। स्तरणं च तेषामेवाच्छादनम्। उपस्तरणं भूमेः समीकरणम्। नवीकृत्येति वचनादपा- मार्गादीन्यप्युद्वास्यानि। एतावदहनि कर्तव्यम्। अथास्तमिते पायसस्यैकदेशं जुहुयुर्मन्त्राभ्याम्। ''तत्कालाश्चैव तद्गुणः'' इति न्यायादुपलेपनाद्यस्तमित एव कार्यम्। बहुवचनं पूर्ववत्।।3।।

3. यजमान अपने घर को पुनर्नवीन करवेफ अर्थात, लेपन तथा शोधन एवं अलंकरण करवेफ नयी छत डालकर, पफर्श को समतल करवेफ गोमयादि से लीपकर तथा भूमि पर वुफशाओं का परिस्तरण करवेफ सायंकाल वेफ समय 'पायस' अर्थात् दूध में पकाए गये चावलों की आहुति पअपश्वेतपदा जहि...ग्मन्त्र से तथा पन वै श्वेतश्चाभ्यागा- रेउहिर्जधान.....ग मन्त्र से दो आहुति प्रदान करे।

4. नात्र सौविष्टकृत्।।

सौविष्टकृदिति स्विष्टकृदित्यर्थः सर्वत्रा। अत्र कर्मणि यः स्विष्टकृत्स न कार्य इत्यर्थः। असत्यत्रग्रहणे प्रधानान्तरमुच्यमानत्वात्प्रधानानन्तरं स्वि कृ भवतीत्यर्थः स्यात्। अन्ते च स्यादेव। ननु प्रधानानन्तरं स्विष्टकृतः प्राप्तिरेव नास्ति। तथा हि-'एताभ्यो देवताभ्यो हुत्वा सौविष्टकृतं हुत्वा' ;3.8.10द्ध इत्यत्र सौविष्टकृतं हुत्वेत्येतदपार्थकम्। प्रधानाननतरं स्विष्टकृतः प्रकृतितः प्राप्तत्वात्। तत्पुफर्वज्ज्ञापयति-अन्यत्र यान्यागन्तून्य ।नि विहितानि तत्र तानि कृत्वा पश्चात्स्विष्टकृत्कार्य इति। तर्हि प्रधानानन्तरं स्विष्टकृत्प्रतिषेधाशङ्कानिवृत्त्यर्थमत्रग्रहणं वुफर्वज्ज्ञापयति-अत्र प्रधानानन्तरं कर्मणोऽन्ते वा स्विष्टकृन्न भवतीति। तेनान्यत्र प्रधानानन्तरं कर्मणोऽन्ते वा स्विष्टकृदिति विकल्पः सि(ः। अथवा सौविष्टकृतं हुत्वेत्येतत्क्रमार्थम्। असति तु तस्मिन्प्रधानानन्तरमेव प्राशनादि स्यात्। अत्र च प्रधानानन्तरं स्विष्टकृतः प्रकृतिप्राप्तत्वात्तस्य च प्रतिषेधे सति कर्मण्येव प्रतिषि(ो भवति। कालान्तरे प्राप्त्यभावात्। एवं च सत्यत्र ग्रहणं वुफर्वज्ज्ञापयति-अन्यत्र कर्मान्ते वा स्विष्टकृ व- तीति।।4।।

4. प्रत्यवरोहण कर्म में स्विष्टकृत् आहुति न प्रदान करे।

5. ''अभयं नः प्राजापत्येभ्यो भूयाद्'' इत्यग्निमीक्षमाणो जपति शिवो नः सुमना भव'' इति। हेमन्तं मनसा

तु तत्। अनाहिताग्ने- रेवौपासन इति। तेना((हिताग्नेस्त्रेतायामिति सि(म्। स्विष्टकृतं हुत्वा चरोरेकदेशं गृहीत्वा सव्ये पाणौ कृत्वा दक्षिणेनाभिमृशेत् 'प्रजापतये त्वा' ;श्रौ0 2.9द्ध इति। ततो 'भद्रान्नः श्रेयः' ;श्रौ0 2.9द्ध इति प्राश्य तत आचम्य तत्रैवा((सीनो नाभिमालभेत। 'अमो((सि' ;श्रौ 2.9द्ध इति। पत्नी तु मध्यमं हविः शेषं तूष्णीं प्राश्नाति। होमशेषं समापयेत्। एतत्प्राशनमाग्रयणद्वयेऽपि भवति। सौकर्यार्थमिदमत्र लिखितम्।

इदं चा((ग्रयणं यदा वर्षस्य तृप्तः स्यात्तदा भवति। शरदीत्यर्थः। तथा च वचनं 'शरदि व्रीहिभिर्यजेत' इति। तत्र च पर्वणि भवति। यवाग्रयणं च न कार्यम्। श्यामावैफस्तु प्रस्तरं वुफर्यान्ना((ग्रयणम्। दृष्टत्वात्। अपि वा((त्र समान तन्त्रं वुफर्यात्सौम्यं चरूम्। तस्य च नामधेयेन होमः। आग्रयणस्थालीपाक इत्यत्र च विशेषणसमासः। आग्रयणं चासौ स्थालीपाकश्चेति। तत्र स्थालीपाकग्रहणस्येदं प्रयोजनम्। अनाहिताग्नेः स्थालीपाक एव कार्यः। 'नाग्निहोत्रीं वै नानादयित्वा' ;श्रौ0 2.9द्ध इत्ययं पक्षः कार्य इति।।5।।

5. जिस यजमान ने श्रोत यज्ञ की अग्नि स्थापित नहीं की अर्थात् जो अहिताग्नि नहीं है वह आग्रहण स्थाली पाक की आहुति ग्राहत अग्नि में स्थापित करे।

तृतीयं ख्रण्डम्

1. मार्गशीर्ष्यां प्रत्यवरोहणं चतुर्दश्याम्।।

द्वितीय ख्ण्डम्

1. आश्वयुज्यामाश्वयुजीकर्म।।

अश्वयुग्भ्यां युक्ताऽश्वयुजी तस्याम्। पौर्णमस्यामिति वर्तते। आश्वयुजी कर्मसंज्ञवंफ कर्म वुफर्यात्। अयोगेऽपि पूर्ववत्।।1।।

आश्वयुजी कर्म

1. आश्वयुज मास की अर्थात् आश्विन मास की पूर्णमासी को आश्वयुजी कर्म सम्पादित करे।

2. निवेशनमल ्कृत्य स्नाताः शुचिवाससः पशुपतये स्थालीपावंफ निरूप्य जुहुयुः पशुपतये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहा इति।।

निवेशनं गृहं तत्प्रत्यवरोहणोक्तविधिनाऽलि ्कृत्य सर्वे गृह्याः स्यान्ति। स्नानवचनं विशेषेण स्नानार्थम्। शौचार्थस्य स्मृतिप्राप्तत्वात्। शुचिवासो वचनं शुक्लवस्त्रप्राप्त्यर्थम्। स्थालीपावंफ जुहुयुरित्येतावतैव सि(पशुपतये निरूप्येति वचनं 'पशुपतये त्वा जुष्टं निर्वपामि' इत्येवं निर्वापप्रोक्षणे वुफर्यादित्येवमर्थम्। एवं ब्रुवताऽदिष्टमन्त्रेषु पाक्यज्ञेषु निर्वापप्रोक्षणे तूष्णीं भवत इत्येतज्ज्ञापितं भवति। स्थालीपाकमिति द्वितीयानिर्देशेऽपि सर्वहुतत्वाशङ्का न कार्या। 'अथ दधिसक्तून्जुहोति' ;3.5.5द्ध इत्युक्त्वा दधिसक्तूनाश्येति शेषभावदर्शनात्। स्थालीपाकमिति। स्थालीपाकस्यैक- देशमित्यर्थः। जुहु युरिति बहुवचनं 'गृहिणा होमे क्रियमाणे पुत्रादयो गृह्यास्तमन्वारभेरन्नित्येवमर्थम्'।।2।।

2. आश्वियुज कर्म से पूर्व यजमान अपने घर को अलंकृत करवेफ सभी सदस्यों वेफ साथ स्नान करवेफ, शु(वस्त्र धारण करवेफ अर्थात श्वेत वस्त्र धारण करवेफ अर्थात श्वेत व धारण करवेफ, पशुपति देवता वेफ लिए 'स्थाली पाक' तैयार करवेफ 'पशुपत्ये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहाः' इस मन्त्र वेफ द्वारा स्थाली पाक की आहुति प्रदान करे।

3. पृषातकमञ्जलिना जुहुयादूनं मे पूर्यतां पूर्णं मे मोपसदत्पृषातकाय स्वाहा इति।।

'पयस्याज्ये निषिक्ते तु तत्पयः स्यात्पृषातकम्'। उपस्तरणभिघारणे अर्थादन्य करोति। पृषातवंफ ुवेणावद्यति। धानावदस्य संस्कारः। सर्वत्र द्रवद्द्रव्याणि ुवेणावद्यति। कठिनानि तु हस्तेन। स्वधितिना पशुम्। चरोः पृषातकाच्च स्विष्टकृतेऽवद्येत्। होमशेषं समापयेत्। इतीदमाश्वयुजी- कर्म।।3।।

3. तत्पश्चात् यजमान दोंनों हाथों की अ लि में पृषातक अर्थात् दहि और घी को मिलाकर उसको अ लि में ग्रहण करवेफ अन्य में 'पूर्यताम....स्वाहा...' इस मन्त्र वेफ द्वारा पृषातक की आहुति प्रदान करे।

अथाऽग्रहणमुच्यते-

4. सजूर्तुभिः सजूर्विधाभिः सजूरिन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। सजूर्तुभिः सजुर्विधाभिः सजूर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। सजूर्तुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहेत्याहिताग्नेराग्रयण- स्थालीपाकः।।

अविशेषादाहितग्नेरपि सिध्यति श्रवणकर्मादिवत्। आहिताग्निग्रहणं किमर्थम्? अत्र ब्रूमः। आहिताग्नेराग्रयणान्तस्य विहितत्वादेतदाग्रयणं न प्राप्नोति। तस्मादाहिताग्निग्रहणम्। अयं चाऽपत्काले द्रष्टव्यः। इदं चास्य त्रेतायां भवति नौपासने। तत्तु साधयिष्यामः। शास्त्रान्तरे च दृश्यते-'आग्रयणदेवताभ्यः स्विष्टकृच्चतुर्थीभ्यः' इति। तस्मात् त्रेतायामिति सि(म्। इह तु विधानं पाक्यज्ञधर्मप्राप्त्यर्थम्।।4।।

4. 'सजूतुभि...स्वाहा' इस मन्त्र वेफ द्वारा आग्रहण स्थाली पाक की आहिताग्नि में आहुति प्रदान करे अथवा ;मन्थन से लाकर स्थापित अग्निद्ध

5. अनाहिताग्नेरपि शालाग्नौ।।

अनहिताग्नेरप्याग्रयणं कार्यम्। तच्च शालाग्नौ भवति। शालग्निर्नामौपसनः। तर्हि शालाग्निग्रहणमपार्थकम्। सत्यम्। नियमार्थं

लि ादेवेदमर्थत्वं येषां ते मन्त्रसंज्ञकाः' इति। तस्मादुपांशुर्भवति। यथा{{हुः-'गृह्यकर्मणि सर्वत्र जपानुमन्त्रणाभिमन्त्रणो पस्थानमन्त्रकरणमन्त्रा उपांशु प्रयोक्तव्याः' इति।।10।।

10. तत्पश्चात् भूमि पर प्रदान की गई बलि वेफ चारों ओर प्रदक्षिन क्रम से परिक्रमा करवेफ बलि वेफ पश्चिम भाग में बैठकर 'सर्पोक्शी...' इस मन्त्र का उच्चारण करता है और इस प्रकार वह सभी स्थानों पर विद्यमान सर्पों को बलि देकर उन्हें प्रणाम करता हुआ किसी भी प्रकार की हिंसा न करने की प्रार्थना करता है।

11. ध्रुवामुं ते ध्रुवामुं त इत्यमात्याननुपूर्वम्।।

परिदद्यामिति शेषः। उत्तरत्र दृष्टः परिददामिशब्दो{त्रापि सम्बध्यते। साक्षा क्षत्वादस्य मन्त्रस्य। वीप्साद्विर्वचनं प्रत्यमात्यं परिदानस्याभ्यासः कार्यो न सर्वेषां नामानि निर्दिश्य सकृद्धक्तव्यमित्येवमर्थम्। पूर्वं पुत्रान्निवेदयति। ध्रुव देवदत्तं ते परिददामिति। ततो{प्रित्ता दुहितृः। ध्रुव सावित्रीं ते परिददामीति। ततो भार्याम्। ध्रुव सत्यवतीं ते परिददा- मीति।।11।।

11. 'ध्रुवाभूम.....' इस मन्त्र वेफ द्वारा यजमान सर्पों वेफ अध्यक्ष अपने मनुष्यों को एक-एक करवेफ शेष बचे हुए धान्यों को प्रदान करता है।

12. ध्रुव मां ते परिददामीत्यात्मानमन्ततः।।

परिदद्यादिति शेषः। उपदेशादेवान्तत इति सि{{न्तोवचनं पूर्वेण सम्बन्धार्थम्। तेन पूर्वत्र पदिदामितिशब्दः सि(ः।।12।।

12. घर वेफ सभी सदस्यों को बलि प्रदान करवेफ अर्थात् बलि वेफ अन्य ;स्थाली पाकद्ध को यज्ञ शेष वेफ रूप में सभी को प्रदान करवेफ अन्त में स्वयं स्थाली पाक ग्रहण करता हैं।

13. नैनमन्तरा व्यवेयुरा परिदानात्।।

एनं बलिमात्मानं चान्तरा न व्यवेयुः वेफचिदपि परिदानपर्यन्तम्। आ परिदानादिति वचनात्। पूर्वमन्त्रसाध्याक्रिया परिदानमिति गम्यते। परिददामीति मन्त्रलि ात्।।13।।

13. इस बलि वेफ अन्न को प्रदान करने वेफ समय यज्ञ की बलि एवं अग्नि वेफ बीच में से कोई भी न गुजरे।

14. सर्पदेवजनेभ्यः स्वाहेति सायं प्रातर्बलिं हरेदा प्रतयवरोहणात्।।

कलशात्सक्तूनां दर्वीं पूरयित्वा शुचौ देशे मन्त्रेण बलिं हरेदा प्रत्यवरोहणात्सायं प्रातश्च। आ चतुर्दश्या आ पौर्णमास्या वा यस्मिन्नहनि प्रत्यवरोहणं करोति। मन्त्रोपदेशो नियमार्थः। मन्त्र एव भवति नान्यो विधिरिति। सक्तवस्तावन्न निवर्तन्ते। कलशपूरणस्यादृष्टार्थत्वप्रस ात्। दर्वी च न निवर्तते। दर्वीं च बलिहरणीमित्यत्र 'बलिहरणीम्' ;गृ0 2।1।2द्ध इति विशेषणस्येदमर्थत्वात्। शुचिर्देशश्च न निवर्तते। बलिहरणस्य भूमिसाध्यत्वेन प्रसि(त्वात्। अन्यत्सर्व निवर्तते।।14।।

14. 'सर्प देव जनेभ्यरःस्वाहाः...' इस मन्त्र वेफ द्वारा यजमान सांयकाल एवं प्रातः काल दोनों समय सर्प बलि प्रदान करे जब तक यह श्रवण कर्म पूर्ण न हो जाए।

15. प्रसंख्याय हैवेफ तावतो बलींस्तदहरेवोपहरन्ति।।

श्रावणीं प्रतिपदमारभ्य यस्मिन्नहनि प्रत्यवरोहणं करोति मार्गशीर्षचतुर्दश्यां पौर्णमास्यां वा तस्मादर्वाचीनेष्वहः सु यावन्तः क्षयवृ(भ्यां परिगणनाया प्रातः सायंकालास्तावतो बलींस्तदहरेव दद्यादित्येवेफ मन्यन्ते। हशब्दो- {िभमतत्वज्ञापनार्थः सर्वत्र।।15।।

15. वुफछ आचार्यों वेफ अनुसार यह बलि तब तक प्रदान करे जब तक श्रवणा कर्म का प्रत्यवरोहण न हो जाये अथवा श्रावणी प्रतिपदा को आरम्भ करवेफ चतुर्दशी अथवा पूर्णमासी तक दोनों समय पूर्ण वर्णित विधि वेफ अनुसार बलि प्रदान करे।

पुरोडाश तैयार करता है। अर्थात् वेफवल एक कपाल पर पकाये जाने वाले पुरोडाश को तैयार करता है। तथा 'अग्ने न सुपथा राये....? आदि चार)चाओं से चार आहुति स्थाली पाक से प्रदान करता हैं और आहुति प्रदान करने वेफ समय एक हाथ में एक कपाल पुरोडाश को धारणः किये रहता है। और चारों आहुतियाँ देने वेफ पश्चापत् पअच्युताय भौमाय स्वाहाः य यह मन्त्र बोलता हुआ एक पात्र में पुरोडाश को स्रवता है। या स्थापित करता है।

५. अविप्लुतः स्यादाविः पृष्टो वा।।

व्याख्यातमेतत्।।८।।

५. यज्ञमान पुरोडाश पर घी डालकर उसे मसलता हैं अथवा वह पुरोडाश को इस प्रकार स्थापित करता है जिससे उसका पृष्ट भाग दिखाई दे।

६. मा नो अग्नेऽवसृजो अघायेत्येनमाशयेनाभिजुहोति।।

एनं पुरोडाशम्। एनमिति वचनं स्रण्डितोऽयं हुत इति ज्ञापनार्थम्। यस्मिन्नाज्ये पुरोडाशः शयितस्तदाशयम्। तेनाभिजुहोति। वेणोपरि जुहोतीत्यर्थः।।६।।

६. 'मानो अग्ने.....' इस मन्त्र वेफ द्वारा वह घृत मिश्रित पुरोडाश की आहुति प्रदान करात है।

७. शं नो भवन्तु वाजिनो हवेष्वित्यक्ता धाना अ लिना।।

जुहुयादिति शेषः। हस्तेद्वयसंघातोऽ लि। उपस्तरणावदानप्रत्यभि- धारणान्यर्थादन्यः करोति।।७।।

७. 'सन्नो भवन्तु अजिवनों .....' इस मन्त्र वेफ द्वारा यजमान दोंनों हाथ की अ लि में घृत मिश्रित धानों को ग्रहण करवेफ आहुति प्रदान करता है।

८. अमात्येभ्य इतरा दद्यात्।।

इतरा अनक्ता धानाः पुत्रादिभ्यो दद्यात्। ततो धानाभ्यश्चरोश्च गृहीत्वा स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।।८।।

८. शेष बचे हुए धानों को वह अपने मन्त्रियों अथवा सम्बंधियों को प्रदान करता है।

अथ सर्पबलिरुच्यते-

९. कलशात्सक्तूनां दर्वीं पूरयित्वा प्रागुपनिष्क्रम्य शुचौ देशेऽपोऽ- वनिनीय सर्पदेवजनेभ्यः स्वाहेति हुत्वा नमस्करोति। ये सर्पाः पार्थिवा य आन्तरिक्ष्या ये दिव्या ये दिश्यास्तेभ्य इमं बलिमाहार्षं तेभ्य इमं बलिमुपाकरोमि इति।।

कलशश्च दर्वी च नवे शिक्ये स्थापिते। तत्र कलाशादगृहीत्वा सक्तुभिर्दर्वीं पूरयित्वा तां गृहीत्वा गृहान्निष्क्रम्य समीपे देशे प्राच्यां दिशि शुचौ देशेऽप आसिच्य मन्त्रेण सक्तूञ्जुहोति। प्रक्षिपतीत्यर्थः। संहताभ्यां पाणिभ्यां ततो नमस्करोति मन्त्रेण। हुत्वेति वचनादग्नौ प्राप्ते तन्निवृत्त्यर्थं शुचौ देश इति वचनम्।।९।।

९. यजमान सिक्य पर स्थापित किये एक कलश से अथवा मटवेफ में से शक्तुओं से अर्थात् धान्यों से परिपूर्ण दर्वी ग्रहण करवेफ घर से बाहर आकर पूर्व दिशा में स्वच्छ स्थान पर जल का छिड़काव करवेफ 'सर्प देव जनेभ्यः स्वाहाः' इस मन्त्र वेफ द्वारा उस स्थान पर आहुति ;बलिद्ध प्रदान करवेफ उसे प्रणाम करता है। अथवा नमस्कार करता है। नमस्कार वेफ समय 'ये सर्पा पार्थिवा या अन्तरिक्षा ये दिव्या तेभ्य इमम् बलिम् आहार्षम.....' इस मन्त्र का उच्चारण करता है।

१०. प्रदक्षिणं परीत्य पश्चाद्बलेरुपविश्य सर्पोऽसि सर्पतां सर्पाणामधि- पतिरस्यन्तेन मनुष्यांस्त्रायसेऽपूपेन सर्पान्यज्ञेन देवांस्त्वयि मा सन्तं त्वयि सन्तं सर्पा मा हिंसिषुर्ध्रुवां ते परिददामि इति।।

ब्रूयादिति शेषः। प्रदक्षिणं परीत्य बलिम्। पश्चादस्योपविश्याऽहि मन्त्रम्। बलिग्रहणं पश्चाच्छब्दस्य कालवाचित्वशङ्कानिवृत्त्यर्थम्। कालवाचित्वे सति सर्वाहुत्यनन्तरमेव स्यात्। मन्त्रसंज्ञकोऽयं मन्त्रः। तथा चोक्तम् 'इदं कार्यमनेनेति न क्वचिद्दृश्यते विधिः।

द्वितीयो{ध्यायः

;प्रथमं खण्डमद्ध

1. ॐश्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणाकर्म।।

कर्तव्यमिति शेषः। सर्पबलिश्चेत्यध्याहार्यम्। श्रवणेन् युक्ता श्रावणी। यदा तु पौर्णमासी श्रवणेन न युक्ता तदा{पि कर्तव्यमेव। पौर्णमासीविशेष- लक्षणार्थत्वान्नक्षत्रस्य। श्रवणकर्मेति कर्मनामधेयम्।।1।।

1. प्रथम खण्ड में श्रवणाकर्म का वर्णन प्राप्त होता हैं। इसे सर्प बलि वेफ नाम से भी जाना जाता है। श्रवण मास की पूर्णमासी को यह 'श्रवण कर्म' सर्प बलि वेफ रुप में सम्पन्न किया जाता है।

2. अक्षतसक्तूनां नवं कलशं पूरयित्वा दर्वीं च बलिहरणीं नवेशिक्ये निदधाति।।

अक्षता नाम यवाः। तैः कृताः सक्तवः। दर्वी वैकङ्कती ुगाकृतिः। बलिर्यया दर्व्या ["यते सा बलिहरणी। एतदुभयं नवे शिक्ये निदधाति सर्पबल्यर्थम्।।2।।

2. अक्षत सक्तुवों का अर्थात् छिलकों सहित जौ से परिपूर्ण नये कलश को अर्थात् घड़े को तथा बलि प्रदान करने वेफ लिए दर्वी अर्थात् लकड़ी से बनी हुई चम्मच को यजमान ;नवीन शीक्य में स्थापित करता है। सर्प बलि प्रदान करने वेफ लिएद्ध।

अथश्रवणाकर्मोच्यते-

3. अक्षतधानाः कृत्वा सर्पिषा{र्धा अनक्ति।।

यवैर्धानाः कृत्वा{संस्कृतेन घृतेनानक्ति अर्धा धानाः पात्रान्तरे कृत्वा{न्याश्चार्धा धाना नानक्ति। एतावदि कर्तव्यम्।।3।।

3. जौ वेफ धानों को निकालकर अर्थात् छिलकों से वूफट कर अलग करवेफ तथा उसे सापफ करवेफ उनमें से आधे धान्यों को अलग पात्र में निकालकर आधे धानों पर घी से अभिषिक्त करता है। अर्थात् गर्म किया गया घी धान्यों पर डालता है।

4. अस्तमिते स्थालीपावंफ श्रपयित्वैककपालं च पुरोडाशमग्ने नयसुपथा राये अस्मानिति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा पाणिनैककपालमच्युताय भौमाय स्वाहा इति।।

श्रपयित्वेतिवचनं पुरोडाशस्यौपासने धर्मवच्छ्रपणार्थम्। स्थालीपाकस्य तु तन्त्रप्राप्त्यैवौपासने श्रपणं सिध्यति। नन्वन्यस्यापि सिध्यति। नियमार्थं तर्हि। तेन धानासक्तुलाजादीनां लौकिकाग्नौ सि(ानामेवोपादानं भवति। एतावांस्तु तेषां संस्कारः। आज्यपर्यग्निकरणवेलायां तैः सहा{{ज्यस्य पर्यग्निकरणं भवेत्। यदा{{ज्यस्योत्पवनमात्रमेव क्रियते तदा तेषां त्रिः प्रोक्षणं भवेत्। अवज्वलनं वा दधिवत्। एकस्मिन्कपाले संस्कृतः पुरोडाश एककपालः पुरोडाशः। तमुद्वास्या{{ज्ये निमग्नं वुफर्यात्। प्रकटपृष्टं वा वुफर्यात्। चरूं चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा दक्षिणेन पाणिनैक- कपालं जुहुयान्मन्त्रेण। उपस्तरणाभिघारणे तु सव्येन करोति। दक्षिण- स्यान्यत्र व्यापृतत्वात्। दक्षिणा परिभाषा च द्वयोः प्राप्तयोर्नियामिका न तु प्रापिवेफत्युक्तम्। अस्य सर्वहुतत्वादवदानधर्मो लुप्तः। सर्वहुतत्वं तु वक्ष्यामः।।4।।

4. सायंकाल वेफ समय घी से अभिषिक्त किये गये धानों को पकाकर 'स्थाली पाक' तैयार करता है। और एक कपाल

24. उस समय अतिथि फ्हतो में पाप्मा, पाप्मा में हम:ग् इस मन्त्र का जाप करे।

25. माता रुद्राणां दुहिता वसूनामिति जपित्वोमुत्सृजतेत्युत्‌ क्ष्यन्॥

यद्युत्‌ क्ष्यन् भवति तदैतां जपित्वोमुत्सुजतेति ब्रूयात्॥25॥

25. तत्पश्चात् 'माता रुद्राणां......' इस मन्त्र का जाप करता हुआ यजमान अतिथि को गाय की रस्सी प्रदान करे।

26. नामांसो मधुपर्को भवति भवति॥

मधुपर्का ्गं भोजनममांसं न भवतीत्यर्थः। वुफतः? मांसस्य भोजना त्वेन लोवेफ प्रसि(त्वात्। अनेनाभ्युपायेन भोजनमप्यत्र विहितं भवति। पशु- करणपक्षे तन्मांसेन भोजनम्। उत्सर्जनपक्षे मांसान्तरेण। अध्यायान्तलक्षणार्थं द्विर्वचनं म लार्थं च॥26॥

26. मधुपर्वफ में मांस की विद्यमानता नहीं होनी चाहिए।

इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रे प्रथमोऽध्यायः॥1॥

इत्याश्वलायनगृह्यसूत्रविवरणे नारायणीयायां वृत्तौ प्रथमोऽध्यायः॥1॥

दोह इति तृतीयमुद्ग्राहम्। तृतीयवचनं सर्वप्राशनपक्षे तृतीयेन प्राशनेन यथा सर्व प्राशितं भवति तथा प्राश्नीयादित्येवमर्थम्। पद्यायै विराज इत्यत्र विराज इति षष्टी। वुफतः? पूर्वमन्त्रयोस्तथा दृष्टत्वात्। पद्यायै इत्यपि चतुर्थी षष्ट र्थे। तेन तदसमानाधिकरणे सत्यपि षष्ठ ेव युक्ता कल्पयितुम्।।16।।

16. 'विराजो दोहोऽसि.....' इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ अतिथि पहली बार मधुपर्वफ का भक्षण करे। 'विराजो दोहमशीय' यह मन्त्र बोलकर दूसरी बार मधुपर्वफ का भक्षण करे। और 'मयि दोह पद्यायै विराज' यह मन्त्र बोलकर तीसरी बार मधुपर्वफ का भक्षण करे।

17. न सर्वम्।

प्राश्नीयात्।।17।।

17. 'न यर्व' अतिथि सारा मधुपर्वफ न खाये।

18. न तृप्तिं गच्छेत्।।

तृप्तिं च न गच्छेत्।।18।।

18. अतिथि मुधपर्वफ खाकर तृप्त भी न हो अर्थात् इतना मुधपर्वफ भी खाये कि उसे भूख ही न रहे।

19. ब्राह्मणायोद ्ुच्छिष्टं प्रयच्छेदलाभे्प्सु।।

ब्राह्मणायोच्छिष्टमु(तादवशिष्टमुद ्मुखो मधुपर्क प्रयच्छेत्। ब्राह्मणा- लाभे्प्सु निषिञ्चेत्।।19।।

19. यजमान ब्राह्मण को उत्तराभिमुख बैठाकर मधुपर्वफ प्राशत वेफ लिए प्रदान करे। यदि कोई ब्राह्म विद्यमान न हो तो मधुपर्क को जल में डाल दे।

20. सर्व वा।।

प्राश्नीयात्।।20।।

20. अथवा सारा मधुपर्वफ अतिथि को खिला दे।

21. अथा्चमनीयेनान्वाचामत्यमृतापिधानमसि इति।।

यत्तत्पूर्वमाचनीयं निवेदितं तेनान्वाचामति मन्त्रेण।।21।।

21. आचमनीय पात्र से जल लेकर फअमृतापिघनमसि स्वाहाय् यह मन्त्र बोलकर पुनः आचमन करे।

22. सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतामिति द्वितीयम्।।

द्वितीयग्रहणमाचमनीयप्राप्त्यर्थम्। इतरथा मन्त्रस्योत्तरेण सम्बन्धः स्यात्।।22।।

22. सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीस्यतां स्वाहा' यह मन्त्र बोलकर पुनः आचमन करे।

23. आचान्तोदकाय गां वेदयन्ते।।

आचान्तग्रहणं शौचार्थमाचमनं कृत्वा कर्मा मप्याचमनं वुफर्यादित्यवमर्थम्। उदकवचनमाचमनीयनिवृत्त्यर्थम्। तेना्चमन उदकान्तरं भवति।।23।।

23. आचमन किये जाने वेफ पश्चात् अतिथि को देने वेफ लिये गाय प्रस्तुत करे।

24. हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत इति जपित्वोंवुफरुतेति कारयिष्यन्।।

इमं मन्त्रं जपित्वा ॐ वुफरुतेति ब्रूयात्। यदि कारयिष्यन्मारयिष्यन्भवति। तदा च दाता्लभेत। तत्र देवताः प्रागुक्ताः।।24।।

अथशब्दस्त्वाननतर्यार्थः। अर्घ्यानन्तरमाचमनीयमेवेति। तेन गन्धमाल्यादीनि परिसमाप्ते कर्मणि दातव्यानि। आचामतीत्युदवंफ पिबतीत्यर्थः। अत्र शौचार्थवाचमनं न भवति। वुफतः? स्मृते 'मधुपवेर्फ च सोमे च अप्सु प्राणहुतीषु च। नोच्छिष्टा भवन्ति' इति। उत्तत्र विधानाच्च 'आचान्तोदकाय गाम्'। ;1.24.23द्ध इति। एवमेवेफ। तदयुक्तम्। वुफतः? सोमे{नुच्छिष्ट-विधानाद्यत्रा{{चमनं न प्रतिषेधति तत्र शौचार्थमाचमनं भवतीति गम्यते। आचान्तोदकवचनमत्यार्थम्।।12।।

12. तत्पश्चात् अतिथि आचमनी पात्र से दाये हाथ की हथेली पर जल ग्रहण करवेफ 'अमृतापेपस्तरमसि स्वाहा' इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ आचमन करे।

13. मधुपर्कमार्ा"यमाणमीक्षेत मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष इति।।

मधुपर्कमार्ा"यमाणमानीयमानमीक्षेत मन्त्रेण।।13।।

13. यजमान वेफ द्वारा मधुपर्वफ लाये जाते हुए को देखते हुए 'मित्रस्यत्त्वा चक्षुषा प्रतीक्षते' इस मन्त्र का उच्चारण करे।

14. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे{श्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रति गृ ामीति तदञ्जलिना प्रतिगृह्य वस्ये पाणौ कृत्वा मधुवाता)तायत इति तृचेनावेक्ष्यानामिकया चा ुगुष्ठेन च त्रिः प्रदक्षिणमालोड वसवस्त्वा गायत्रेण च्छन्दसा भक्षयन्त्विति पुरस्तान्निर्मार्ि ।।

अनामिवेफति वेफचिन्मध्यमामाहुः। वुफतः? देशेनैव समाख्या न तु तस्या नाम विद्यते{ ुगुष्ठादिवत्। अन्ये तूपकनिष्ठिकामाहुः। वुफतः? कनिष्ठिकया ह्यसौ व्यपदिश्यते न तु तस्या नामास्तीति। आगमाद्विशेषो ज्ञेयः। तृचेनावेक्ष्य ततः सव्ये पाणौ कृत्वा प्रदक्षिणमालोड वसवस्त्वेति पुरस्तान्निर्मार्ष्टि। अ ुगुलिगतं लेपमपनयतीत्यर्थः।।14।।

14. तत्पश्चात् अतिथि अथवा वर 'देवस्य त्वा सवितुः-' इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ वह मधुपर्वफ को बाये हाथ की अ ली पर ग्रहण करे। तत्पश्चात् पधुपर्वफ को देखता हुआ 'मुधवाता रितायतः--' आदि तीन मन्त्रों का उच्चारण करवेफ अनामिका और अंगुष्ट को मिलाकर तीन बार प्रदक्षिण क्रम से मधुपार्वफ को आलोमित अथवा मिलाकर 'वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयेन्तु' इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ पूर्व दिशा में मधुपर्वफ का छिंटा लगाये अर्थात् वसु देवताओं को मधुपर्वफ स्थापित करे।

15. रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्विति दक्षिणत आदित्यास्त्वा जागतेन च्छन्दसा भक्ष्यन्त्विति पश्चाद् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन च्छन्दसा भक्षयन्त्वित्युत्तरतो भूतेभ्यस्त्वेति मध्यात् त्रिरुदगृह्य।।

मन्त्रेण मध्यात् त्रिरुदगृह्य निमार्ष्टि ऊर्ध्वं त्रिरुत्क्षिपतीत्यर्थः। मन्त्रा- वृत्तिरुक्ता।।15।।

15. तत्पश्चात् मधुपर्वफ को अंगूष्ट और अनामिका की सहायता से थोड़ा सा ग्रहण करवेफ 'रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा' इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ दक्षिण दिशा में छिंटा लगाता है।

तत्पश्चात्द 'आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा भक्षयन्तु' इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ पाश्चिम दिशा में मधुपार्वफ का छिंटा लगाये। तत्पश्चात् विश्वे त्वा देवा आनुष्टुभेन छन्दसा भक्ष्यनतु' इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ उत्तर दिशा में मधुपर्वफ का छिंटा लगाये अन्त में 'भूतेभ्य त्वा गायत्रेण छन्दसा भक्षयन्तु' यह कह कर मुधपर्वफ का छिंटा लगाये।

ततो भूमौ निधाय पात्रम्-

16. विराजो दोहो{सीति प्रथमं प्राश्नीयात् विराजो दोहमशीयेति द्वितीयं मयि दोहः पद्यायै विराज इति तृतीयम्।।

संख्यावचनानि तु सर्वप्राशनपक्षे त्रिभिरेव मन्त्रैर्यथा सर्वं प्राशितं भवति तथा प्राश्नीयादित्येवमर्थानि। एवं भाष्यकारः। अन्ये त्वन्यथा व्याचख्युः-

भूतेभ्यस्त्वेति मध्यात् त्रिरुदगृह्य विराजो दोहो{सीति प्रथममुदग्राहं प्राश्नीयात्। विराजो दोहमशीयेति द्वितीयमुदग्राहम्। मयि

६. सर्पिर्वा मध्वलाभे।।

इदं वचनं मध्वलाभेऽयमेव प्रतिनिधिर्भवति नान्यस्तैलादिरित्येवमर्थम्।।६।।

६. यदि मधु अर्थात शहद उपलब्ध न हो तो उसवेफ स्थान पर दहि में थोड़ा सा धृत मिलाये। इस प्रकार दहि और मधु वेफ मिश्रण से अथवा धृत वेफ मिश्रण से मधुपर्वफ तैयार किया जाता है। जो पूज्य व्यक्ति वेफ आदर वेफ लिये भक्षण वेफ लिए प्रस्तुत किया जाता है। अल्पत्वाद्गातुः कर्म पूर्वमाह-

७. विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुपर्को गौरित्येतेषां त्रिस्त्रिरेवैफवंफ वेदयन्ते।।

विष्टर इत्यासनम्। पाद्यार्थमर्घ्यार्थमाचमनार्थं चोदवंफ तथोक्तम्। एतेषामिति वचनमेतेषामेव त्रिर्निवेदनं यथा स्या ोजनस्य मा भूदिति। भोजनं च देयमिति वक्ष्यामः।)त्विजां मधुपर्कदाने द्वे गती संभवतः-पदार्थानुसमयः काण्डानुसमय इति। तत्र पदार्थानुसमयो नाम सर्वेभ्यो वरणक्रमेण विष्टरं दत्त्वा ततः पाद्यं ततोऽर्घ्यमिति। काण्डानुसमयो नामैकस्यैव विष्टरादि गोनिवेदनान्तं समाप्य ततोऽन्यस्य सर्वं ततोऽन्यस्येति।।७।।

७. यजमान अतिथि को विष्टर अर्थात् बैठने वेफ लिए आसन पाद्य अर्थात् पैर धोने वेफ लिए जल, अर्घ्य, आचमन वेफ लिए जल, मधुपर्वफ तथा गौ इन तीनों को दान में देते हुए तीन बार इनका नाम लेकर स्वीकार करने की प्रार्थना करे। जैस-ओइम् विष्टरों विष्टरों विष्टरः प्रतिगृह्यताम्।

अथ गृहीतुः कर्माऽऽह-

८. अहं वर्ष्म सजातानां विद्युतामिव सूर्यः। इदं तमधितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासतीत्युदगग्रे विष्टर उपविशेदाक्रम्य वा।।

आक्रम्य वा पद्भ्यां विष्टरमाक्रम्य वा। एतयोर्विकल्पः।।८।।

८. विष्टर अर्थात् आसन प्रदान किये जाने पर अतिथि विष्टर वेफ पत्तों वाले अर्थात् अग्रभाग को उत्तर की ओर करवेफ 'अहं वर्ष्म सजाताना' इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ आसन पर बैठे अथवा आसन पर बैठ कर इस मन्त्र का उच्चारण करे।

९. पादौ प्रक्षालापयीत दक्षिणमग्रे ब्राह्मणाय प्रयच्छेत्।।

पश्चात्सव्यम्। वुफतः? अग्रेवचनात्।।९।।

९. अतिथि आसन पर बैठकर पाद्य जल से पैर धोये, यदि अतिथि ब्राह्मण है तो वह पहले दाहिना पैर धोये और बाद में बाया।

१०. सव्यं शूद्राय।।

अग्रे प्रयच्छेत्। पश्चाद्दक्षिणम्। क्षत्रियवैश्यौ यदा प्रक्षालयितारौ तदा सव्यं वा पूर्व दक्षिणं वा। नास्ति तदा नियमः।।१०।।

१०. यदि अतिथि शु(वर्ण से है तो वह पहले बांया पिफर दांया पांव धोये। क्षत्रिय तथा वैश्य वेफ लिए कोई नियम नहीं है वे पहले दाया या बांया धे सकते हैं।

११. प्रक्षालितपादोऽर्घ्यमञ्जलिना प्रतिगृह्य।।

प्रक्षालितपादग्रहणमानन्तर्यार्थम्। प्रक्षालनान्तरमर्घ्यमेव गृ ीयादिति। गन्धमाल्यादिसंयुक्तमुदकमर्घ्यमित्युच्युते लोवेफ।।११।।

११. पैर धोये जाने पर अतिथि अर्घ्य जल को दांये हाथ की अ लि में ग्रहण करवेफ सिर पर अभिषेक करे।

१२. अथाऽऽचमनीयनाऽऽचामति-अमृतोपस्तरणमसि इति।।

'समाप्तेऽपि क्रतौ होमपर्यन्तं नियमा भवन्ति' इति ज्ञापयति। आज्याहुतिवचनं तन्त्रनिवृत्त्यर्थमिष्यते न तु परिस्तरणविकल्पार्थम्।।22।।

22. ''अग्ने ब्रह्माण वावृधस्व'' इस मन्त्र से दक्षिणाग्नि में आज्य की आहुति प्रदान करके)त्विज् यथेच्छ व्यवहार करे।

23. एवमनाहिताग्निर्गृह्य इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इत्येतयर्चा।।

एतयेति वचनमेतया जुहुयादेवेत्येवमर्थम्। तेनात्रापि तन्त्रं न भवति।)चेति वचनमकृतविवाहोऽप्यार्त्विज्यं कृतवानेतया लौकिकाग्नौ जुहुयादित्येवमर्थम्। मधुपर्कप्रस ादत्र)त्विग्वरणमाम्नातम्।।23।।

23. इसी प्रकार अनाहिताग्नि यजमान, जिसने श्रौताग्नि की स्थापना नहीं की हैं ऐसा यजमान गृह्याग्नि में ही ''इमामग्ने शरणिं मीमृषो न'' इस)चा से आहुति प्रदान करे।

चतुर्विंशं खण्डम्

1.)त्विजो वृत्वा मधुपर्कमाहरेत्।।

दद्यादित्यर्थः।।1।।

1. यजमान अथवा गृहस्थ ')त्विज्-वरण' अर्थात् यज्ञ के लिए पुरोहितो का चयन करके उनको मधुपर्क प्रदान करे अर्थात्)त्विजों का मधु पर्क से स्वागत करे।

2. स्नाकायोपस्थिताय।।

उपस्थितायेति। कृतसमावर्तनाय। तस्मिन्नहनि गृहानभ्यागताय विवाहार्थिने च।।2।।

2. दहि, मधु और घृत विशेष अनुपात में मिलाकर तैयार किया जाता हैं जो विशिष्ट अतिथि को स्त्कार के लिए प्रदान किया जाता हैं यह मधुपार्क किस-किस को प्रदान किया जाना चाहिए यह दूसरे, तीसरे, चौथे में वर्णित है। (यह)त्विजों के अतिरिक्त मधुपर्क स्नातक को भी प्रदान किया जाता है। जब वह गुरुकुल से अपने घर आता है।

3. राज्ञे च।।

उपस्थिताय ।।3।।

3. राजा को भी मधुपर्क विशेष सत्कार के रूप में नगर, ग्राम अथवा यजमान के घर आने पर दिया जाता है।

4. आचार्यश्वशुरपितृव्यमातुलानां च।।

आचार्यादीनां पूर्वयोरसमासेन निर्देशस्त्वतुल्यवज्ञापनार्थः। तेन स्नातकाय तदहरेव देयः। 'यत्रैनं पूजयिष्यन्तो भवन्ति' (3.9.3) इति वचनात्।

विवाहार्थिने च। राज्ञे त्वहरहरभ्यागताय। आचार्यादीनां प्रतिवत्सरोषिता गतानां शास्त्रान्तरदर्शनाद्विशेषो लब्धः।।4।।

4. इसी प्रकार आचार्य के शिष्य के घर में आने पर, ससुर के आगमन पर चाचा अथवा ताउफ के आगमन पर भी सबका मधु पर्क प्रदान करके स्वागत किया जाता है। (पाँचवें और छटे सूत्र में मधुपर्क बनाने की विधि बताई गई है।)

अप्रसिद्धत्वान्मधुपर्कस्वरूपमाह-

5. दधनि मध्वानीय।।

आनयतिरत्र सेचनकर्मा। आसिच्येत्यर्थः।।5।।

5. यजमान मधुपर्क तैयार करने के लिए दहि में शहद मिलाये

13. न्यस्मार्त्विज्यमकार्यम्।।

)त्विग्भिर्विवादेन त्यक्तमार्त्विज्यमकार्यम्।।13।।

13. यदि कोई)त्विज् यज्ञ करवाने वेफ लिए मना कर देता है तो दूसरा)त्विज उसे स्वीकार न करे।

14. अहीनस्य नीचदक्षिणस्य।।

अल्पदक्षिणस्याहीनस्या(र्त्विज्यमकार्यम्। अतो ज्ञायत एकाहस्याल्प- दक्षिणस्यापि कार्यमिति। विज्ञायते च तस्मादाहुर्दातव्यैव यज्ञे दक्षिणा भवत्यप्यल्पिका(पीति।।14।।

14. कम दक्षिणा वेफ लिए वह 'अहीन' यज्ञ वेफ)त्विज कर्म को स्वीकार न करे।

15. व्याधितस्या((तुरस्य।।

व्याधितो ज्वरादिगृहीतः। आतुरस्तल्पगतः।।15।।

15. बीमार तथा आतुर व्यक्ति वेफ आर्त्विज्य को स्वीकार न करे

16. यक्ष्मगृहीतस्य।।

यक्ष्मगृहीतः क्षयव्याधिगृहीतः।।16।।

16. क्षयरोग ;यक्ष्मा रोगद्ध से पीड़ित व्यक्ति का)त्विज कर्म न स्वीकारें।

17. अनुदेश्यभिशस्तस्य।।

सदेशिना(भिशस्तस्येत्येवमेवेफ। अन्ये तु श्रा(प्रतिषि(स्येत्याहुः।।17।।

17. अपने गांव में अपने लोगों वेफ द्वारा तिरस्कृत व्यक्ति वेफ आर्त्विज्य को स्वीकार न करे।

18. क्षिप्तयोनेरिति चैतेषाम्।।

क्षिप्तयोनिर्नाम यस्य माता स्वभर्तरि नावतिष्ठते। अकार्यमिति सर्वत्र सम्बन्धीनीयम्। इति चैतेषामिति वचनमन्येषामप्येवंप्रकाराणां न कार्यमित्येवमर्थम्।18।।

18. जिसकी माता पतिव्रता न हो उसका भी)त्विज न बनें।

19. सोमप्रवावंफ परिपृच्छेत्को यज्ञः क)त्विजः का दक्षिण इति।।

यः सोमं प्रथमं निवेदयतीदं त्वया(स्मिन्कार्यमिति स सोमप्रवाकस्तमेवं पृच्छेत्।।19।।

19. सोमयज्ञ वेफ लिए पहली बार)त्विग्वरण करने वाले यजमान से यह पूछे फ्को यज्ञः, क)त्विजः का दक्षिणाय

20. कल्याणैः सह संप्रयोगः।।

कल्याणे यज्ञे कार्यम्। कल्याणै)त्विग्भिः सह कार्यम्। दक्षिण अपि कल्याण्यो यदि स्युस्तथा सति कार्यम्। नान्यथा।।20।।

20. यदि सभी स्थितियाँ कल्याणकारी अनुवूफल हो तो तभी)त्विज कर्म स्वीकार करे अन्यथा नहीं।

21. न मांसमश्नीयुर्न स्त्रियमुपेयुरा क्रतोरपवर्गात्।।

क्रत्वादिप्रभृत्या अपवर्गादेते नियमा भवन्ति। वरणाप्रभृतीति कल्प्यमाने यदि मध्यमोपसदि वरणं भवति यदा प्रागनियमः प्रसज्येत। तस्मा- त्क्रत्वादिप्रभृतीति युक्तम्। मध्यमोपसदि च शास्त्रान्तरे वरणं दृष्टम्।।21।।

21. यज्ञ की समाप्ति तक)त्विग मांस भक्षण एवं स्त्री-संसर्ग न करे।

22. एतेनाग्ने ब्रह्मण वावृधस्वेति दक्षिणाग्नावाज्याहुतिं हुत्वा यथार्थं प्रव्रजेत्।।

क्रत्वन्तं स्वस्य दक्षिणाग्नौ 'एतेनाग्ने' इत्येतया((ज्याहुति जुहोति। नैमित्तिकत्वाच्छास्त्रान्तरदर्शनान्मन्त्रलि ाच्च। चकृमति हि भूतप्रत्ययः। तेन क्रत्वन्त इति सि(म्। यथार्थ प्रव्रजेदिति। यथार्थमाचरेत्। अनियमो भवतीत्यर्थः। हुत्वा(नियमो भवतीति ब्रुवन्

यज्ञ कर्म का उपद्रष्टा होता है। यह बात दोनों)चाओं में भी कही गई है।

6. होतारमेव प्रथमं वृणीते।।

एवकारोऽवधरणार्थः। होतारमेव न ब्राह्मणमिति। एवं चेत्पूर्वेण विरोधः। न। यदा चतुर्णां वरणं तदा ब्रह्मणः प्रथमं वरणम्। यदा सर्वेषां तदा होतुः प्रथम वरणमिति।।6।।

6. यदि सभी सत्रह ;17द्ध पुरोहितों का चयन ;वरणद्ध करता है। तो सर्वप्रथम 'होता')त्विज का वरण करे और यदि चार)त्विजों का ही वरण करना हो तो सर्वप्रथम 'ब्रह्मा' का वरण करे।

7. अग्निर्मे होता स मे होता होतारं त्वाऽमुं वृण इति होतारम्।।

अनेन होतारं वृणीते। अमुमित्यस्य स्थाने होतुर्नाम वाच्यम्। पुनर्होतृ ग्रहणं होतृवरण आम्नातो मन्त्र उत्तरत्रानुवर्तत इति ज्ञापनार्थम्।।7।।

7. होता-वरण वेफ समय फअग्निर्मे होता.....होतारम्य् इस मन्त्र का उच्चारण करे।

8. चन्द्रमा मे ब्रह्मा स मे ब्रह्मा ब्रह्मणं त्वाऽमुं वृण इति ब्रह्माणम्।।

कृत्स्नपाटोऽनुवृत्तिमार्गप्रदर्शनार्थः।।8।।

8. फ्चन्द्रमा में ब्रह्मा.....वृणय् इस मन्त्र से ब्रह्मा का वरण करे।

9. आदित्यो मेऽध्वर्युरित्यध्वर्युम्। पर्जन्यो म उद्गातेत्युद्गातारम्। आपो मे होत्राशंसिन इति होत्रकान्। रश्मयो मे चमसाध्वर्यव इति चमसाध्वर्यून् आकाशो मे सदस्य इति सदस्यत्। स वृतो जपेत्। महन्मेऽवोचो भर्गो मेऽवोचो भगो मेऽवोचो यशो मेऽवोचः स्तोम मेऽवोचः क्लृप्ति मेऽवोचस्तृप्ति मेऽवोचो भुक्ति मेऽवोचः सर्व मेऽवोच इति।।

सग्रहणं कथम्? वरणानन्तरमेव जपः स्यात्सर्वेषां वरणे कृते मा भूदिति। वृतग्रहणं ये ये वृतास्ते ते जपेयुरित्येवमर्थम्।।9।।

9. फआदित्यों में अध्वर्युय् इस मन्त्र से अध्वर्यु का, फ्पर्जन्यो में उद्गाता....य् से उद्गाता का 'आर्यो में....' से होता का फ्रश्मयों मेंय् से चमनसाध्वर्यव का 'आकाशो मे' फ्से सदस्य का वरण करे। वरण किए जाने पर)त्विज् फ्महन्मे वाचों ....में वोचय् उस मन्त्र का जाप करे।

10. जपित्वाऽग्निष्टे होता स ते होता होताऽहं ते मानुष इति होता प्रतिजानीते।।

जपित्वेति वचनं 'तन्मामवतु तन्मा विशतु' इत्येतमपि जपं जपित्वेत्येव- मर्थम्। इहैव तर्हि कस्मान्न पठितः? अनित्यत्वात्। अनित्यत्वं तु वक्ष्यामः।।10।।

10. यजमान फअनिष्टे होता.....प्रतिजानीते इस मन्त्र का जाप करे

11. चन्द्रमास्ते ब्रह्मा स ते ब्रह्मा।।

पुनर्मन्त्रपाठः प्रतिवचनस्यानुवृत्तिमार्गप्रदर्शनार्थः।।11।।

11. फ्चन्द्रमास्ते ब्रह्मा स ते ब्रह्माय् इस मन्त्र का जाप करे।

12. ब्रह्मै वमितरे यथादेशं तन्मामवतु तन्मा विशतु तन्मा जिन्वतु तेन भुक्षिषीयेति च याजयिष्यन।।

जपतीति शेषः। यदाऽग्न्याधेये चतुर्णां वरणं भवति तदा याजयितारस्ते न भवन्ति। यत्तु सोमा वरणं भवति तत्र याजयितारो भवन्ति। तेन सोमा वरण एवायं जपो नाग्न्याधेये। तेनायमनित्यः।।12।।

12. इसी प्रकार वह अन्य)त्विजों का वरण करे। यदि पुरोहित किसी दूसरे व्यक्ति वेफ लिए यज्ञ करवा रहा है। तो वह फ्तन्मामवतु......याजयिष्यन्य्इस मन्त्र को भी जोड़ दे अर्थात् उसका भी जाप करे।

याज्यलक्षणमाह-

ही उन्हे ग्रहण किया जाना चाहिए

26. तत्सवितुर्वृणीमहइति सावित्रीम्।।

पूर्वस्याः सावित्र्याः स्थान एतां सावित्रीं प्रयुञ्जीत। प्रायश्चित्तत्वेन पुनरुपनयनप्राप्तावेवं वुफर्यात्।।26।।

26. 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस मन्त्र को सावित्री मन्त्र वेफ अन्तर्गत उच्चारण करे।

त्रयोविंश ख्रण्डम्

1.)त्विजो वृणीतेऽन्यूनानतिरिक्ता ान्ये मातृतः पितृतश्चेति यथोक्तं पुरस्तात्।।

प्रमाणातः परिमाणतश्चान्यूना ानतिरिक्ता ांश्च)त्विजः संभजते। 'ये मातृतः पितृतश्च' ;1.5.1द्ध इत्युक्तलक्षणयुक्ताश्च ते भवेयुः। तत्र प्रमाणतो नातिदीर्घा नाति"स्वाः। परिमाणतश्चतुर ्गुलयः षड ्गुलयो वा न भवन्ति।।1।।

1. जैसा कि पहले कहा गया है। ;1. 5. 1द्ध यजमान)त्विजों का वरण करता है। ')त्विज् वरण' में यह ध्यान रखे कि)त्विज् न्यूनाधिक अ ों वाले न हों तथा मातृवुफल तथा पितृवुफल दोनों ओर से श्रेष्ठ वुफल वाले हों।

2. यून)त्विजो वृणीत इत्येवेफ।।

अन्ये कर्मसमर्थानित्याहुः। पुनर्)त्विग्ग्रहणं वरणसामान्यदनृत्विजामपि चमसाध्वर्युप्रभृतीनामेतद्गुणप्राप्तौ तन्निवृत्त्यर्थम्।।2।।

2. वुफछ आचार्यों का मत है कि जवान)त्विजों का वरण करे।

3. ब्रह्माणमेव प्रथमं वृणीतेऽथ होतारमथाध्वर्युमथोद्गातारम।।

एवकारो नियमार्थः। कथम्? ब्रह्मण एव प्रथमं वरणं स्यादिति। एवं नियमं वुफर्वता होत्रादीनामनियतः क्रमो भवतीत्येतत्साधितम्।।3।।

3. सर्वप्रथम ब्रह्मा का वरण करे पिफर होता, पिफर अध्वर्यु और उद्गाता का वरण करे।

4. सर्वान्वा येऽहीनैकाहैर्याजयन्ति।।

अहीनैकाहैर्याजयन्तीति वचनं शमितृनिवृत्त्यर्थम्। कथं वा प्राप्नुयात्? सामान्यवरणप्रस ात्। 'आपो मे होत्राशंसिन्य इति होत्रकान्' ;1.23.1द्ध इत्यत्र होत्रकशब्दो मुख्यवर्जितेषु वर्तते। होत्रका उपहव्यमितितरान् ;श्रौ0 5.6द्ध इत्यत्र मुख्यवर्जितेषु होत्रकशब्दस्य दर्शनात्। ततश्च यथा प्रतिप्रतिस्थात्रादिषु वर्तत एवं शमित्रादिष्वपि वर्तेत।।4।।

4. अथवा उन सभी का वरण करे जो 'अहीन' और 'एकाह' यज्ञ करवाने वाले हों अर्थात् एकाह और अहीन यज्ञों वेफ जानकार हों।

5. सदस्यं सप्तदशं कौषीतकिनः समामनन्ति स कर्मणामुपद्रष्टा भवतीति तदुक्तमृग्भ्यां यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्त इति।।

सदसि भवः सदस्यः। सप्तदशग्रहणमृत्विक् सधर्मा भवतीति ज्ञापनार्थम्। तेनोपस्थानप्रसर्पणादि सामान्यविहितं सि(म्। अथवा नियमार्थम्। कथम्? एक एव सदस्यः स्यादिति। शास्त्रान्तरेऽनेवेफ सदस्या दृष्टास्तन्निवृत्त्यर्थम्। स च कर्मणामुपद्रष्टा भवतीत्येव कौषीतकिन आचार्या मन्यन्ते।)ग्भ्यां चायमर्थ उक्तः।।5।।

5. 'कौषीतकिन्' शाखा वाले आचार्यो वेफ अनुसार 'सदस्य' नामक)त्विज सत्रहवां पुरोहित)त्विज्' होता है। क्योंकि वह

22. अथोपेतपूर्वस्य।।

अनन्तरमुपेतपूर्वस्य विशेषं वक्ष्यामः।।22।।

22. अब जो प्रारब्ध है। उसी का वर्णन करेंगे।

23. कृताकृतं वेफशवपनं मेधाजननं च।।

कृताकृतमिति वर्तते।।23।।

23. वेफशवपन और मेधाजनन् ये दोनों कर्म वैकल्पिक है। इच्छानुसार आचार्य एवं ब्रह्मचारी इनका पालन एवं सम्पादन कर सकते है।

24. अनिरूक्तं परिदानम्।।

परिदानमनिरूक्तमिति न भवतीत्यर्थः।।24।।

24. परिदान कर्म का वर्णन यहाँ नहीं किया गया है।

25. कालश्च।।

उदगयनादिरनिरूक्तः।।25।।

25. इसी प्रकार सही काल निर्धारित का भी वर्णन नहीं किया गया है। अतः परम्परा एवं पूर्ववर्णित नियमों वेफ अनुसार

15. चौथी आहुति स्विष्टकृत अग्नि को प्रदान करता है।

16. ब्राह्मणान्भोजयित्वा वेदसमाप्तिं वाचयीत।।

संस्थाजपान्तं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा वेदसमाप्तिं भवन्तो ब्रूवन्त्विति ब्रूयात। ते च वेदसमाप्तिरस्त्विति ब्रूयुः।।16।।

16. ब्राह्मणों को भोजन प्रदान करवेफ उनसे वेद समाप्ति वेफ वचन बुलवाता है। अर्थात् समावर्तन संस्कार से पूर्व वेद अध्ययन की समाप्ति वेफ लिए आचार्य आदि ब्राह्मणों से यह वाक्य बुलवाता है। फ्ते वेदसमाप्ति अस्तिय् अर्थात तुम्हारी वेद-विधा पूर्ण हो चुकी है। इस प्रकार वह समावर्तन संस्कार वेफ द्वारा स्नातक बनने का अधिकारी बन जाता है।

17. अत ऊर्ध्वमक्षारालवणाशी ब्रह्मचार्यःशायी त्रिरात्रं द्वादशरात्रं संवत्सरं वा।।

अत्र ऊर्ध्वमिति कस्मात्? पूर्वेण सम्बन्धकरणार्थम्। प्रयोजनमुपरिष्टा द्वक्ष्यामः। ब्रह्मचारिवचनमाचार्यनिवृत्त्यर्थम्।।17।।

17. तत्प ात वह तीन रात्रि पर्यन्त अथवा बारह रात्रि पर्यन्त अथवा एक वर्ष पर्यन्त बिना क्षार और लवण का भोजन ग्रहण करता है। ब्रह्मचर्य का पालन करता है और भूमि पर शयन करता है।

18. चरितव्रताय मेधाजननं करोति।।

चरितव्रताय वचनं मेधाजननेन व्रतस्य सम्बन्धार्थम्। तेन यत्रोपनयने मेधाजननमस्ति तत्रैव व्रतचर्या। यत्र व्रतचर्या तत्रैवानुप्रवचनीयः। उपनीतपूर्वस्य मेधाजननाभावे त्रितयमपि निवर्तते।।18।।

18. व्रत की समाप्ति पर आचार्य मेधाजनन् करता है।

19. अनिन्दितायां दिश्येकमूलं पलाशं वुफशस्तम्बं वा पलाशापचारे प्रदक्षिणमुदवुफम्भेन त्रिः परिषिञ्चन्तं वाचयति। ''सुश्रवः सुश्रवा असि यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रवः सौश्रवसं वुफरु। यथा त्वं देवानां यज्ञस्य निधिपोऽस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्'' इति।।

इदं मेधाजननम्। ति ो निन्दिता दिशः। दक्षिणा प्राग्दक्षिणा प्रत्यग्दक्षिणेति। अन्या सर्वाः अनिन्दिताः। तस्यां दिश्येकमूलं पलाशं वुफशस्तम्बं वा पलाशाभावे। प्रदक्षिणमुदवुफम्भेन त्रिः परिषिञ्चन्तं ब्रह्मचारिणं वाचयति 'सुश्रवः' इति मन्त्रम्। एकमूलशाग्रमित्यर्थः। पुनः पलाशग्रहणमनेक मूलस्याप्यभावे वुफशस्तम्बं परिषिञ्चेदिति।।19।।

19. मेधाजनन वेफ लिए आचार्य आनन्दित दिशा अथार्त् उत्तर दिशा में एक जड़ वाले पलाश वृक्ष वेफ चारों ओर अथवा पलाश वेफ अभाव में वुफशाओं वेफ समूह वेफ चारों ओर बाए से दाएं मंगल कलश से तीन बार जल का छिड़काव करता है और उस समय फ्सुश्रवः सुश्रवाः ... भूयासंय् इस मन्त्र का उच्चारण करता है इस प्रकार वह बालक को वेद विधा से परिपूर्ण और इस वेद विधा को सुरक्षित बनाने वाला तथा मेधावी बनाता है।

20. एतेन वापनादि परिदानान्तं व्रतादेशनं व्याख्यातम्।।

व्रतादेशनं यदस्माभिर्व्याख्यातं 'संवत्सरावसं चारयित्वा व्रतमनयुज्य' ;श्रौ0 8.14द्ध इति 'संवत्सरमादिशेत्' ;1.18.9द्ध इति च। तत्राप्येतेन प्रकारेण वापनादि परिदानान्तं कार्यमित्यर्थः। वापनादिग्रहणमलङ्कार- निवृत्त्यर्थम्। 'काय त्वा परिददामि' इत्येतत्परिदानम्। परिदानान्तवचन- मुपरितनतन्त्रनिवृत्त्यर्थम्।।20।।

20. इसी वर्णन से व्रतोपायन पूर्व वर्णित संबंधित कर्मों को भी प्रसंग वश उसी प्रकार ग्रहण करता है।

21. इत्यनुपेतपूर्वस्य।।

इति एतदुपनयनविधानमनुपेत पूर्वस्य। उत्तरविवक्षयेदमारभ्यते।।21।।

21. इसी वर्णन उपनयन विधान से पूर्व एवं उत्तर विभाग की विवक्षा में ग्रहण किया जाता है।

8. ''भवान् भिक्षां ददातु अथवा भवती भिक्षां ददातु'' इस प्रकार का उच्चारण करता हुआ वह भिक्षा मांगता है।

9. तदाचार्याय वेदयीत ति ेदहःशेषम्।।

तल्लब्धमाचार्याय निवेद्य तस्मिन्नहनि यावच्छि ं तावन्तं कालं ति ेत्। नोपविशेत्।।9।।

9. प्राप्त की गई भिक्षा को अर्थात भिक्षा के पदार्थ को अथवा धन को आचार्य को समर्पित करके वह शेष बचे हुए समय में बैठता नहीं अर्थात् खड़ा ही रहता है।

10. अस्तमिते ब्रह्मौदनमनुप्रवचनीयं श्रपयित्वाऽऽचार्याय वेदयीत।।

ब्रह्मण्य ओदनो ब्रह्मौदनः। ब्रह्मशब्दो ब्राह्मणवाचकः। तेन ब्राह्मणभोजनं विधास्यमानमत एव चरोर्भवति। अनुप्रवचननिमित्तमनुप्रवचनीयम्। पाकयज्ञविधानेन ब्रह्मचार्यनुप्रवचनीयं श्रपयित्वाऽऽचार्याय वदेयीत 'शृतः स्थालीपाकः' इति।।10।।

10. साँयकाल के समय सूर्य के अस्त होने पर भिक्षा में प्राप्त हुए चावलों को पकाकर वह ब्रह्मौदन तैयार करता है और उसे आचार्य को समर्पित करता है।

11. आचार्यः समन्वारब्धे जुहुयात् सदसस्पतिम ुतम् इति।।

ततः समन्वारब्धे ब्रह्मचारिणीध्माधानाद्याराज्यन्तं कृत्वाऽग्निया जुहुयात्।।11।।

11. आचार्य सदसस्पतिम्.... इस मंत्र का उच्चारण करता हुआ ब्रह्मौदन की आहुति प्रदान करता है। इससे पूर्व ब्रह्मचारी समिदाधान के द्वारा अग्नि प्रवृत करके आज्य आहुति प्रदान कर देता है।

12. सावित्र्या द्वितीयम्।।

सावित्री 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' इत्येषा प्रसि(ा। द्वितीयग्रहणामुत्तरार्थम्।।12।।

12. ब्रह्मौदन की दूसरी आहुति आचार्य ''तत्सवितुर्वरेण्यं ....'' इस गायत्री मंत्र के द्वारा प्रदान करता है।

13. यद्यत्किंचात ऊर्ध्वमनूक्तं स्यात।।

अत्र सावित्र्यनूक्तेति कृत्वा सावित्र्या द्वितीयं जुहोति। अत ऊर्ध्वमपि महानाम्न्यादिव्रतेषु यद्यदनूक्तं तेन तेन द्वितीयं जुहोति एतदुक्तं भवति। महानाम्न्यादिव्रतेषु श्रवणान्तेऽनुप्रवचनीयहोमः कार्यः। तत्र सावित्र्याः स्थाने 'महानाम्नीभ्यः स्वाहा' 'महाव्रताय स्वाहा' 'उपनिषदे स्वाहा' इत्येवं द्वितीयं जुहोति। अन्यत्समानमिति। द्वितीयग्रहणं महानाम्न्यादि- नामधेयेन होमार्थम्। इतरथा, मन्त्रेण होमे क्रियमाणे प्रतिमन्त्रं स्वाहाकारः स्यात्। स च प्रदानार्थ इति कृत्वाऽनेका आहुतयः स्यु। ततश्चोत्तरासां द्वितीयत्वं न स्यात्। तस्माद्द्वितीयग्रहणम्।।13।।

13. इसके प ात् अन्य मंत्रो से ब्रह्मौदन की आहुति प्रदान की जाती है।

14. षिभ्यस्तृतीयम्।।

तृतीयवचनमृषिभ्य इत्यस्य विधायकत्वं निवर्त्य मन्त्रत्वज्ञापनार्थम्। तेन षिभ्यः स्वाहेति जुहोति।।14।।

14. '')षिभ्य--'' इस मंत्र के द्वारा वह तीसरी आहुति प्रदान करता है।

15. सौविष्टकृतं चतुर्थम्।।

संख्यावचनं नियमार्थम्। चतुर्थमेव न ष मिति। तेनात्राऽऽज्यभागौ न भवतः।।15।।

३. द्वादश वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यम्॥

वेदस्य ब्रह्मचर्यं वेदब्रह्मचर्यम्। वेदग्रहणं कथम्? वेदमात्रस्यायं कालनियमः स्यादिति। 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। तेन महानाम्न्यादीनां व्रतानामूर्ध्वं द्वादशवर्षेभ्यह्यः संवत्सराः स्युः। एवं च कृत्वोपनयनप्रभृति षोडशे वर्षे गोदानं सि(म्। वेदग्रहणादयमर्थो लब्ध एवमेवेफ। अन्ये तु जन्मप्रभृति षोडशे वर्षे गोदानम्। महानाम्न्यादीनां च व्रतानां द्वादशवर्षेष्वन्तर्भावमिच्छन्ति। महानाम्न्यादीनामपि वेदैकदेशत्वादिति। पूर्वस्मिन्पक्षे यदा संवत्सरं व्रतचर्या तदा सप्तदशे गोदानं स्यात् तस्मादयमेव पक्षः श्रेयान्। वेदग्रहणं कथम्? एवैफकस्य वेदस्य द्वादश वर्षाणि स्यादिति। तेन द्वयो तुर्विंशतिः त्रयाणां षट्त्रिंशत्। चतुर्णामष्टाचत्वारिंशत्॥३॥

३. बारह बर्ष तक अर्थात् उपनयन एवं वेदारम्भ संस्कार वेफ बाद बारह वर्ष तक वेद और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए अर्थात् बारह वर्ष तक वेद का अध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

४. ग्रहणान्तं वा॥

वेदग्रहणान्तं वा ब्रह्मचर्यं भवति प्रागूर्ध्वं वा द्वादशभ्यः। एवं ब्रुवता त्रिविधं स्नानं प्रदर्शितं भवति। विद्यास्नानं व्रतस्नानं विद्याव्रतस्नानमिति। प्राग्द्वादशभ्यो वेदमधीत्य यः स्नाति स विद्यास्नातकः। यस्तु द्वादशवर्षाणि ब्रह्मचर्यं कृत्वाऽनधीतवेदः स्नाति स व्रतस्नातकः। यस्तु पुनर्द्वादश वर्षाणि ब्रह्मचर्यं कृत्वाऽधीतवेदः स्नाति स विद्याव्रतस्नातकः। ननु 'विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञातस्य वा स्नानम्' ;3.1.4द्ध इति वक्ष्यति। अतः कथं व्रतस्नानस्य सम्भवः? उच्यते। विद्यान्त इति न विद्यासमाप्तौ स्नानं चोद्यते। किं तर्हि? विद्याया अन्ते न मध्ये। तेन व्रतस्नातकोऽपि मध्ये वेदमुत्सृज्यान्त्यमारण्यकमधीत्य स्नायात्। रहस्ये चाऽऽरण्यकंफ प्राधान्येन स्नाननिमित्तं चोद्यते 'वेदमनधीयन्स्नातको भवति' इत्यादिना। ततः स्विष्टकृदादि कृत्यं समापयेत्॥४॥

४. अथवा वेद-विधा वेफ ग्रहण तक ब्रह्मचर्य का पालन करे। पूर्ववर्णित 12 वर्ष वेफ बाद वेदविद्या समाप्त करता तो उसी काल में वह स्नातक का अधिकारी बनता है। इस प्रकार वेदविद्या की समाप्ति पर ही समावर्तन संस्कार किया जाता है।

५. सायं प्रातर्भिक्षेत॥

अहनि रात्रौ चाऽऽचार्यर्थमशनार्थं चान्नं याचेत। तत्र भवत्पूर्वमित्या- दिशाह्यन्तरद्द ो विधिर्द्र ब्यः॥५॥

५. ब्रह्मचारी साँयकाल तथा प्रातः काल दोनों समय भिक्षार्जन करता है।

६. सायं प्रातः समिधमादध्यात्॥

अग्निं परिसमुह्येत्याद्युपसथानान्ता धर्मा भवन्तीत्युक्तम्। पुनः सायंप्रातर्ग्रहणं पूर्वेणासम्बन्धार्थम्। तेन भैक्षं वा पूर्वं भवति समिदाधानं वेति क्रमा नियमः सि(ः॥६॥

६. इसी प्रकार साँयकाल और प्रातःकाल दोनों समय अग्नि में समिधाओं का आधान करता हुआ अग्नि होत्र का सम्पादन करता है।

७. अप्रत्याख्यायिनमग्रे भिक्षेताप्रत्याख्यायिनीं वा॥

अयं नियमोऽनुप्रवचनीयभैक्षे। वुफतः? अनुप्रवचनीये भवान्भिक्षां ददात्विति भैक्षमन्त्रात्॥७॥

७. सर्वप्रथम वह भिक्षा मना न करने वाले पुरूष या स्त्री से मांगता है।

८. भवान्भिक्षां ददात्विति, अनुप्रवचनीयमिति वा॥

स्त्रीभिक्षा चेदुभयत्र मन्त्रे भवती ददात्विति ब्रुयात्॥८॥

यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम्।' इत्युपस्थाय जान्वाच्योपसंगृह्य ब्रूयादधीहि भोः सावित्रीं भोउअनुब्रूउहीति।।

षड्भिरुपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्य विधिवदुपसंगृह्या((चार्य ब्रूयादधीहीति प्रैषेण।।५।।

५. अग्नि वेफ दक्षिण भाग में विध्वित् आचार्य का पूजन करवेफ ब्रह्मचारी आचार्य से प्रार्थना करता है। भयि मेघां मयि प्रजां...'

ऽ. तस्य वाससा पाणिभ्यां च पाणी संगृह्य सावित्रीमन्वाह पच्छो(र्धर्चशः सर्वाम्।।

तस्य ब्रह्मचारिणः परिहितेन वाससा। प्रावरणस्यानित्यत्वात्। स्वस्य पाणिभ्यां च तस्य पाणी गृहीत्वा सावित्रीमन्वाह।।ऽ।।

ऽ. ब्रह्मचारी वेफ द्वारा मेध प्रदान करने की प्रार्थना वेफ बाद आचार्य बालक वेफ वस्त्र सहित दोनों हाथों को ग्रहण करवेफ सावित्री का उपदेश देता है। अर्थात् सविता सूक्त वेफ मंत्र का उपदेश देता हैं पहले पद पाठ वेफ द्वारा तत्प ात)चा का और तीसरी बार पूर्व)चा का उच्चारण करवाता है। इस प्रकार यह सावित्री उपदेश वेदारम्भ संस्कार का प्रतीक है।

६. यथाशक्तिफ वाचयीत।।

स्वयं पादं पादमुक्त्वा तेन वाचयति। यदि ब्रह्मचारी पादं पादं वत्तफुं न शक्नोति ततस्तेन यथाशक्तिफ वाचयीत। एवमर्धर्चशः। एवं सर्वाम्।।६।।

६. ब्रह्मचारी मन्त्र उच्चारण की सामर्थ्य वेफ अनुसार पदपाठ वेफ द्वारा, आधी)चा वेफ द्वारा अथवा सम्पूर्ण)चा का एक साथ उच्चारण करता है।

७. हृदयदेशे(स्योर्ध्वा लिं पाणिमुपदधाति। फ्मम व्रते हृदयं ते दधामि मम चित्तमनु चितं ते अस्तु। मम वाचमेकव्रतो जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियुनत्तफु मह्यम्' इति।।

ब्रह्मचारीणो हृदयदेशसमीपे स्वस्य पाणिमूर्ध्वा लिमुपदधाति स्थापयति मन्त्रेण।।७।।

७. आचार्य बालक वेफ हृदय पर उफपर की ओर अंगुलि वेफ अग्रभाग रखते हुए हाथ रखकर फ्मम व्रते हृदयं ते दाधिम. ...मह्यमथ् इस मंत्र वेफ द्वारा ब्रह्मचारी को अन्तःवासी बनाता है। एक प्रकार से वह ब्रह्मचारी वेफ मन को अपने वेफ अनुवूफल बनाने का संकल्प करता है।

द्वाविंशं खण्डम्

1. मेखलामाबध्य दण्डं प्रदाय ब्रह्मचर्यमादिशेत्।।

ततो मेखलामाबध्य दण्डं प्रदाय ब्रह्मचर्यमादिशेत्।।1।।

1. आचार्य बालवेफ वेफ कटि प्रदेश में मेखला बाधंकर तथा उसे वर्ण वेफ अनुवूफल दण्ड प्रदान करवेफ आदेश देता है।

कथमादिशेदित्याह-

2. फ्ब्रह्मचार्यास्यपो(शान कर्म वुफरु दिवा मा स्वाप्सीराचार्याधीनो वेदमधीष्वऱ इति।।

इदानीं ब्रह्मचार्यसि। अपो(शान। मूत्रपुरीषादौ शाहविहिमाचमनं वुफर्वित्यर्थः। कर्म वुफरु। यच्छाहविहितं कर्म संध्योपासनादि। दिवा मा स्वाप्सीरिति दिवाशयनप्रतिषेधः आचार्याधीनो नित्यं भव। वेदमधीष्व वेदाध्ययनं वुफरु।।2।।

2. फ्तुम ब्रह्मचारी हो अतःब्रह्मचर्य काल वेफ अनुरूप जल से संबंधित आचमन आदि वेफ कर्म नित्य करो, दिन में मत सोओ, नित्य आचार्य वेफ आधीन रहो अर्थात् आचार्य की आज्ञा का पालन करो और वेद का अध्ययन करो।'

अर्धर्च- ग्रहणम् ्निवृत्त्यर्थम्। अन्यथा ’ चं पादग्रहणे‘ ;आश्व0 1.1.17द्ध इत्यृक् स्यात्।।8।।

8. फ्युवा सुवास.....य्ड्स आधे मन्त्र का उच्चारण करवेफ बालक को प्रदक्षिण क्रम से घुमाए।

9. तस्याध्यंसौ पाणी कृत्वा हृदयदेशमालभेतोत्तरेण।।

अधीत्युपरिभावे। ब्रह्मचारिणोंऽसियोरुपरि स्वस्य पाणी कृत्वा‘ तस्य हृदय-देशसमीपं स्पृशेत्तरेणार्धर्चेन।।9।।

9. बालक वेफ वंफधे पर अपना हाथ रखकर आर्चाय आधे मन्त्र का उच्चारण करता हुआ हृदय का स्पर्श करे।

10. अग्निं परिसमुह्य ब्रह्मचारी तुष्णीं समिधमादध्यातुष्णीं वै प्राजापत्यं प्राजापत्यो ब्रह्मचारी भवतीति विज्ञायते।।

नन्वत्र परिसमूहनवचनमनर्थकम्। संस्कृतत्वादग्नेः। उच्यते। सायं प्राप्तः समिदाधाने परिसमूहनपर्युक्षणे यथा स्यातामिति परिसमूहनवचनम्। अत्र तु परिसमूहनाद्यकृत्वैव तस्मिन्नेवाग्नौ ब्रह्मचारी तूष्णीं समिधमादध्यात्। ब्रह्मचारिवचनमाचार्यनिवृत्त्यर्थम्। यस्मात् ’यत्प्राजापत्यं तत्तूष्णीं ब्रह्मचारी च प्राजापत्यः‘ इति श्रूयते तस्मात्तूष्णीं समिधमादध्यात्।।10।।

10. तत्पश्चात् आचार्य यज्ञ वेदी की सपफाई करावेफ अर्थात अग्नि सहित वेदियों को सापफ करावेफ, मौन रहकर आहुति प्रदान करता है।

एकविंशं खण्डम्

1. मन्त्रेण हैवेफऽग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। तया त्वमग्ने वर्धस्व समिधा ब्रह्मणा वयं स्वाहा इति।।

एवेफ मन्त्रेण समिदाधानमिच्छन्ति। हशब्दोऽभिमतत्वज्ञापनार्थः। तेन पूर्वस्य श्रुत्याकृष्टत्वेऽप्युभयोस्तुल्यत्वं सि(म्।।1।।

1. वुफछ आचार्यों का मत है कि ’अग्नये समिधं....‘ इस अवेफले मन्त्र से ही समिधाओं का आधान करें अर्थात् अग्नि में समिधाएं डाले।

2. समिधमाधायाग्निमुपस्पृश्य मुखं निमार्ष्टि त्रिस्तेजसा मा समनज्मि इति।।

ब्रह्मचारी ससमिधमाधायाग्निमुपस्पृश्य मुखं निमार्ष्टि मन्त्रेण त्रिः। मन्त्रावृत्तिरुक्तफा। सग्रहणं समिधौ वा जपेद्धेत्यत्र वक्ष्यमाणो विधिर्मा भूत्। समिद्ग्रहणमुभयोरपि पक्षयोरुत्तरो विधिर्यथा स्यादिति। आधायग्रहणं ’सायं प्रातः समिधमादध्यात्‘ इत्यत्रापि यथा स्यात्।।2।।

2. समिधा प्रदान करते समय ब्रह्मचारी समिधा धान वेफ प ात् अग्नि की ओर दोनों हाथ करवेफ अपने मुख को स्पर्श करता है और उस समय ’त्रितेजस मा....‘ इस मंत्र का उच्चारण करता है।

3. तेजसा ह्येवाऽऽत्मानं समनक्तीति विज्ञायते।।

श्रुत्याकर्षः कथम्? अग्न्युपस्पर्शनमपि त्रिः स्यादिति।।3।।

3. इस प्रकार अग्नि वेफ उपस्पर्शन् से ब्रह्मचारी अग्नि वेफ तेज को अपने अन्दर समाहित करता है।

4. फ्मयि मेधां मयि प्रजां म यग्निस्तेजो दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु। मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु यत्ते अग्ने तेजस्तेनाह तेजस्वी भूयासम्। यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्।

को जल से भर कर उसी जल से बालक की अ ली को भरे।

६. आदित्यमीक्षयेत्। देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी तं गोपाय स मामृतेत्या- चार्यः।।

ततो ब्रह्मचारिणोमादित्यमीक्षयेन्मन्त्रेणा{{चार्यः। आचार्यग्रहणं ज्ञापनार्थम्। अन्यत्रेक्षणे ब्रह्मचारिणो मन्त्रो ना{{चार्यस्येति। ना{{दित्यमीक्षयेत् 'मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे' ;श्रौ० *१.१५*द्ध इत्यत्र ब्रह्मचारिणो मन्त्रः सि(ः।।६।।

६. आचार्य बालक को सूर्य दर्शन वेफ लिए कहे और ब्रह्मचारी वेफ सूर्य की ओर देखने पर फ्देव सवित.....य् इस मन्त्र का उच्चारण करे।

७. कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि कस्त्वा कमुपनयते काय त्वा परिददामि इति।।

जपेदिति शेषः। मन्त्रलि ात्। प्रजापतये ब्रह्मचारी प्रदीयते। तेना{{चार्यस्यायं मन्त्रः।।७।।

७. आचार्य बालक से पूछे 'कस्य ब्रह्मचारी असि' किसवेफ ब्रह्मचारी हो, स्वतः ही आचार्य उत्तर देता है कि तुम प्राण वेफ ब्रह्मचारी हो। कौन तुम्हें प्रेरित करता है। और किसवेफ लिए प्रेरित करता है। मैं तुम्हें किसकी शरण में समर्पित करु अथवा प्रदान करूँ।

८. युवा सुवासाः परिवीत आगादित्यर्धर्चेनैनं प्रदक्षिणमावर्तयेत्।।

अनेनार्धर्चेनैनं ब्रह्मचारिणं प्रदक्षिणमावर्तयेत्। एनमिति वचनं कथम्? 'आवर्तयितुर्मन्त्रः स्यान्मा{{वर्त्यमानो ब्रूयात्कुमारः' इत्येवमर्थम्।

13. ब्राह्मण वर्ण वेफ लिए पलाश वृक्ष का, क्षत्रिय वेफ लिए उदुम्बर वृक्ष का तथा वैश्य वेफ लिए विल्ब वृक्ष का, ब्राह्मण का वेफशसमिति उदुम्बर अर्थात बालों तक की उँफचाई का, क्षत्रिय का माथे की उफँचाई तक और वैश्य का नाक की उफँचाई तक का दण्ड होना चाहिए।

विंशं ख्ण्डम्

1. सर्वे वा सर्वेषाम्।।

सर्वे दण्डाः सर्वेषा भवन्ति पालाशादयः।।1।।

1. अथवा सभी वर्णों वेफ लिए सभी प्रकार वेफ ;उपरिवर्णितद्ध पलाश, उदुम्बर तथा बिल्व वृक्ष वेफ दण्ड हो सकते हैं।

2. समन्वारब्धे हुत्वोत्तरतोऽग्नेः प्रा ्मुख्र आचार्योऽवतिष्ठते।।

आज्यस्य बर्हिष्यासादनान्तं कृत्वा, समन्वारब्धे ब्रह्मचारिणीध्माधानाधारान्तं कृत्वा, पूर्वोत्तफा आज्याहुतीर्हुत्वोत्तरतोऽग्नेः प्रा ्मुख्र आचार्योऽवतिष्ठते। ब्रह्मचारी तु तीर्थेन प्रविश्याऽऽचार्यस्य दक्षिणत उपविशेत्। तीर्थ नाम 'प्रणीतानां पश्चिमो देशः' सर्वत्र तीर्थेनैव प्रविश्य कर्म वुफर्यात्।।2।।

2. वुफशाओं पर आज्य स्थापित करवेफ, ब्राह्मचारी वेफ द्वारा समिधाओं का आधान करने वेफ पश्चात् आचार्य आज्याहुती प्रदान करवेफ ब्राह्मचारी अग्नि वेफ उत्तर भाग में पूर्व की ओर मुख्र करवेफ बैठे तथा बालक अग्नि वेफ दक्षिण भाग में बैठें।

3. पुरस्तात्प्रत्य ्मुख्र इतरः।।

आचार्यस्य पुरस्तात्प्रत्य ्मुख्रो ब्रह्मचार्यवतिष्ठते।।3।।

3. आचार्य वेफ सम्मुख्र बालक पाश्चिम की ओर मुख्र करवेफ बैठें।

4. अपामञ्जली पूरयित्वा फ्तत्सवितुर्वृणीमहेद्य इति पूर्णेनास्य पूर्णमवक्षारयत्यासिच्य फ्देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृ ाम्यसौ इति तस्य पाणिना पाणिं सा ष्टं गृ ीयात्।।

अपामुभयोरञ्जली पूरयित्वा स्वस्य पूर्णाताञ्जलिनाऽस्य पूर्णमञ्जलिम- वक्षारयति 'तत्सवितुर्वृणीमहेः। इति मन्त्रेण। ब्रह्मचारिणोऽ लावात्मनो- ऽ लिमवसि तीत्यर्थः। ततो 'देवस्य त्वा' इति मन्त्रेण तस्य पाणिं सा ष्टं गृ ीयात्। आचार्याञ्जलिमर्थादन्यः पूरयति। आसिच्येति वचनं कथम्? अचार्योऽवक्षारणं वुफर्यान्न वुफमार इत्येवमर्थम्। इतस्था पूर्णेनास्य पूर्णमवक्षारयतीत्युक्ते कास्याञ्जलिं कोऽवक्षारयतीति सन्देहः स्यात्। आसिच्येति तूच्यमाने समानकर्तृकत्वनिर्देशाद्यः पाणिं गृ ाति सोऽवसिञ्च- तीति ज्ञायते। तेनाऽऽचार्योऽवक्षारयतीति सि(म्। असावित्यस्य स्थाने सम्बु(ा ब्रह्मचारिनाम ब्रूयात्।।4।।

4. आचार्य अपनी अ ली को जल से भर कर फ्तत्सवितुर्वृणीमहेद्य इस मन्त्र का उच्चारण करवेफ बालक की अ ली को अपनी अ ली से जल छोड़ता हुए जल से भरे और देवस्य त्वा..... इस मन्त्र का उच्चारण करे।

5. सविता ते हस्तमग्रभीदसाविति द्वितीयम्। अग्निराचार्यस्तवासाविति तृतीयम्।।

संख्यावचनं प्रथमहस्तग्रहणदृष्टाञ्जलिपूरणादिधर्मप्राप्त्यर्थम्।।5।।

5. 'सविता ते...' इस मन्त्र वेफ द्वारा दूसरी दूसरी बार और अग्नि राचार्यस्त.....' इस मन्त्र से तीसरी बार अपनी अ ली

७. नैनानुपनयेन्नाध्यापयेन्न याजयेन्नैभिर्व्यवहरेयु:।।

अचीर्णप्रायर्ि त्तानिति शेषः। उपनयनप्रतिषेधादेव सर्वत्र प्रतिषेधे सि(यदि वेफनचिल्लोभादज्ञानाद्वोपनीताः स्युस्तथा(पि नैवोत्तराणि कर्माणि पतितसावित्रीकाणां वुफर्यादिति सर्वेषां पाटः क्रियते।।७।।

७. इस प्रकार अनतीत काल की समाप्ति पर पतित सावित्रीका हुए बालकों का न तो उपनयन करवाएं न उन्हें अध्यापन करवाएं न ही उनसे यज्ञ कराए और न ही उनसे व्यवहार रखे।

8. अल ्कृतं वुफमारं वुफशलीकृतशिरसमहतेन वाससा संवीतमैणेयेन वा(जिनेन ब्राह्मणं रौरवेण क्षत्रियमाजेन वैश्यम्।।

वुफशलीकृतशिरसं वापितशिरसमित्यर्थः अहतं नवम्। अनुराणमनुप- भुत्तफमित्यर्थः। तेन वाससा संवीतं प्रावृतमित्यर्थः। ऐणेयन वा(जिनेन चर्मणा प्रावृतं ब्राह्मणमानीय होमं वुफर्यात्। एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम्। एतानि चर्माणि वाससा सह विकल्पन्ते। उभयेषां प्रावरणर्थत्वाद्वाशब्दाच्च।।8।।

8. उपनयन संस्कार वेफ लिए बालक को नवीन वस्त्र आदि से अंलकृत करवेफ सिर वेफ बाल कटवा कर बिना धुले हुऐ नवीन वस्त्र पहनाकर तथा ब्राह्मण वर्ण वेफ लिए मृगचर्म का अधोवस्त्र क्षत्रिय वेफ लिए रुरू नामक मृग वेफ चर्म का अधोवस्त्र तथा वैश्य वेफ लिए बकरी वेफ चर्म का अधोवस्त्र पहनाकर उपनयन वेफ लिए आचार्य वेफ समीप लाएं।

9. यदि वासांसि वसीरन्रत्तफानि वसीरन्काषायं ब्राह्मणो माञ्जिष्ठं क्षत्रियो हारिद्रं वैश्यः।।

वासांसि वसीरन्नित्येवं सूत्रच्छेद इष्टः। वासांसि वसीरन्। परिध्धुरित्यर्थः। यदीत्युत्तरेण संबध्यते। तेन नियमेन परिधानं सि(म्। पक्षे शुक्लान्यपि सिध्यन्ति। यदि रत्तफानि वसीरन्। काषायं ब्राह्मणः। माञ्जिष्ठं क्षत्रियः। हारिद्रं वैश्यः। एवं रत्तफानां वसनमनित्यम्। तथा च गौतमः- ‘वासांसि क्षौमचीरवुफतपाः सर्वोषां कार्पासं वा(विकृतं काषायमप्येवेफ वाल्वंफ ब्राह्मणस्य माञ्जिष्ठहारिद्रे इतरयोः’ इति।।9।।

9. यदि बालक आभूषण पहने तो वे लाल रंग वेफ होने चाहिएं और वस्त्र ब्राह्मण वर्ण वेफ लिए काषाय अथवा गेरुआ रंग वेफ क्षत्रिय लिए मा ष्ट वेफ रंग का अर्थात् हल्वेफ लाल रंग का तथा वैश्य हारिद्र अर्थात् पीले रंग वेफ वस्त्र धारण करे।

10. तेषां मेखला।।

उच्यन्त इति शेषः।।10।।

10. उन सबकी अर्थात तीनों वर्णों की मेखला निम्नलिखित प्रकार होनी चाहिए।

11. मौञ्जी ब्राह्मणस्य धनुर्ज्या क्षत्रियस्य आवी वैश्यस्य।।

मौञ्जी नान्यस्य। ब्राह्मणस्य तु मौञ्जी वा(न्या वा न नियमः। एवमुत्तर- योर्ज्ञेयम्।।11।।

11. ब्राह्मण वर्ण वेफ लिए मेखला मूँज की रस्सी को, क्षत्रिय धनुष की डोरी को अर्थात् धनुष की प्रत्य ा की और वैश्य वर्ण वेफ लिए उफन की रस्सी की बनी मेखला धारण करे।

12. तेषां दण्डाः।।

उच्यन्त इति शेषः।।12।।

12. उन तीनों वर्णों वेफ लिए दण्ड निम्न प्रकार वेफ होने चाहिए।

13. पालाशो ब्राह्मणस्यय औदुम्बरः क्षत्रियस्य बैल्वो वैश्यस्य वेफशसंमितो ब्राह्मणस्य ललाटसंमितः क्षत्रियस्य घ्राणसंमितो वैष्यस्य।।

दण्डनियमो मेखलाभिस्तुल्युः।।13।।

ननु भिक्षुण्यं कथमस्य गोमिथुनसम्भवः? उच्यते-यथाऽस्य प्रावरणादेः सम्भवस्तथैतस्यापि॥४॥

8. इस संस्कार में गौमिथुन अर्थात एक गाय और बैल प्रदान करने का विधान है।

9. संवत्सरमादिशेत्॥

एवं गोदानं कृत्वा संवत्सरं व्रतमादिशेद्वक्ष्यमाणेन विधिनाऽऽचरेत्। रात्रौ व्रतादेशनानुपपत्तेरपरेद्युः कार्यः॥९॥

9. वेफशान्त संस्कार वेफ पश्चात बालक एक वर्ष तक आचार्य वेफ द्वारा बतलाये गये व्रत का पालन करे।

एकोनविंशं खण्डम् - उपनयन संस्कार

1. अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्॥

जन्मप्रभृत्यष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्। वुफमारमिति वर्तते। तच्च वुफमारी- निवृत्त्यर्थमित्युत्तफम्॥१॥

1. जन्म से लेकर 8 वर्ष की आयु पूर्ण करने वेफ पश्चात् बालक का उपनयन संस्कार करना चाहिए।

2. गर्भाष्टमे वा॥

गर्भप्रभृत्यष्टमे वोपनयेत्॥२॥

2. अथवा 8 वर्ष की यह आयु गर्भ जीवन से माननी चाहिए बालक वेफ जन्म से नही।

3. एकादशे क्षत्रियम्॥

जन्मप्रभृति गर्भप्रभृति वैकादशे वर्षे क्षत्रियमुपनयेत्॥३॥

3. क्षत्रिय वर्ण वेफ लिए उपनयन संस्कार की आयु 11 वर्ष माननी चाहिए।

4. द्वादशे वैश्यम्॥

जन्मप्रभृति गर्भप्रभति वा द्वादशे वर्षे वैश्यमुपनयेत्॥४॥

4. वैश्य वर्ण वेफ लिए उपनयन संस्कार 12 वर्ष को आयु में किया जाना चाहिए।

5. आ षोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालः॥

षोडशवर्षपर्यन्तं ब्राह्मणस्योपनकालोऽतीतो न भवति॥५॥

5. उपनयन संस्कार वेफ लिए अतीत काल अर्यात उपनयन संस्कार को अन्तिम सीमा 16 वर्ष की आयु मानी गई है। अतः 16 वर्ष की आयु तक ब्राह्मण वर्ण वेफ लिए उपनयन संस्कार हो जाना चाहिए।

6. आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्यात ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति॥

क्षत्रियवैश्ययोर्द्वाविंशचतुर्विंशयोरुपनयनकालोऽतीतो न भवति। षोडशद्वा- विंशचतुर्विंशपर्यन्तेष्वनुपनीताश्चेत्पतितसावित्रीका भवन्ति। संज्ञायाः प्रयोजनं 'पतितसावित्रीक उद्दालकव्रतं ज्ञापनार्थम्॥६॥

6. बाईस वर्ष तक क्षत्रिय का 24 वर्ष तक वैश्य का अनतीत काल है। इससे उफपर आयु वाले फ्पतितसावित्रीकाय् कहलाते हैं।

है। फएतेन गोदानमय अर्थात् इस खण्ड वेफ द्वारा गोदान अर्थात् वेफशान्त संस्कार का वर्णन किया गया है।

तत्र विशेषमाह-

2. षोडशे वर्षे।।

तृतीयस्यापवादः। अत्र मातुरूपोस्थोपवेशनं न भवति। अयुक्तत्वात्।।2।।

2. वेफशान्त संस्कार का काल निर्धारित करते हुए कहा गया है। गोदान अर्थात् वेफशान्त संस्कार बालक की सोलह वर्ष की आयु में किया जाना चाहिए।

3. वेफशशब्दे तु श्मश्रुशब्दान्कारयेत्।।

वेफशशब्दे त्विति जातावेकवचनम्। श्मश्रुशब्दानिति व्यक्तिपरो निर्देशः। तेन त्रयः श्मश्रुशब्दाः तेषु 'अदितिः वेफशान्वपतु' 'वप्ता वपसि वेफशान्' 'दक्षिणे वेफशपक्षे' इति त्रिषु ते कार्याः। मन्त्रगतस्य तृतीयस्य वेफशशब्दस्या भावाद्विधिगतस्य ग्रहणम्। तेन दक्षिणे श्मश्रुपक्ष इति साधितं भवति।।3।।

3. पूर्ववर्णित चूड़ाकरण संस्कार में आए वेफश शब्द में श्मश्रु शब्द भी जोड़ देना चाहिए। जिससे वेफश वपन वेफ अंतर्गत श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी मूंछ भी काटने का विधान ग्रहण करना चाहिए। यही स्थिति मन्त्र में भी ग्रहण करनी चाहिए। मंत्र में जहां वेफश शब्द हो वहाँ वेफश श्मश्रु शब्द का उच्चारण करना चाहिए।

4. श्मश्रूणीहोन्दति।।

शिरउन्दनस्यापवादः।।4।।

4. वेफशान्त संस्कार में श्मश्रु अर्थात्त दाढ़ी-मूंछ को भी काटने से पूर्व गीला करना चाहिए।

5. शुन्धि शिरो मुखं मा(स्या(युः प्रमोषीः इति।।

क्षुरनिमार्जने(यं विशेषः।।5।।

5. छुरे को तीक्ष्ण करते समय फशुन्धि शिरोमुखं.......इस मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

6. वेफशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वुफर्विति संप्रेष्यति।।

शीतोष्णाभिर ख्बर्थं वुफर्वाणो(क्षिण्वन्वुफशली वेफशश्मश्रुलोमनखान्युदक्सं स्थानि वुफर्विति नापितशासनम्।।6।।

6. तत्पश्चात आचार्य नापित को आदेश दे कि वह बालक वेफ सिर वेफ बाल दाढ़ी मूंछ और नाखूनों को काटकर उनको उत्तर दिशा में पेंफवेफ।

7. आप्लुत्य वाग्यतः स्थित्वा(हःशेषमाचार्यसकाशे वाचं विसृजेत। वरं ददामि इति।।

तत आप्लुत्य। स्नात्वेत्यर्थः। वाग्यत इत्यमन्त्रयमाणः। स्थित्वेत्युपवेशन- प्रतिषेधः। एवमहःशेषं स्थित्वा(तमित आचार्यसमीपे वरं ददामीति वाचं विसृजेत्।।7।।

7. क्षौर कर्म वेफ पश्चात् बालक स्नान करे तथा स्नान वेफ बाद दिन वेफ शेष भाग में मौन रहे। और आचार्य वेफ द्वारा 'वरंददामि' यह वाक्य बोलने वेफ पश्चात्त ही मौन भंग करे।

वरद्रव्यमाह-

8. गोमिथुनं दक्षिणा।।

12. ष्येन धाता...स्वस्तयेष्ट इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए क्रमशः तीन बार बाल काटे।

13. सर्वैर्मन्त्रैश्चतुर्थम्।।

सर्वैह्रिभिर्मन्त्रैश्चुर्थवारं छिनत्ति।।13।।

13. चौथी बार बाल काटते समय सभी मन्त्रों को उच्चारण करे।

14. एवमुत्तरतह्रिः।।

यथा दक्षिणे वेफशपक्ष एवमुत्तरेऽपि वेफशपक्षे वुफर्यात् त्रिः। परिसंख्येयम्। उत्तरे वेफशपक्षे त्रिरेव न चतुर्थमिति।।14।।

14. इसी प्रकार तीन बार उत्तर भाग बाले बालों को भी काटे।

15. क्षुरतेजो निमृजेत। ष्यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसा वप्ता वपसि वेफशान्। शुन्धि शिरो माऽस्याऽऽयुः प्रमोषीःष्ट इति।।

ततः क्षुरधारां निमृजेच्छोधयेन्मन्त्रेण। निमार्जनमवमार्जनम्। त्यवेति विनिग्रहार्थीयौ' इति वचनात्।।15।।

15. ष्यत्क्षुरेण....प्रमोषीःष्ट उस मन्त्र कर उच्चारण करता हुआ छुरे की धार को तेज करे।

16. नापितं शिष्याच्छीतोष्णाभिर रबर्थं वुफर्वाणोऽक्षण्वन्वुफशलीवुफरु इति।।

नापितं शिल्पिनं शिष्यात्प्रेष्येत्प्रैषेण। वुफशलीकरणवचनं परीतलक्षणया वापने वर्तते। येन विहितोऽयं मुण्डयति हि श्रूयते।।16।।

16. इसवेफ बाद पिता नापित ;नाईद्ध को आदेश दे कि बिना बालक को क्षति पहुंचाए बालों को अच्छी प्रकार काट दें।

17. यथावुफलधर्मं वेफशवेशान्कारयेत्।।

'एकशिखह्रिशिखः प शिखो वा' इति बौधायनः। पूर्वशिखः परशिख इति वुफलधर्माः। तेषु यो यस्य वुफलधर्मस्तदनुरोधेन तस्य वेफशसंनिवे- शान्कारयेत्। वेषानित्यपि पाटे स एवार्थः। ततः स्वि कृदादि समा- पयेत्।।17।।

17. अपनी शाखा अथवा वुफल धर्म वेफ अनुसार सिर पर शिखा वेफ बाल शेष रखे। क्योंकि एकशिखा, त्रिशिखा, पञ्च शिखा आदि अनेक प्रकार से शिखा रखने का प्रचलन हैंद्ध

18. आवृतैववुफमार्यै।।

आवृता, अमन्त्रकमित्यर्थः वुफतः? येनान्यत्राऽऽवृतेत्युक्त्वा तूष्णीमित्याह। अपरया द्वारा नित्ययाऽऽवृता सदो द्वार्ये चाभिमृश्य तूष्णीं प्रतिप्रसर्पन्तीति। नैतदेवम्। एवकारोऽत्रावधारणार्थः। 'आवृत्तन्त्रमेव भवति न मन्त्रः' इति। तेनाऽऽवृतेत्यस्य तूष्णीमित्यर्थ इति सि(म्। एवं चेद्दोषः। अमन्त्रवंफ होमः प्राप्नोति। इष्टमेव न एतदिति वेफचिदाहुः। अन्ये होमो न भवतीत्याहुः। अमन्त्रकस्य होमस्य क्वचिदप्यदृ त्वात्। ननु 'तूष्णीं द्वितीये उभयत्र' ;1.9.8द्ध इत्यत्र दृष्ट इति शङ्का न कार्या। तत्रापि प्रजापतये स्वाहेति मन्त्रोऽस्त्येव।।18।।

18. यदि कन्या का चौल कर्म है तो बिना मन्त्रों का उच्चारण किए ही चौल कर्म का सम्पादन करे।

अ ादशं खण्डम्

1. एतेन गोदानम्।।

व्याख्यातमिति शेषः। एतेनेति कृत्स्नोपदेशः।।1।।

1. आश्वलायन गृह्यसूत्र वेफ 18वें खण्ड में वेफशान्त संस्कार का वर्णन है। जिसे गोदान वेफ नाम से व्यवहृत किया गया

6. पिता बालक वेफ पाश्चिम भाग में बैठकर फउष्णेन वायु उद्रवेफनेहय् इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ शीत और उष्ण जलों को इकट्ठा मिलावें।

7. तासां गृहीत्वा नवनीतं दधिद्रप्सान्वा प्रदक्षिणं शिरश्छिन्दति। फअदितिः वेफशान्वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसय् इति।।

तासामपामेकदेशं गृहीत्वा 'नवनीतं च गृहीत्वा, तदभावे दधिद्रप्सान्वा गृहीत्वा प्रदक्षिणं शिरश्छिन्दति क्लेदयति मन्त्रेण। मन्त्रावृत्तिरुक्ता। तासां ग्रहणं समानीतानां ग्रहणार्थम्। इतस्था समानयनस्य शीतोष्णाभिस- ि स्वर्थमित्यत्र कृतार्थत्वात्तासां ग्रहणमेव न स्यात्। गृहीत्वेत्यस्य च नवनीतेन सम्बन्धः स्यात्। तस्मिंस्तु सत्यापो नित्याः। नवनीतदधिद्रप्सोश्च विकल्पः सिध्यति।।7।।

7. तत्पश्चात् शोतोष्ण जल में दही की वुफछ बून्दे अथवा नवनीत मिला कर बालक वेफ शिर को तीन बार गीला करे और फअदितिः वेफशान् ....वर्चसय् इस मन्त्र का उच्चारण करे।

8. दक्षिणे वेफशपक्षे त्रीणि त्रीणि वुफशपि ूलान्यभ्यात्माग्राणि निदधाति-फओषधे त्रायस्वैनम्य्।

दक्षिणाग्रहणं विस्प ार्थम् तस्मिन्वेफशपक्षे त्रीणि त्रीणि वुफशपि ूलानि वुफमारस्याभ्यात्माग्राणि स्थापयति मन्त्रेण। वीप्सा बहर्था।।8।।

8. फओषधे त्रायस्वैनम्य् इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ बालक के बालों में दक्षिण भाग से प्रारम्भ करवेफ तीन वुफशा वेफ पत्तों को बालों में स्थापित करें।

9. फस्वधिते मैनं हिंसीःय् इति निष्पीड लौहेन क्षुरेण।।

अनेन मन्त्रेण लौहेन क्षुरेण तानि वुफशपि ूलानि निष्पीडयति। तेषु क्षुरं स्थापयतीत्यर्थः। लोवेफ क्षुरो लौहे एव प्रसि(ः। अतोऽत्रि तस्यावाच्य- त्वाल्लोहशब्दस्ताम्रे वर्तते। शाह्लन्तरे विहितत्वाच्च। लोवेफ लोहशब्दश्चायं रजतादिष्वपि वर्तते। अत्र तु ताम्रे। तथा दृष्टत्वात्।।9।।

9. फस्वधिते मैनं हिंसीय् इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ लोह छुरे को वुफशाओं वेफ उफपर दबाए।

10. पफ्रच्छिनत्ति येनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान। तेन ब्रह्मणो वपतेदमस्याऽऽयुष्मा रदष्टिर्यथासत्य् इति।।

ततोऽनेन मन्त्रेण तेनैव क्षुरेण प्रच्छिनत्ति। प्रोऽनर्थकः, अन्ये क्षिप्रार्थम् इत्याहुः।।10।।

10. फ्येनावयतसविता..... यथासत्य् उस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ बालों को काटे।

11. प्रच्छिद्य प्रच्छिद्य प्रागग्राञ्छमीपर्णैः सह मात्रे प्रयच्छति तानानडुहे गोमये निदधाति।।

वीप्सावचनं योऽत्रि धर्म उपदिश्यते स सर्वेषु च्छेदेषु यथा स्यादिति। प्रागग्रान्कृत्वा शमीपर्णैः सहैकीकृत्य मात्रे प्रयच्छति ददाति। तानसावनडुहे गोमये निदधाति स्थापयति। नात्र प्रागग्रतनियमः।।11।।

11. हर बार बाल काट कर पूर्व की ओर अग्रभाग रखता हुआ बालों को शमी वेफ पत्तों वेफ साथ माता को दे और माता उन्हे बैल वेफ गोबर में स्थापित करें।

12. फ्येन धाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चाऽऽयुषेऽवपत्। तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तयेय् इति द्वितीयम्। फ्येन भूयश्च रात्र्यां ज्योक् च पश्याति सूर्यम्। तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तयय् इति तृतीयम्।।

संख्यावचनं मन्त्रान्तरप्रदर्शनार्थम्। मन्त्रमध्येऽपीतिकारो विद्यत इत्युक्तम्। वुफशपि ूलनिधानस्याभ्यासविधानार्थं भवतिं नार्हति। अभ्यासस्य त्रीणि त्रीणीति वीप्सयैव सि(त्वात्।।12।।

सप्तदशं खण्डम्

चूडाकरण, चौलकर्म अथवा मुण्डन संस्कार

1. तृतीये वर्षे चौलं यथावुफलधर्मं वा।।

वुफलधर्मोपदिष्टे वा काले चौलं कार्यम्। जन्मप्रभृति तृतीये वर्षे वा कार्यमिति व्यवस्थितविकल्पः। वेफषांचिदुपनयनेन सह स्मर्यत इति।।1।।

1. बालक वेफ जन्म से तीसरे वर्ष अर्थात् 2 वर्ष की आयु पूर्ण करने वेफ पश्चात् 'चौल कर्म' अर्थात् मुण्डन संस्कार अथवा चूडा करण संस्कार करना चाहिए अथवा अपने कुलधर्म के अनुसार वर्णित आयु में संस्कार करें।

2. उत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलानां पृथक्पूर्णंशरावाणि निदधाति।।

प्रणीताप्रणयनोत्तरकालमुत्तरतोऽग्नेर्व्रीहियवमाषतिलैः पूर्णानि शरावाणि निदधाति स्थापयति। पृथग्ग्रहणं द्रव्यभेदार्थम्। पृथक्पृथक् पूरयित्वा निदध्यादिति। अन्यथा समासोपदेशान्मिश्रितानां प्राशनम्। अथवा। सत्यपि समासोपदेशे यथाकामं व्रीहियवतिलैरित्यत्रैवेफ द्रव्यं भवति। एवेफन कृतार्थत्वात्। एवमिहाप्येवेफ द्रव्यं प्रसज्येत। तन्निवृत्त्यर्थं पृथग्ग्रहणम्।।2।।

2. अग्नि वेफ उत्तर भाग में व्रीही ;धानद्ध यव ;जौद्ध माष ;उड़दद्ध तथा तिलों से परिपूर्ण शरावों ;मिट्टी वेफ पात्रोंद्ध को स्थापित करें।

कथं पृथग्भूतानां सर्वेषां द्रव्याणां पूर्णशरावाणि निधीयेरन्निति-

3. पश्चात्कारयिष्यमाणो मातुरूपस्थ आनडुहं गोमयं नवे शरावे शमीपर्णानि चोपनिहितानि भवन्ति।।

अग्नेः पश्चात्कारयिष्यमाणाः वुफमारः। तत्प्रयुक्तं हि चौलम्। एवं च कृत्वा संस्कारकर्मसु व्यायपरिहारेषु कार्येषु वुफमारोऽन्तिरतम इति दर्शितं भवति। मातुरूपस्थ उत्स आस्ते। आनडुहं गोमयं नवे शराव उपनिहितं भवति। शमीपर्णानि चान्यस्मिन्नवे शराव उपनिहतानि भवन्ति।।3।।

3. जिस बालक का संस्कार करना है। उसे माता गोद में लेकर अग्नि वेफ पश्चिम भाग में बैठे। बालक वेफ समीप नये शराव मे बैल का गोबर रखे तथा उसी वेफ साथ नये शराव में ही शमी वृक्ष वेफ पत्ते रखे।

4. मातुः पिता दक्षिणत एकविंशतिवुफशपि ़्रलान्यादाय।।

मातुर्दक्षिणतः पितैकविंशतिवुफशपि ़्रलान्यादायाऽऽस्ते। मातुर्ग्रहणं मातुः सकाशाद्दक्षिणतो यथा स्यादग्नेर्दक्षिणतो मा भूदिति।।4।।

4. माता वेफ दक्षिण भाग में पिता 21 इक्कीस वुफशाओं वेफ गुच्छे ग्रहण करवेफ बैठे।

5. ब्रह्मा वैतानि धारयेत्।।

एतानि वुफशपि ़्रलानि ब्रह्मा वा धारयेत्। यद्यस्ति।।5।।

5. अथवा ब्रह्मा पुरोहित इन वुफशाओं वेफ स्तबकों को धारण करें।

6. पश्चात्कारयिष्माणस्यावस्थाय शीतोष्णा अपः समानीय पउष्णेन वायुउदवेफनेहय इति।।

आधारान्तं कृत्वा पूर्वोक्ता आहुतीर्हुत्वा वुफमारस्य पश्चिमदेशे स्थित्वा शीतमुदकमुष्णं चोदकमुभाभ्यां पाणिभ्यां गृहीत्वाऽन्यस्मिन्पात्रे युगपन्नियति, उष्णेनेति मन्त्रेण। 'समित्येकीभावे'। ननु दक्षिणार्ा कारि- तया भाव्याम्। कथमुभाभ्यां पाणिभ्यामिति। उच्यते। अनियमे प्राप्ते नियमार्था सा परिभाषा न तु दक्षिणा विधायिका।।6।।

षोडशं खण्डम् - अन्नप्राशन

1. षष्ठे मास्यन्नप्राशनम्।।

जन्मप्रभृति ष े मासे न गर्भप्रभृति। जाताधिकारात्। तत्रान्नप्राशनं नाम कर्म कार्यम्।।1।।

1. बालक वेफ जन्म से छटें महीने में अन्न प्राशन संस्कार करें।

2. आजमन्नाद्यकामः।।

अजस्येदमाजम्। तैत्तिरसाहचर्यान्मांसस्यात्र ग्रहणम्। न क्षीरदधिघृतानाम्।।2।।

2. अन्न धन की कामना वाला 'आजं' बकरी वेफ मांस से अन्न प्राशन करवाए। यद्यपि आजं का अर्थ बकरी को दूध, दही, घृत आदि भी हो सकता है परन्तु टीकाकारों ने अगले सूत्र में आए शब्द 'तैत्तिर' से मांस का ही ग्रहण माना है।

3. तैत्तिरं ब्रह्मवर्चसकामः।।

तित्तिरेरिदं तैत्तिरम्। आजतैत्तिरयोर्व्य न्नत्वेनोपदेशे नान्नत्वेन। तथा लोवेफ प्रसि(त्वात्। तेनान्नमपि सि(म्।।3।।

3. ब्रह्मवर्चस् की कामना वाला तित्तिर पक्षी वेफ मास से अन्न प्राशन करवाए।

4. घृतौदनं तेजस्कामः।।

घृतसंस्कृत ओदनो घृतौदनः। वुफतः? ओदनग्रहणात्। यदि हि घृतमिश्रो{- भिप्रेतः स्याद् 'घृतं तेजस्कामः' इत्येवावक्ष्यत्। ततश्च पूर्ववद्व न- त्वेनान्नमपि सि(त्येव। घृतौदनं यत्रेच्छति शृते नेदीयसि घृतसेवेफ कृते धृतसंस्कृतो भवति। न तु घृते श्रपणम्। विक्लेदानुपपत्तेः।।4।।

4. शारीरिक तेज की कामना वाला घी में पकाए गये भात से अन्न प्राशन करवाए।

5. दधिमधुघृतमिश्रमन्नं प्राशयेत्। पअन्नपते{न्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्रदातारं तारिष, ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदेय् इति।।

अकामसंयोगेन दध्यादिमिश्रमन्नं प्राशयेत् 'अन्नपते{न्नस्य नः' इति मन्त्रेण। अयं मन्त्रः सर्वप्राशनेष्वपि भवति। वुफतः? प्राशनसहित- त्वान्मन्त्रस्य। प्राशयेदित्यस्य च सर्वशेषत्वात्। आजं प्राशयेदित्यादि।।5।।

5. पूर्ववर्णित कामना वाले अथवा बिना विशिष्ट कामना वाले अन्नप्राशन संस्कार में अन्न खिलाते समय दधि, दूध, घृत मिश्रित अन्न आदि ''अन्नपते{न्नस्य-- खिलाते समय इस मन्त्र का उच्चारण करें।''

6. आवृतैव वुफमार्यै।।

वुफमार्यास्त्वमन्त्रकमन्नप्राशनं कार्यमित्यर्थः।।6।।

6. कन्या वेफ अन्न प्राशन में किसी भी मन्त्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए अर्थात् बिना मन्त्र का उच्चारण नही करना चाहि अर्थात् बिना मन्त्र बोले ही अन्न प्राशन की विधि का पालन करना चाहिए।

प्रति ब्रह्मवर्चसे च वुफमार्स्य। तत्संत्कारत्वात् न कर्तुः।।7।।

7. यदि पिता चाहता है कि उसका पुत्र पतिष्ठा प्राप्त करे तो वह पुत्र का नाम दो अक्षरों वाला और यदि चाहता है कि वह ब्रह्म वर्चस्वी बने तो चार अक्षरो वाला नाम रखें।

द्व क्षरं चतुरक्षरं वेति यदुक्तं तत्काम्यमपीत्याह-

8. युग्मानि त्वेव पुसांम्।।

अथवा। युग्मानि युग्माक्षरणि पुंसा नामधेयानि भवन्ति। एवकारोऽवि- धारणार्थः कथम्? युग्मेवाऽऽद्रियेत न पूर्वाणि लक्षणनीति। तेन शिवदत्तः, नाथदत्तः, देवस्वामी, वसुशर्मा, रुद्रः, जनार्दनः, वेदाघोषः, पुरन्दरः, विष्णुशर्मा, इत्यादि सि(म्।।8।।

यथाः-विष्णु शर्मा, देवदतः, जनार्दनः, बलदेवः, सुग्रदेव, रुद्रः, भद्रः, देवः।

8. पुत्र ;पुल्लि द्ध का नाम दो, चार छः इस प्रकार जोड़ों ;युग्मद्ध वाले अक्षरों का होनो चाहिए।

9. अयुजानि ह्रीणाम्।।

अयुजान्युग्माक्षरणि ह्रीणां नामानि भवन्ति। सुभ्रद्रा, सावित्री, सत्यदा, वसुदा, इत्यादि।।9।।

9. कन्याओं ;ह्रीयोंद्ध वेफ नाम अयुज अक्षरों वाल होने चाहिए, 1, 3, 5, उस प्राकर की संख्या वाले अक्षरों वाले यथाः सुभद्र, सावित्री, वसुदा।

10. अभिवादनीयं च समीक्षेत तन्मातापितरौ विद्यातामोपनयात्।।

येन नाम्नोपनीतोऽभिवादयते तच्च समीक्षेत। वुफर्यादित्यर्थः तच्च मातापितागवेव विद्यातामोपनयनात्। उपनीतस्य त्वाचक्षते-अनेने नाम्नाऽभिवादयस्वेति।।10।।

10. माता पिता पुत्र का एक गुप्त नाम रखें जिसे वेफवल वे दोनों ही जाने और उपनयन संस्कार वेफ समय अभिवादन वेफ लिए उसे विख्यात करें।

11. प्रवासादेत्य पुत्रस्य शिरः परिगृह्य जपति। फअ ाद ात्संभवसि हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदः शतम्य इति मूर्धनि त्रिरवघ्राय।।

प्रवासादागत्य 'गृहानीक्षेताप्यनाहिताग्निः' ;श्रौ0 2.5द्ध इत्यादिसूत्रोक्त- मार्गेण विधिं कृत्व पुत्रस्य शिरः परिगृह्य सर्वतो गृहीत्वात्वा मूर्धनि त्रिरवाघ्राय ततो जपति-अ ाद ादिति।।11।।

11. यदि पिता प्रवास में हो तो तब वह घर आए जब बह अपने घर आकर अपने पुत्र वेफ सिर के आलिंगन करवेफ फअ ाद ात्संभवसि....य मन्त्र का उच्चारण करे इससे पूर्व उसे आलि नव(शिर को तीन बार सूंघे।

12. आवृतैव वुफमार्यै।।

वुफमार्यास्त्वमन्त्रवंफ वुफर्यादिति। अनन्तस्य चायं शेष इत्येवेफ। अनन्तस्य जातकर्मणश्चेत्यपरे।।12।।

12. यदि नाम करण संस्कार कन्या का हो तो मन्त्रों का उच्चारण किए बिना ही संस्कार करे।

पक्षोभिप्रेतः यस्य त्रयणामन्यतमः पक्षोऽभिप्रेतस्तस्यापि वुफर्वतो न दोषः। सर्वेषां गमकवत्त्वादिति भाष्यकारः। अत्रैवेफ मन्त्रविभागः श्रेयानित्याहुः। मध्य इतिकारात्। नन्वन्यत्रापि विद्यत इत्युक्तम्। तत्रापि विभाग एव। 'किमुत्पसीति ';श्रौ0 3. 14द्ध बर्हिषि निधाय मा हिंसीरित्याभिमन्त्रयेत्। वुफत एतत्? आनन्तर्ययोगात्। नन्विडायां दृश्यते 'हविर्जुषुन्तामिति तस्मिन्नुपहूत इति' ;श्रौ0 1.7द्ध इति। अनर्थज्ञो भवान्। इतिकारो मत्रस्य मध्ये वृथा न पट त इति वयं ब्रूमः। इडायां तु मन्त्रैकदेश इतिकारः। युष्मत्पक्षे त्वभिमन्त्रण इतिकारो वृथैवेति। तदसत्। भगवता भाष्यकारेण यः पक्षः परिगृहीततः स एव सम्यक्। अन्यत्रापि मन्त्रमध्य इतिकारदर्शनात्। 'नामे यत्र निषीदसीति अमुं मा हिंसीरमुं मा हिंसीः' इति चेति। तेन त्रीन्मन्त्रान्सकृदुक्त्वा युगपदेवोभावंसौ स्पृशेदिति सि(म्।।3।।

3. 'अश्मा भव......मघवन्नू जीषिन' आदि मन्त्रों का उच्चारण करवेफ पिता पुत्र वेफ दाहिने कन्धे का स्पर्श करे। वुफछ आचार्यों का मत है कि प्रथम पअश्मा भव....से दाहिने कन्धे का और बाद वेफ दो मन्त्रों से बाए कन्धे का स्पर्श करे।

नामकरण संस्कार

4. नाम चास्मै दद्युः।।

वुफर्युरित्यर्थः। नामकरणस्याऽऽचार्येण कालान्तरानुक्तेजार्तकर्मानन्तरं कार्यमित्येवेफ। अन्ये शास्त्रान्तरोत्तफः कालो ग्राह्य इत्याहुः। उक्तं च मनुना-'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽपि कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ;अध्या0 2.30द्ध इति।।4।।

4. जातकर्म संस्कार वेफ बाद नामकरण संस्कार का वर्णन प्राप्त होता है। जिसवेफ लिए काल निर्धारण का उल्लेख नही है। कहा है कि पइसको नाम प्रदान करेष् अर्थात् बालक का नामकरण संस्कार करे। संबाधित शास्त्रों से काल का ग्रहण कर लेना चाहिए।

कीदृग्लक्षणं त मित्याह-

5. घोषवदाद्यन्तरन्तःस्थमभिनि ानान्तं द्व क्षरम्।।

प्रथमद्वितीया वर्गाणामूष्माणश्च हकारवर्जमघोषवन्तः। शि ा घोषवन्तः। ते आदौ यस्य तत्तथोक्तम्। अन्तर्मध्येऽन्तःस्था यस्य तत्तथोक्तम्। यकारादयश्चत ोऽन्तःस्था। अभिनि ानो विसर्जनीयः। सोऽन्ते यस्य तत्ताथोक्तम्। अक्षरं स्वरः अकारादयो द्वादशः स्वराः। शिष्टं व्य नम्। द्वे अक्षरे यस्य तदृद्व क्षरम्। व्य नमपारीमितम्।।5।।

5. नाम की संरचना कैसी हो इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि नाम वेफ अक्षरों ;वर्णोंद्ध में दो अक्षरों वाला नाम जिसवेफ प्रारम्भ में घोषवत् तथा मध्य में अन्तस्थ हो तथा अन्त में विसर्ग हो ऐसा होना चाहिए। दो स्वरों तथा अपरिमित व्य नों वाला नाम जिसवेफ अद्यन्त में घोषवत् ;वर्गो को प्रथम और द्वितीय वर्ण अकार को छोड़कर घोषवत् कहलाते हैद्ध मध्य में अन्तस्थ और अन्त में विसर्ग ऐसा नाम हो। यथा भद्रः देवः भवः आदि।

6. चतुरक्षरं वा।।

चतुरक्षरं वोक्तलक्षणं नाम वुफर्युः। भद्रः, देवः, भवः, भवनाथः, नागदेवः, रुद्रदत्तः, देवदत्तः, इत्येवलक्षणानि नामानि भवन्ति।।6।।

6. अथवा पूर्व लक्षणों से युक्त चार अक्षरों वाला नाम रखना चाहिए यथा भवनाथः, रुद्रदतः देवदतः आदि।

7. द्व क्षरं प्रति ाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः।।

प दशं खण्डम् - जातकर्मसंस्कार

1. वुफमारं जातं पुरा(न्यैरालभात्सर्पिर्मधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत्। प्प्र ते ददामि मधुनो घृतस्य वेदं सवित्रा प्रसूतं मघोनाम् आयुष्मानोन्गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोक अस्मिन्ू इति।।

इदं जातकर्म। वुफमारग्रहणं वुफमारीनिवृत्त्यर्थकम्। ननु वुफमार्या अपि भवत्येव जातकर्म। वुफतः? वक्ष्यति 'आवृतैव वुफमार्यै ;1.15.12द्ध इति। उच्यते। प्रवासादागतस्य विहितं कर्मा((वृता भवति। न जातकर्म। अनन्तरत्वात्। एवमेवेफ। अन्ये पुनरावृतैव वुफमार्या इत्येतदुभयार्थमिति वदन्ति। तेन वुफमार्या अपि जातकर्म भवत्येव। मनुना(प्युक्तम् 'अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः' ;मनु0 2. 66द्ध इति। तर्हि वुफमारग्रहणं कथम्? अधिकारार्थम्।। 'अ मे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्' ;1.19. 1द्ध इत्युपनयनं वुफमारस्यैव यथा स्या वुफमार्या इति। ननु ब्रह्मणणमिति पु निर्देशादेव न भविष्यति। न। जातिनिर्देशे लि मविवक्षितम्। यथा ब्राह्मणो न हन्तव्य ति ब्राह्मण्यपि न हन्यते। एवमत्रापि स्त्रियाः प्रसज्येत। तन्निवृत्त्यर्थं वुफमारग्रहणमिति। जातग्रहणमप्याधिकारार्थम्। 'गोदानं षोडशे वर्षे ;1.18.1द्ध इति जन्मतः प्रभृति षोडशे यथा स्यात्। उपनयनप्रभृति मा भूदिति। पुरा पूर्वमित्यर्थः। अन्यग्रहणमनाधिकृतालम्भानात्प्राक्कर्म कर्तव्यमित्येवमर्थम् सर्पिर्मधुनी हिरण्येन निकाषयति। मे हिरण्यसंसृष्टे हिरण्येन प्राशसेत्, मातरूपपस्थ आसीनं 'प्र ते ददामि' इति मन्त्रेण।।1।।

1. ;जातकर्म संस्कार मेंद्ध यजमान पुत्रोत्पत्ति वेफ पश्चात् उत्पन्न पुत्र को दूसरे पुरुषों वेफ समक्ष सोने की भस्म से युक्त मधु और धृत खिलाए और उस मन्त्र का उच्चारण करे :-प्प्रतेदानि....आस्मिनू

2. कर्णयोरूपनिधाय मेधाजननं जपति। प्मेधां ते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती । मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्पकर जौू इति।।

अस्य कर्णयोर्हिरण्य निधाय मेधाजननं जपति 'मेधां ते' इति। उपग्रहणं तस्य मुखसमीपे आत्मनो मुखं निधाय जपार्थम्। मेधाजननमित्यस्य तन्त्रस्या((ख्या। सकृमन्त्रः पर्यायेणोपनिधानमित्येवेफ। अन्ये मन्त्रावृत्तिमिच्छन्ति।।2।।

2. पिता बालक वेफ कान वेफ समीप मुख करवेफ 'मेधा सूक्त' का जाप करेः-प्मेधा ग्रे देवः सविता....पुष्कर स्त्रौ।

3. अंसावभिमृशति। प्अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। वेदो वै पुत्रनामा(सि स जीव शरदः शतमू इति। इन्द्र श्रे ानि द्रविणानि धेह्यस्मे प्रयन्धि मघव ृजीषिन् इति च।।

स्तनबाहोर्मध्यप्रदेशो(सः। अत्र बहुधा विप्रतिप ाः। तत्रैवेफ सकृन्मन्त्रं पर्यायेणांसाभिमर्शनमिच्छन्ति। द्वार्याभिमर्शनवत्। ननु युक्तस्तत्र सकृन्मन्त्रः। द्विवचनायुक्तत्वान्मन्त्रस्य। इह त्वेकवचनयुक्तः। अत आवृत्त्या भवितव्यम् नैतदेवम्। नात्रांसावुच्येते। किं तर्हि? वुफमारः। स चैकः। तस्मान्ना((- वृत्तिरिति। अन्ये मन्त्रविभागमिच्छन्ति। 'अश्मा भव' इत्यनेन दक्षिणमंसम- भिमृशेत् 'इन्द्र श्रे ानि' 'अस्मे प्रयन्धि' इत्याभ्यां सव्यमिति। कथं पुनर्मन्त्रविभागो ज्ञातः? मध्य इतिकरणाम्। नहि क्वचिन्मन्त्रमध्य इतिकरणं पठन्ति। अपरे त्वाहुः। सकृदेव त्रयो मन्त्रा वक्तव्याः। न च मन्त्रविभागः। न च पृथगभिमर्शः। द्वार्याभिमर्शने त्वशक्यत्वात्पृथगभिमर्श इह तु शक्यते युगपदसौ स्प्र ुम्। यत्पुनरूक्तमितिकरणा(ीति। तत्र ब्रूमः। अन्यत्रापि मन्त्रमध्य इतिकारः पठ ते। यथा-'आसीद सदनं स्वमासीद सदनं स्वमिति मा हिंसीर्देवप्रेरितः ;श्रौ0 3. 14द्ध इति। अयमेव नः

५. अथास्यै युग्मेन शलाटुग्लप्सेन त्र्योण्या च शलल्या त्रिभि वुफशपि ूलैरूर्ध्वं सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिः।।

अस्यै अस्याः। युग्मेन समेन। वेफन? शलाटुग्लप्सेन तरूणपफलसंघातेन। शलाटुरित्यपक्वानां पफलानां समाख्या। ग्लप्स इति स्तबक उच्यते। औदुम्बरस्तबवेफन। शाह्यान्तरे द्द त्वात्। तद्भावे(येन। त्रीण्येतानि यस्याः' सेयं त्र्येणी शलली। एतः शुक्ल इत्यर्थः। 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' इति ीप्, तकारस्य नत्वं च। ततो 'रषाभ्यां नो णः' इति रणत्वम्। वुफशपि ुलैः वुफशतरूणैः एतैरेकीकृतैर्ललाअवेफशयोः संधिमारभ्योर्ध्वं सीमान्तं व्यूहति मन्त्रेण। आ मूर्धप्रदेशात्वेफशान्पृथक्करोतीत्यर्थः। एवं त्रिर्व्यूहति। मन्त्रावृत्तिरुक्ता।।५।।

५. तत्पश्चात् पती पूर्ण विकसित अधपवेफ सम संख्या युक्त पफलों वाली पलाश वृक्ष की शाखा से तीन सलाईयों से तथा तीन वुफशा तृणों से मस्तक से प्रारम्भ करवेफ बालों को उफपर की ओर संवारे उस समय पओइम भूर्भुवः स्वः उन तीन व्याहृतियों से तीन बार बालों को संवारे।

ऽ. चतुर्वा।।

चतुर्वा व्यूहति मन्त्रेण।।ऽ।।

ऽ. अथवा चार बार बालों को उपरिवर्णित विधि से संवारे।

६. वीणागाथिनौ संशास्ति प्सोमं राजानं संगायेताम्र इति।।

वीणा च गाथा च वीणागाथे। ते ययोस्तस्तौ तथोक्तौ। तौ संशास्ति संप्रेष्यति। 'सोमं राजानं संगायेताम्' इति।।६।।

६. तब यजमान दो वीणा गाथियों को सोम राजा की स्तुति वेफ लिए प्रैष देः अर्थात् वीणा गाथियों को राजा सोमकी स्तुति वेफ लिए कहे।

तौ चैतां गाथां गायत इत्याह-

७. प्सोमो नो राजा(वतु मानुषीः प्रजा निविष्टचक्रा(सौ इति यां नदीमुपवसिता भवन्ति।।

असावित्यस्य स्थाने यस्या नद्याः समीपे वसन्ति तस्या नामा((मन्त्रण- विभक्त्या ब्रूयाताम्। निवि चक्रा ग े इति।।७।।

७. दोनों सोमगार्थी सोमो नो राजाहुवतु मानुषीः प्रता निवष्ट चक्रा ग ेर जिस भी नदी वेफ समीप ग्राम अथवा निवास हो उसका नाम असौ पद वेफ स्थान पर उच्चारित करे।

8. ब्राह्मण्य वृ(ा जीवपत्यो जीवप्रजा यद्यदुपदिशेयुस्तत्तत्वुफर्युः।।

एवंगुणयुक्ता ब्राह्मण्यो यद्यद्ब्रूयुस्तत्तत्कार्यम्। प्रैषं दत्त्वा स्वि कृदादि सर्वं समापयेत्।।8।।

8. तत्पश्चात् पति-पत्नी दोनो जीवित पति एवं सन्तान वाली वृ(ा ब्राह्मणी जैसा आदेश करे उसको पालन करें।

९. षभो दक्षिणा।।

षभो गौरासेचनसमर्थः तं दक्षिणां दद्यात्। अत्र तु स्वयमेव कर्ता। वुफतः? 'अस्यै मे पुत्रकामायै' इति लि ात्। कस्मै तर्हि दक्षिणा? ब्रह्मणे। यद्यस्ति सः। तदभावे सर्व हितेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः कर्मा त्वा- द्दक्षिणानाम्।।।९।।

९. इस यज्ञ अथवा संस्कार में बैल दक्षिणा में प्रदान करे।

प्रजावता द्द ो मन्त्र प्रजावान् जीवपुत्रेण द्द ो मन्त्रो जीवपुत्रः। यथा सूर्येति। आ ते गर्भ इति सूक्तं प्रजावान्। अग्निरैतु प्रथम इति सूक्तं जीवपुत्रः। आभ्यां सूक्ताभ्यामेवेफ नस्तः करणमिच्छन्ति। अन्ये तूष्णीम्। हशब्दोऽभिमतत्वज्ञापनार्थः।।6।।

7. प्राजापत्य याग की स्थालीपाक आहुती प्रदान करवेफ पत्नी वेफ हृदय प्रदेश का स्पर्श करे और फ्यत्ते सुसीमें हृदये.. .....नियाम्ग् इस मन्त्र का जाप करे।

7. प्रजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वा हृदयदेशमस्या आलाभेत। फ्यत्ते सुसीमे हृदये हितमन्तः प्रजापतौ मन्येऽहं मां तद्विद्वांसं माऽहं पौत्रमधं नियाम्ग् इति।।

प्रजापत्यस्य स्थालीपाकस्यैकदेशं हुत्वा हृदयदेशं हृदयसमीपमस्या आलभेत स्पृशेत। 'यत्ते' इति मन्त्रेण। ततः स्वि कृदादि समापयेत्। इदं कर्म प्रतिगर्भमावर्तते। गर्भसंस्कारत्वात्। प्रथमगर्भे तृतीयमासि यदि गर्भो न विज्ञातस्तदा चतुर्थे वुफर्यात्। विज्ञाते गर्भे तिष्ये पुंसवनम्। 'तत्तृतीये मास्यन्यत्र गृ ेः' इति च स्मरणात्। गृ ः प्रथमगर्भः। प मे मास्य निष्पत्तिर्भवति। स्वयमेव चास्य कर्ता। माऽहं पौत्रमिति लि ात्। तदभावे देवरः।।7।।

चतुर्दशं खण्डम्

1. चतुर्थे गर्भमासे सीमन्तो यनम्।।

सीमन्तो यस्मिन्कर्मण्यु ीयते तत्सीमन्तो यनम्। चतुर्थे मासि कार्यम्। इदं कर्म न प्रतिगर्भमावर्तते। स्त्रीसंस्कारत्वात्। नन्वयं गर्भसंस्कारः। 'एवं तं गर्भमाधेहि' इति मन्त्रलि ात्। सत्यम्। तथाऽपि नाऽऽवर्तते। आधारसंस्कारस्य प्राधान्यात्। वुफतः प्राधान्यमिति चेत्। सीमन्तो यनमिति समाख्याबलात्। आधारस्य च संस्कृतत्वात्। संकृत्संस्कृता यं यं गर्भं प्रसूते, स सर्वः संस्कृतो भवेत्। तेनाऽऽवृत्तिर्न भवतीति सि(म्।।1।।

1. पत्नी वेफ गर्भ धारण वेफ चौथे महीने सीमन्तोन्नयन संस्कार वेफ यज्ञ का सम्पादन करे। अर्थात् चौथे गर्भ मास में सीमन्तोनयन संस्कार करे।

2. आपूर्यमाणपक्षे यदा पुसां नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्।।

शुक्लपक्षे यदा पुसां नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्तदेदं कर्म कार्यम्। पुंसा नक्षत्रेण। पुंनामधेयेन नक्षत्रेणेत्यर्थः। तिष्यो हस्तः श्रवणः, इत्यादिना चन्द्रमा युक्तः स्यादिति वचनं प्रकर्षेण युक्ते चन्द्रमसि यथा स्यात्। एतदुक्तं भवति। 'ष घटिकासु मध्ये मध्यमत्रिंशद्घटिकासु वुफर्यादिति'।।2।।

2. शुक्ल पक्ष में जब चन्द्रमा पुंसा नक्षत्र से युक्त हो यथा पुर्नवसु, हस्त, श्रवण आदि नक्षत्र से युत्तफ चन्द्रमा वाले दिन सीमन्तोन्नयन करे।

3. अथाग्निमुपसमाधाय प ादस्याऽऽनडुहं चर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीवमुत्तर- लोम तस्मि ुपवि ायां समन्वारब्धायां 'धाता ददातु दाशुषे' इति द्वाभ्यां फ्राकामहम्ग् इति द्वाभ्यां फ्नेजमेष प्रजापते न त्वदेतान्यन्यग् इति च।।

जुहुयादिति शेषः अथशब्दोऽन्यस्मिन पि काले भवतीदं कर्मेति ज्ञापनार्थः। कस्मिन्? ष ा मयोर्मासयोः शाह्वान्तरे चायं कालो विहितः। अग्निमुपसमाधायेत्यादि गृहप्रवेशनीये व्याख्यातम्। आज्याभागान्तं कृत्वा 'धाता ददातु दाशुषे' इत्यादिभिर ाावाज्याहुतीर्जहुयात्।।3।।

3. यजमान अग्नि की स्थापना करवेफ, पूर्वदिशा में गर्दन का भाग करते हुए, अग्नि वेफ पश्चिम भाग में, बैल का चर्म बिछाए जिसवेफ बाल उत्तर दिशा की ओर होंऋ उसपर पत्नी को बैठा कर, अग्नि स्थापन वेफ पश्चात् आज्याहुती प्रदान करवेफ, धाता ददातु....ऱ आदि दो मन्त्रों से तथा फ्राकामहम...ऱ आदि अन्य दो मन्त्रों से तथा नेजमेषे प्रजापते आदि मन्त्रों से आठ आज्याहुती प्रदान करे। यजमान आहुती प्रदान करे तथा उसकी पत्नी बैल वेफ चर्म पर बैठी हुई पती को पकड़ कर बैठे।

गर्भसहितो मासो गर्भमासः तिष्येणेति 'नक्षत्रे च लुपि' इत्यधिकरणे तृतीया। तिष्येणेति प्राशनकर्मणा संबध्यते। तस्य प्रधानत्वात्। नोपवासेन। गुणत्वात्। तेन पुनर्वसुनोपोषितायाः पत्न्यास्तिष्येणेदं कर्म करोति। तत्र प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्या(ज्यभागान्तं कृत्वा वक्ष्यमाणं कर्म वुफर्यात्। समानं रूपं यस्य स सरूपः। सरूपो वत्सो यस्याः सा तथोक्ता। गोग्रहणं सरूपवत्साया अभावे(सरूपवत्सा गौर्ग्राह्या न सरूपवत्सां त्यजेदित्येव- मर्थम्। वीप्सावचनं कथम्? प्रतिप्रतिसूतं द्वौ द्वौ माषौ स्यातामिति। यदि वीप्सा न क्रियेत तर्हि स्थालीस्थदधन्येव माषयोर्यवस्य च प्रक्षेपः स्यात् तस्य सप्तमीनिर्दि त्वात्। तस्मादावृत्त्यर्थं वीप्साद्विर्वचनम्। पुनर्दधिग्रहणं दध्नः प्राशनार्थम्। अन्यथा पूर्वस्य सप्तमीनिर्दि त्वाद्दध्नः प्राशनं न स्यात् प्रसूते दधि प्रक्षिप्य तस्मिन्दधनि माषयवानां प्रक्षेपणार्थं पूर्वं दधिग्रहणम्। अण्डरूपेण माषौ दद्यात्। शिश्नरूपेण यवम्। तथा दृ त्वात्।।2।।

2. यदि उपनिषद् का अध्ययन नहीं किया गया है। तो वह उस कर्म को इस प्रकार जाने-गर्भमास वेफ तृतीय मास में, तिष्य नक्षत्र में, उपवास वेफ बाद सारूपपत्सा; अपने समान रंग वेफ बछड़े वालीद्ध गाय वेफ दूध से बनी दही में दो दो माष ;उड़दद्ध वेफ दाने तथा एक यव अर्थात जौ वेफ धान्य को मिला कर पत्नी को खिलाए।

3. किं पिबसि किं पिबसीति पृ ा पुंसवनं पुसवनमिति त्रिः प्रतिजानीयात्।।

किं पिबसीति प्रश्नः। पुंसवनमिति प्रतिवाक्यम्। तत्र प्रतिप्रश्ने त्रिर्ग्रहणमाचार्येण कृतम्। अतस्तस्यैव त्रित्वप्राप्तावुभयोस्तुल्यत्वज्ञापनार्थ-मुभयत्र वीप्साद्विर्वचनम् तेन प्रश्नो(पि त्रिर्वाच्य इति सि(म्।।3।।

3. पति द्वारा पफिंफ पिबसिर क्या पीओगीर यह वाक्य दोहराए जाने पर अर्थात् दो बार पूधे जाने पर पत्नी तीन बार उत्तर दे पफुंसवनम्र पुंसवनम् 'पुसवनम' पुत्र चाहिए पुत्र चाहिए, पुत्र चाहिए।

4. एवं त्रीन्प्रसूतान्।।

अनेन विधिना त्रीन्प्रसूतान्प्राशयेत्। एकस्मिन्प्रसूते प्राप्ते त्रयः प्रसूतास्तुल्यधर्माणो विधीयन्ते।।4।।

4. इस विधि से यजमान पत्नी को तीन कटोरी भरी हुई दही प्रदान करे।

5. अथास्यै मण्डलागारच्छायायां दक्षिणस्यां नासिकायामजीतामोषधीं नस्तः करोति।।

कर्मान्तरत्वात्कालान्तरप्राप्तावानन्तर्यार्थो(थिशब्दः। इद त्वनलोभनम् वुफतः? 'मा(हं पौत्रमधं नियाम्' ;गृ0 1. 13. 7द्ध इति मन्त्रलि ात्। पुत्रसंबन्ध्यशोभनं मा(हं नियामित्यर्थः। अस्यै, अस्याः मण्डलागारं कृत्वा, तस्य च्छायायामुपवेश्यास्या दक्षिणस्यां नासिकायां दूर्वां नस्तः करोति। दक्षिणाग्रहणमिन्द्रियाणामन त्वज्ञापनार्थम्। अजीतेति गुणनाम् अजीर्णेत्यर्थः। सा चौषधी दूर्वेत्युदिशन्ति। नयतः करणं नासिकायां रससेचनम्।।5।।

5. तत्पश्चात् गोलाकार वेदी की छाया में ;मण्डलागारद्ध बैठी हुई पत्नी की दक्षिण पार्श्व भाग वाली नासिका में अजीता ओषधी वेफ रस की बून्द टपकाए।

6. वुफछ आचार्यो का मत है। कि पत्नी वेफ दक्षिण नासाग्र में अजीता ओषधी का रस डालते समय'प्रजावान्' तथा जीवपुत्र' सूक्तों का उच्चारण करे।

6. प्रजावज्जीवपुत्राभ्यां हैवेफ। पफआ ते गर्भो योनिमैतु पुमान्बाण इवेषुधिम्। आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः। अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सो(स्यै प्रजां मु तु मृत्युपाशात्। तदयं राजा वरुणो(नुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमधं न रोदात्र इति।।

यदि विदेशस्थं चैत्यं यजेत्तदा पलाशदूतेन बलिं हरेत्। पलाशेन दूतं वीवधं च वुफर्यात्। यत्र वेत्थेत्यृचा द्वौ पिण्डौ कृत्वा, वीवधेऽभ्याधाय दूताय प्रयच्छेत् तयोरेवंफ पिण्डं निर्दिश्य दूतं वदति 'इमं तस्मै बलिं हर' इति। अपरं दूताय प्रयच्छति 'अयं तुभ्यम्' इति। एतयर्चेति वचनमन्यत्र पादग्रहणेऽपि क्वचित्सूक्तं भवतीत्येवमर्थ्। तेन 'आ त्वा हार्षमन्तरेधि' इति ' षभं मा समानानाम्' इति च सूक्तं सि(म्। अन्ये पुनरभ्यासार्थं मन्यन्ते। पिण्डकरणे, वीवधाभ्याधाने, दूताय प्रदानं इति।।2।।

2. यदि चैत्य कहीं दूर विदेश में स्थापित किया गया है। और उसका पूजन होना है। तो वह अपने पलाश-दूत वेफ द्वारा फ्यत्र वेत्थ ....ऽ इस)चा वेफ द्वारा यजमान अन्न भाग वेफ दो पिण्ड बनाकर उनमें से एक पिण्ड को निर्दिष्ट करवेफ पलाशदूत से कहे, फ्इदं तस्मै बलि हरऽ और दूसरे पिण्ड को निर्दिष्ट करवेफ कहे 'अयंतुम्यं' उस प्रकार दोनों पिण्ड पलाश दूत को प्रदान करे।

3. प्रतिभयं चेदन्तरा शस्त्रमपि किंचित्।।

कर्तु ैत्यस्य च मध्ये भयमस्ति चेच्छस्त्रमपि किंचिद्दद्याद्दूताय।।3।।

3. यदि मार्ग में किसी प्रकार का भय हो तो यजमान दूत को कोई शास्त्र प्रदान करे।

4. नाव्या चे द्यन्तरा प्लवरूपमपि किंचिदनेन तरितव्यम् इति।।

उभयोर्मध्ये यदि नावा तार्या नदी स्यात्तदा प्लवरूपमपि किंचिद्दद्यादनेन मन्त्रेण।।4।।

4. यदि चैत्य और घर में बीच कोई नदी हो जिसे नाव से पार करना हो तो दूत को कोई तैरने की वस्तु ;प्लवद्ध प्रदान करे और फ्अनेन तरितव्यमऽ इस मन्त्र का उच्चारण करे।

5. धन्वन्तरियो ब्रह्माणमग्निं चान्तरा पुरोहितायाग्रे बलिं हरेत्।।

यदि धन्वन्तरिश्चैत्यो भवति तदा ब्रह्माणमग्निं चान्तरा पुरोहिताग्रे बलिं हरेत् पुरोहिताय नम इति। ततो धन्वन्तरये नम इति। धन्वन्तरौ विदेशस्थे त्वयं विशेषः। धन्वनतरेश्च पुरोहितस्य चैकः पिण्डो देयः द्वितीयो दूताय।।5।।

5. धन्वन्तरि यज्ञ में ब्रह्मा और यज्ञाग्नि मध्य में वेदी पर बैठे हुए पुरोहित को फ्पुरोहिताय नमःऽ यह मन्त्र पढ़ कर बलि प्रदान करे तत्पश्चात् फ्धन्वन्तरये नमःऽ यह मन्त्र पढ़ कर दूसरी आहुति ;बलिद्ध प्रदान करे।

त्रयोदशं खण्डम्

1. उपनिषदि गर्भलम्भनं पुंसवनमनवलोभनं च।।

आम्नातमिति शेषः। गर्भो लभ्यते येन कर्मणा निषिक्तं वीर्यममोघं भवति तद्गर्भलम्भनम्। पुमांल्लब्धो जायते येन तत्पुंसवनम्। पुमांस्तु सन्येन कर्मणा नावलुप्यते तदनवलोभनम् वर्णविकारो द्र ष्टव्यः। पृषोदरादित्वात्। एतानि कस्यां दुपनिषद्याम्नातानि। न वेफवलमेतानि। किं तर्हि? गर्भाधानादय आत्मज्ञानपर्यन्ता आम्नाताः अस्मच्छाखायां सा न विद्यते। अतस्तत्कर्म कर्तव्यमित्युपदिश्यते।।1।।

1. उपनिषद में फ्बच्चे को गर्भ में धारण करने वेफ लिए किये जाने वाले यज्ञ 'गर्भालम्भनं' तथा बेटे को ;पुल्लिमं बच्चे पुत्र कोद्ध गर्भ में धारण किए जाने वेफ लिए किए जाने वाले यज्ञ फ्पुंसवनऽ यज्ञ का तथा गर्भ को बुरी आत्माओं से तथा क्षरण से सुरक्षा वेफ लिए किया जाने वाला यज्ञ 'अनवलोभन' का वर्णन किया गया है।

तस्या उत्स त्वाद्यदि तां नाधीयीत तत एवं वुफर्यादित्याह-

2. यदि नाधीयात्तृतीये गर्भमासे तिष्येणोपोषितायाः सरूपवत्साया गोर्दधनि द्वौ द्वौ तु माषौ यवं च दधि प्रसृतेन प्राशयेत्।।

गर्भाधानमाचार्येणानुक्तामिति कृत्वा न कार्यमित्येवेफ। अन्ये पुनः शौनकाद्युक्तमार्गेण कार्यमित्याहुः। इदं तु पुंसवनम्।

12. इसवेफ बाद पशु वेफ सभी अ ों से ग्यारह टुकड़े काटकर, उन सभी को शामित्र अग्नि में पकाता है और हृदय वेफ भाग को शूल में डालकर शामित्र अग्नि में पकाकर स्थाली पाक की आहुति से पूर्व भाग में उसकी आहुति प्रदान करता है।

13. अवदानैर्वा सह।।

अवदानैर्वा सह स्थालीपावंफ जुहोति। न पृथक्। यदा तु पृथग्जुहोति तदा स्वि कृदपि पृथक्कार्यम्।।13।।

13. अवदान भाग वेफ साथ स्थाली पाक की आहुति भी प्रदान करता है अर्थात् स्थाली पाक और अवदान की आहुति साथ-साथ प्रदान करता है।

14. एवैफकस्यावदानस्य द्विर्द्विरवद्यति।।

द्विर्ग्रहणं देशानियमार्थम्। एवैफकस्यावदानस्य यस्मिन्कस्मिंश्चिद्देशे द्विर्द्विरवद्यति। प ावत्ती तु त्रिह्निरवद्यति। उपस्तरणप्रत्यभिघारणे कृत्वा जुहोति।।14।।

14. अवदान आहुति में से दो-दो भाग करता हुआ आहुति प्रदान करता है।

15. आवृतैव हृदशूलेन चरन्ति।।

स्वि कृत्सर्वप्रायाि तान्तं कृत्वा, तूष्णीं हृदयशूलेन चरन्ति। आवृद्ग्रहणं मन्त्रवर्जमन्ये धर्माह्नेतायां दृ ा यथा स्युरित्येवमर्थम् तेन शुष्कार्द्रयोः संधिदेशे शूलस्योद्वासनम्। तस्योपरिष्टादपउपस्पर्शनम्। समिद्ग्रहणमुपस्थानं समिदाधानमित्येते धर्माः कार्याः। ततः पूर्णपात्रनिनयनादि समापयेत।।15।।

15. अन्त में बिना मन्त्र उच्चारण किये हुए हृदय शूल की आहुति प्रदान करता है।

द्वादशं खण्डम्

1. चैत्ययज्ञे प्राक् स्वि कृतश्चैत्याय बलिं हरेत।।

चित्ते भवश्चैत्यः यदि कस्यैचिद् दैवतायै प्रतिशृणोति। शङ्करः पशुपतिः, आर्या, ज्ये ा, इत्येवमादयः। यद्यात्मनोर्ऽभिप्रेतं वस्तु लब्धं ततस्त्वामहमाज्येन स्थालीपावेफन पशुना वा यक्ष्यामीति। ततो लब्धे वस्तुति तस्य तेन यागं वुफर्यात्स चैत्ययज्ञः। तत्र स्वि कृतः प्राक् चैत्याय बलिं हरे मस्कारान्तेन नामाधेयेन। पुनश्चैत्यग्रहणं प्रत्यक्षहरणार्थम्। तेन चैत्यायतन एवोपलेपनादि वुफर्यात्।।1।।

1. चैत्य-यज्ञ में स्विष्टकृत् अग्नि से पूर्व चैत्य को आहुति ;बलिद्ध प्रदान करे।

;किसी कामना वेफ लिए किसी इष्ट देवता से अगर मनौती मांगी जाय कि मुझे अमुक लाभ होने पर मैं तुम्हारा यज्ञ करूँगा अगर वह कामना पूर्ण हो जाए तो उस देवता वेफ निमित्त कृतज्ञता वेफ लिए किया जाने वाला या चैत्य कहलाता है।

2. यद्यु वै विदेशस्थं पलाशदूतेन यत्र वेत्थ वनस्पत इत्येतयर्चा द्वौ पिण्डौ कृत्वा वीवधेर्ऽभ्याधाय दूताय प्रयच्छेदिमं तस्मै बलिं हरेति चैनं ब्रूयादयं तुभ्यमिति यो दूताय।।

10. शामित्र अग्नि वेफ पश्चिम भाग में वुफशाओं वेफ उफपर पशु को पूर्व अथवा पश्चिम में मुख्र करवेफ तथा उत्तर दिशमें पेर करवेफ अध्वर्यु पशु की नाभि में वुफशा का पता छुपाता है। तब वह पशु वेफ नाभि प्रदेश वेफ समीप वपा उत्ख्रनन करवेफ दो वपा श्रवणी लकड़ियों से पकड़ कर जल से वपा भाग का प्रक्षालन करवेफ शामित्र अग्नि में छुपाता है। तब शामित्र को अग्नि वेफ समीप ला कर यज्ञ अग्नि में पकाता है तत्पश्चात् अग्नि की परिक्रमा करवेफ वपा की आहुति प्रदान करता है।

11. एतस्मि `वाग्नौ स्थालीपावंफ श्रपयन्ति।

एतस्मि `वौपासन एवाग्नौ पश्च त्वेन पशुदेवतायै स्थालीपावंफ श्रपयन्ति। बहुवचनं तु कर्तुर्गनियमार्थम्। एतस्मि ति वचनं शामित्रे मा भूदित्येवमर्थम्। इतरथा शामित्रस्य श्रपणार्थत्वात्तस्मि `व स्यात्।।11।।

11. इसी औपाशन अग्नि में स्थाली पाक को भी पकाता है।

12. एकादश पशोरवदानानि सर्वा `भ्यो(वदाय शामित्रे श्रपयित्वा हृदयं शूले प्रताप्य, स्थालीपाकस्याग्रतो जुहुयात्।।

पशोर्ग्रहणं यानि त्रेतायामेकादशसावद नानि पशोः प्रसि(ानि तानि यथा स्युरित्येवमर्थम्। हृदयं जिह्वा वक्ष इत्येवमादीनि। सर्वा ग्रहणमेकादश- भ्यो(न्यान्यपि यान्य ानि दृष्टानि तेषामपि विकल्पेन ग्रहणार्थम्। एवमवदाय तानि शामित्रे श्रपयति। हृदयं शूले कृत्वा तथा प्रतापयति यथा शृतं भवति। ततः शृतान्यभिघार्योद्धास्य। ततः स्थालीपाकस्यैकदेशं पूर्वं जुहुयात्ततो(वदानानि।।12।।

4. धान और जौ मिश्रित जल पशु को पिला कर शेष बचे हुए जल को पशु वेफ दाएं ख्ुर पर डालता है।

5. आवृतैव पर्यग्नि कृत्वोद ं नयन्ति।।

आवृतैव पर्यग्नि कृत्वा, पशुमुद ं नयन्ति। आवृतैव तूष्णीमेवेत्यर्थः। मन्त्रप्रतिषेधो मन्त्रवर्जमन्ये धर्माहेतायां दृष्टाः कथं स्युरिति त्रिः पर्यग्निकरणादयः।।5।।

5. तब पशु वेफ चारों ओर मौन रहते हुए अग्नि से परिक्रमा करता है। अर्थात् पशु वेफ चारों ओर अग्नि घुमाता है।

6. तस्य पुरस्तादुल्मुवंफ हरन्ति।।

तस्य पशोः पुरस्तादग्रत उल्मुवंफ प्रदीप्तं का ं हरन्ति। तस्यग्रहणमग्रतो नयनं यथा स्यात्। नापि पूर्वेण। नापि प्रथममित्येवमर्थम्। अन्यथा पुरस्ताच्छब्दस्यानेकार्थत्वाद्दिक्कालवाचिनोऽपि ग्रहणं स्यात्।।6।।

6. पशु वेफ सामने जलती हुई लकड़ी घुमाता है।

7. शामित्र एष भवति।।

एषोऽग्निः शामित्रो भवति। तस्मात्प्रागुक्ते शामित्रायतने तस्य प्रति ापनं भवति।।7।।

7. यह शामित्र अग्नि कहलाती है।

8. वपाश्रपणीभ्यां कर्ता पशुमन्वारभते।।

वपाश्रपण्यौ काश्मर्यम यौ भवतः। तत्रैका विशाख्रा परा सशाख्रा। ताभ्यां योऽस्य कर्मणः कर्ताऽध्वर्युस्थानीयः स्यास पशुमन्वारभते।।8।।

8. अध्वर्यु पशु को दो वपाश्रपणी समिधाओं से स्पर्श करता है।

9. कर्तारं यजानः।।

अध्वर्युं यजमानोऽन्वारभते।।9।।

9. यजमान अध्वर्यु का स्पर्श करे।

10. पश्चाच्छामित्रस्य प्राव्फशिरसं प्रत्यव्फशिरसं वोदक्पादं संज्ञप्य पुरा नाभेस्तृणमन्तर्धाय वपामुत्खिद्य वपामवदाय वपाश्रपणीभ्यां परिगृह्याि रभिषिच्य शामित्रे प्रताप्याग्रेणैनमग्निं हृत्वा दक्षिणत आसीनः श्रपयित्वा जुहुयात्।।

शामित्रस्य पश्चिमे देशे बर्हिरुपस्तृणाति कर्ता। 'तं यत्र निहनिष्यन्तो भवन्ति तदध्वर्युर्बर्हिरुधस्तादुपास्यति' इति श्रुतेः। ततस्तस्मिन्बर्हिषि प्राव्फशिरस्त्वंफ प्रत्यव्फशिरस्त्वंफ वोदव्फपादं पशुं संज्ञपयति शमिता। उदव्फपादमित्येव सि(प्राक्शिरस्त्वंफ वेति वचनमूर्ध्वशिरसः संज्ञपनं मा भूदित्येवमर्थम्। ततः कर्ता पुरा नाभेर्वा ़नाभेर्दक्षिणतो नाभेरासीनो वपास्थानं ज्ञात्वा, तत्र तृणमन्तर्धाय तिर्यक् छित्त्वा, वपामुत्खिद्यदेदु(रेत्। वपास्थानं तु दक्षिणस्य पार्श्वस्य विविक्तप्रदेशः। यदि पशुः प्राक्शिराः संज्ञप्तः तु दक्षिणस्य पार्श्वस्य विकिक्तप्रदेशः।। यदि पशु प्राक्शिरा संज्ञप्तः तथा सति दक्षिणं पार्श्वमुत्तानं कृत्व तृणान्तर्धानादि वुफर्यात्। ततो वपामवदायावख्रण्ड पुनर्वपाग्रहणं कृत्स्नावदानार्थम्। तेनान्येष्वव- दानेष्वकृत्स्नानि ग्रहणानि भवन्ति। ततो वपाश्रपणीभ्यां परिगृह्याि र- भिषिच्य प्रक्षाल्य शामित्रे प्रताप्य। प्रतापनं तुधर्ममात्रम्। श्रपणस्योत्तत्र विधानात्। ततः शामित्रस्योत्तरतो गत्वाऽग्रेणैनमौपासनमग्निं वपां हृत्वास्य दक्षिणत आसीनः श्रपयित्वा श्रपितां तां वपामभिघार्य बर्हिषि प्लक्षशाख्रासु निधाय, उभावप्यग्नी यथागतं परागत्य तुहुयादमुष्मै स्वाहेति। वपाश्रपणकाल आज्येनाऽभिघार्य श्रपयति। 'तामध्वर्युः ूवेणाघास्य ाह' इति श्रुतेः। 'यद्यपि चतुस्त्वत्ती यजमानः स्यात। अथ प ावत्तैव वपा' इति श्रुतेर्वपा प ावत्ता भवति। आज्यं हिरण्यशल्को वपा हिरण्यशल्कमाज्यमिति। हिरण्याभावे तु द्विराज्यं ततो वपा पुनर्द्विराज्यामिति।।10।।

एतत्तन्त्रं पाकयज्ञानां सर्वेषां भवतीत्यर्थः। पाकयज्ञग्रहणं स्थालीपाकसदृशानां हुतानामेव तन्त्रं यथा स्यात्पहुतब्रह्मणिहुतानां मा भूदित्येवमर्थम्। अ संयतिस्तन्त्रम्। विध्यन्त इत्यर्थः। यद्यपि सर्वमुच्यते तथाऽपि न प्रधानदेवताः प्रसजन्ति। 'देवतागमे नित्यानामपायः' ;श्रा0 2.1द्ध इति बाधदर्शनात्।।25।।

25. यह विधि विधान सब पाकयज्ञों में अपनाया जाता है।

26. हविरुच्छिष्टं दक्षिणा।।

उच्छिष्टं हविर्दक्षिणां ददाति यद्यस्ति ब्रह्मा। तदभावे ब्राह्मणेभ्यः। कर्मा त्वाद्दक्षिणानाम्।।26।।

26. आहुति भाग से बचे हुए स्थालीपाक को पुरोहितों को दक्षिणा स्वरूप प्रदान करता है।

एकादशं ख्रण्डम्

1. अथ पशुकल्पः।।

उक्तोऽर्थः। अत्र पशोस्तन्त्रमात्रमुच्यते। न पुनः पशुर्विधीयते। कल्पग्रहणात्। एवं तर्ह्यपाकरणविधानमनर्थकम्। अष्टाकाशूलगवयोः प्रतिषेधात्। प्रोक्षणोपाकरणवर्जं प्रोक्षणादि समानं पशुनेति च। उच्यते। मधुपवेर्फ ॐ वुफ्रूतेति यदा ब्रूयात्तदाऽर्थवत्। तत्र ' त्विजां बार्हस्पत्यः, स्नातक- स्यैन्द्राग्नः, ऐन्द्रो गज़ः, आचार्यादीनामाग्नेयः, प्रियस्य मैत्रः, वरस्य प्राजापत्यः, अतिथेरग्नावै ानरः, 'इत्येवं शाह्रान्तरे दृश्यते। काम्यपशुषु चार्थवत्।।1।।

1. अब पशुभाग ;पशु कल्पद्ध का वर्णन करेंगे।

2. उत्तरतोऽग्नेः शामित्रस्याऽऽयतनं कृत्वा पाययित्वा पशुमाप्लाव्य पुरस्तात्प्र ्मुख्रवस्थाप्यग्निं दूतमिति द्वाभ्यां हुत्वा सपलाशयाऽऽ- र्द्रशाख्रया पश्चादुपस्पशेद् पअमुष्मै त्वा जुष्टमुपाकरोमिग् इति।।

आज्यभागान्तं कृत्वोत्तरतोग्नेः शामित्रस्याऽऽयतनं कृत्वा, ततः पशुं पाययित्वा ततोऽऽ : पशुमाप्लाव्याग्नेः पुरस्तात्प्रत्य ्मुख्रमवस्थाप्य, ततोऽग्निं दूतमिति द्वाभ्यां हुत्वा सपलाशया सपर्णयाऽऽर्द्रशाख्राऽ- शुष्कशाख्रया। प ादिति पृ देशे। उपस्पृशेत्पशुं 'अमुष्मै त्वा' इति मन्त्रेण। अमुष्मैशब्दः पूर्ववत्। अग्निं दूतमित्यस्य प्रतीकस्य बहुगतत्वेऽपि हीनपादग्रहणसामर्थ्यात्यसूक्तादेर्ग्रहणम् तर्हि द्वे सूक्ते प्रातप्नूः। न। यत्र सूक्तफद्वयमिच्छति तत्र सूक्ते इति करोति। यथा 'उप प्र यन्त इति सूक्ते ;श्रौ0 4.13द्ध तसमादृचौ भवत इति सि(म्।।2।।

2. यज्ञाग्नि वेफ उत्तर भाग मे वंह शामित्र अग्नि वेफ लिए स्थान बनाता हैः तब वह यज्ञीय पशु को पानी पिला कर नहलाता है। तब वह पशु को अग्नि वेफ पूर्व भाग में पश्चिमाभिमुख्र स्थापित करवेफ अग्नि दूतं .....उन दो मन्त्रों से आहुतियों प्रदान पशु को पत्तों सहित पलाश वृक्ष की गीली शाख्रा से स्पर्श करता हुआ्र अमुष्मै त्वा जुष्टामिग् उस मन्त्र का उच्चारण करता है।

3. व्रीहियवमतीभिर्ऽ : पुरस्तात्प्रोक्षति, पअमुष्मै त्वा जुष्टं प्रोक्षामिग् इति।।

व्रीहियवमिश्राभिर्ऽ : पशुं पुरस्तादग्रतः प्रोक्षति 'अमुष्मै त्वा' इति मन्त्रेण।।3।।

3. अमुष्मै त्वा जुष्ट प्रोक्षामि' यह मन्त्र बोलता हुआ जौ और धान मिश्रित जल से पशु पर जल का छिड़काव करता है। इसे प्रोक्षण कर्म कहते हैं।

4. तासां पाययित्वा दक्षिणमनु बाहुं शेषं निनयेत्।

तासां व्रीहियवमतीनापामेकदेश पशुं पाययित्वा दक्षिणं बाहुमनु शेषं निषि ेत् तासांग्रहणं प्रोक्षणप्रतिषेधेऽप्यष्टकायां पायनं यथा स्यादित्येवमर्थम्।।4।।

अथवा उत्तर में समाप्त होने वाली होती हैं। लेकिन स्विष्टकृत अग्नि को प्रदान की जाने वाली आहुति उत्तर-पूर्व में प्रदान की जानी चाहिए।

18. मध्यात्पूर्वार्धाच्च हविषोऽवद्यति।।

हविषो मध्यात्पूर्वार्धाच्चा पर्वमात्रं हविरवद्यतीति देशो नियम्यते।।18।।

18. तत्पश्चात् यजमान हविष अर्थात पुरोडाश वेफ अथवा स्थाली पाक वेफ आहुति प्रदान करने वेफ लिए टुकड़े काटता है। सर्वप्रथम हविष वेफ मध्य से काटता है और पूर्वार्ध वेफ अगुष्ट वेफ पर्व वेफ परिमाण वेफ टुकड़े काटता है।

19. मध्यात्पूर्वार्धात्पश्चार्धादिति पञ्चावत्तिनाम्।।

पञ्चावत्तिनां तु मध्यात्पूर्वार्धात्पश्चार्धादित्येवमदवदानं भवति। प ार्धाच्चे- त्येतावतैव सिं(मध्यात्पूर्वार्धादिति पुनर्वचनं प्रत्यक्संस्थता यथा स्यात्। प्राक्संस्थता मा भूदित्येवमर्थम्।।19।।

19. प ावत्तिन् यजमान पहले मध्यभाग से पिफर पूर्व भाग से और अन्त में पश्चिम भाग से टुकड़े काटता है।

20. उत्तरार्धात्सौविष्टकृतम्।।

सर्वेषां हविषामुत्तरार्धात्स्विष्टकृदर्थमवदानं प्रधानादाना ूयः सकृत्सकृदव- ग्रण्डयति। पञ्चावत्ती त्वेवं सकृत्सकृद्गृहीत्वा पुनरपि पूर्ववदानदेशस्य पुरस्तात्सकृत्सकृदवद्येत्। तथा दृष्टत्वात्। ततो द्विरुपरिष्टादभिघारयति पञ्चावत्ती चतुरवत्ती च।।20।।

20. दक्षिण भाग से स्विष्टकृत अग्नि वेफ लिए भाग काटता है।

21. नात्र हवींषि प्रत्यभिघारयति स्विष्टकृतं द्विरभिघारयति।।

स्विष्टकृति हविःशेषं न प्रत्यभिघारयति। अत्रग्रहणमत्रैव नाभिघारयति न प्रधानहविः स्यात्। तन्न चेष्यते।।21।।

21. इसवेफ बाद कटे हुए स्विष्टकृत हविष् भाग पर दूसरी बार धृत डालता है। शेष भाग पर नहीं।

22. फ्यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्वान्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहाग् इति।।

अनेन मन्त्रेण स्वि कृतं जुहुयात्।।22।।

22. फ्यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं .....स्वाहाग् इस मन्त्र वेफ द्वारा स्विष्टकृत आहुति प्रदान करता है।

23. बर्हिषि पूर्णपात्रं निनयेत्।।

यत्पूर्वं निहितं पूर्णपात्रं तदधुना बर्हिषि निनयेत्। निषि ेदित्यर्थः।।23।।

23. यजमान वुफशाओं पर जल से भरे हुए पात्र से पूरा जल डालता है।

24. एषोऽवभृथः।।

यदिदं पूर्णपात्रनिनयनमेषोऽस्य कर्मणोऽवभृथो भवति। अवभृथवचनम- वभृथधर्मप्राप्त्यर्थम् तेन तत्कालोऽभ्युक्षणं च भवति। कालस्तु सर्वप्रायश्चित्तेभ्य ऊर्ध्वं प्रावृफ संस्थाजपात्। अनेनैवाभ्युपायेन सर्वप्रायि - त्तानि संस्थाजप सर्वत्र कर्त्रा कार्याणीत्युक्तं भवति। निस्सनोपवेशने ब्रह्मजपः सर्वप्रायश्चित्तानि संस्थाजप इति प ब्रह्मणो भवन्तीत्युक्तम्। तत्रैवं क्रमः-पूर्वं कर्ता सर्वप्रायि त्तानि जुहोति ततो ब्रह्मा सर्वप्रायि त्तानि जुहुयात्। ततः कर्ता पूर्णपात्रं निनयति। ततः कर्ता संस्थाजपेनोपतिष्टते। ततो ब्रह्मोपतिष्टते। ततः कर्तुः परिसमूहनपार्युक्षणे इति। अभ्युक्षणं च 'आपो अस्मान, इदमापः सुमित्र्या नः' इत्येतैर्मन्त्रैः।।24।।

24. यह ;वुफशाओं पर पूर्ण वुफम्भ का निनयनद्ध अवभृथ कहलाता है।

25. पाकयज्ञानामेतत्तन्त्रम्।।

उत्तरतोऽग्नेराज्यमुत्पूयाग्नेः पश्चाद्बर्हिरास्तीर्याऽऽज्यमासाद्य, ततः शृतानि हवींष्यभिघार्योदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्य तत इध्ममभिघार्य 'अयं ते' इति मन्त्रेणाग्नावादध्यात्। बर्हिष्यासाद्यपुनभिघार्येति वेफचित्पटन्ति।।12।।

12. अभिमन्त्रित आहुतियों वेफ ऊपर घी ;अभिघारद्ध डाल कर उधवासन करवेफ अर्थात् पानी का छिंटा लगाकर पवित्र करवेफ अग्नि वेफ उत्तर भाग में ला कर वुफशाओं पर स्थापति करवेफ तथा समिधाओं को भी घृत से अभिघृत करवेफ 'अयं त इदं आत्मा......' इस मन्त्र का उच्चारण करे।

13. तूष्णीमाघारावाघार्याऽऽज्यभागौ जुहुयाद् पअग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाप इति।।

तूर्ष्णीग्रहणं मन्त्रवर्जमन्ये धर्माः शाह्रान्तरदृष्टाः कथं प्रवर्तेन्निति। उत्तरपश्चिमाया आरभ्य दक्षिणपूर्वां प्रत्यविच्छिन्नमाज्यधारां हरेत्। तथा दक्षिणपश्चिमाया आरभ्य उत्तरपूर्वां प्रत्याघारयेत्। ुवेणोभौ जुहुयात्। वुफतः? यत्राऽऽज्यहोमे साधनान्तरानुपदेशस्तत्र ुवेण होम इति साधितम् 'एवंभूतोऽज्यत्तफहोमे0 ;श्रौ0 1.11द्ध इति सूत्रे। व्याख्यातृभिर्यावन्मात्रं स्वशाह्रानुत्तफमपेक्षितं तावन्मात्रं ग्राह्यं नतु स्वशाह्र उत्तफमपि। 'आज्यभागौ जुहुयादग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा' इति। आज्यभागावित्यन- योर्यागयाः संज्ञा।।13।।

13. यजमान मौन रहकर दो आधार आहुतियाँ प्रदान करे। तत्पश्चात् 'अग्नेय स्वाहा' 'सोमाय स्वाहा' इन दो मन्त्रों का उच्चारण करता हुआ दो आज्य आहुतियाँ प्रदान करे।

14. उत्तरमाग्नेयं दक्षिणं सौम्यम्।।

अग्नेरुत्तरपार्श्व आग्नेयमाज्यभागं जुहुयात्। दक्षिणपार्श्वे तु सौम्यम्। ुवेणोभौ जुहुयात्पूर्ववत्।।14।।

14. पूर्व वर्णित आज्य आहुतियाँ अग्नि को वेदि वेफ उत्तर भाग में और सोम को दक्षिण भाग में प्रदान करे।

15. विज्ञायते चक्षुषी वा एते यज्ञस्य यदाज्यभागौ।।

आज्यभागौ 'यज्ञस्य चक्षुषी' इत्येवं श्रूयेते इत्यर्थः।।15।।

15. ब्राह्मण वेफ अनुसार ये दोनों आज्य आहुतियाँ यज्ञ की आँखें मानी जाती हैं।

ततः किमित्याह-

16. तस्मात्पुरुषस्य हि प्रत्य ुमुखस्याऽऽसीनस्य दक्षिणमक्ष्युत्तरं भवत्युत्तरं दक्षिणम्।।

यज्ञपुरुषस्य हि प्रत्य मुखस्याऽऽसीनस्य दक्षिणमक्ष्युत्तरं भवत्युत्तर दक्षिणम्। तस्माद्दक्षिणसंस्थैव शक्या कर्तुम्। नोदक्संस्थेत्यर्थः। श्रुत्याकर्षोऽन्यत्र क्वचिदुदक्संस्थताऽपि यथा स्यादिति। तेन बलिहरणे प्रधानानामुत्तरतः पुरुषेभ्यो बलिहरणं सि(म्।।16।।

16. इसलिए यजमान वेफ लिए जो पश्चिम की ओर मुख किये हुए है उसकी उत्तर दिशा वाली आहुति दांयी आँख और दक्षिण दिशा वाली आहुति बांयी आँख होती है।

17. मध्ये हवींषि प्रत्यत्तफतरं वा प्राक्संस्थान्युदक्संस्थानि वोत्तरपुरस्ता- त्सौविष्टकृतम्।।

अग्नेर्मध्यप्रदेशे हवींषि जुहोति। प्रत्यत्तफरे वा देशे हवींषि जुहोति। प्रत्यत्तफरमिति द्वितीया सप्तम्यर्थे। तत्रापि देशे प्राक्संस्थानि वा जुहोत्युदक्संस्थानि वा। ननु प्राक्संस्थानीत्यस्मिन्नसत्यप्युदक्संस्थानि वेति वाशब्दप्राप्तया प्राक्संस्थया सह विकल्पे सति पक्षे प्राक्संस्थत्वमपि सिध्यति किमर्थं प्राक्संस्थवचनम्? उच्यते। देशद्वयस्य संस्थाद्वयस्य चाऽऽनन्तर्ययोगो मा भूदित्येवमर्थम्। तेन देशद्वयेऽपि संस्थाद्वयस्य यथासंख्यता नास्तीति सि(म्। अग्नेरुत्तरपूर्वदेशे सौविष्टकृतं हवि- र्जुहोति।।17।।

17. यजमान यज्ञ वेदि वेफ मध्य में जो आहुति प्रदान करता है। अथवा पश्चिम भाग में पूर्व की ओर समाप्त होने वाली

७. इसी क्रम से पूर्व निर्वपित आहुतियों वेफ उफपर 'अमुष्मै त्वा जुष्टं प्रोक्षामि' इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ ;अमुष्मै वेफ स्थान पर देवता का नाम वाचन करता हुआद्ध हवियों का प्रोक्षण करे अर्थात-जल का छिंटा लगाकर उन्हें पवित्र करे।

8. अवहतांहिःपफलीकृतान्नाना श्रपयेत्।।

कृष्णाजिन उलूखलं कृत्वा पत्न्यवहन्यात्। त्रिःपफलीकृतानिति। त्रिःशुक्लीकृतानित्यर्थः। पिण्डपितृयज्ञे सकृत्प्रक्षाल्येति सकृद्ग्रहणादत्र त्रिः प्रक्षालयेत्। ततो नाना श्रपयेत्।।8।।

8. प्रोक्षित हवियों को तीन बार बूफट कर तथा उन्हें सापफ करवेफ उन्हें आहुति वेफ लिए अलग-अलग पकाये।

9. समीप्य वाग

एकत्र वा श्रपयेत् ।।9।।

9. अथवा सभी देवताओं वेफ लिए एक साथ आहुति पकायें।

10. यदि नाना श्रपयेद्विभज्य तण्डुलानभिमृशेद् पइदममुष्मा इदममुष्मैय इति।।

यदि पृथक् श्रपयेत्तथा सति तण्डुलानभिमृशेत्। 'इदममुष्मा इदममुष्मै' इति अमुष्मैशब्दः पूर्ववत्।।10।।

10. यदि वह चार जगह अलग-अलग आहुति पकाता हैं तो उन सभी आहुतियों का स्पर्श करता हुआ 'इदं इन्द्राय' 'इदं अग्नये' आदि प्रत्येक देवता वेफ लिए आहुति को अभिमन्त्रित करे।

11. यद्यु वै समीप्य व्यु(ङ्कं जुहुयात्।।

यदि समीप्य श्रपयेत् तथा सति चरुं व्यु(त्य, एवमभिमृश्य ततो जुहुयात्। व्यु(मिति व्यु(त्येत्यर्थः। व्यु(ण्णं नाम पात्रान्तरे पृथक्करणम्। जुहुयादिति वचनं होमकाले व्यु(मेदित्येवमर्थम्।।11।।

11. यदि सभी देवताओं वेफ लिए आहुति एक-साथ पकाई गई हैं तो पकी हुई आहुति को अलग-अलग देवताओं वेफ लिए पात्र में स्थापित करता हुआ अभिमन्त्रित करे।

12. शृतानि हवींष्यभिधार्योदगुद्वास्य बर्हिष्यासाद्येध्ममभिघार्य पअयं त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चे(वर्धय चास्मान्प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहाय इति।।

इत्येकभोजनम्। सर्पिर्मिश्रं दधिमिश्रमक्षारलवणमशितव्यमित्यादय नियमा लक्ष्यन्ते। तस्य ताभ्यामुपवासो व्याख्यात इत्यर्थः।।2।।

2. श्रौत सूत्र में वर्णित दर्श पूर्णमास यज्ञ वेफ अन्तर्गत वर्णित उपवास वेफ नियम पार्वण यज्ञ में भी अपनाये जाने चाहिए अर्थात-दर्शपूर्णमास वेफ अनुसार ही उपवास आदि का ग्रहण करना चाहिए।

3. इध्माबर्हिषो संनहनम्।।

अनयो बन्धनं ताभ्यां व्याख्यातम्। 'इध्मः पञ्चदशदारूकः' इति शान्तिकर्मणि साधयिष्यामः।।3।।

3. इसी प्रकार समिधाओं और वुफशाओं को बिछाने की विधि भी श्रौत यज्ञ में वर्णित विधि वेफ अनुसार ही अपनाई जानी चाहिए।

4. देवताश्चोपांशुयाजेन्द्रमहेन्द्रवर्जम्।।

देवता ताभ्यां व्याख्याताः। उपांशुयाजादिवर्जम्। तेनाग्निरग्नीषोमौ पौर्णमास्याम्। अग्निरिन्द्राग्नी अमावास्यायाम्। तदुक्तफं शौनवेफन-'पौर्णमासी तु सम्प्राप्ताथ् विवाहादनन्तरम्। ततः प्रक्रम्य वुफर्वीत स्थालीपावंफ तु कर्मसु।। यत्र यद्यप्यमावास्या विवाहानन्तरं यदा। तथाथ्पि पौर्णमास्यादिः स्थालीपाकक्रिया स्मृता'।। अथेन्द्रमहेन्द्रयोर्निषेधः किमर्थः? संनयत एव हि ते विहिते। 'इन्द्रं महेन्द्रं वा संनयतः' ;श्रौ0 1.3द्ध इति। न चात्र सांना यं विहितम्। उच्यते। गृह्यकर्माणि तावदाहिताग्नेरपीष्यन्तेथ्र्धाधान औपासनाग्नौ। सर्वाधाने तु कर्मणि कर्मणि पुनः संस्वुफर्यात्। संनयत इति कतृविशेषणाम्। दर्शे चासौ संनयन् भवति सोमेनेष्टवां ेत्। तेनात्रापि तस्य प्राप्नुतः। तस्मान्निषेधः। तर्हीन्द्राग्नी न स्यातामसंनयत इति वचनात्। उच्यते। इन्द्राग्नी अस्यापि देवता भवत्येव। अत्र ह्यसावसंन- यन्निति कृत्वा। न चात्राभावः कर्तृविशेषणम्। अत्राभावस्याविधेयत्वेन कर्तृविशेषणत्वाभावादित्यर्थः।।4।।

4. इस यज्ञ में उपांशु याग तथा इन्द्र और महेन्द्र को छोड़कर बाकी सभी देवताओं को उसी प्रकार आहुति प्रदान करनी चाहिए।

5. काम्या इतराः।।

उक्तफाभ्योथ्न्या या उपांशुयाजाद्या देवतास्ताः काम्या भवन्ति। कामे सति कर्तव्या इत्यर्थः। 'विष्णुं बुभूषन्यजेत' इत्येवमाद्याः काम्याः। 'अथ काम्यानां स्थाने' ;3.6.1द्ध इत्येव सि(उपांशुयाजादीनामपि निषेधः कृतः। तच्चात्र काम्यत्वेनापि न क्रियेरन्निति भ्रान्तिः स्यात्तन्नि- वृत्त्यर्थमिदं वचनम्। अथात्र किं द्रव्यमुपांशुयाजस्य तावदाज्यम्। तस्य विद्यमानत्वादादिष्टत्वाच्च। इन्द्रमहेन्द्रयोस्तु चरूः सना याभावात्।।5।।

5. शेष देवता यज्ञमान की इच्छानुसार इन यज्ञों में आहुति वेफ अधिकारी होते हैं।

6. तस्यै तस्यै देवतायै चतुर तुरो मुष्टीन्निर्वपति पवित्रे अन्तधार्य पअमुष्मै त्वा जुष्टं निर्वपामिग् इति।।

प्रणीताप्रणयनोत्तरकालं शूर्पे पवित्रे अन्तर्धाय व्रीहीन्यवान्वाथ्न्यान्वा हौम्यानेवैफकस्यै देवतायै चतुर तुरो मुष्टीन्निर्वपति। 'अमुष्मै त्वा जुष्टं निर्वपामि' इति। अमुष्मैशब्दस्य स्थाने चतुर्थ्या विभक्त्या देवतां निर्दिशेत्। चतुर तुर इति वीप्सावचनमेवैफकस्यै देवतायै चतुर्मुष्टिप्राप्त्यर्थम्। पवित्रे व्याख्याते।।6।।

6. प्रत्येक देवता वेफ लिए यज्ञमान चार-चार मुट्ठी अन्न वुफशारूप पवित्रों से ढक कर 'अमुष्मै त्वा जुण्टं निर्वपामि' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए 'अमुष्मै' पद वेफ स्थान पर प्रत्येक देवता का नाम उच्चरित करता हुआ का निर्वपन करे।

7. अथैनान्प्रोक्षति यथानिरुप्तम् पअमुष्मै त्वा जुष्टं प्रोक्षामिग् इति।।

अथशब्दः कथम्? सर्वासामेव देवतानां निरूप्तेषु प्रोक्षणं स्यादित्येवमर्थम्। एतानिति बहुवचनं संश्लिष्टानेव प्रोक्षेन्न विभज्येत्येवमर्थम्। यथानि- रुप्तमिति। तस्यै तस्यै देवतायै चत्वारि चत्वारि प्रोक्षणानि समन्त्रवेफषु निर्वापेषु समन्त्रकाणि, अमन्त्रवेफष्वमन्त्रकाणि पवित्रे अन्तर्धाय वुफर्यादि- त्येवमर्थम्। निर्वापप्रोक्षणे एकस्मिन्नेव पात्रे भवतः। उत्तरत्र विभाग- विधानात्।।7।।

१. यदि किसी कामना विशेष से 'काम्य यज्ञ' किया जाये जो यजमान चावल, जौ और तिलों की आहुति अलग-अलग प्रदान करे।

४. फअग्नये स्वाहाग् इति सायं जुहुयात् फसूर्याय स्वाहाग् इति प्रातस्तूष्णीं द्वितीये उभयत्र।।

तुष्णीं द्वितीये आहुती जुहोति। तूष्णींग्रहणं प्रजापतिध्यानार्थम्। उभयत्र सायं प्रातश्चेत्यर्थः। अग्निं परिसमुह्य परिस्तीर्य पर्युक्ष्य होमद्रव्य- स्याग्निहोत्रवत्तूष्णीं संस्कारं कृत्वा ततोऽग्नये स्वोहेति जुहोति। ततः प्रजापतय इति चतुर्थ्यन्तं शब्दरूपं ध्यात्वा स्वाहेत्युपांशूक्त्वा द्वितीयाहुतिं जुहोति। ततः परिसमूहनपर्युक्षणे। एवं सायम्। प्रातर्होमे तु पूर्वमन्त्रस्थाने सूर्याय स्वाहेति विशेषः।।४।।

४. सांयकाल वेफ समय किये जाने वाले यज्ञ में 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र वेफ द्वारा और प्रातः काल किये जाने वाले यज्ञ में 'सूर्याय स्वाहा' मन्त्र बोलकर प्रथम आहुति प्रदान करे। दूसरी आहुति दोंनों समय मौन रह कर प्रदान करे।

दशम खण्डम्

१. अथ पार्वणः स्थालीपाकः।।

उत्तफोऽर्थः। पर्वणि भवः पार्वणः। स्थालीपाक इति कर्मनामधेयम्। दर्शपूर्णमासातिदेशात्काले सि(पार्वणवचनं पाणिग्रहणाद्यहरहः क्रियाशङ्का- निवृत्त्यर्थम्। विवाहादनन्तरं या पोर्णमासी तस्यामस्य प्रथमः प्रारम्भः। प्रतिपद्यौपासनं हुत्वा ततः परिसमूहनादि प्रारभेत।।१।।

१. अब 'पार्वण-स्थानी पाक' का वर्णन करेंगे। 'पार्वण' का अर्थ है। 'पर्व' अर्थात पन्द्रह दिन वेफ पक्ष पर होने वाला स्थाली-पाक की आहुति वेफ द्वारा सम्पन्न किया जाने वाला यज्ञ। यह दोंनों पर्वों शुक्ल एवं कृष्ण की समाप्ति पर पूर्णमासी और अमावस्या को समाप्त होता है, इसमें पकी हुई आहुति प्रदान की जाती है।

२. तस्य दर्शपूर्णमासाभ्यामुपवासः।।

तस्यग्रहणं नियमार्थम्। तस्यैवापवासो यथा स्यात्तदतिदिष्टानां मा भूदिति। दर्शपूर्णमासाविति कर्मनामधेयम्। उपवास

सहोमकम्। वुफतः? वचनात्। पत्नीसंनहनवत्। अन्तेवासी शिष्यः।।7।।

1. पाणि ग्रहण वेफ साथ ही गृहस्थ स्वयं गृह्याग्नि की स्थापना करे और नित्य गृहाग्नि में आहुति प्रदान करे। स्वयं नहीं तो उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्री अथवा उसका शिष्य नित्य गृहाग्नि में यज्ञ करे।

2. नित्यानुगृहीतं स्यात्।।

अनुशब्दः पश्चिशब्दस्य स्थानो। नित्य पग्निगृहीतं स्यादित्यर्थः। किमुत्तफं भवति? यदि विवाहाग्निर्नष्टः स्यात्ततो नष्टाहरणप्रायश्चित्तं कृत्वा परिचरेदिति। अथवा। आत्मनः पत्न्या वा समीपे कथं नित्यः स्यात्? न। उभयोरन्यतरः स्थापयितव्य इति। अथवा। होष्य(मस्योपलेपना- देर्नित्यवृत्त्यर्थम्। तदपि हि क्वचग्रहणेन प्राप्नोति पश्चिसमूहनादिवत्।।2।।

2. विवाह वेफ समय स्थापित की गई अग्नि को नित्य सुरक्षित रखे।

3. यदि तूपशाम्येत्पत्न्युपवसेदित्येवेफ।।

यदि प्रादुष्करणकाल उद्वासयेत्ततो(न्यस्मा(ामिकालात्पत्न्युपवसेदित्येवेफ। एवेफग्रहणाद्यजमान उपवसेदित्येवेफ। 'अया ाग्ने' इत्येकामाहुतिं जुहुया- दित्येवेफ। वुफतः शाह्रान्तरे दर्शनात्। अन्ये तु पूर्वसूत्रमेवं व्याचख्युः। नित्यशब्द उक्तार्थः 'नित्यमाचमनम्' ;श्रौ0 2.2द्ध इति यथा अनुशब्दः प ाद्धचनः। एतदुत्तफं भवति। यदि वैवाह्यो न गृहीतो दायविभागकाले गृह्यते। गृहीतो(पि नष्टो वा द्वादशरात्रमतिक्रान्तः, तत उत्तफया क्रियया- प दृगृहीतो भवति। तत्र विवाहाज्याहुतयो लाजाहुतयो गृहप्रवेशनीया- ज्याहुतय हृदयाञ्जनं च भवति। नान्यत्। कन्यासंस्कारत्वात्। होमद्वयं चात्र समानतन्त्रं स्यात्। लाजहोमो(त्रापि पत्न्यञ्जलिना कार्यः। त(ामे तस्य साधनत्वेन दृष्टत्वात्। लाजावपनं तु स्वयमेव करोति। न भ्राता। दायविभागकाले गृह्यमाणे प्रयोगविशेषो(न्वेष्यः।।3।।

3. वुफछ आचार्यों वेफ अनुसार यदि स्थापित की गई अग्नि शान्त हो जाती है तो गृहस्थ की पत्नी उपवास रखे।

4. तस्याग्निहोत्रेण।।

तस्यग्रहणं योगविभागार्थम्। तस्याग्निहोत्रेणैव विधिर्भवति नान्येन। तेन पाकयज्ञतन्त्रं न भवति।।4।।

4. इस नित्य स्थापित की गई अग्नि में यज्ञ की प्रक्रिया अग्नि हो वेफ समान ही अपनाई जानी चाहिए।

तर्हि प्राशनादयो(पि स्युरित्याशङ्क ाह-

5. प्रादुष्करणहोमकालौ व्याख्यातौ।।

प्रादुष्करणं नाम 'अपरा ा गार्हपत्यं प्रज्वल्य' ;श्रौ0 2.2द्ध इति। एवं प्रातर्ह्युष्टायाम्' ;श्रौ0 2.2द्ध इति च। 'प्रदोषान्तो होमकालः संगवान्तः प्रातः' ;श्रौ0 3.12.द्ध इति। एतावेव भवतो नान्यदित्यर्थः।।5।।

5. अग्नि प्रज्वलित करने और आहुति प्रदान करने वेफ नियम श्रौत सूत्र में बतला दिये गए हैं।

6. हौम्यं च मांसवर्जम्।।

हौम्यं चाग्निहोत्रेण व्याख्यातम्। 'पयसा नित्यहोमः' ;श्रौ0 2.3द्ध इत्यादि पञ्च द्रव्याण्याम्नातानि। मांसवर्जमिति मांसप्रतिषेधाच्छाह्रान्तरे दृष्टमपि हौम्यं भवतीति गम्यते। 'पयो दधि यवागूश्च सर्पिरोदनतण्डुलाः। सोमो मांसं तथा तैलमापस्तानि दशैव तु'। द्रवद्द्रव्याणि ुवेण जुहोति। कठिनानि तु पाणिना। येन द्रव्येण सायं जुहोति तेनैव प्रातः। प्रतिनिधिवर्जम्।।6।।

6. यज्ञ में प्रदान की जाने वाली आहुतियों में मांस की आहुति का वर्जन है।

7. कामं तु व्रीहियवतिलैः।।

कामग्रहणं पूर्वोत्तफाभावे कथमेतेषां ग्रहणं स्यादित्येवमर्थम्। व्रीह्यादय प्रत्येवंफ साधनानि। न मिश्राणि। तच्च न्यायतो(वगन्तव्यम्।।7।।

क्षारसंज्ञिताः।ध गृहप्रवेशनीयहोमात्प्रागपि नियमानामिष्टत्वाद्योगविभागः कृतः।।10।।

10. विवाह वेफ समय से अर्थात् विवाह वेफ पश्चात् वर और वधू ख्रट्टा व नमकीन भोजन न करें, ब्रह्मचर्य का पालन करें।

उत्तरावधिमाह-

11. अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रम्।।

अतो गृहप्रवेशनीयहोमादूर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं वा नियतौ स्याताम्।।11।।

11. वे दोनों अलङ्कार युक्त व आभूषण आदि ग्रहण करें तथा भूपि पर शयन करें। वे दोनों इन ब्रतों का तीन रात्रि तक अथवा बारह रात्रि तक पालन करें, यह नियम वधू वेफ गृह्य प्रवेश अर्थात् ससुराल में आने वेफ पश्चात् यज्ञ सम्पादन करने से प्रारम्भ होता है।

12. संवत्सरं वैक षिर्जायत इति।।

संवत्सरं वा नियतौ स्यातौ स्यातामेक षिः सम्पद्यते। पितृगोत्रं विहाय पतिगोत्रं भजत इत्यर्थः।।12।।

12. वुफछ आचार्यों वेफ मतानुसार वर और वधू एक वर्ष तक इन ब्रतों का पालन करें, इस प्रकार एक वर्ष तक ब्रतोपायन वेफ पश्चात्)षि पुत्र को प्राप्त करने वाले होते हैं।

13. चरित्रतः सूर्याविदे वधूवहं दद्यात्।।

ब्रतानन्तरं सूर्याविदे वध्योपयमनकाल उपहितं वहं दद्यात्। सूर्यया दृष्टो मन्त्रः सूर्या। यथा वृषाकपिरिति। सा च 'सत्येनोत्तभिता' ; *0 10.85.1द्ध* इति सूक्तफम्। कथं तत्पुनरसौ वेत्ति स्वस्तो वर्णत इत्यादि।।13।।

13. ब्रतोपायन वेफ पश्चात् वर वधू की विवाह की पोशाक उस ब्राह्मण को दान में दे जो सूर्य सुक्त का जानने वाला हो।

14. अन्नं ब्रह्मणेभ्यः।।

अन्नं ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्।।14।।

14. ब्रतोपायन वेफ पश्चात् ब्राह्मणों को यथासामर्था अन्न प्रदान करें।

15. अथ स्वस्त्ययनं वाचयीत।।

ॐ स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति। ते च ॐ स्वस्तीति प्रत्यूचुः।।15।।

15. ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन का पाठ करवायें।

नवमं ख्रण्डम्

1. पाणिग्रहणादि गृह्यं परिचरेत्स्वयं पत्न्यपि वा पुत्रः वुफमार्यन्तेवासी वा।।

पाणिग्रहणप्रभृति गृह्यमग्निं परिचरेत्स्वयं पत्न्यदयो वा। पाणिग्रहणादिवचनं गृहप्रवेशनीयहोमानन्तरकाले प्रारम्भाशङ्कानिवृत्त्यर्थम्। यद्विधास्यते तत्परि- चरणम्। पत्नीवुफमार्यौ न होमकर्म वुफर्यातामित्येवेफ। वुफतः? ह्रीणां मन्त्रानधिकारात्। अन्ये तु

७. ‘वासे वासे सुम लीरियं वधुः’ इतिक्षकानीक्षेत॥

वसतौ वसतावीक्षकाः सन्ति चेत्तानेतयेक्षेत। वासादन्यत्रेक्षणे न मन्त्रः। वीप्साद्विर्वचनं प्रतिवसतिमन्त्रप्राप्त्यर्थम्॥७॥

७. मार्ग में ’जहां‘ भी ग्राम जनपद आदि में से गुजरने पर वधू को देखने वालों वेफ प्रति सुम लीरियें वधूः‘ वर इस मन्त्र का उच्चारण करता हुआ देखने वालो की ओर देखे।

८. ‘इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्’ इति गृहं प्रवेशयेत्॥

अनया वधूं गृहं प्रवेशयेत्। एवमादयो विधयः स्वग्रामेऽपि विवाहे भवन्ति॥८॥

८. वधू वेफ गृहप्रवेश वेफ समय ’इह प्रियं प्रजया.....‘ इस मन्त्र का उच्चारण करे।

९. विवाहाग्निमुपसमाधाय पश्चादस्याऽऽनडुहं धर्माऽऽस्तीर्य प्राग्ग्रीव- मुत्तरलोम तस्मिन्नुपवि टायां समन्वारब्धायाम्। ‘आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिः’ इति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा ‘समञ्जन्तु विश्वेदेवाः’ इति दध्नः प्राश्य प्रतिप्रयच्छेदाज्यशेषेण वाऽनक्ति हृदये॥

अग्निप्रतिष्ठापनान्तं कृत्वाऽग्निमुपसमादधाति। समिधः प्रक्षिप्य प्रज्वल- यतीत्यर्थः। ततः पश्चादस्याऽऽनडुहं चर्माऽऽस्तृणाति। प्राग्ग्रीयमुत्तरलोम। ततोऽन्वाधानाद्याज्यस्य बर्हिषि सादनान्तं कृत्वा तस्मिञ्चर्मण्युपवि टायां समन्वारब्धायां वध्वामिध्माधानाद्याज्यभागान्तं कृत्वा ‘आ नः प्रजाम्‘ इति चतसृभिः प्रत्यृचं हुत्वा ततः ’समञ्जन्तु‘ इत्यृचा दध्न एकदेशं स्वयं प्राश्य वध्वै प्राशनार्थं शिष्टं दधि प्रयच्छेत्। सा तूष्णीं प्राश्नाति। सकृत्प्रयुक्तस्य मन्त्रस्योभयप्राशनार्थत्वात्। उभयार्थत्वं तु नाविति मन्त्रे द्विवचनात्। आज्यशेषेण वोभयोर्हृदयेऽनक्ति तेनैव मन्त्रेण। हृदये अत ऊर्ध्वमिति विवृत्त्या पाठः कार्यः। प्रगृह्यत्वात्। ततः स्वि कृदादि समापयेत्। विवाहाग्निग्रहणमन्यनिवृत्त्यर्थम्। कथं पुनरन्याग्निप्राप्तिशङ्का? ’गृह्याणि वक्ष्यामः‘ (गृ० 1.1.1) इति प्रतिज्ञातम्। उच्यते। दायविभाग- कालेऽग्निः परिगृह्यते चेदत्राप्यन्योऽग्निः प्रसज्येत तन्निवृत्त्यर्थमिदम्। अपि चात्र विवाहाग्निग्रहणान्न विवाहहोममात्रेणाग्नेर्गृह्यत्वसिद्धिः। किं तर्हि गृहप्रवेशनीयहोमे कृते। एवमुभाभ्यां होमाभ्यां गृह्यत्वसिद्धिर्नैवेकेनेति ज्ञाप्यते। तेन गृहप्रवेशनीयहोमादर्वाग्दर्शपूर्णमासप्राप्तौ पार्वणस्थालीपाको न कार्यः। परिचरणहोमस्तु कार्य एव। ’पाणिग्रहणादि‘ (गृ० 1.9.1) इति वचनात्। वैश्वदेवं च कार्यमेव। तस्याग्निविशेषविध्यभावात्। तेताग्निनाशे होमद्वयं कार्यमिति सिद्धम्। उपासमाधायेत्यास्तरण- कालोपदेशार्थम्। अथवा समानकर्तृकत्वसिद्ध्यर्थम्। तेन यत्रोपसमाधानग्रहणं नास्तितत्रान्यो वोपसमाधानं कुर्यात्। तस्मिन्निति वचनं चर्मास्तरणानन्तरं इत्येवमर्थम्। स्वाहाकारं पठञ्जुहुयादित्यर्थः। तेन यत्र प्रत्यृचग्रहणं नास्ति तत्र स्वाहाकारं कृत्वा पश्चाद्धोमः। आज्यशेषेण वेति सिद्धवदुपदेशादनादेशयाज्येन होम इति गम्यते॥९॥

९. तत्पश्चात् घर में विवाहाग्नि का आधान (स्थापना) करवेफ अग्नि वेफ पश्चिम भाग में बैल वेफ चर्म को पूर्व की ओर गर्दन का भाग करवेफ तथा बालों को उफपर की ओर करवेफ बिछाए। उस बैल वेफ चर्म पर वधू को बैठा कर उसवेफ द्वारा वर को पकड़े रहते हुए वर समिधाओं का आधान करवेफ तथा आज्याहुती प्रदान करवेफ ’आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिः‘ आदि चार ऋचाओं से चार आहुति प्रदान करे और ’सम न्तु विश्वेदेवा‘ इस मन्त्र का उच्चारण करे दही का भक्षण करे और शेष बची दही को वधू को खाने को दें अथवा शेष बचे घृत से अपने हृदय तथा वधू वेफ हृदय पर लेप करे।

10. अक्षारालवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणवधःशायिनौ स्याताम्॥

विवाहादारभ्य एते नियमा भवन्त्युभयोः। ’हैडिम्बिका राजभाषा माषा मुद्गा मसूरिकाः। लङ्ग ढक्या निष्पावास्तिलाद्याः

वाचो नियम इति गम्यते। कस्यायं वाग्विसर्गः? वध्वाः। वुफतः? मन्त्रलि ात्। तथा हि-जीवः पतिर्यस्याः सा जीवपत्नी। जीव इति कर्तरि पचाद्यच्। 'पत्युर्नो यज्ञसंयोगे ;4.1.33द्ध 'विभाषा सपूर्वस्य' ;4.2.34.द्ध इति ीष्प्रत्ययो न ान्तादेशः।।22।।

22. राष्ट्रभृत होम आदि की समाप्ति पर वधू ध्रुव, अरुन्धती एवं सप्त)षियों वेफ दर्शन करने वेफ पश्चात्, जीवपत्नी प्रजां विन्देय' मन्त्र का अच्चारण करते हुए वाणी का विसर्जन करे।

अ मं ख्रण्डम्

1. प्रयाण उपपद्यमाने फ्पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्य इति यानमारोहयेत्।।

विवाहहोमानन्तरं स्वगृहं गन्तव्यम्। तत्र यदि ग्रामान्तरे स्वगृहं स्यात्। तथा सति तत्र प्रयाणे यदि यानमुपपद्यते। तथा सत्युपपद्यमाने याने यानमारोहयेद्धधूं पूषेत्यादिना मन्त्रेण। तेन प्रयाणे यानस्यानियमः। यानादन्येन शिबिकादिना प्रयाणे च न भवति मन्त्रः। स्वगृहगमने नायं विधिः।।1।।

1. विवाहोपरान्त वधू की डोली वेफ समय रथ, डोली अथवा किसी यान पर वधू वेफ चढ़ते समय वर 'पूषा त्वेतो..... .य इस मन्त्र का उच्चारण।

2. फअश्मन्वतीरीयते संरभध्वम्य इत्यर्धर्चेन नावमारोहयेत्।।

यद्यन्तरा नाव्या नदी स्यात्तदा(नेनार्धर्चेन नावमारोहयेत्। वधूमिति शेषः।।2।।

2. विवाह वेफ बाद यदि वधु की ससुराल नाव से जाना हो तो नाव पर आरूढ़ होते समय वर फअश्मन्वती रीयते संरभध्वम् इस आधी)चा का उच्चारण करे।

3. उत्तरेणोत्क्रमयेत्।।

उत्तरणार्धर्चेन वधूमुदकादुत्तारयेत्।।3।।

3. उस मन्त्र का आधाभाग अर्थात् अन्तगर्ध)चा वधू वेफ नाम उत्तरते समय उच्चरित करें।

4. फजीवं रुदन्तिय इति रुदत्याम्।।

नीयमाना वधूर्यदि रोदिति बन्धुवियोगात्तदैतां जपेत्। अयं विधिः स्वग्रामे(पि भवत्यविशेषात्।।4।।

4. ससुराल ले जाई जाती वधू घर से प्रस्थान वेफ समय यदि रुदन करे अथवा ससुराल में भी रोए तो वर फजीवं रुदन्तिय इस मन्त्र का जाप करे।

5. विवाहाग्निमग्रतो(ज ं नयन्ति।।

विवाहाग्निग्रहणमग्निविशेषनियामाभावशङ्कानिवृत्त्यर्थम्। अज ग्रहणं ध्रियमाणस्य नियमार्थम्। तेनान्यत्र प्रयाणे समारोपणं कृत्वा नयनं गम्यते। अयं च विधिः स्वग्रामे(पि भवत्यविशेषात्।।5।।

5. विवाह वेफ समय स्थापित की गई यज्ञाग्नि को आगे-2 ले जाएं।

6. कल्याणेषु देशवृक्षचतुष्पथेषु माविदन्परिपन्थिन इति जपेत्।।

कल्याणेषु विवाहादिशोभनेषु देशवृक्षचतुष्पथेष्वेताञ्जपेत्।।6।।

6. कल्याण कारी, विवाहादि वेफ अवसरों पर अथवा स्थानों पर वृक्षों वाले प्रदेश में जाने पर तथा मार्ग में पड़ने वाले चौराहों पर वर 'माविन्दत्परिपन्थिन' उस मन्त्र का जाप करे।

एक साथ नहीं डाली जाती।

16. अथास्यै शिखे विमञ्चति यदि कृते भवतः॥

अथशब्द इदानीं स्वि कृन्निवृत्त्यर्थः अस्या इति वरस्य निवृत्त्यर्थः। यदीत्यनित्ये। देशधर्मादिना यदि कृते भवतः॥16॥

16. यदि कन्या ने दो चोटी बनाई हुई हैं तो वह ;वरद्ध वधू की चोटी में लगी दो ग्रन्थियाँ खोले।

वेफ कृते भवत इत्याह-

17. ऊर्णास्तुवेफ वेफशपक्षयोर्बे भवतः पप्र त्वा मुञ्चामि वरूणस्य पाशात्ृ इति॥

प्र त्वा मुञ्चामीति दक्षिणां शिखां विमुञ्चति॥17॥

17. यदि कन्या ने अपने बालों को दो ओर ऊन की रस्सी से बाँधा हुआ है। तो वर दाहिनी ओर वेफ बालों को खोलता हुआ 'प्र त्वा मु ामि---' मन्त्र का उच्चारण करे।

18. उत्तरामुत्तरया॥

प्रेतो मुञ्चामीत्युत्तरां शिखां विमुञ्चति। वरस्य तु शिखे तूर्णी विमुञ्चति॥18॥

18. तत्पश्चात् अगले मन्त्र का उच्चारण करता हुआ बायीं ओर वेफ वेफशों को खोले।

19. अथैनामपराजितायां दिशि सप्तपदान्यभ्युत्क्रामयति पइष एकपद्यूर्जे द्विपदी रायस्पोषाय त्रिपदी मायोभव्याय चतुष्पदी प्रजाभ्यः पञ्चपदृतुभ्यः षट्पदी सखा सप्तपदी भव सा मामनुव्रता भव। पुत्रान्विदावहै बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयःऋ इति॥

अथशब्दः पूर्वेण तुल्यः। एनां वधूम्। अपराजिता प्रागुदीची। तत्र सप्त पदान्यभ्युत्क्रामयति वधूं सप्तभिर्मन्त्रैः। वाक्यस्य साका क्षत्वा वादेश्च योग्यत्वात्संनिहितत्वाच्च प्रत्येवंफ संबध्यते। यथा रहस्य उल्लिखामीति शब्दः 'प्राणाय त्वाऽपानाय त्वा व्यानाय त्वोल्लिखामि' इत्यन्त्ये वाक्ये पठितोऽपि पूर्वत्रापि सम्बध्यते तद्वदत्रापि। ऐतरेयिभिरप्युत्तफं 'भवादि सर्वत्र समानम्' इति। तेन 'इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव' इति सर्वत्र सम्बन्धनीयम्॥19॥

19. तत्पश्चात् वर वधू वेफ साथ ईशान कोण में 'इष एकपद्यूर्जे द्विपदी----' मन्त्रोच्चारण पूर्वक सप्तपदी पूर्ण करे। अर्थात, वधू वेफ साथ ईशान कोण ;उत्तर और पूर्व वेफ बीचद्ध में सात पग रखे।

20. उभयोः संनिधाय शिरसी उदवुफम्भेनावसिच्य॥

सप्तमे पदेऽभ्युत्क्रामिते तत्रस्थ एवोभयोः शिरसी संनिधाय वेफनचि- दुदवुफम्भमाना य तत्रस्थेनोदवेफन शिरसी अवसिञ्चति। अथाऽऽज्येन स्वि कृतं जुहोति। साका क्षत्वात्॥20॥

20. तत्पश्चात पुरोहित अथवा आचार्य दोनों को एक-साथ खड़ा करवेफ उनवेफ सिर पर मंगल-कलश ;जल-घड़ेद्ध से पानी लेकर अभिषेक करे। अथवा जल सि न करे।

21. ब्राह्मण्याश्च वृ(या जीवपत्न्या जीवप्रजाया अगार एतां रात्रीं वसेत्।

ग्रामान्तरगमने यद्यन्तरा वसतिः स्यात्तदैवंगुणयुत्तफाया ब्राह्मण्या गृहेऽनन्तरां रात्रीं वसेत्। वसतिं वुफर्यादित्यर्थः। स्वग्रामे विवाह ेन्नायं विधिः॥21॥

21. यदि विवाह वेफ पश्चात् घर वेफ लिए प्रस्थान करते समय रात्रि व्यतीत करनी हो तो दैव-गुणों से युक्त ब्राह्मणी वेफ घर निवास करे, जिसका पति एवं सन्तान जीवित हों।

22.ध्रुवमरून्धतीं सप्त षीनिति दृष्ट्वा वाचं विसृजेत जीवपत्नीं प्रजां विन्देय इति॥

समाप्ते होमे रात्रौ ध्रुवादीन्दृ ा वाचं विसृजेत 'जीवपत्नीम्' इति मन्त्रेण। इदानीं वाग्विसर्जनविधाना(ोमादारभ्यैतावन्तं कालं

10. वर शेष आहुतियों पर धृत का सि न करे अथवा धृत डाले।

11. अवत्तं च।।

अवदानमित्यर्थः उपस्तरणाभिघारणे कः करोति? भ्राता। वुफतः? समानकर्तृत्वनिर्देशात्। तदयुत्तफम्। यदि ह्यत्र भ्राता$ऽभिप्रेतः स्याद्धध्यञ्जलौ भ्रातोपस्तीर्येत्येवावक्ष्यत्। तस्माद्वर एव करोति। यत्तूत्तफं समानकर्तृत्वनिर्देशात् इति। तत्र ब्रूमः। असमानकर्तृकत्वे$ऽपि हि क्त्वाप्रत्ययो दृश्यते। यथा 'आज्यहुतिं हुत्वा मुख्यं धनं दद्यात्, ;श्रौ० *3.1.3*द्ध इति। होमे ब्रह्मा कर्ता। दाने यजमान इत्यादिषु पूर्वकालतामात्रमेव विवक्षितं तद्वद- त्रापि।।*11*।।

11. और जो वुफछ भी आहुति वेफ लिए काटा गया है उन सभी पर धृत का सि न करे।

12. एषो$ऽ$वदानधर्मः।।

यत्र यत्रावदानकमस्ति तत्र तत्रैष धर्मो भवतीत्यर्थः 'मध्यात्पूर्वर्धाच्च हविषो$ऽ$वद्यति' ;*1.10.18*द्ध इत्यादौ।।*12*।।

12. जहाँ कहीं भी अवदान अर्थात किसी पवेफ हुए अन्न अथवा पदार्थ को काटकर आहुति प्रदान की जाती है। ऐसे सभी अवसरों पर इन्हीं नियमों का पालन करना चाहिए।

13. अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवो$ऽ$र्यमा प्रेतो मुञ्चातु नामुतः स्वाहा। वरुणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवो वरुणः प्रेतो मुञ्चातु नामुतः स्याहा। पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातु नामुतः स्वाहेत्यविच्छिन्दत्यञ्जलिं ुचेव जुहुयात्।।

को जुहोति? वधूः। वुफतः? अविच्छिन्दत्यञ्जलिमिति हीलि निर्देशात्। कस्यैते मन्त्राः? वध्वाः। वुफतः? सा हि जुहोति। मन्त्रलि ात्। कन्या अग्निमयक्षतेति। तदसत्। न हि हीणां मन्त्रेष्वधिकारो$ऽ$स्ति। ननु कथं पत्नीवाचने तत्र वचनमस्ति? अत्र तु सन्दिग्धम्। तस्माद्वरस्य मन्त्राः। मन्त्रलि ाच्च। 'स इमां देवः' इति हि परोक्षनिर्देशः। यदि हि वध्वाः स्युः स इमां देव इति न स्यात्। यत्तूत्तफं सा हि जुहोतीति तत्र ब्रूमः। अन्यस्यापि मन्त्रो दृश्यते। 'अध्वर्युर्जुहोति' 'होता वषट्करोति'। यत्तूत्तफं मन्त्रलि दिति। तत्र ब्रूमः। न ह्यत्रेयं कन्या$ऽ$भिधीयते। अन्या एव तु कन्याः। यदीयमभिधीयते बहुवचनं नोपपद्यते। तथाभूतश्च प्रत्ययः। तस्माद्वरस्येति सि(म्।।*13*।।

13. कन्या दोनों अं लियों में भुनी हुई धानी ;ख्रीलद्ध तथा वर वेफ द्वारा अभिधारित हवि की 'ओम् अर्यमणं नु देवं कन्या---' मन्त्र का उच्चारण करते हुए दोनों हाथों को अलग न करते हुए अर्थात् साथ रखे हुए ही आहुति प्रदान करें।

14. अपरिणीय शूर्पपुटेनाभ्यात्मं तूष्णीं चतुर्थम्।।

अप्राप्तनिषेधः किमर्थः? चतुर्थहोमं कृत्वा कथममन्त्रवंफ परिणयनं स्यादित्येवमर्थमित्येवेफ। अन्ये तु त्रीणि परिणयनान्यन्तर्येणोत्तफानि। तथा त्रयो होमाः। तत्र कथं पूर्वं पूर्वं परिणयनं कृत्वा पश्चा(ोमः स्यादिति ज्ञापयितुमिति। शूर्पपुटः कोणः तूष्णीं वचनं प्रजापतिज्ञानार्थम् चतुर्थग्रहणं कथम्? एतस्य द्रव्यस्य स्वि कृतं न स्यात्स एव च कर्ता यथा स्यादिति। तेन वधूर्जुहोति।।*14*।।

14. तत्पश्चात् बिना परिक्रमा किए हुए शूर्प में से अन्न लेकर मौन रहकर लाजा होम की चौथी आहुति प्रदान करे।

15. ओप्योप्य हैवेफ लाजान्परिणयन्ति। तथोत्तमे आहुती न सं पततः।।

अभिमतार्थज्ञापनार्थो हशब्दः। एवेफ लाजानोप्योप्य प ात्परिणयन्ति। किमिति? तथा सत्युत्तमे आहुती न संनिपतत इति कृत्वा। पूर्वस्मिंस्तु पक्ष उत्तमे आहुती संनिपततः। को$ऽ$यं संनिपातो नाम? यदि पूर्वाहुतिशिरसि प्रक्षेपः। न तर्हि क्वचिदप्यसाविष्यते किं पुनः पूर्वस्मिन्पक्षे। अथा$ऽऽ$नन्तर्यम्। न तर्ह्यसौ दोषः। पार्वणादौ द् त्वाद्। तस्मादयमर्थः। यथोत्तमे आहुती न संनिपततस्तथा कर्तव्यम्। उत्तमयोराहुत्योर्मध्ये परिणयनं कर्तव्यमित्यर्थः। कथं वा न स्यात्? अपरिणीय शूर्पपुटेना-भ्यात्ममिति। अन्यार्थं कृतमपीह मध्ये परिणयनं निवर्तयेत्। अथवा पूर्वस्मिन्पक्षे उत्तमे संनिपततः। अत्र तु न संनिपतत इति वदन्नपरिणीय- वचनं चतुर्थपरिणयनार्थमित्यस्मिन्नपि पक्षे पूर्वं परिणयनं कृत्वा प ा(ोमो न चा$ऽऽ$नन्तर्येण होम इति ज्ञापयति। यदि त्वानन्तर्येण होमः स्यात्सर्वासामेव संनिपातादुत्तमयोराहुत्योः पूर्वस्मिन्पक्षे संनिपात इति नोपपद्यते।।*15*।।

15. वुफछ आचार्यों वेफ अनुसार वर प्रत्येक लाजा आहुति वेफ समय अग्नि की प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार अन्तिम दो आहुतियाँ

अंगुलियों का ही ग्रहण करे।

5. रोमान्ते हस्तं सा ष्टमुभयकामः।।

उभयकामः पुत्रदुहितृकामो[ष्टा लीभिः सह हस्तं गृ ीयात्।।5।।

5. यदि वर उभयकामी है। अर्थात् पुत्र व पुत्री दोनों प्रकार की सन्तान की कामना करने वाला है तो वह अंगुली एवं अंगुठे सहित रोमान्त तक इस्त को ग्रहण करे।

6. प्रदक्षिणमग्निमुदवुफम्भं च त्रिः परिणयञ्जपति। अमोहमस्मि सा त्वं सा त्वमस्यमोहं द्यौरहं पृथिवी त्वं सामाहमृक्त्वं तावेह विवहावहै। प्रजां प्रजनयावहै संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ जीवेव शरदः शतमिति।।

अग्निमुदवुफम्भं च त्रिः प्रदक्षिणं वधुं ह्रीं परिणयञ्जपति। अयोहमस्मीति। उदवुफम्भग्रहणमन्येषां सर्वेषां यज्ञपात्राणां बहिष्करणार्थमित्येवेफ। अन्ये तु विवाहे यदन्यद्दृष्टं पात्रमश्मा तस्यैव बहिष्करणार्थमिति। त्रिर्ग्रहणं परिणयनेन संबध्यत उत जपेन? यदि पूर्वेण तर्हि सकृज्जपः स्यात्। अथ जपेन तर्हि सकृत्परिणीतिः। पूर्वेणेति ब्रूमः। वुफतः? परिणीय परिणीयेति तस्य बहुत्वं दर्शितम्। जपश्च परिणया मिति कृत्वा यावत्परिणयमावर्तते।

6. अग्नि एवं जल से परिपूर्ण वुफम्भ वेफ जल की तीन बार प्रदक्षिणा करवेफ तथा वधू वेफ आगे चलता हुआ 'अमोहस्मि----' इस मन्त्र का उच्चारण करे। अर्थात् पहली तीन प्रदक्षिणाओं में वर वधू से आगे चलता हुआ अमोहस्मि---' मन्त्र का उच्चारण करे।

7. परिणीय परिणीयाश्मानमारोहयतीममश्मानमारोहाश्मेव त्वं स्थिरा भव। सहस्व पृतनायतो[भितिष्ठ पृतन्यत इति।।

वीप्साद्विर्वचनं सर्वपरिणयनेष्वश्मारोहणं कारयितव्यमित्येतदर्थम्। अथास्य कर्मणः कः कर्ता? आचार्यः। वुफतः। वक्ष्यति-'शिस्सी उदवुफम्भेना- वसिञ्य' ;गृ0 1.7.20द्ध इति। स्वयंकर्तृत्वे सत्यवसेचनं कर्तुं न शक्यते इति। तदसत्। वर एव कर्ता आचार्येण ह्ययं विसृ ो विवाहं करोति। उदवुफम्भग्रहणं तु तत्रस्थमुदवंफ लक्षयति।।7।।

7. प्रत्येक परिक्रमा में शिलारोहण वेफ समय 'परिणिय अस्मान आहयति----' मन्त्र का उच्चारण करे।

8. वध्वञ्जलावुपस्तीर्य भ्राता भ्रातुस्थानो वा द्विर्लाजानावपति।।

ततो वध्वञ्जलावुपस्तीर्य वध्या भ्रात्रादिर्द्विर्लाजानावपति। वरो जामदग्न्यश्चेत् त्रिः। ततः शेषमभिघार्याविदानं च प्रत्यभिघास्यति। एवमदायावदाय त्रिभिर्मन्त्रैर्जुहोति। भ्रातृस्थानः पितृव्यपुत्रो मातुलपुत्रश्च।।8।।

8. तत्पश्चात् वधू का भाई अथवा भाई वेफ स्थान पर भ्रातृ स्थानी भाई वधू की अ लियों को खुलवाकर भुने हुए धान्यों से परिपूर्ण करें तथा वर उन पर धृत का सि न करें और इस प्रकार वधू 'लाजा- होम' की आहुति प्रदान करें।

9. त्रिर्जामदग्न्यानाम्।।

पञ्चावत्तिनामित्यर्थः।।9।।

9. जम्दग्नि वंशज लाजा-होम की तीन आहुतियों प्रदान करने का विधान मानते हैं।

10. प्रत्यभिघार्य हविः।।

हविःशब्दः शेषे वर्तते। यथा 'नात्र हवींषि प्रत्यभिघास्यति' ;1.10.21द्ध।।10।।

1. विवाह संसकार में अपनाये जाने वाले विभिन्न रिति-रिवाजों को अपनी वुफल रिति वेफ अनुसार अपनाने का विकल्प दिया गया हैं कहा गया है कि विवाह वेफ विषय में अनेक प्रकार वेफ जनपद धर्म व ग्राम धर्म होते हैं। वर और वधू को अपने जनपद एवं वुफल परम्परा वेफ अनुसार ग्राम-धर्म का निर्वाह करना चाहिए।

2. यत्तु समानं तद्व्याख्यामः।।

किमर्थमिदम्? यथा{यान्युपदेशादेव सर्वत्र भवन्ति पार्वणादीनि तथेदमपि स्यात्। नियमार्थं तर्हि जनपदादिधर्माणां वक्ष्यमाणधर्माणां च विरोधे सति वक्ष्यमाणमेव धर्मं वुफर्यान्न जनपदादिधर्ममिति। यद्व्याख्यामस्तत्सर्वत्र समानमेवेत्यर्थः। वैदेहेषु वेफषुचिद्देशेषु सद्यं एव व्यवायो दृ :। गृह्ये तु ब्रह्मचारिणौ त्रिरात्रमिति ब्रह्मचर्यं विहितम्। तत्र गृह्योक्तफमेव वुफर्यान्न देशधर्ममिति सि(म्।।2।।

2. इनमें जो समान धर्म हैं उनकी व्याख्या करेंगे।

3. पश्चादग्नेर्दृषदमश्मानं प्रतिष्ठाप्योत्तरपुरस्तारदुदवुफम्भं समन्वारब्धायां हुत्या तिष्ठन्प्रत्य ्मुखः प्राङ्मुख्या आसीनाया गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तमित्य ष्टमेव गृ ीयाद्यदि कामयीत पुमांस एवं मे पुत्रा जायेरन्निति।।

वेदिकायामग्निप्रतिष्ठापनोत्तरकालं पश्चादग्नेर्दृषदमश्मानं प्रतिष्ठाप्योत्तर- पूर्वदेशे उदवुफम्भं प्रतिष्ठापयेत्। तत आज्यस्य बर्हिष्यासादनान्तं कर्म कृत्वा, समन्वारब्धायां वध्यामिध्याधानाद्याधारान्तं कृता ततः पूर्वोक्तफा आज्याहुतीर्हुत्वा, तिष्ठन्प्रत्य ्मुखः प्रा ्मुख्या आसानीया अ ष्टमेव गृ ीयात्। गृभ्णामीत्युक्त्वा पुत्रकामश्चेत्। मन्त्रस्तूत्तरयोरपि हस्तग्रहण- योर्भवत्येवायम्। दृषत्प्रसि(।। अश्मा तत्पुत्रकः तत्रोभयोः प्रतिष्ठापनं सि(म्। एवं चेद्दोषः। 'अश्मानमारोहयति' ;गृ0 1.7.7द्ध इत्यत्र पुत्रकारोहणं स्यात्। तर्ह्यश्मग्रहणं तस्य विशेषणं स्यात्। दृषदमश्मानमिति। अश्ममयीमित्यर्थः। मृण्म यपि हि लोवेफ दृषद्विद्यते। तर्हि पुत्रकप्रतिष्ठापनं न स्यात्। ना स्यादेव। म लार्थत्वात्। दक्षिणतः पत्न्युपविशेदुत्तरतः पतिरिति शाह्रान्तरे दृ म्। ुवेण होमः। साधनान्तरानुपदेशात्। 'एवम्भूतो व्यक्तफहोम0' ;श्रौ0 1.11द्ध इत्यनेनैवावस्थाने सि('तिष्ठन्समिधमादध्यात्' ;3.8.16द्ध इत्यत्र तिष्ठन्ग्रहणं कथम्? अन्यत्रा{{सीनस्य कर्माणि स्युरित्येवमर्थम्। ततो{त्राप्यासीनप्राप्तौ तन्निवृत्त्यर्थं तिष्ठन्ग्रहणम्। प्रत्य मुख्र इति प्रा ्मुख्रत्वनिवृत्त्यर्थम्। 'तस्य नित्याः प्राञ्चश्चे ाः' ;श्रौ0 1.1.8द्ध इत्यनेन प्रा ्मुख्रत्वे सि(प्रा ्मुख्या इति वचनं प्रत्य मुख्रत्वनिवृत्त्यर्थम्। आसीनाया इत्येतत्कथम्। इत उत्तरं वध्या विहितं कर्म तिष्ठान्याः स्यादित्येवमर्थम्। 'उत्तानेनोत्तानं पाणिं गृ ीया- न्नीचेन चोत्तानम्' इति शाह्रान्तरे दृ म्। पुत्रशब्दः पुंसि स्त्रियां च स्मृतौ दृ :। 'अकृता वा कृता वा{पि यं विन्देत्सदृशात्सुतम्। पौत्री मातामहस्तेन दद्यात्पिण्डं हरे(नम्' ;मनुः 9.136द्ध इमि। दौहित्रेण मातामयः पौत्री भवतीत्यर्थः। लोवेफ च दुहितरि पुत्रशब्दं प्रयुञ्जाना दृश्यन्ते। एहि पुत्रेति। मन्त्रे च दृश्यते। 'पुमांस्ते पुत्रो जायताम्' इति। तस्मात्पुमांसः पुत्रा इति विशेषणम्। अथवा 'पुनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा' ;मनुः 9.138द्ध इति। एवंविधः स पुत्रो जायेत न प्रथमप्रकृतिमात्रमित्येवमर्थमुभयो- र्ग्रहणम्।।3।।

3. यजमान यज्ञवेदी वेफ पश्चिम भाग में प्रस्तर ;पत्थरद्ध तथा दक्षिण-पूर्व दिशा में जल-पात्र ;मंगल-कलशद्ध स्थापित करे। अर्थात् जल से परिपूर्ण नये घड़े को मंगल-कलश वेफ रूप में स्थापित करे। जब कन्या उसका ;वर काद्ध हाथ ग्रहण किए हो, उस समय संस्कार का यज्ञ करे। वर पश्चिम की ओर मुख्र करवेफ बैठकर पूर्वाभिमुख्र कन्या का हाथ ग्रहण करवेफ 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं---' मन्त्र का उच्चाण करता हुआ वेफवल अंगुठे का ही ग्रहण करे, यदि वर पुत्र की ही कामना करने वाला हो।

4. अ लीरेव ह्रीकामः।।

एवकारो{ ष्टनिवृत्त्यर्थः। ह्रीकामो दुहितृकाम इत्यर्थः।।4।।

4. यदि वर पुत्री वेफ रूप में सन्तान की कामना करने वाला हो तो वह अगुष्ट वेफ स्थान पर पाणिग्रहण वेफ समय वेफवल

विवाह 'दैव' विवाह कहलाता है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र मातृ एवं पितृ दोनों वुफलों वेफ सात-सात पूर्वजों तथा अग्रजों को पवित्र कर देता है अर्थात् सात पूर्व पीढियों व सात आनेवाली पीढ़ियों को पवित्र करने वाला होता है। जब वर और वधू दोनों को एक साथ बैठाकर कन्या का पिता अथवा आचार्य 'सह धर्मं चरतः' इस प्रकार वाक्य बोलता हुआ दोनों को एक साथ गृहस्थ धर्म का पालन करने का आदेश देता है वह 'प्रजापत्य' विवाह कहलाता है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र पितृ व मातृ दोनों वुफलों वेफ आठ-आठ पूर्वजों व अग्रजों को पवित्र करने वाला होता है। यदि कन्या का पिता वर-पक्ष से लड़की देने वेफ लिए गो-मिथुन प्राप्त करता है तो वह 'आर्ष' विवाह कहलाता है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र दोनों वुफलों वेफ सात-सात पूर्वजों व अग्रतों को पवित्र करने वाला होता है। जब वर और वधू दोनों आपसी समझोते वेफ अनुरूप विवाह करते हैं तो वह गान्धर्व विवाह कहलाता है। इस विवाह से उत्पन्न पुत्र मातृ व पितृ दोनों वुफलों की सात-सात पूर्वतों व अग्रजों को पवित्र करने वाला होता है। जब वर कन्या वेफ पिता को विवाह वेफ बदले में वाञ्छित धन प्राप्त करता है। तो वह 'आसुर' विवाह कहलाता है। जब वर सोये हुए पश्विारवाली अथवा प्रमत कन्या का अपहरण करवेफ विवाह करता है तो वह 'पैशाच' विवाह कहलाता है। जब वर कन्या वेफ माता-पिता को अथवा सम्बन्धियों को मारकर सबवेफ रोते हुए विवाह करता है तो वह 'राक्षस' विवाह कहलाता है।

सप्तमं ख्रण्डम्

1. अथ ख्रलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान्विवाहे प्रतीयात्।।

अथशब्दोर्धिकारार्थः यद्वक्ष्यते तद्विवाहे वेदित्यमिति। ख्रलूत्तफः। उच्चावचग्रहणं कथम्? एते जनपदधर्मादयो नानाप्रकाराः क्रियेरन्। नैवेफक कर्त्रा समुच्चीयेरन्निति। जनपदधर्मा देशधर्माः। ग्रामशब्देन नगरमुच्यते। धर्मशब्दादेव द्वितीयानिर्देशे सत्यन्वये सि(तानिति वचनं वुफलधर्मा अपि कार्या इत्येवमर्थम्। तान्। तादृशानित्यर्थः विवाहाधिकारे पुनर्विवाहग्रहणं कृत्स्ने विवाहे यथा स्युस्त्येवमर्थम्। इतस्थोपयम- कालादुत्तरकालं विहितत्वादुपयमने न स्युः। उपयमनं नाम कन्यायाः स्वीकरणम्। प्रतीयादिति। वुफर्यादित्यर्थः ।।1।।

श्मशानात्पतिध्नी।।

उभयतःसस्यात्क्षेत्रादाहृतं मृत्पिण्डं गृ ीयाच्चेदस्याः प्रजा अन्नवती भविष्यतीति विद्यात्। एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम्। यदेकस्मिन्संवत्सरे द्विः पफलीति तदुभयतः सस्यं क्षेत्रम्। अपवृत्ते कर्मणि या वेदिस्तस्याः पुरीषम्। अविदासी "दो नामाशोष्यो "दः। देवनं द्यूतस्थानम्। द्वौ प्रव्रजतीति द्विप्रव्राजिनी। स्वैरिणीति यावत्। यत्रोप्तं बीजं न प्ररोहति तदिरिणम्। पतिं हन्तीति पतिघ्नी। अत्र पतिस्तुतिनिन्दाद्वारेण सैव स्तुता निन्दिता चेति मन्तव्यम्। उत्तरैर्हिभिर्वाक्यैः सैव निन्द्यते।।6।।

6. यदि कन्या एक वर्ष में दो पफसल देने वाले खेत की मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझना चाहिए कि उससे उत्पन्न होने वाली प्रजा अ वान या अन्नवती होगी। यदि कन्या यज्ञवेदी वाली भूमि से ग्रहण की गई मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझें कि उसकी सन्तान ब्रह्मवर्चस्विनी उत्पन्न होगी। यदि कन्या गउफशाला वेफ प्रदेश की मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो उसकी प्रजा पशुमती होगी। यदि कन्या सदा जल से भरे रहने वाले तालाब की मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझें कि उसकी प्रजायें सर्वसम्पन्न उत्पन्न होगी। यदि कन्या जूए ;द्यूतद्ध वेफ स्थान से लाई गई मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझें कि उसकी सन्तान कितवी ;जूआ खेलने वालीद्ध होगी। यदि कन्या चौराहे वेफ मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझें कि वह अपने पति वेफ प्रति समर्पित न रहने वाली होगी। यदि कन्या बंजर भूमि की मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझें कि वह निर्धन होगी। यदि वह श्मशान ही मिट्टी वेफ पिण्ड का चयन करे तो समझें कि वह अपने पति की मृत्यु का कारण बनेगी।

षष्ठं खण्डम्

1. अल ्कृत्य कन्यामुदकपूर्वां दद्यादेष ब्राह्मो विवाहः। तस्यां जातो द्वादशवरान्द्वादश परान्पुनात्युभयतः। त्विजे वितते कर्मणि दद्यादलंकृत्य स दैवो दशावरान्दश परान्पुनात्युभयतः। सह धर्मं चरत इति प्राजापत्योऽ्ष्टावरान परान्पुनात्युभयतः। गोमिथुनं दत्त्वोपयच्छेत स आर्षः सप्तावरान्सप्त परान्पुनात्युभयतः। मिथः समयं कृत्वोपयच्छेत स गान्धर्वः। धनेनोपतोष्योपयच्छेत सः आसुरः। सुप्तानां प्रमत्तानां वाऽ्पहरेत्स पैशाचः हत्वा भित्त्वा च शीर्षाणि रुदतीं रुद ो हरेत्स राक्षसः।।

कन्यामलङ्कृत्योदकपूर्वां दद्यात्। एष विवाहो ब्रह्मसंज्ञो भवति। तस्यां कन्यायां जातो द्वादशावरानुत्पत्स्यमानान्द्वादश परा पुनाति। उभयतो मातृतः पितृतश्चेत्यर्थः । एवमुत्तरत्रापि ज्ञेयम्। वितते कर्मणीत। वैतानिवेफ कर्मणीत्यर्थः। मिथः समयकरणं नाम त्वं मम भार्या भव अहं तव भर्ता भवामीत्येवंरूपो विवाहो गान्धर्वसंज्ञः। कन्यापित्रे धनदानेन यो विवाहः स आसुरसंज्ञः। सुप्तेभ्यः प्रमत्तेभ्योऽ्सावधानेभ्यः कन्यामपहृत्य यो विवाहःस पैशाचसंज्ञकः। यु(कृत्वा कन्यामपहृत्य यो विवाहः स राक्षससंज्ञकः। एवमेतेऽ् ौ विवाहाः। तत्र पूर्वेषु चतुर्षु पूर्वपूर्वः प्रशस्तः। उत्तरेषु चतुर्षूत्तरोत्तरः पापीयान्। तत्र पूर्वो ब्रह्मणस्य। इतरयोः प्रतिग्रहाभावात्। आर्त्विज्याभावाच्च। गान्धर्वः क्षत्रियस्य। पुराणे दृ त्वात्। राक्षसश्च तस्यैव। यु(संयोगात्। आसुरस्तु वैश्यस्य। धनसंयोगात्। इतरे त्रयोऽ्नियताः।।1।।

1. अब विभिन्न प्रकार वेफ विवाहों का वर्णन इस खण्ड में प्राप्त होता है। जब पिता अपनी कन्या को वस्त्राभूषण से अलंकृत करवेफ अर्घ्यादि प्रदान करवेफ वर को प्रदान करे अर्थात विधिपूर्वक विवाह करे तो वह 'ब्राह्म' विवाह कहलाता है। इस प्रकार वेफ विवाह से उत्पन्न पुत्र पितृ एवं मातृ दोनों वुफलों वेफ बारह-बारह पूर्वजों व अग्रजों को पवित्र कर देता है। जब पिता किसी)त्विज को अपनी कन्या प्रदान करता है और अपनी कन्या को वस्त्राभूषण से अलंकृत करवेफ तीनों श्रौत अग्नियों का आधान करवेफ विशेष यज्ञ का सम्पादन करता हुआ विवाह संस्कार सम्पन्न करता है, इस प्रकार का

2. बु(िमते कन्यां प्रयच्छेत्।।

अर्थदर्शिनी बु(िः। कोऽर्थः? यः शाह्यक्रि(ः। तद्वते बु(िमते कन्यां प्रयच्छेत्।।2।।

2. वर वेफ गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि बु(िमान पुरुष को ही कन्या प्रदान करें।

अथ कन्यागुणानाह-

3. बु(िरूपशीललक्षणसम्पन्नामरोगामुपयच्छेत्।।

बु(िरूपशीललक्षणैर्युक्तफां रोगवर्जितां कन्यामुपयच्छेत् स्त्रीवुफर्यार्त्। यत्र स्वमनो रमते तद्रूपम्।।3।।

3. कन्या वेफ गुणों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है। कि बुद्धिमती, रूपवती तथा शील लक्षणों से युक्त तथा निरोगी कन्या को ही वधू वेफ रूप में स्वीकार करें।

लक्षणानां दुरवगाहत्वं मत्वा परीक्षान्तरमाह-

4. दुर्विज्ञेयानि लक्षणानीति।।

लक्षणानि दुर्ज्ञेयानीति कृत्वैवं परीक्षेत।।4।।

4. वधू वेफ गुणों की पहचान करने वेफ लिए कहा गया है कि कन्या वेफ चरित्र को पूर्णरूप से जानना बहुत कठिन है। अतः इस विधि से वधू वेफ गुणों की पहचान करें-

5. अ ौ पिण्डान्कृत्वा तमग्रे प्रथमं जज्ञ ते सत्यं प्रतिष्ठितम्। यदियं वुफमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद्दृश्यता- मिति पिण्डानभिमन्त्र्य वुफमारीं ब्रूयादेषामेवंफ गृहाण इति।।

क्षेत्रादिभ्योऽ भ्यो मृदामाहृत्या ौ पिण्डान्कृत्वा ’ तमग्रे‘ इत्यनेन मृत्पिण्डानभिमन्त्र्य वुफमारीं ब्रूयादेषामेवंफ गृहाणेति। पुनः पिण्डग्रहणं वुफमार्या अभिमन्त्रणं मा भूत्। साऽपि हि द्वितीया निर्दि ।।5।।

5. लड़की का पिता अथवा आभिभावक विभिन्न खेतों की मिट्टी लाकर उसवेफ आठ पिण्ड तैयार करे और उन पिण्डों वेफ उफपर ’)तमग्रे प्रथमं जज्ञ----‘ इस मन्त्र का उच्चारण करें। इस प्रकार अभिमन्त्रित पिण्डों वेफ समक्ष कन्या को बैठाकर उन आठ पिण्डों में से किसी एक पिण्ड को चुनने वेफ लिए कहे।

6. क्षेत्राच्चेदुभवतःसस्याद्गृ ीयादन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यतीति विद्याद्गोष्ठात्पशुमती वेदिपुरीषाद्ब्रह्मवर्चस्विन्यविदासिनो ”दात् सर्वसम्पन्ना देवनात्कितवी चतुष्पथाद्द्विप्रवाजिनीरिणादधन्या

4. अग्न आयूंषि पवस इति तिसृभिः प्रजापते न त्यदेतान्यन्य इति च व्याहृतिभिर्वा।।

चतुसृभिः। चतसृणामेव हि सूत्रे व्याहृतिसंज्ञा कृता व्याहृतिभिश्च भूः स्वाहेत्यादिभिः।।4।।

4. पूर्ववर्णित चार आहुतियों में प्रथम तीन आज्याहुतियाँ 'अग्न आयूंषि-- आदि तीन)चाओं वेफ द्वाग तथा चौथी आहुति 'ओम प्रजापते--- इस मन्त्र वेफ द्वाग व्याहृति सहित आहुति प्रदान करें।

5. समुच्चयमेवेफ।।

एवेफ आचार्या गाहुतीनां व्याहृत्याहुतीनां च समुच्चयमिच्छन्ति। तेना ।[[हुतयः।।5।।

5. वुफछ आचार्य आज्याहुतियों वेफ मन्त्रों वेफ साथ भूः भुवः स्वः आदि व्याहृतियों का समुच्चयमानतें हुए आहुति प्रदान करने का विकल्प मानते हैं।

6. नैवेफ कांचन।।

एवेफ आचार्याः कामप्याहुतिं नेच्छन्ति। नैक इत्येव वत्तफव्ये कांचनग्रहण- मृगाहुतीनां व्याहृत्याहुतीनां चायं प्रतिषेधो यथा स्यात्। अन्यास्त्वाहुतयो होतव्या इत्येवमर्थम्। किंशब्दस्य सर्वनामत्वात्। सर्वनाम्नां च प्रकृतपग- र्मिशत्वात्। तेनानादेशाहुतयः सि(ाः।।6।।

6. वुफछ आचार्य आज्याहुतियों को न प्रदान करने का विकल्प मानते हैं।

7. त्यमर्यमा भवसि यत्कनीनामिति विवाहे चतुर्थीम्।।

अत्र संशयः। पूर्वस्या बाध उत्तोत्कर्ष इति। उत्कर्ष इति ब्रूमः। असमानजातित्वाद्। समानजातेरेव हि बाधो विहितः। 'एष समानजातिधर्मः ;श्रौ02.1द्ध इति। तच्छब्दचोदितश्च समानजातिर्भवति। यथा 'अथ सामिधेन्यः ;श्रौ01.2द्ध 'ताः सामिधेन्यः' ;श्रौ03.8द्ध इति। अत्र त्वतच्छब्दचोदितत्वान्न बाधो[[पि तूत्कर्षः। 'यथा प्रतिप्रस्थाता वाजिने तृतीयः' ;श्रौ0 2.2)द्ध इत्यत्रा[[ग्नीध्रस्योत्कर्षस्तद्वदत्रापि। अपि च संख्यानिर्दि ो न पूर्व बाधते। यत्र तु बाधते तत्र स्थान ग्रहणं करोति। यथा 'तृतीया : स्थाने महाव्रतम्' ;श्रौ0 10.2द्ध तस्मादुत्कर्ष इति सि(म्।।7।।

7. विवाह संस्कार में इन चार आज्याहुतियों में से चौथी आज्याहुति 'त्वमर्यमा भवासि---'इस मन्त्र वेफ साथ मानते हैं।

पञ्चमं ख्रण्डम्

1. वुफलमग्रे परिक्षेत ये मातृतः पितृतश्चेति यथोत्तफं पुरस्तात्।

वुफलशब्देनोभौ वंशौ महापातकादिरहितावतिशुी तथा[पस्मादिदोष- रहिताविति। वुफलमग्रे प्रथमं परिक्षेत। कथम्? ये मातृतः पितृतश्चेति यथोत्तफं पुरस्तात्। 'ये मातृतः पितृतश्च दशफुरुषं समतुष्टिता विद्यातपोभ्यां पुण्यैश्च कर्मभिर्येषामुभयतो नाब्राह्मण्यं निनयेयुः पितृतश्चैवेफ ;श्रौ0 9.3द्ध इति। अग्रेवचनं वधूवग्गुणेभ्यः वुफलमेव प्रधानं स्यादित्येवमर्थम्।।1।।

1. जैसा कि पहले कहा जा चुका है विवाह से पूर्व वर और वधू वेफ माता-पिता दोनों ओर वेफ वुफलों की परीक्षा कर लेनी चाहिए। दोनों वेफ वुफल दस पीढ़ी तक विद्या तप और पुण्य कर्मों से युक्त होने चाहिए।

अथ वग्गुणमाह-

पर अर्थात अत्तरायण में विद्यमान होने पर, शुक्ल पक्ष में तथा कल्याण नक्षत्र वेफ उदय होने पर यजमान चौल कर्म, उपनयन, वेफशान्त तथा विवाह संस्कार कर सकता है।

2. सार्वकालमेवेफ विवाहम्।।

एक आचार्याः सर्वस्मिन्काले विवाहमिच्छन्ति। नोदगयनादिनियमः। तेषां कोऽभिप्रायः दोषश्रवणात् तुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां हि दोषः पितरमृच्छति इति। इत्ये च लौकिका दोषाः समुत्पद्यन्ते।।2।।

2. वुफछ आचार्यो वेफ मतानुसार विवाह संस्कार किसी भी काल में किया जा सकता है। अर्थात विवाह में अत्तरायण अपेक्षित नहीं है।

3. तेषां पुरस्ताच्चत आज्याहुतीर्जहुयात्।।

तेषां ग्रहणं किमर्थम्। विवाहस्यानन्तरत्वात्सर्वेषा प्राप्त्यर्थमिति चेत्। तत्। दर्शनात्सर्वेषां स्युः। यदयं विवाहे चतुर्थीमित्याह। उच्यते। तेषां सम्बन्धिन्योऽन्तर्वर्तिन्य एता आहुतयो भवन्ति। न तु तेभ्यः पूर्वं भवन्तीत्येवमर्थं तेषां ग्रहणम्। तर्हि पुरस्ताद् ग्रहणमपार्थकम्। न। प्रयोजनमुपरि ाद्वक्ष्यामः। संख्यावचनं किमर्थम्? तत्रैवेफ ब्रुवते। 'यत्र परिमाणवचनं प्रत्यृचग्रहणं वा नास्ति 'धाता ददातु दाशुष इति द्वाभ्याम् ;1.14.3द्ध इत्यादौ तत्र कथं प्रत्यादेशं होमः स्यात् इति। तदसत्। एकमन्त्राणि कर्माणीति न्यायात्। अपि च 'स्वाहाकारान्तैर्मन्त्रैः ;श्रौ0 1.11द्ध इति प्रतिमन्त्रं स्वाहाकारः प्राप्तः। स च प्रदानार्थः। न च तमतिक्रम्य होतव्यमिति युक्तफं वक्तुफमस्य विद्यमानायां गतौ ;?द्ध तेन सर्वत्र प्रत्यृचमेव होम इति सि(म्। का पुनरस्य गतिः। तत्रैवेफ नियमार्थमिति प्राहुः। 'समुच्चयपक्षेऽपि कथं चतह्र एव स्युर्न बह इति कथं प्रयोगः? एवैफकस्या चोक्ते एवैफका व्याहृतिः।' तदप्यसत्। प्राधान्येनाऽतिविधिप्रकरणत्वादाहुतिसमुच्चय एव। न मन्त्रसमुच्चयः। किमर्थ तर्हीदं नियमार्थमेव चतह्र एव स्युरिति। तेनाऽज्यभागौ न भवतः। तर्हि स्विकृदपि न स्यात्। न। पुरस्तान्नियमार्थं हि पुरस्ताद्ग्रहणं कृतम्। आघारौ तु स्त एव। अनाहुतित्वात्। आज्यग्रहणं परिस्तरण- विकल्पार्थक्।।3।।

3. इन सभी संस्कारों में यज्ञ वेफ पश्चात् चार आज्याहुति प्रदान करें।

७. यजमान जिस भी देवता को आहुति देना चाहता हो उस-उस देवता वेफ साथ 'स्वाहा' पद जोड़ता हुआ आहुति प्रदान करे। यथा सावित्र्यै स्वाहा, ब्रह्मण्ये स्वाहा, सोमाय स्वाहा आदि।

४. अग्निरिन्द्रः प्रजापतिर्विश्वेदेवा ब्रह्मत्येनादेशे।।

यत्र होमस्यानादेशः कर्मणश्चाऽऽदेशस्तत्रैता देवता होतव्याः। वुफत्र? जातकर्मादौ। तर्हि स्थारोहणेऽपि स्यात्। एवं तर्ह्यन्यथा व्याख्यास्यामः। यत्र होमैश्चोद्यते न मन्त्रैश्चौलकर्मादौ 'नैवेफ कांचन' ;1.4.6द्ध पक्षे तत्रैताभ्यो देवताभ्यो जुहोति मन्त्रानादेशइतीयमेव व्याख्या साध्वी। मन्त्रप्रकाश्यत्वात्। तेन जातकर्मादौ न होमोऽस्ति। अन्ये तु पूर्वोत्तफदोषपरिहारेण वर्णयन्ति। यत्र पशाद्दे होमश्चोद्यते स्वशाद्दे तु कर्ममात्रं तत्रैता देवता भवन्तीति। क्व? जातकर्मादौ।।४।।

४. यज्ञ में जहां कहीं विशिष्ट देवता का आहुति प्रदान करने वेफ लिए नाम नहीं है, वह आहुति अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वेदेव, तथा ब्रह्म को समझनी चाहिए।

५. एकबर्हिराज्यस्विष्टकृतः स्युस्तुल्यकालाः।।

एवंफ बर्हिर्गदिर्येषां पाकयज्ञानां ते तथोत्तफाः। तुल्यकाला एककालाः। एकस्मिन्काले यद्यनेवेफ पाकयज्ञाः कार्यत्वेन प्राप्तास्तदा ते समानतन्त्राः कार्या इत्यर्थः। किमुदाहरणम्? यदा पर्वणि रात्रौ काम उत्पद्यते तदा काम्यपार्वणयोरेककालत्वम्। यदा वाऽऽग्रयणाश्वयुजी कर्मणी आश्वयुज्यां क्रियेते तदा तयोरेवेफककालत्वम्।।५।।

५. यदि यजमान किसी अन्य पाकयज्ञ की आहुति साथ-साथ प्रदान करना चाहता है तो वह पूर्व आच्छादित वुफशाओं को उसी आज्य को और उसी आहुति को स्विष्टकृत और अग्नि की आहुतियों में प्रयोग कर सकता है अर्थात, उसी वेदी पर उन्हीं आहुतियों से अग्नि और स्विटकृत, देवता भी आहुति प्रदान कर सकता है।

बर्हिर्गदिग्रहणस्य तन्त्रोपलक्षणार्थतां स्प यितुं यज्ञगाथामुदाहरति-

१०. तदेषाऽभि यज्ञगाथा गीयते। पाकयज्ञान्त्समासाद्य एकाज्यानेकबर्हिषः। एकस्वि कृतः वुफर्याऽनाऽपि सति दैवते।।

तस्मि र्थ एषा यज्ञगाथाऽभिगीयते पट्यते। बहून्पाक यज्ञानेकस्मिन्काले समासाद्य प्राप्यैकाज्ञानेक बर्हिष एकस्वि कृतः वुफर्या ानाऽपि सति दैवते। न प्रतिदैवतं तन्मावर्तयितव्यमित्यर्थः।।१०।।

१०. इस सन्दर्भ में निम्नलिखित वैदिक गाथाओं का उदाहरण दिया जाता है- ष्पाकयज्ञान्----ष्अर्थात् यदि वह विभिन्न पाकयज्ञों को एक ही समय में सम्पन्न करना चाहे तो वह समान आज्य, समान बर्हिष और समान आहुति का प्रयोग कर सकता हैं, भले ही देवता भिन्न हो।

चतुर्थं ख्ण्डम् - समावर्तन संस्कार

१. उदगयन आपूर्यमाण पक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौलकर्मोपनयन गोदान विवाहाः।।

अनेन चौलकर्मादीनां कालो विधीयते। उदग्यदा गच्छत्यादित्यस्त- दुदगयनम्। तथा लोकप्रसिद्धेः। आपूर्यमाणस्य चन्द्रस्य यः पक्षः स तथोत्तफः। स हि मासस्य च पक्षस्य च कर्ता। अथवा-आपूर्यमाणश्चासौ पक्षश्चाऽऽपूर्यमाणपक्षः। स हि चन्द्ररश्मिभिरापूर्यते शुक्लपक्ष इत्यर्थः। ज्योतिः शास्त्राक्तिं(कल्याणं नक्षत्रम्। चौलकर्मेति चौलस्यैव संज्ञानन्तरं न तु व्रतादेशानामयं काल इष्यते। स कथं प्राप्नोति। उपनयनातिदेशात्। तर्ह्यत्र गोदानग्रहणमपार्थकम्। चौलातिदेशात्। उच्यते। समावर्तनार्थं गोदानग्रहणम्। 'गौदानिवंफ कर्म वुफर्वीत' ;3.8.6द्ध इति कर्मग्रहण यथा कर्मणोऽन्यनियमे वाग्यमनादिवंफ निवर्तयति तथा कालमपि निवर्तयेत्। तस्मादृगोदानग्रहणं यत्र गोदानगन्धोऽप्यस्ति तत्रापि यथा स्यात्। तर्हि समावर्तनग्रहणमेव कार्यम्। उच्यते। लाघवार्थं गोदानग्रहणम्।।१।।

१. इस सूत्र वेफ द्वारा चौल कर्म आदि संस्कारों का कारण निर्धारण किया जाता है। सूर्य वेफ उत्तरायण में प्रस्थान होने

यावदुपरिष्टादबिल तावत् त्रिः संमार्ष्टि। अथा : पोक्ष्य ुवं निष्टप्या[[ज्यस्थाल्यां निधायोदकस्पृष्टैरेव दर्भैर्जुहूं चैवमेव संमार्ष्टि। ततो दर्भाना : प्रक्षाल्याग्नावनुप्रहरेत्। एवं संमार्गः। स्विष्टकृदन्ते चेध्मसंनहनानामग्नौ प्रासनं दृष्टम्। अन्यदपि यदस्मच्छा क्रि(परशाहे दृष्टं तदपीच्छातः कार्यमिति ज्ञापयितुं प्रागुत्पुनातीति पुनराहारप्रतिषेधः कृतः। किंच-उत्पुनाति त्रिरित्येव वाच्यं लाघवार्थम्। तथा सति 'सर्वत्रैव कर्मावृत्तौ' ;श्रो0 सू0 1.2.द्ध इत्यनेन सकृन्मन्त्रेण द्विस्तुष्णीमिति सिध्यति। एवं सि(इदं वचनं गृह्ये कर्मावृत्तौ मन्त्रावृतिर्भविष्यती- त्येवमर्थम्। तथा च सति पूर्वयोगः किमर्थः। आज्याधिकारार्थ इति चेत् तर्हि प्रागुत्पुनात्याज्यमित्यत्रैव वाच्यम्। अथ पवित्रसंज्ञार्थः। तर्हि वुफशौ पवित्रे इत्यत्रैव वाच्यम्। उच्यते। पूर्वेणामन्त्रकमुत्पवनं विधीयते। अनेन तु समन्त्रकम्। तत्र वैतानिवेफ[मन्त्रवंफ गृह्ये कर्मणि समन्त्रकमित्येवं विनिवेशः।।३।।

3. प्रादेश मात्र की बिना टूटे हुए अग्रभाग तथा बीच वेफ सीक वेफ भाग सहित दो वुफशाएं अगूंठे तथा कनिष्ठिका अगुली से पकड़ कर तथा हथेलि प्रदेश को उफपर की ओर रखते हुए ¬सवितुष्टवा-----ग् वेदी वेफ पूर्वभाग में आज्य का उत्पवन करे अर्थात् पवित्र एवं शु(करे। एक बार इस मन्त्र वेफ द्वारा तथा दो बार मौन रहकर उत्पवन कार्य करे।

४. कृताकृतमाज्यहोमेषु परिस्तरणम्।।

कृतिरेव कृतम्। कृतं चाकृतं च यस्य तत्तथोक्तम्। आज्यमेव यत्र हविः स आज्यहोमः। अन्यथा[[ज्यग्रहणस्य वैयर्थं स्यात्। सर्वत्र ह्यधारादयः सन्त्येव। आज्यहोमेषु परिस्तरणं कार्यं वा न वेत्यर्थः। अयं च परिस्तरणविकल्पो यत्रा[[ज्यग्रहणमस्ति यथा 'आज्याहुतीर्जुहुयात्' ;1.4.3द्ध इति तत्रैव भवति। न पुनरनादिष्टाज्यहोमेषु। यद्यनादिष्टहोमेष्व- प्ययं विकल्पः स्यात्तत्रा[[ज्यग्रणमपार्थवंफ स्यात्।।4।।

4. आज्य होमों में परिसतरण का विकल्प माना गया है परिस्तरण करे अथवा न करे यह यजमान की इच्छा है। वेदी वेफ चारों ओर वुफशाएं विछाना परिस्तरण कहलाता है।

५. तथा[[ज्यभागौ पाकयज्ञेषु।।

तथेति। कृताकृताविर्त्थः। पाकयज्ञेषु सर्वेष्वाज्यभागौ कार्यौ वा न वेत्यर्थः पाकयज्ञग्रहणमाज्यहोमाधिकारनिवृत्त्यर्थम्।।5।।

5. पाकयज्ञों में आज्य आहुतियां प्रदान करने का भी विकल्प है, यजमान चाहे तो पाक यज्ञों में आज्य की दी आहुतियो प्रदान करे अथवा न करे।

६. ब्रह्मा च धन्वन्तरियज्ञशूलगववर्जम्।।

तथेत्यनुवर्तते। पाकयज्ञेष्विति च। ब्रह्मा च सर्वेषु पाकयज्ञेषु कृताकृतो भवति। धन्वन्तरियज्ञं शूलगवं च वर्जयित्वा। अथ तयोर्नित्यो भवति। उत नैव भवति। नित्यो भवतीति ब्रूमः। वुफतः? तयोरुपदेशात्। 'ब्रह्माणमग्निं चान्तरा' ;1.12.5द्ध वैधं चरित्रवन्तं ब्रह्माणमुपवेश्य, ;4.6.1.4द्ध इति च। तर्हि तस्मादेव नित्यो[स्तु किमनेनेति च शङ्का न कार्या। अस्मिन्विकल्पप्रतिषेधे[सत्युपदेशस्य पक्षे कृतार्थत्वात्। तयोरपि ब्रह्मा चौलवत्कृताकृतः स्यात्। ब्रह्मा[स्ति चेत्प्रणीताप्रणयनात्पूर्वं समस्तपाण्य ष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यां प्रत्यग्दक्षिणां निरस्य 'इदमहमर्वावसोः सदने सीदामि' इति मन्त्रेणो पविशेत्। ततः 'बृहस्पतिर्ब्रह्मा ब्रह्मसदने आशिष्यते बृहस्पते यज्ञं गोपाय' इत्यन्तं ब्रह्मजपं जपेत्। ततो 'ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामि' इति कर्त्रा[तिसृष्टः 'भूर्भुवः स्वः बृहस्पति प्रसूतः' इति जपित्वा 'ओं प्रणय' इत्यति सृजेत्। वेफचिद-'तिसर्जनं प्रत्यतिसर्जनं च नेच्छन्ति। कर्मान्ते सर्वप्रायश्चित्तानि संस्थाजपं च वुफर्यात्। सर्वदा यज्ञमना भवेदुद ्मुखश्च।।6।।

6. धन्वन्तरि यज्ञ और शूलगव यज्ञ को छोड़ कर शेष सभी पाक यज्ञों में ब्रह्मा वरण का विकल्प है यजमान चाहे तो ब्रह्मा वरण करे अथवा न करे परन्तु धन्वन्तरि यज्ञ और शूलगव यज्ञ में ब्रह्ममण आवश्यक है।

७. अमुष्मै स्वाहेति जुहुयात्।।

क्वचिन्नामधेयेन होम उत्तफः 'सावित्र्यै ब्रह्मणे' ;3.5.4द्ध इत्यादि। क्वचिन्मन्त्रेण होम उत्तफः। 'अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्' ;2.2.4द्ध इति चतसृभिरिति। यत्र तु नोभयं तत्र तु नामधेयेन कथं होम स्यादित्येतत्सूत्रम्। 'प्राजापत्यस्य स्थालीपाकस्य हुत्वा' ;1.1.3.7द्ध काम्याश्चरवः ;3.6.1द्ध इत्यादौ ।।7।।

आरभ्योदक्संस्थं कार्यमित्यर्थः। ततस्तूष्णीं पर्युक्षणं करोति। तूष्णींग्रहणं मन्त्रवर्जमन्ये धर्मा अग्निहोत्रदृष्टा भवन्तीत्येवमर्थम्। त्रिि रेवैफवंफ पुनः पुनरुदकमादा- या(दायान्ते च कर्मणां पर्युक्षणम्। उभयत्र च परिसमूहनपूर्वकमित्यत्र पुनः परिसमूहनविधानं मध्ये परिस्तरणसि(र्थम्। एतस्मिन्काले उत्तरतो- (ग्नेरपः प्रणयति चमसेन कांस्येन मृन्मयेन वा। उत्तरत्र निनयन-दर्शनात्।।1।।

1. अब, जब कभी भी वह यज्ञ करना चाहे तब तब वह यज्ञ वेफ स्थान को गाय वेफ गोबर से लीप कर यज्ञवुफण्ड से चारों ओर उषुमात्रत्नीर की लम्बाई वेफ बराबर भाग को लीप कर, वेदी पर छः रेखाए खीचेः जिनमें एक अग्नि उत्तर से पश्चिम की ओर जाती हुई, दो रेखाएं पूर्व की ओर समाप्त होती हुई तथा तीन रेखाएं मध्य में, तत्पश्चात् उस भाग पर जल का छिड़काव करवेफ, वहां यज्ञाग्नि की स्थापना करे। तत्पश्चात् अग्नि में समिधाओं का आधान करवेफ, तीन वुफशाओं से वेदी वेफ चारों ओर धूल मिट्टी को साफ करवेफ पश्चिम ;परिसमूह्यद्ध, वेदी वेफ चारों ओर पूर्व, दक्षिण और उत्तर इस क्रम से वुफशाएं बिछा कर उनपर मौन रहकर पर्युक्षण अर्थात् जल का छिड़काव करे।

2. पवित्राभ्यामाज्यस्योत्पवनम्।।

कार्यमिति शेषः।।2।।

2. तत्पश्चात् दो वुफशाओं से गर्म किए गये आज्य को पवित्र करे।

अथ किंलक्षणे पवित्रे कथं वोत्पवनं कार्यमित्येतदृद्वयं निर्णेतुमाह-

3. अप्रच्छिन्नाग्रावनन्तर्गर्भौ प्रादेशमात्रौ वुफशौ नाना(न्तयोर्गृ हीत्वा(ष्ठोप- कनिष्ठिकाभ्यामुत्तानाभ्यां पाणिभ्यां प्सवितु । प्रसव उत्पुना- म्यच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः॰ इति प्रागुत्पुनाति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्।।

प्रशब्दः सूक्ष्मच्छिन्नाग्रयोरनिवृत्त्यर्थः। न विद्यते(न्तर्मध्ये गर्भो ययोस्तौ तथोक्तौ। प्रादेशमात्रौ वुफशौ। एवंलक्षणयुक्तौ वुफशौ पवित्रसंज्ञौ। नानेत्यसंसर्गार्थम्। पवित्रे अन्तयोरसंसृष्टे अ ष्ठोपकनिष्ठिकाभ्यामुत्तानाभ्यां पाणिभ्यां गृहीत्वा प्रागुत्पुनाति सकृन्मन्त्रेण द्विस्तूष्णीम्। प्रागिति पाठः कार्यः। प्रा ति पुंल्लि पाठे तु कर्तुः प्रा मुखत्वं स्यात्। तच्च परिभाषासि(म्। ननु कर्मणश्चापि प्राक्त्वं तत एव सि(म्। सत्यम्। तत्तु शाह्रान्तरदृष्टानामविरोधिनां पात्रासादनादीनामिच्छातः क्रिया' इति। इत्थं हि शाह्रान्तरे दृष्टम्। परिस्तरणकाले पात्रासादनार्थमुत्तरतो(ग्नेः कांश्चिद्दर्भानास्तीर्य ब्रह्मवत्सु कर्मसु दक्षिणतो(ग्नेरपि कांश्चिद्दर्भानास्तीर्य ततो(ग्निं पर्युक्ष्योदगग्नेर्दर्भेषु द्वन्द्वं न्यि पात्राण्यासादनादयति उभाभ्यां पाणिभ्याम्। अयं पात्रासादनक्रमः-'प्रोक्षणपात्रमथ वयुक्तं पात्रमपां प्रणयनाय विशिष्टम्। भाजनमाज्यहविर्ग्रहणार्थं त्विध्ममथो परिसादय दर्भान्' इति। आज्यहोमेषु दर्वीमत्सु तु कर्मस्वयं क्रमः-'स्थालीं चरोः प्रोक्षणभाजनं च दर्वी वौ सास्य दर्विहोमे। पात्रं प्रणीतार्थमथाज्य- पात्रमिध्मं क्रमेण क्रमवित्वुफशैश्च'।। 'ततो(प्रच्छि ग्रौ' इत्युक्तलक्षणे पवित्रे गृहीत्वा प्रोक्षणपात्रे निधायाप आसिच्य ताभ्यां त्रिरुत्पूयोत्तानानि पात्राणि कृत्वा वि स्येध्मं सर्वाणि पात्राणि त्रिः प्रोक्षति। ततः प्रणीतापात्रं प्रत्यगग्नेर्निधाय तस्मिंस्ते पवित्रे अन्तर्धायापि : पूरयित्वा गन्धादि प्रक्षिप्य पाणिभ्यां पात्रं नासिकान्तमु(त्योत्तरतो(ग्नेर्दर्भेषु निधाय दर्भैः प्रच्छादयेदिति। आचार्यस्य तु मते पूर्णपात्रं नित्यं कार्यम्। अन्यस्य तु करणे(भ्युदायः। अकरणे न प्रत्यवाय इत्याशयः। इत्थं चान्यशाह्रे दृष्टम्। 'पूर्णपात्रनिधानानन्तरं तत्रस्थे पवित्रे गृहीत्वा((ज्यस्थाल्यां निधाया((ज्यमासिच्योदग ारानपोह्य, तेष्वधिश्रित्या((ज्यमवज्वाल्य दर्भाग्रे प्रच्छिद्य, प्रक्षाल्या((ज्ये प्रास्य, पुनर्ज्वलता तेनैवोल्मुवेफन त्रिः परिहरेद्येनाज्यलनं कृतम्। ततः शनैः शनैरुदगुद्वास्या ारानतिसृज्य तत्रस्थ- मेवा((ज्यमुत्पूय, पवित्रे अि : प्रोक्ष्याग्नौ प्रक्षिपेदिति। आचार्यस्योत्पवनं नित्यम्। अन्यत्तु पाक्षिकम्। पूर्ववदित्यावुफतम्। वुंवसंमार्जनमप्यन्यशाह्रे दृष्टम्। तस्यापीच्छातः क्रिया। अनयोः संमार्ग उच्यते-'दक्षिणेन हस्तेनोभौ गृहीत्वा सव्येन कांश्चिद्दर्भानादाय सहैवाग्नौ प्रताप्य जुहूं निधाय दक्षिणेन पाणिना वस्य बिलं दर्भाग्रैः प्रागारभ्य प्रागपवर्गं त्रिः संमृज्याधस्तादग्रेणैवाभ्यात्मं त्रिः संमार्ष्टि। ततो दर्भाणां मूलेन दण्डस्या- धस्तादबिलपृष्ठादारभ्य

अथशब्दोऽधिकारर्थः। इत उत्तरं यानि वक्ष्यन्ते तेषामेवायं होमविधिर्भवतीति। तेन वैश्वदेवे क्व च ग्रहणेन प्राप्यमाणो होष्य(र्मो न भवति। खलु- शब्दोऽपार्थकः। मिताक्षरेष्वनर्थक इति वचनात्। यत्र क्वचग्रहणमहरहः क्रियान्तरविध्याशङ्कानिवृत्त्यथर्म्। यत्र क्व च होष्यन्स्यादिति होममनूद्य धर्मविधिः। तर्हि यत्रेत्येवास्तु। क्वचग्रहणमनर्थकम्। न। तन्त्रप्रतिषेध-विषयेऽप्यौपासानाग्निपरिचरण एतत्सूत्रविहितपरिसमूहनपरिस्तरणपर्युक्षणानां प्राप्त्यर्थं क्वचग्रहणम्। लेखादयो न सन्तीति वक्ष्यामः। इषुमात्रा यस्य स्थण्डिलस्य तदिषुमात्रम्। एकस्य मात्राशब्दस्य लोपः। उष्ट्रमुखवत्। तच्च तदवरं चेषुमात्रावरम्। अवरं निकृष्टमित्यर्थः। सर्वतः सर्वासु दिक्षु। चतसुष्वित्यर्थः चतसृष्वपि दिक्षु इषुमात्रप्रमाणं ततोऽधिवंफ वा चतुरस्त्रं स्थण्डिलं गोमयेनोपलिप्य षड्लेखा उल्लिखते। षड्ग्रहणं कथम्? षट्स्वपि लेखासु अग्नेः स्थापन यथा स्यािदिति। वेफनचिद्यज्ञियेन शकलेन स्थण्डिलमध्य उदग्दीर्घा प्रादेशमात्रां न्यूनां वा लेखामग्नि- प्रतिष्ठापनदेशस्य पश्चाल्लिखेत्। नानेत्यसंसर्गार्थम्। तस्या अन्तयोजना असंसुष्टे प्रागायते लेखे लिखेत्। ततस्ति ो मध्येऽसंष्ट्राः प्रागायते लेखे लिखेत्। शकलं तत्रैव निधाय स्थण्डिलमभ्युक्ष्यस शंकल निरस्याप उपस्पृश्याभ्यात्ममग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वादधाति। ततोऽतिदेशप्राप्तं बर्हिष इध्मस्य च संनहनं करोति। अन्वाधानं नामामुककर्मा त्वेन द्वयोस्तिसृणां वा समिधामभ्याधानम्। ततः परिसमुह्य। परिसमूहनं नामाग्नेः समन्तात्परिमार्जनम्। तच्चाग्निहोत्रवत्। ततः परिस्तीर्य। पुरस्ताद्दक्षिणतः पश्चादुत्तरत इत्येवम्। उदक्संस्थवचनमेवैफकस्यां दिश्युदक्संथताप्राप्त्यर्थम्। अथवा-इत्युदक्संस्थमिति पृथग्योगः निपातानामनेकार्थत्वादितिशब्द एवंप्रकारे। एवंविधं यत्कर्म सर्वदिक्संब(परिसमूहनपर्युक्षणशिक्लिन्दनादिवंफ तदपराजिताया

6. ब्रहम और ब्रहम वेफ पुरुषों को मध्य में आहुति प्रदान करे।

7. विश्वेभ्यो देवेभ्यः॥

मध्य एव॥7॥

7. सभी देवताओं को एक साथ 'विश्वेम्यो देवेभ्यःस्वाहा' इस मन्त्र से मध्य में ही आहुति प्रदान करे।

8. सर्वोभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्य इति दिवा॥

मध्य एव। दिवाग्रहणं ज्ञापनार्थं क्रियते। तेन वैश्वदेवस्य प्रातरारम्भणं भवति। इतरथा सायं प्रातरुपदेशात्सायमुपक्रमः स्यात्। अग्निहोत्रवत्। तच्चानि म्। अतो दिवाग्रहणम्। तेनाग्नये स्वोहेति सायं जुहुयादित्यत्र सायमुपक्रमः॥8॥

8. प्रातःकाल मध्य में ही'सर्वेभ्यो भूतिभ्यो दिवाचारिम्यः स्वाहा' इस मन्त्र से सभी दिन में विचरण करने वाले प्राणियों ;भूतोंद्ध को आहुति प्रदान करे।

9. नक्तंचारिभ्य इति नक्तम्॥

दिशाचारिभ्य इत्यस्य स्थाने नक्तंचारिभ्य इति नक्तं भवति॥9॥

9. सायकाल वेफ समय दिवाचारिम्यः पद वेफ स्थान पर 'नक्तं चारिभ्यः' इस पद का उच्चारण करे।

10. रक्षोभ्य इत्युत्तरतः॥

सर्वासामुत्तरतः॥10॥

10. सभी आहुतियों वेफ उत्तर भाग में 'रक्षोभ्यः स्वाहाः' मन्त्र से राक्षसों को आहुति प्रदान करे।

11. स्वधा पितृभ्य इति प्राचीनावीती शेषं दक्षिणा निनयेत्॥

'यज्ञोपवीतशौचे च' ;श्रौ0 1.1.10द्ध इति यत्र प्राचीनावीतित्वं निवीतित्वं वा((चार्येण न विहितं तत्र यज्ञोपवीतित्वं प्राप्तम्। अतः प्राचीनावीतित्वं विधीयते। निनयेदिति वचनं क्रियान्तरज्ञापनार्थम्। तेन बलिहरणमिदं न भवति। किमेवं सिध्यति। स्वाहाकारो न भवति। ननु स्वधाकारः प्रदानार्थः स्वाहाकारश्च प्रदानार्थं इत्युभयोरेककार्यकारित्वेन समानजातीय- त्वात्स्वधाकारस्तस्य बाधको भवति। नैतदेवम्। समानार्थयोः समुच्चयो दृश्यते। यथा 'सोमाय पितृमते स्वधा नमः' इति स्वधानमस्कारयोः। तद्वदत्राप्याशङ्का स्यात्। का पुनरियं क्रिया? पितृयज्ञः। एवं च कृत्वा पितृयज्ञार्थं ब्राह्मणभोजनमन्वहं न कर्तव्यमिति सि(म्। शेषग्रहणमानन्त- र्यार्थम्। असत्यस्मिन्क्रियान्तरत्वात्कालान्तरे वा स्यात्। एवमुत्तरं वैश्वदेवं यस्मिन्कस्मिंश्चिदग्नौ वैश्वदेवं कार्यम् न गृह्य एवेति नियमः। वुफतः? प्राग्विधानाद्विवहाग्नेः यदि हि तत्राभिप्रेतमभविष्यत्तमेव पूर्वं ब्रयात् पाणिना च वैश्वदेवं कार्यम्। न पात्रान्तरेण। शक्यत्वात्॥11॥

11. 'प्राचीनावीति यजमान' अर्थात् दाएं कन्धे पर यज्ञोपवीत धरण करने वाला, शेष बचे हुए आहुति के भाग को पात्र में पानी से धेकर दक्षिण दिशा में निनयन के द्वारा पपितृभ्यः स्वधप् यह कहकर आहुति प्रदान करे।

तृतीयं खण्डम्

1. अथ खलु यत्र क्व च होष्यन्त्स्यादिषुमात्रावरं सर्वतः स्थण्डिल- मुपलिप्योलिल्ख्य षड्लेखा उदगायतां पश्चात्प्रागायते नानान्तियो- स्तिस्त्रो मध्ये तदभ्युक्ष्याग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधाय परिसमुह्य परिस्तीर्य पुरस्ताद्दक्षितः पश्चादुत्तरत इत्युदक्संस्थं तूष्णीं पर्युक्षणम्॥

तस्मात्तन्निवृत्त्यर्थं सि(ग्रहणमारभ्यम्। तर्हि हविष्यग्रहणमपार्थकम्। नन्वन्नसंस्कारत्वाद- हविष्यस्यापि स्यात्। अपूर्वार्थत्वाच्च न स्यान्न तन्निवृत्त्यर्थ विधानान्न तन्नं प्राप्नोतीति च शङ्का न कार्या। एवं तर्हि विवाहे[पि तन्निवृत्ति- प्रस ात्। तत्र चेष्यते तन्नम्।।7।।

1. गृह्य कर्मों वेफ अन्तर्गत यजमान सायं-प्रातः दोनों समय सि(हवि अर्थात-विधि से पकाई गई 'पुरीडाश' आदि की आहुति देवताओं को प्रदान करे।

होममन्त्रानाह-

2. **अग्निहोत्रदेवताभ्यः सोमाय वनस्पतयेऽग्नीषोमाभ्यामिन्द्राग्निभ्यां द्यावापृथिवीभ्यां धन्वन्तराय इन्द्राय विश्वेभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे।।**

अग्निहोत्रदेवताभ्य इति विधायको न मन्त्रः। तथा[र्थप्रतीतेः। अग्निहोत्रशब्दो[यं द्रव्ये कर्मणि च वर्तते। तत्राग्निहोत्रदेवताभ्य इति किं द्रव्यदेवता गृह्यन्त उत कर्मदेवता इति संशयः। काः पुनर्द्रव्यदेवताः? 'रुद्राद्या रौद्र विसत्' इत्याद्याः श्रुतावुक्तफाः, ता न संभवन्ति। भक्तिफमात्रत्वात्। तेन कर्मदेवता गृह्यन्ते। एवं चेदग्निर्गृहपतिस्त्येवमाद्या अपि प्राप्नुवन्तीति शङ्का न कार्या। तासामनित्यत्वात्। कास्तर्हि? अग्निः सूर्यः प्रजापति- श्चोभयत्र। श्रतौ चा[[सां सम्यगुपदेशः। 'तस्य वा एतस्याग्निहोत्रस्य' इत्यादि। सोमाय वनस्पतयः' इति। समाचारश्चैवमेव। इत्युक्तफो देवयज्ञः।।2।।

2. ये सि(आहुतियां आग्निहोत्र वेफ देवताओं-सोम, वनस्पाति, अग्नि ओर सोम, इन्द्र और आग्नि, द्यावा पृथिवी धन्वन्तरि इन्द्र, विश्वेदेव तथ ब्रहन को प्रदान करे।

3. **स्वाहेत्यथ बलिहरणम्।।**

अप्रेषितयागत्वादेव स्वाहाकारे सि(स्वाहाकारवचनं ज्ञापनार्थम्। एतज्ज्ञाप्यते। अन्यत्र बलिहरणे स्वाहाकारो न भवतीति। तेन चैत्यबलौ नमस्कारो भवति। अथशब्द आनन्तर्यार्थः। इतरथा कर्मान्तरत्वात्कालान्तरे- [पि बलिहरणं स्यात्। ब्रह्मयज्ञस्त्वेषां पूर्वो वा स्यात्। उत्तरो वा। मनुष्ययज्ञस्तूत्तर एव। 'वैश्वदेवं कृत्वातिष्ठन्नतिथिमाका ेत् इति वचनात्।।3।।

3. बलि-हरण अर्थात् आहुति प्रदान करते समय फस्वाहाय का उच्चारण करे। अन्यथा बलिहरण मे स्वाहाकार नही होता।

4. **एताभ्यश्चैव देवताभ्यः। अद्भ्य ओषधिवनस्पतिभ्यो गृहाय गृहदेवताभ्यो वास्तुदेवताभ्यः।।**

एताभ्यः प्रागुक्तफाभ्यो देवताभ्यश्चकारगृह्यमाणदेवताभ्यश्च बलिहरणं कार्यम्। एवकारः पौनर्वाचिकः। भूमौ प्राक्संस्थां पि कगेति। ब्रह्मणे स्वोहेति हुत्वा[न्तिगलं मुक्त्वा[द्भ्य इत्यादिभिर्जुहोति। गृहदेवताभ्य इति मन्त्रो न विधायकः। तथा वास्तुदेवताभ्य इति च। यदि हि विधायकः स्यादीायवचनमपार्थवंफ स्यात्। गृहमेव हि वास्त्वित्युच्यते।।4।।

4. अग्निहोत्र देवताओं वेफ बाद इनदेवताओं को भी स्वाहाकार वेफ साथ आहुति प्रदान करे। अद्भ्यःस्वाहा, ओषधिवनस्पति भ्योस्वाह, गृहय स्वाहा, गृहदेवताभ्यों स्वाहाः, वासतुदवेताभ्योः स्वाहा उस प्रकार मन्त्रोच्चारण करता हुआ।

5. **इन्द्रायेन्द्रपुरुषेभ्यो यमाय यमपुरुषेभ्यो वरुणाय वरुणपुरुषेभ्य- सोमाय सोमपुरुषेभ्य इति प्रतिदिशम्।।**

दिग्ग्रहणेन चतस्त्रों दिशो गृह्यन्ते। यत्रैव प्रधानदेवतास्तत्रैव पुरुषैर्भवित- व्यमिति कृत्वा प्रधानानामुत्तरतः पुरुषेभ्यो बलिं हरेत्।।5।।

5. 'इन्द्राय स्वाहा' 'इन्द्रपुरुषेभ्यो स्वाहा' 'यमाय स्वाहा' यमपुरुषेभ्यः स्वाहा' 'वरुणाय स्वाहा, बरुण पुरुषेभ्यः तथा सोमाय स्वाल सोमपुरुषेभ्यो स्वाहाः उन मन्त्रों से चारों दिशाओं चारों प्रमुख देवताओं वेफ साथ 2 उन देवताओं वेफ प्रधान पुरुषों को भी उनकी आहुतियों से उत्तर भाग में आहुतियां प्रदान करे।

6. **ब्रह्मणे ब्रह्मपुरुषेभ्यः इतिमध्ये।।**

दिग्देवतानां मध्ये पूर्वोत्तफे[न्तिगले।।6।।

कि फ्मैं यज्ञ का सम्पादन कर रहा हूँय् उसी प्रकार जो यजमान अग्नि में आहुति प्रदान कर रहा है अथवा वेदमन्त्र का उच्चारण कर रहा है। वह मन में विचार करे कि यज्ञ का सम्पादन कर रहा हूँ : यहां तक कि आदि यजमान यज्ञ मन्त्रों को जानता है अथवा यज्ञ कर्म का ज्ञाता है तो वह भी एक विशेष सन्तोष को प्राप्त करता है। उसी बात को जानते हुए)षि ने कहा है। द्रव्यत्याग भाव में अर्थात आहुति प्रदान करने में तथा वेदाध्ययन से देवताओं की तृप्ति होती है, अर्थात-देवताओं की स्तुति में मन्त्रोच्चारण से भी यज्ञ वेफ समान ही देवताओं की प्रीति होती है।)षि ने उस मन्त्र वेफ द्वारा ;अभोरूधाय.....द्ध यह कहा है कि देवताओं की स्तुति में उच्चारित किया गया मन्त्र घृत और मधु से भी स्वादिष्ट होता है। फ्हे इन्द्र यह मेरी वाणी ही धृत और मधु से स्वादिष्ट है। उसी प्रकार देवता नमस्कार से भी प्रसन्न होते हैं कहा भी है कि देवा हि नमस्कारं नातिक्रामान्तिय् यज्ञों वै नमः। नमस्कारोऽति यज्ञः। इत्यादि वचनों यह प्रतिपादित किया गया है कि समिधा एवं आहुति वेफ बिना भी नमस्कार आदि यज्ञ सम्पन्न किया जा सकता है।

द्वितीयं खण्डम्

1. अथ सायं प्रातः सि(स्य हविष्यस्य जुहयात्।।

अथशब्दो विशेषप्रक्रियार्थः। अथ गृह्याण्युच्यन्त इति। अत्र सायंप्रातः-शब्दौ लक्षणयार्ऽहोरात्रवचनौ। वुफत एतत्? स्मृतिदर्शनात्। 'सायंप्रातरशनाल्य- भिजुषेत्' इति। अशनं च मध्या े विहितम्। 'पूर्वा ो वै देवानां मध्यंदिनो मनुष्याणामपरा : पितृणाम्' इति। वैश्वदेवानन्तरमातिथ्या- देर्विधानाच्च। सि(पक्वम्। सि(स्येति दध्नः पयसश्च मा भूत्। हविष्यस्येति चणककोद्रवादीनां मा भूत्। कथमहविष्यस्य प्राप्नुयात्। अल्पसंस्कारत्वात्। उभयमपि तर्हि नार्ऽरभ्यम्। दर्शानादेव सि(स्य हविष्यस्य च भविष्यति। यथाचतुरश्चतुरो मु ीन्निर्वपतीत्युक्ते हविष्यमेव प्रतीयते। सि(च त वति। अनारभ्यमाणे दोषः अनादि द्रव्यत्वादाज्यं प्रसज्जेत। 'आज्यशेषेण वार्ऽनक्तिफ हृदये' ;*1.8.9*द्ध इति ब्रुवञ्ज्ञापयति। यत्र द्रव्यं नार्ऽऽदिश्यते तत्रार्ऽज्येन होम इति।

प्रहुत्यार्थम्। सोऽपि हि जुहोतिशब्द- चोदितः। हुतादिसंज्ञाविधानं कृत्स्नोपदेशार्थं शब्दतश्चार्थश्च मृगतीर्थ- संज्ञावत्। अथवा त्रैविध्योपदेशार्थम्। पाकयज्ञानामेतत्तन्त्रमिति वक्ष्यति। अत्र त्रैविध्योपदेशे सति, त्रिविधानां च पाकयज्ञत्वे सति तत्र पाकयज्ञग्रहणमपार्थवंफ सत्तत्समानजातीयानामेव हुतानां पाकयज्ञानां तन्त्रं यथा स्यादित्येवमर्थं त्रैविध्योपदेशः। प्रहुतब्रह्मणिहुतानां मा भूत्तन्त्रमिति। तेन सर्पबल्यादाववदानधर्मो निवृत्तो ब्राह्मणभोजने च निर्वापादि निवृत्तम्।।3।।

3. ;1द्ध हुत वे पाक यज्ञ हैं जिनमें आहुति यज्ञाग्नि में प्रदान की जाती है ;2द्ध प्रहुत वे पाक यज्ञ हैं जिनकी आहुतियां अग्नी में प्रदान नहीं की जाती हैं बलिहरण आदि आहुतियां अग्नि में प्रदान न करवेफ अन्य स्थानों पर प्रदान की जाती हैं। ;3द्ध ब्रह्मणि हुत वे आहुतियां हैं जो ब्राह्मणों ;पुरोहितों आदिद्ध को भोजन अथवा प्राशन् वेफ रूप में प्रदान की जाती हैं।

4. अथाप्यृचं उदाहरन्ति-प्यः समिधा य आहुती यो वेदेनग् ; *0 8.19.5द्ध* इति

अधिकपादग्रहणमृचोऽधिकस्य द्व्यृचस्य ग्रहणार्थम्। न तृचस्य। तृतीयायामर्थविरोधात्। बहुवचनं तु 'अगोरुधाय' 'आ ते अग्ने' 'यः समिधा' इति द्व्यृचावभिप्रेत्योपपन्नम्।)चामुदाहरणं कथम्? एतान्यपि कर्माणि नित्यानि श्रौतैस्तुल्यान्याहिताग्नेरपि स्युरित्येवमर्थम्।।4।।

4. उस विषय में वैदिक)चाओं का उदाहारण देते हैं कि जो समिधा ;सूखे काष्ट की लकड़ीद्ध से, आज्य एवंफ सामग्री आदि से तथा वेद मन्त्र वेफ द्वारा, उस प्रकार बिना आहुती प्रदान किए संकल्प मात्र से प्रदान की जाती हैं।

5. प्समिधमेवापि श्रद्दधान आदधन्मन्येत यज इदमिति नमस्तस्मै, य आहुत्या यो वेदेनेति विद्ययैवाप्यस्ति प्रीतिस्तदेतत्पश्यन्नृ- षिरुवाच। प्अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः। घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचतग् ;)0 8.24.20द्ध इति। वच एव म इदं घृताच्च मधुनश्च स्वादीयोऽस्ति प्रीतिः स्वादीयोऽस्त्वित्येव तदाह-प्आते अग्न)चा हविर्हृदा तष्टं भरामसि। ते ते भवन्तूक्षण)षभासो वशा उतग् ;)06.24.47द्ध इति। प्एत एव म उक्षाणश्च)षभाश्च वशाश्च भवन्ति। य इमं स्वाध्यायमधीयत इति, यो नमसा स्वध्वर इति, नमस्कारेण वै खल्वपि, न वै देवा नमस्कारमति, यज्ञो वै नमःग् इति हि ब्राह्मणं भवति।।

'समिधमेवापि श्रद्धधान आदधन्मन्येत' इत्यारभ्य 'यज्ञो वै नमः' इत्यन्तं ब्राह्मणं भवति। तत्र समिधेत्यस्य तात्पर्यकथनं ब्रह्मणं समिधमेवापीति। समिधमेवापि श्रद्दधान आदधद्यज इदं दैवतमिति मन्येतैव। वुफतः? नमस्तस्मै। अत्र नमःशब्दोनान्नमुच्यते। निघण्टुषु नमःशब्दोऽन्ननामसु पठितः समिदपि तस्मै दैवताय नमो भवति। अन्नं भवति। प्रीतिहेतुर्भवतीत्यर्थः। श्रद्दधान इत्यनेन श्र(ायुक्तस्यैव पाकयज्ञे- ऽधिकार इति ज्ञाप्यते। य आहुतीत्यस्य विवरणं ब्राह्मणं य आहुत्येति। तत्र 'सुपां सुलुक्' इत्यादिना तृतीयैकवचनस्य पूर्वसवर्णादेशः। यो वेदेनेत्यस्य पादस्य तात्पर्यकथनं ब्राह्मणो यो वेदेनेति विद्ययैवेत्यादि। विद्ययाऽपि प्रीतिदैवतस्यास्त्येवेत्यर्थः। द्रव्यत्यागाभावेऽपि वेदस्याध्ययन- मात्रेणापि प्रीतिरस्तीत्यभिप्रायः। विद्यया प्रीतिरस्तीत्येतद् द्रढयितुं तस्मिन्नर्थे मन्त्रान्तरं साक्षित्वेन श्रुतिर्दर्शयति-तदेतदित्यादि। तदेतदर्थरूपं पश्यन्नृषिर्मन्त्रद्र ोवाच अगोरुधायेत्यादि। अस्मिन्मन्त्रे स्तोतारः प्रत्यक्षीकृताः। एवंभूतायेन्द्राय हे सखायो वचो वोचत। घृतात्स्वादीयो मधुनश्चेति कृत्वेति। वच एवेत्यनेन तु तात्पर्यकथनपरेण ब्रह्मणेन देवताः प्रत्यक्षीकृताः स्यूतन्तो हे इन्द्र, इदं मे मम वच एव घृताच्च मधुनश्व स्वादीयः। असि(त्वात्स्वादीयस्त्वस्य प्रार्थनेयमिति दर्शयति-स्वादीयोऽस्त्वित्यादिना। स्वादीयोऽस्त्वित्येवासौ साक्षित्वेन)षिराहेत्यर्थः। अतोऽस्ति प्रीतिः। एवमध्ययनं रसात्स्वादुतरमित्युक्तम् मांसादपि स्वादुतरमिति मन्त्रान्तर श्रुतिर्दशयति-आ ते अग्न इत्यादि। अस्य मन्त्रस्य तात्पर्यकथनं ब्राह्मणमेत एवेत्यादि। हे अग्ने एत एव मे मत्सम्बन्धिनः। अत एव ते तवोक्षाणश्चर्षभाश्च वशाश्च भवन्ति। भवन्तित्यर्थः। भवन्तीति लोडर्थे लेट्। विकरणसिप्रत्ययाडागमेकारलोपास्तु व्यवस्थितविकल्पत्वान्न भवन्ति। वेफ मत्सम्बन्धिन इति चेत्। य इमं स्वाध्यायमधीयत इति। अस्य मन्त्रस्य तात्पर्यमुक्षादिमांसेन तव यावती प्रीतिस्तावती तव विद्ययाऽपि भवत्वित्यर्थः उत्तरार्धर्चतात्पर्यकथनं ब्राह्मणं यो नमसा स्वध्वर इति नमस्कारेणेत्यादि। नमस्कारेणापि योऽग्निमर्चयति सोऽपि स्वध्वरः शोभनयज्ञः। 'तस्येदर्वन्तो रंहयन्तः' इत्यादिपाकयज्ञानामर्थवादः। नमस्कारेणपि खलु प्रीतिरस्ति। वुफतः? न वै देवा नमस्कारमति। अतिरतिक्रमणे। देवा हि नमस्कारं नातिक्रामन्ति। तमप्याद्रियन्त इत्यर्थः इति हि ब्राह्मणं भवति। इतिशब्दो निर्दि परामर्शी। समिधमेवेत्यादि, एवमन्तं ब्राह्मणं भवतीत्यर्थः।।5।।

5. वह यजमान, जो पूर्ण श्र(ा से अग्नि में वेफवल समिधा का आधान करता है वह मन में यह ;संकल्पद्ध विचार करे

न्दपज . प्ट ;एकक -4द्ध

आश्वलायन गृह्यसूत्रम्

प्रथमो{ध्यायः

प्रथमं खण्डम् - गृह्यकर्म

1. उक्तफानि वैतानिकानि। गृह्याणि वक्ष्यामः।।

आश्वलायनमाचार्यं प्रणिपत्य जगद्गुरुम्।
देवस्वामिप्रसादेन क्रियते वृत्तिरीदृशी।।

वैतानिकान्युक्तफानि। अतः परं गृह्याणि वक्ष्यामः। वितानो{ग्नीनां विस्तारः। तत्र भवानि वैतानिकानि। बहग्निसाध्यानि कर्माणीत्यर्थः गृहनिमित्तो- {ग्निर्गृह्यः तत्र भवानि कर्माण्यपि लक्षणया गृह्याणीत्युच्यन्ते। गृहशब्दो भार्यायां शालायां च वर्तते। यथा 'सगृहो गृहमागतः इत्यत्र हि पूर्वो गृहशब्दो भार्यावचनः। उत्तरस्तु शालावचनः। येषां भार्यसंयोगादुत्पन्नाग्ना इमानि कर्माणि प्रवर्तन्ते तेषामयं गृहशब्दो भार्यावचनः। येषां तु दायविभागकाले{ग्निरुत्पद्यते तेषां शालावचनः। 'भार्यादिरग्निर्दायादिर्वा तस्मिन्गृह्याणि' इति गौतमः। उक्तफानुकीर्तनं सम्बन्धकरणार्थम्। सम्बन्धकरणे प्रयोजनं कथं सौत्र्यः परिभाषाः प्राप्नुयुरिति। कथं वा न प्राप्नुयुः। शास्त्रान्तरत्वात्। कथं शास्त्रान्तरत्वम्। सूत्रसमाप्तावाचार्यनमस्कारात् शास्त्रान्त एवा{{चार्यनमस्कार उपपद्यते। इदं प्रतिज्ञासूत्रम्।।1।।

1. अग्नियों वेफ विस्तार से सम्बन्धित ;वैतानिकद्ध श्रौत यज्ञाग्नियों में सि(होने वाले कर्मों ;यज्ञोंद्ध वेफ वर्णन वेफ पश्चात् अब गृह्याग्नि में किए जाने वाले कर्मों को कहते हैं। यह प्रतिज्ञासूत्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य आश्वलायन ने पहले आश्वलायन श्रौत सूत्र की रचना की और तदनन्तर आश्वलायन गृह्यसूत्र रचा है तभी वो कहते हैं कि श्रौत यज्ञों का वर्णन करने वेफ पश्चात् गृह्य यज्ञों का वर्णन करेंगे।

2. त्रयःपाकयज्ञाः।।

पाकयज्ञास्त्रयः। त्रिविधा इत्यर्थः। वुफतः? हुताः प्रहुता ब्रह्मणिहुता इत्येवैफकस्मिन्बहुवचननिर्देशात्। यदि हि त्रिविधत्वं न स्यादेकवचनेन निर्देशं वुफर्यात्। तस्मात् त्रिविधत्वमिति। पाकयज्ञा अल्पयज्ञाः प्रशस्तयज्ञा वा । दृष्टश्चोभयत्र पाकशब्दः। यो{स्मत्पाकतरः' इत्यत्राल्पत्वे पाक- शब्दः। 'तं पावेफन मनसा{पश्यम्' इति 'यो मा पावेफन मनसा' इति च प्रशंसायाम्। तेना{{ज्याहोमेष्वपि पाकयज्ञतन्त्रं सि(भवति। यदि हि पाकशब्दः। पक्तफौ वर्तेत तर्ह्याज्यहोमेषु तन्त्रं न स्यात्। इष्यते च। तस्मान्न तत्र वर्तते। प्रशस्तयज्ञा इत्युक्तफम् कथं प्रशस्तत्वम्। उच्यते। यस्मादेतेषु संस्कारा आम्नातास्तैश्च ब्रह्मण्यमवाप्यते। वेफ पुनस्ते संस्काराः? गर्भाधानादयः। तस्मात्सर्वेषां पाकयज्ञत्वमिति यदुक्तं तत्सम्यक्।।2।।

2. तीन प्रकार वेफ पाक यज्ञ होते हैं। ये हैं हुत, प्रहुत और ब्रह्मणिहुत।

कथं त्रिविधत्वमित्यत आह-

3. हुता अग्नौ हूयमाना अनग्नौ प्रहुता ब्राह्मणभोजने ब्रह्मणिहुताः।।

अग्नौ हूयमानाः 'हविष्यस्य जुहुयात्' ;1.2.1द्ध इत्येवमादयो हुताः। अनग्नौ क्रियमाणाः 'अथ बलिहरणम्' ;1.2.3द्ध इत्येवमादयः प्रहुताः। ब्राह्मणभोजनं यत्रास्ति ब्राह्मणान्भोजयित्वेति ते ब्रह्मणिहुताः। अग्नाविति वचनमनग्नौ हूयमानस्यसर्पबलेः

Unit - V (,dd & 5)

पारस्कर गृह्यसूत्रम् - सामान्य परिचय

संस्कार दो प्रकार के हैं-बाह्य तथा आभ्यन्तर। बाह्य संस्कार में आज प्रत्येक व्यक्ति निपुण है। वासना-मल-दूषित अन्तःकरण के संस्कार के लिए आचार्यों ने गृह्यसूत्रों का निर्माण किया है, जिनसे मन और आत्मा दोनों संस्कृत होते हैं। इन गृह्यसूत्रों मे पारस्करआचार्यकृत गृह्यसूत्र का सर्वत्र भारत में प्रचार है-इस गृह्यसूत्र में 3 काण्ड हैं। तथा 51 कण्डिकाएँ है। प्रथम काण्ड में 19 कण्डिकाएँ या पाट हैं। काण्ड शब्द अध्याय का पर्यायवाची है। काण्ड को 'वर्ग' या पर्व कह सकते हैं। प्रथम काण्ड की 1 कण्डिका में यज्ञ-भूमि-शोधन होम-पात्र तथा होम का विधान है। 2 कण्डिका में अग्न्याधान-काल, अरणिमंथन से अग्नि की उत्पत्ति व ब्राह्मण जन विधान है। 3 कण्डिका में आचार्यपूजा त्विकपूजन, मधुपर्क भक्षणादि विचार है। 4थी कण्डिका में पाकयज्ञ, वस्त्रपरिधान, कन्यादान-विधान है। 5वीं कण्डिका में आघारणविधि, जयाहोम व अभ्यातानहोम-विधि। 6वीं कण्डिका में लाजाहोम तथा पाणिग्रहण वर्णित है। 7वीं कण्डिका में शिलारोहण, उत्तम गाथाओं का कीर्तन तथा प्रदक्षिणा-विधान है। 8वीं कण्डिका में सप्तपदी, सूर्यदर्शन ध्रुवदर्शन, सिन्दुरदान का वर्णन है। इस प्रकार विवाह-विधि के मुख्य अंश तृतीय कण्डिका से अ म कण्डिका तक वर्णित हैं। 9वीं कण्डिका में गर्भ-कामना व हीकर्तव्य वर्णित है। 10वीं कण्डिका में चलते समय रथ का धुरा टूट जाने पर प्रायश्चित विधान है। 11वीं कण्डिका में चतुर्थीकर्म व स्थालीपाक ;खीर-हलुआद्ध आदि यज्ञायोग्यभोज्यद्रव्य-निमार्ण वर्णित है। 12वीं कण्डिका में दर्शपूर्णमास याग तथा बलिवैश्वदेव का विधान है। तदनन्तर पितृ ण हटाने के लिए तथा गष्ट्रभृतपुत्रोत्पादनार्थ 13वीं कण्डिका में गर्भाधानविधि वर्णित है। 14वीं कण्डिका में पुंसवनयज्ञ प्रकार दिखलाया गया है। 15वीं कण्डिका में सीमन्तोनयन संस्कार विधि है। 16वीं कण्डिका में प्रसवविधि, जातकर्म संस्कार लिखा है। 17वीं कण्डिका में नामकरण तथा निष्क्रमण संस्कारों का विस्तार है। 18वीं कण्डिका मे परदेश से आने पर सर्वप्रथम यज्ञशाला में जाना और पुत्र के सिर को सूँघने का विधान है। 19वीं कण्डिका में अ प्राशन की प(ति दिखाई है। साथ ही मांसभक्षण के विषय में चर्चा की है। इतना विषय प्रथम काण्ड के अन्तर्गत निरूपित किया गया है। इस गृह्यसूत्र में जहाँ कहीं मांस का विधान आया है, वहाँ पर मांस शब्द घनीभूत भोज्य पदार्थवाची है। यह जो 19वीं कण्डिका में लिखा हुआ है कि जिस बालक की वाणी शीघ्र व्यापार करने वाली बनाना चाहे, उसको भारद्वाज नाम के पक्षी के मांस खिलावे। इसका अर्थ यह है कि भारद्वाज पक्षी जो उपयोग करता है, वही भोज्य पदार्थ उसके मांस हैं, उन विधानों से बनाकर उस बालक को भी चटावे या खिलावे। द्वितीय काण्ड की प्रथम कण्डिका में चूडाकर्म संस्कार का विधान है और केशान्त संस्कार कैसे किया जाता है यह दिखाया है। 2-कण्डिका में उपनयन विधि और सूर्यदर्शनादिका वर्णन है। 3-कण्डिका मे ब्रह्मचर्य में नित्य होमविधि का वर्णन है। 5-कण्डिका में भिक्षाचरण, मेखलाधारण, दण्डधारण, स्नातक बनना और व्रात्यों के प्रायश्चित्त का विधान है। 6-कण्डिका में स्नातक का समय और गुरूपूजा आदि का विधान है। 7-कण्डिका में ब्रह्मचारी को नृत्य नहीं देखना चाहिए और अ वाले क्षेत्र में मूत्रादि नहीं करना चाहिए यह कहा गया है। 8-कण्डिका में शुद्रा भक्षण-निषेध और प्रकाशरहित स्थान में भोजन-निषेध का विधान है। 9-कण्डिका में पंच महायज्ञों का निरूपण है। 10-कण्डिका में उपाकर्मविधि और तिल-होम का विधान है। 11-कण्डिका में विद्यार्थी को कब कब छुट्टी मिलनी चाहिए इसका विशेष वर्णन है। 12-कण्डिका वेद-पाट करना कब छोड़ देने का विधान है। 13-कण्डिका में हल जोतने का दिन निश्चित किया है। 14-कण्डिका में साँपों को घर से कैसे निकाला जाय यह विधि दिखाई है। 15-कण्डिका में इन्द्रयज्ञ है। 16-कण्डिका में आश्विन पूर्णिमा को दधिमिश्रत घी का होम करके इन्द्र देवता के प्रति कृतज्ञता का प्रकाश किया गया है।17-कण्डिका में सीतायज्ञ आदि का विधान है।

अथ द्वितीयकाण्डप्रारम्भः

प्रथमकण्डिका

अथ चूडाकरणवेफशांतौ तंत्रेण सूत्रयति।

अर्थ-सांवत्सरिकस्य=एक वर्ष वेफ बालक का, चूडाकरणम्= मुण्डनसंकार करे।

तृतीये वाप्रतिहते।।2।।

यद्वा यथामंगल यथावुफलाचारम्। एतदुक्तं भवति यस्य वुफले सांवत्सरि- कस्य चूडाकर्म क्रियते तस्य सांवत्सरिकस्य यस्य तृतीयेऽिब्दे तस्य तदा इति व्यवस्थायस्य वुफले नास्ति नियमः तस्य यदृच्छया विकल्प। अन्ये यथामंगलशब्देन धर्मशास्त्रांतरे विहितकालांतरोपलक्षणमाहुः। अत सर्वेषां तुल्यविकल्पः।

अर्थ-वा=अथवा, अप्रतिहते=असम्पूर्ण, तृतीये संवत्सरे=तृतीय वर्ष में चूडाकर्म संस्कार करे।।2।।

षोडशवर्षस्य वेफशांतः।।3।।

षोडशवर्षाण्यतीतानि। यस्य असौ षोडशवर्षाण्यतीतानि। यस्य असौ षोडशवर्षः तस्य सप्तदशे वर्षे वेफशांतः वेफशांताख्यः संस्कारो भवति। अत्र यद्यपि सूत्रक्रमोऽन्यथा तथापि वेफशांतस्य कालविकल्पाभावात् चूडाकरण एव कालविकल्प इति हेतोः।

यथामंगलं वा वा सर्वेषाम।।4।।

इति सूत्र पूर्वं व्याख्यातं पाठक्रमादर्थक्रमो बलीयानिति न्यायात्।

अर्थ-यथाम लं वा=अथवा अपने अपने वुफल की परम्परा वेफ अनुसार, सर्वेषाम्=सभी वर्णों का चूड़ाकरण होना चाहिए। षोडशवर्षस्य=16 वर्ष बीत जाने पर 17वें वर्ष वेफशांत संस्कार होता है।' ।।3।। ।।4।।

टिप्पणी-;1द्ध ''शब्दक्रमादार्थक्रमो बलीयान्'' इस नियम से ‘यथाम लं वा सर्वेषाम्’ सूत्र की व्याख्या पहले की गई है।।

ब्राह्मणान् भोजयित्वा माता वुफमारमादायाप्लाव्याहते वाससी परिधाप्यांक आधय प ादग्नेरुपविशति।।5।।

एवं कालमभिधाय कर्माभिधत्ते चूडाकरणां गतया त्रीन् ब्राह्मणान् भोजयित्वा माता जननी वुफमारं पुत्रं चूडाकरणार्हम् आदाय गृहीत्वा आप्लाव्य स्नापयित्वा अहते नवे सकृ(ौते वाससी द्वे वस्त्रे परिधाप्य परिहिते कार- यित्वा अंतरीयोत्तरत्वेन अंवेफ उत्संगे आधाय स्थापयित्वा प ादग्नेः पि मतः उपविशति आस्ते।

अर्थ-ब्राह्मणान् भोजयित्वा=चूड़ाकरणा भूत तीन ब्राह्मणों को भोजन कराकर, माता=जननी, वुफमारम्=चूड़ाकरण, वेफ योग्य पुत्र को, आदाय=लेकर, अप्लाव्य=स्नान कराकर, अहते वाससी=नवीन निर्दुष्ट दो वस्त्र, परिधाप्य= पहिनाकार, अ ्वेफ=गोद में, आधाय=बैठाकर, प ादग्नेः=अग्नि वेफ पि म की ओर पूर्वाभिमुख, उपविशति=बैठे ।।5।।

अन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा प्राशनांते शीतास्वप्सूष्णा आसिंचति, उष्णेन वा या उदवेफनेह्यदिते वेफशान्वपेति।।6।।

ततः अन्वारब्धः। ब्रह्मणा उपस्पृष्टः आज्याहुतीः आघारादिस्विष्टकृद- ता तुर्दश हुत्वा संस्रवप्राशनांते शीतासु अप्सु उष्णा अप आसिंचति प्रक्षिपति वक्ष्यमाणमंत्रेण अन्वारब्धग्रहणेन नित्याज्याहुतिहोमो नियम्यते।

अर्थ-अन्वारब्धः=ब्रह्मा से संस्पृष्ट होकर, आज्याहुतीर्हुत्वा=आधारादि स्विष्ट कृदन्त 14 आहुतियां हवन कर, प्राशनान्ते=संस्रवप्राशन वेफ बाद, शीतासु=ठंडे अप्सु=जल में ''उष्णेन वा य0'' इत्यादि मन्त्र से, उष्णा=गर्म जल, आसिञ्चति=मिलावे।।6।।

वेफशश्मश्रिवति च वेफशांते।।7।।

वेफशांते पुनः उष्णेन वा य उदवेफनेह्यदिते वेफशश्मश्रू वपतीति विशेषः।

मन्त्रार्थ-हे अखण्डित वायु! आप आइये और उष्णोदक-मिश्रित जल से इस बालक वेफ वेफशों को काटिए।।

अर्थ-वेफशान्ते=वेफशान्त संस्कार में, ;मन्त्र वेफ अन्त मेंद्ध ''वेफशश्मश्रू वप'' यह उच्चारण करे।।7।।

तत आदाय दक्षिणं गोदानमुंदति। सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उदन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्च्चस इति।।9।।

ततस्ताभ्योऽद्भ्यः चुलुवेफनैकदेशमादाय दक्षिणं गोदानं शिरस्तो दक्षिण- प्रदेशस्थं गोदानं वेफशसमूहमुंदति क्लेदयति। वेफन मंत्रेण? सवित्रा प्रसूतेत्यादिना दीर्घायुत्वाय वर्चस इत्यंतेन।।

अर्थ-ततः=उसी नवनीतादिमिश्रित जल से, आदाय=वुफछ भाग, लेकर, दक्षिणम्=दाहिने ;कान वेफ पास वेफद्ध गोदानम्=शिर भाग को ;बालों कोद्ध सवित्रा0 इत्यादि मन्त्र उच्चारण पूर्वक ;पितादृद्ध उन्दति=गीला करे।।9।।

त्रेण्या शलल्या विनीय त्रीणि वुफशतरुणान्यन्तर्दधाति ओषध इति।।10।।

त्रेण्या त्रिश्वेतया शलल्या शल्यकपक्षकवंफटवेफन विनीय पृथक् पृथक्कृत्य पूर्वदिनाधिवासितां वेफशलतिकां तस्या अंतर्मध्ये अंतरा त्रीणि त्रिसंख्याकानि वुफशतरुणानि दर्भपत्राणि दधाति धारयति ओषधे त्रायस्वेति मंत्रेण।

मन्त्रार्थ-हे वुफमार सूर्य वेफ द्वारा उत्पन्न यह दिव्य जल दीर्घायु और तेजस्विता वेफ लिए तुम्हारे चूडा लक्षण अ को गीला करे।।

अर्थ-त्रेण्या=तीन जगह, श्वेतशलल्या=स्याही वेफ कांटे से, विनीय= वेफशों को पृथक् करवेफ, औषधे इत्यादि मन्त्र से त्रीणि=तीन, वुफशतरुणानि=श्रेष्ट वुफशाओं को, अन्तर्दधाति=वेफशों वेफ मध्य रखे।।10।।

टिप्पणी-;1द्ध औषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः।।

शिवो नामेति लोहक्षुरमादाय निवर्त्तयामीति प्रवपति येनाव- पत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो करुणस्य विद्वान्।। तेन ब्रह्मणो वपतेदमस्यायुष्यञ्जरदष्टिर्यथासदिति।।11।

ततः शिवो नामेत्यनेन मंत्रेण लोहक्षुरं प्रवपति तं क्षुरं वुफशतरुणा- न्यभिनिदधाति 'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते' इति न्यायात् धातूनामने- कार्थत्वाच्चेत्यत्र प्रसज्येत वपतिरभिनिधानार्थः। छेदनार्थत्वे तु उत्तरसूत्रविहित- प्रच्छेदनानर्थक्य प्रपूर्वो।

अर्थ-शिवो नामेति0' इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक, लोहक्षुरम्=लोहे का छुरा आदाय=लेकर निवर्तयामीति0' इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक, प्रवपति'= वुफशयुक्त वेफशों में संलग्न करे तथा येनावपत्सविता0' इत्यादि मन्त्रोच्चरणपूर्वक वेफशों को काटे।।11।।

टिप्पणी-;1द्ध ॐ शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा मा हिंसीः।।

;2द्ध निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजनाय रास्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्धाय।।

;3द्ध यहां "प्र" पूर्वक "वप" धातु का "संलग्न करना" अर्थ विशिष्ट व्याख्याकारों को अभीष्ट है।

सवेफशानि प्रच्छिद्यानडुहे गोमयपिंडे प्रास्यत्युत्तरतो ध्रियमाणे।।12।।

येनावपदिति मंत्रेण वेफशसहितानि वुफशतरुणानि प्रच्छिद्य खंडयित्वाग्ने- रुत्तरतो भूभागे ध्रियमाणे स्थाप्यमाने आनडुहे आर्षभे गोमयपिंडे गोशकृत्पिंडे प्रास्यति प्रक्षिपति।

;4द्ध **मन्त्रार्थ-**हे ब्रह्म! जिस तेजोमय क्षुर से सूर्य ने सोमराजा एवं करुण का सिर राजसूय दीक्षा वेफ लिए मुण्डित किया था, उसी क्षुरे से आप इस शिशु का शिर मुण्डित कीजिए। यह शिर इस बालक का आयुष्य है, जिससे यह दीर्घायु, प्राप्त करे।।

अर्थ-सवेफशानि=वेफशों सहित वुफशतृण आदि को, प्रच्छिद्य=काटकर, उत्तरतः=अग्नि वेफ उत्तर की ओर ;भूमि मेंद्ध ध्रियमणो=रखे हुए, आनडुहे= वृषभ वेफ, गोमयपिण्डे=गोबर वेफ ढेर में, प्रास्यति=पेंफक दे।।12।।

एवं द्विरपरं तूष्णीम्।।13।।

एवमुक्तेन प्रकारेण द्विः द्विर्वारमुंदनादिगोमय-पिंडनिधानांतं तूष्णीं मंत्ररहितं वुफर्यात्।

अर्थ-एवं=इसी प्रकार, उन्दन=वेफशविनयनादि कर्म, अपरं द्विः=और दो बार, तूष्णीम्=मौन होकर करे।।13।।

इतरतो ऽदंनादि ।।14।।

अथ दक्षिणगोदानस्य त्रिरुंदनादिप्रच्छेनानंतरं पश्चाद्गोदाने विशेषमाह- त्र्यायुषमिति। त्र्यायुषं जमदग्नेरित्यादिना मंत्रेण सवेफशानिवुफशतरूणानि सकृत्प्र- च्छिद्य तूर्णीं द्विः प्रच्छिद्य गोमयपिण्डे प्रास्यति।

अर्थ-अथ=दक्षिण गोदान वेफ उन्दनादि वेफ अनन्तर, प त्=पि म गोदान को त्र्यायुषम्0 इत्यादि मन्त्र से एक बार छेदन करे ;तथा दो बार मौन होकर छेदन करेद्ध ।।15।।

अथोत्तरतः येन भूरि चरा दिवं ज्योक्च पश्यामि सूर्यम्।। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तय इति।।16।।

अथोत्तरतः अथानंतरमुत्तरतो गोदाने उंदनादि गोमय पिण्डनधितान्ते विशेषमाह येन भूरिश्चेति स्वस्तय इत्यनेन मंत्रेण। सकृत्सवेफशानां वुफशतरूणानां प्रच्छेदनं।

अर्थ-अथ=इसवेफ पश्चात्, उत्तरतः=उत्तर की ओर वेफ गोदान को येन भूरि रा' इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक काटे ;तथा गोमयपिण्ड में पेंफक देद्ध ।।16।।

टिप्पणी-;1द्ध **मन्त्रार्थ-**हे वुफमार! जिस मन्त्र या तपस्या वेफ बल से संचरण शील प्रचुर वायु आकल्प स्वर्ग अन्तरिक्ष सूर्य वेफ पार्श्ववर्ती भाग में चलती रही है उसी मन्त्र या तपस्या से मैं जीवन धर्मादि शुभ यज्ञ एवं म ल वेफ लिए तुम्हारे शिर का मुण्डन करता हूं।।

त्रिः क्षुरेणः शिरः प्रदक्षिणं परिहरति समुखं वेफशांते।।17।।

त्रिः त्रीन् वारान् क्षुरेण शिरः मूर्(िनं प्रदक्षिणं यथा भवति तथा परिहरति, शिरसः सर्मतात्प्रदक्षिणं।

अर्थ-क्षुरेण=छुरे से, त्रिः=तीन बार ;अग्रिमसूत्रोक्त मन्त्रोच्चारण पूर्वकद्ध प्रदक्षिणम्=प्रदक्षिण विधि से शिरः=शिर को, परिहरति=सापफ करे ;एक बार समन्त्र, दो बार मौनद्ध समुखं वेफशान्ते=वेफशान्त संस्कार में मुख सहित शिर का परिहरण करे।।17।।

यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्ता वपति वेफशाञ्छिंन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः।।18।।

क्षुरं भ्रामयतीत्यर्थः। तत्र मंत्रमाह।

अर्थ-यत्क्षुरेण0-इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक ;शिर का परिहरण करेद्ध ।।18।।

मुखमिति च वेफशांते।।19।।

वेफशांते च मुखमिति पदं प्रक्षिपेन्मंत्रे आवपेत्।

मन्त्रार्थ-रे क्षुर! आपने इस वुफमार को संस्कृत एवं अलंकृत करते हुए इसवेफ वेफशों का आवपन किया है। अतः इसवेफ शिर को व्रणयुक्त मत करो, इसकी आयु को नष्ट मत करो।।

अर्थ-वेफशान्ते=वेफशान्त संस्कार में, मुखमिति=मन्त्र वेफ अन्त में ''मुखम्'' शब्द का भी संयोजन करना चाहिए।।19।।

ताभिर : शिरः समुद्य नापिताय क्षुरं प्रयच्छति। अक्षुण्वन्परि- वपेति।।20।।

अक्षुण्वन्परिवपेति। ताभिर : शीतोष्णाभिर : वुफमारस्य शिरः समुद्य आर्द्रं विधाय नापिताय क्षौरकर्त्रे जातिविशेषाय क्षुरम् अक्षुण्वन् परिवपेत्यनेन मंत्रेण प्रयच्छति।

अर्थ-ताभिः=उसी पूर्वस्थापित, अ :=जल से, शिरः समुद्य=शिर को अच्छी तरह क्लिन्न करवेफ ''अक्षुण्वन् परिवप'' इन शब्दों का उच्चारण करवेफ, नापिताय=नापित ;नाईद्ध को, क्षुरं=छुरा प्रयच्छति=दे दे।।20।।

यथामंगलं वेफशशेषकरणम्।।21।।

वेफशानां शेषकरणं शिखास्थापनं वेफशशेषकरणं यथामंगलं मंगलं वुफलाचारव्यवस्थामनतिक्रम्य भवति, वुफलाचारा बहुधा-तद्यथा लौगाक्षिः 'तृतीयस्य वत्सरस्य भूयिष्ठे गते चूडां कारयेत्' दक्षिणतः वंफबुजा- वसिष्ठानामुभयतोऽत्रिकश्यपानां मुंडा भृगवः पंचचूडा आंगिरसः

अनुगुप्तमावृत्तमेतं गोमयपिडं सकेफश केफशैः सहितं निधाय स्थायित्वा गोष्ठे गवां ब्रजे पल्वले सरसि उदकांते वा।

अर्थ-अनुगुप्तम्=आवृत, सकेफशम्=केफशसहित, एतं गोमयपण्डिम्=इस गोबर केफ पिण्ड को, गोष्ठे=गोशाला में, पल्वले=क्षुद्र जलाशय में, उदकान्ते वा=अथवा जल केफ किनारे, निधाय=रखकर।।22।।

आचार्याय वरं ददाति।।23।।

स्वकीयाय आचार्याय गां ददाति।

अर्थ-आचार्य को, वरम्=अभिष्ट वस्तु, ददाति=देवे।

गां केफशान्ते।।24।।

अर्थ-केफशान्ते=केफशान्ते संस्कार में ;आचार्य कोद्ध गाम्=गौ का दान करे।।24।।

संवत्सरं ब्रह्मचर्यमवपनं च केफशांते द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्र- मंततः।।25।।

केफशांतकर्मानंतरं संवत्सरं यावद् भवेद्।

अर्थ-केफशान्ते-केफशान्ते संस्कार में, संवत्सरं=1 वर्ष तक, अथवा द्वादशपराक्रम्=12 दिन तक या, षड्रात्रम्=6 दिन तक या, त्रिरात्र-मन्ततः[1]=अन्ततः तीन दिन तक, ब्रह्मचर्य का पालन करे, वपन न करावे।।25।।

टिप्पणी-;1द्ध इस कण्डिका में चूड़ाकरण एवं केफशान्त संस्कार की विधि वर्णित है।

केफशांतनंतर यावज्जीवमवपनं च विहितवनव्यतिरेकेफणाविहितवपनं च ''गंगायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरौ मृते। आधाने सोमपाने च वपनं सप्तसु स्मृतम्।। तथा वपनं 'चानुभाविना' प्रेतकनीयसां वपनं तथा। मुंडनं चोपवास सर्वतीर्थेष्वयं विधिः। वर्जयित्वा वुफरुक्षेत्रे विशालं विरजं गयाम्।। नैमिषं पुष्करं गयामिति पाठांतरम्।। प्रयागे वपनं वुफर्याद् गयायां पिण्डपातनम्। दानं दद्यात्वुफरुक्षेत्रे वाराणस्यां तनूं त्यजेत्'' इत्यादिवचननानि च।। यत्प्रतिपादित- निमित्तेषु अत्र गर्भाधानादिषु विवाहपर्यन्तेषु संस्कारकर्मसु मुख्यत्वेन पितैव कर्त्ता तदभावे संनिहितोऽन्यः। तथा च स्मरणम् 'स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुत- संस्कारकर्मसु। पिण्डानोद्वाहनात्तेषां तस्याभावेऽपि तत्क्रमात्''।। एतान्युक्तानि नामकरणादीनि चूडाकरणांतानि मन्त्ररहितानि दुहितॄणामपि वुफर्यात्। यथाह याज्ञवल्क्यः ''तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समंत्रकः'' इति तथा शूद्रस्य। यथाह यमः ''शूद्रोऽप्येवंविधः कार्यो बिना मंत्रेण संस्कृतः। न केफनचित्समसृजच्छेदसा तं प्रजापतिः'' एवं विधः गर्भाधानादि- चूडाकरणांतैः संस्कारैः बैजिकगार्भिकपापशून्यः विना मत्रैण तूष्णीं यतस्त शूद्रमेकलमेनापि छंदसा वेदेन समसृजत् समयोजयत्। तथा ब्रह्मपुराणे 'विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा' मात्रशब्देन विहितेतरसंस्कारनिवृत्ति यमब्रह्मपुराण- वचनाभ्यां शूद्रस्य गार्भाधानपुंसवनसीमंतजातकर्मनामधेयनिष्क्रमणान्नप्राशन- चूडाकरण विवाहाः नव संस्कारा विहितास्ते च तूष्णीमितरेषां निवृत्तिप्रसंगादनुप- नीतधर्मालिख्यंते। मनुः ''नास्मिन् व्युत्तिष्ठते कर्म विंफचिदामौंजिबंधनात्। नाभिव्यावाहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते।। शूद्रेण हि समस्तावद यावद्वेदे न जायते''। वृ(शाता तपः। प्राक् चूडाकरणाद्बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः। वुफमारस्तु स विज्ञेयो यावन्मौंजीनिबंधनम्।। शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम्। रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नातव्यं तु वुफमारकैफः'' गौतमः। ''प्रागुपनयनात्काम- चारभक्षः नित्यंमद्यं ब्राह्मणोनुपनीतोपि वजयेत् उच्छिष्टादावप्रयता न स्युः महापातकवर्जम्''। ब्राह्मे-माता पित्रोरथोच्छिष्टं बालो भुंजन् भवेत्सुखी' संस्कारयोजनं च स्मृत्यंतरोक्तं, यथाह याज्ञवल्क्यः 'एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमु वम्'। अंगिराः। ''चित्रं कर्म यथानेकैफः प्रगैरुन्मील्यते शनैः। ब्राह्मण्यमपि तद्वत्स्यात्संकारैर्विधिपूर्वकैफ'। मनुः। ''गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौंजी- निबंधनैः। बैजिक गार्भिवंफ चैनो द्विजानामपमृज्यते।।'' हारीतः।। ''गार्भाधान- वदुपेतो ब्रह्मगर्भं संदधाति पुंसवनात्पुंसीकरोति पफलस्नपनात्पितृजं पाप्मानमपोहति जातकर्मणा प्रथममपोहति नाम करणेन द्वितीयं प्राशनेन तृतीयं चूडाकरणेन चतुर्थं स्नानेन पंचमम्। एतैरष्ट भिर्गार्भसंस्कारैर्गार्भोपघातात्पूतो भवति उपनय- नाद्यैरत्र व्रतै ष्टभिः स्वच्छंदसम्मितो ब्राह्मणः परं पात्रं देवपितॄणां भवति छंदसायनम्।'' सुमंतुः। 'तत्र ब्राह्मणक्षयित्रयवैश्यानां वृत्तिर्गभधानपुंसवन- सीमंतोन्नयनजातकर्मनामकरणनिष्क्रमणान्नप्राशचूडोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पंचानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मयज्ञाना- मेतेषां चाष्टकाः पार्वणश्रा(श्रावण्याग्रहायणी चेत्याश्वयुजीतिपाकयज्ञसंस्थाः अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपौर्णमासौ चातुर्मास्याग्रहायणेष्टिर्निरूढपशुबंधः सौत्रामणीतिसप्तहविर्यज्ञसंस्याः। अग्नि ोमोत्यग्नि ोम उक्थ्यषोडशी वाजपेयोतिराज्ञोऽप्तोर्याम इति सप्तसोमसंस्थाः। एते चत्वारिंशत् संस्काराः'। हारीतः। द्विविध एव संस्कारो भवति ब्राह्मो दैवश्च। गर्भाधानादिस्नानान्तो ब्राह्मऽ। पाकयज्ञहविर्यज्ञसौम्याश्चेति दैवः। ब्राह्मसंस्कारसंस्कृत)षीणां समानतां सालोक्यतां सायुज्यतां गच्छतीत्यलमतिप्रसंगेन इति

न(ानि नवताम्रपरिष्कृत आयसः क्षूरः गोमयपिंड नापितश्चेति ततः पवित्रकरणादिपर्युक्षणाते आधारादिस्विष्टकृदत चतुर्दशाहुतिहोम विधाय सं वान्प्राश्य पूर्ण पात्रवस्योरन्यतरं ब्रह्मणे दद्यात् ततः शीतास्वप्सु उष्णा अप आसिच्य उष्णेन वा य उदवेफनेह्यदिते वेफशान्वपेत्यनेन मंत्रेण। अत्र उष्णोदकमिश्रितशीतोदवेफ उपकल्पितं नवनीताद्यन्यतम् पिण्डं प्रक्षिपति। तदुदकमादाय सवित्रा प्रसुता दैव्या आप उदंतु ते तनुं दीर्घायुष्ट्वाय वर्च्चस इत्यनेन मंत्रेण दक्षिणं गोदानमुंदति ततस्त्रेण्या शलत्या वेफशान्विनीय ओषधे त्रायस्वेति मंत्रेण वुफशतरूणान्यंत(र्ये शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीरित्युपकल्पितं क्षुरमादाय वुफशतरूणान्तर्हितेषु वेफशेषु निवर्त्तयाम्यायुषेन्नाद्याय प्रजननाय रायस्योषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्यायेत्यनेन मंत्रेण क्षुरमभिनिदधाति योनावपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरूणस्य विद्वान् तेन ब्राह्मणो वपतेदमस्यायुष्यं जरदष्टिर्यथासदित्यं तेन मंत्रेण स वेफशवुफशतरूणानि प्रच्छिद्य आनडुहे गोमयपिडे उत्तरतो ध्रियमाणे। प्रक्षिपति एवमेवापरं वारद्वयमुंदनवेफशविनयवुफशतरूणांत(र्निक्षुराभिनिधानसवेफशवुफश-तरूणप्रच्छेदनगोपमयपिण्डप्रासनानि तूर्ष्णीं वुफर्यात् तथा पि मोत्तरयोर्गोदानयोः। एवमेव सकृत्मंत्रवंफ द्विस्तूष्णीं करोत्येतावान्विशेषः। पि मगोदाने त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषमितिच्छेदनम्। उत्तरतो गोदाने येन भूरि र दिवं ज्योक्च पश्यामि सूर्य तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये इत्यनेन मंत्रेण छेदनम्। अन्यत्सवमुंदनादि गोमयपिण्डप्रासनांतं समानम् ततो। यत्क्षुरेण मज्जयिता सुपेशसा वप्ता वा वपति वेफशांश्छिधि शिरो मास्यायुः प्रमोषीरित्यंतेन मंत्रेण शिरसः समंतात्प्रदक्षिणं क्षुरं भ्रामयति सकृन्मंत्रेण द्विस्तूर्ष्णीं ततस्तेनैवोदवेफन समस्त शिर आर्द्रमापाद्य अक्षुण्वन्परिवपेत्यन्तेन मंत्रेण नापिताय क्षुरं समर्पयति स च नापितः सवेफशवपनं वुफर्वन् यथोक्तं वेफशशेषकरणं करोति ततः सवेफशं गोमयपिंडमनुगुप्तं पल्वले गोष्ठे उदकांते वा निधाय चूडाकरणकर्ता स्वाचार्याय वरं ददाति वेफशांते(ऽपि षोडशवर्षस्य सप्तदशे वर्षे इयमेव चूडाकरणोक्ता इति कर्त्तव्यता। एतावांस्तु विशेषः उष्णोदकसेकमंत्र उष्णेन वा य उदवेफनेह्यदिते वेफशश्मश्रुवपनं तथा क्षुरपरिहरणे मुखसहितं शिरः परिहरति। तत्र परिहरणमंत्रे च यत्क्षुरेण मज्जतेत्यादि मास्यायुः प्रमोषीर्मुखं तथा यस्य यस्य वेफशांतः स स्वाचार्याय गां ददाति संवत्सरं वा द्वादशरात्रं षड्रात्रं त्रिरात्रं वा ब्रह्मचर्यं करोति। शक्त्यपेक्षया विकल्पः तथा वेफशांताद्(र्ध्व शास्त्रीयवपनव्यतिरेवेफण यावज्जीवमवपनं शास्त्रीयवपनं च॥

इति पारस्करगृह्यसूत्रे हरिहरभाष्ये द्वितीयकाण्डे प्रथमवंफडिका॥1॥

इति द्वितीयकाण्डे प्रथमकण्डिका॥

द्वितीयकण्डिका

उपनयन संस्कार

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेद्गर्भाष्टमे वा॥1॥

अष्टौ वर्षाणि अतीतानि यस्य असौ अष्टवर्षस्तं ब्राह्मणं द्विजोत्तममुपनयेत् उपनयनाख्येन संस्कारेण संस्वुफर्यात् गर्भाष्टमेषु वा गर्भः अष्टमो येषां तानि गर्भाष्टमानि तेषु वा उपनयेत् तत जन्मतो नवमे(ऽष्टमे वा उपनयोदित्यर्थः।

अर्थ-अष्टवर्षम्=आठ वर्ष बीत जाने पर, गर्भाष्टमे वा=अथवा गर्भ समय से आठ वर्ष बीत जाने पर अर्थात् आठवें या नवें वर्ष, ब्राह्मणम् =ब्राह्मणपुत्र का, उपनयेत्=उपनयन संस्कार करे॥1॥

एकादशवर्षं राजन्यम्॥2॥

द्वादशवर्षं वैश्यम्॥3॥

एकादशवर्षाण्यतीतानि यस्य असौ एकादशर्वषस्तं जन्मतो द्वादशवर्ष इत्यर्थः राजन्यं क्षत्रियमुपनयेदित्यनुषज्यते।

द्वादशवर्षाण्यतिक्रांतानि यस्य स तथा तं जन्मतस्त्रयोदशे वैश्यमुपनयेत्।

अर्थ-एकादशवर्षम=11 वर्ष पर्ण होने पर, राजन्यम=क्षत्रियपत्र का तथा द्वादशवर्षम=12 वर्ष पर्ण होने पर, वैश्यम=वैश्यपत्र का (उपनयन

मनुः- 'ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्य विप्रस्य पंचमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्टे वैश्यस्ये- हार्थिनोऽष्टमे''।। आपस्तम्बोऽपि। अथ काम्याति-सप्तमे ब्रह्मवर्चसकामम् अष्टमे आयुष्कामं नवमे तेजस्कामं दशमे अन्नाद्यकामम् एकादशेऽेंद्रियकामं द्वादशे पशुकाममुपनयेत् तया वसंते ब्राह्मणमुपनयेत् ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यं गर्भा मे वर्षे वसंते ब्राह्मण आत्मानमुपनाययेत् एकादशे क्षत्रियो ग्रीष्मे द्वादशे वैश्यो वर्षासु वर्षाशब्देन शरदेवाभिधीयते ')तुः' संवत्सरो ग्रीष्मो वर्षा हेमंत'' इति यास्कवचनाद् वर्षास्वंतर्भवति शरद् एवमुपनयनकाल- मभिधायेदानीं कर्माह।

अर्थ-यथाम लं वा=अथवा अपने वुफल की परम्परा वेफ अनुसार सर्वेषाम्= ब्राह्मणादि सभी वर्णों का उपनयन संस्कार करें।।5।।

ब्राह्मणान्भोजयेत्तं च पर्युप्तशिरसमलंकृतमानयन्ति।।8।।

त्रीन् ब्राह्मणान् भोजयेत् आशयेत्।। ते च वुफमारं वपनान्तरमाशयेदिति चकारेणानुषज्यते।

परि सर्वतः उप्तं मुंडित शिरो यस्य स पर्युप्तशिरास्तमलंकृतं यथासंभवं रत्नसुवर्ण निमित्तैः वुफंडलाद्यलंकारैः आनयति आचार्यपुफषाः आचार्यसमीपमा- चार्यलक्षणं यमेनोक्तं ''सत्यवाक् धृतिमात् दक्षः सर्वभूतदयापरः। आस्तिको वेदनिरतःशुचिराचार्य उच्यते।। वेदाध्ययनसप ो वृत्तिमान्विजितेन्द्रियः।। न याजयेद्वृत्तिहीनं वृणुयाच्च न तं गुरुम्''।

अर्थ-ब्राह्मणान्=तीन या तीन से अधिक ब्राह्मणों को तथा पर्युप्तशिरसम्=मुण्डित शिरवाले, तं च=उस वुफमार को, भोजयेत्=भोजन करावे, अल ्कृतम् =तथा ;वुफमार कोद्ध अल ्कृत करवेफ, आनयन्ति= आचार्य वेफ पास ले आवे।।8।।

पश्चादग्नेरवस्थाप्य ब्रह्मचर्यमागामिति वाचयति ब्रह्मचार्यसानीति च।।6।।

तत आचार्यो माणवकमग्नेः प मतः आत्मनो दक्षिणतः अवस्थाप्य अवस्थितं कृत्वा ब्रह्मचर्यमागमिति ब्रूहीति प्रैषमुक्त्वा माणववंफ ब्रह्मचर्यमागमिति वाचयति ब्रह्मचार्यसनीत्याचार्यो माणववंफ प्रेषयति प्रेषित माणवकः ब्रह्मचार्यसानीति वदेत्।

अर्थ-प ादग्नेः=अग्नि की वेदी वेफ प म और, पूर्वाभिमुख बालक को अवस्थाप्य=स्थित करवेफ, आचार्य ''ब्रह्मचर्यमागाम्'' तथा ब्रह्मचार्यसानि'' ये दो वाक्य वुफमार से, वाचयति=कहलावे।।6।।

अथैनं वासः परिधापयति येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतं तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुष्ट्वाय बलाय वर्चस इति।।7।।

अथ वाचनानंतरमेनं वुफमारामचार्यः वक्ष्यमाणलक्षणं शाणादिवासः परिधापयति परिहितं कारयति येनेंद्रायेत्यादिमंत्रं पटित्वा।

मन्त्रार्थ-हे वुफमार! आचार्य बृहस्पति ने जिस विधि से इन्द्र को संस्कृत करने वेफ लिए अहत वस्त्र धारण कराया उसी विधि से दीर्घायु बल और वर्चस् वेफ लिए मैं तुम्हें वस्त्र धारण कराता हूं।।

अर्थ-अथ=वाचन वेफ अनन्तर आचार्य, एनम्=वुफमार को येनेन्द्राय0 इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक, वासः=वस्त्र ;कौपीनद्ध परिधापयति=पहिनावे।।7।।

मेखलां बध्नीते। इयं दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनतीम आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेय- मिति॥४॥

ततः मेखलां मौञ्यादिकां वक्ष्यमाणलक्षणां बध्नीते कटिप्रदेशे वृतं प्रवस्संख्यग्रथियुतं प्रादक्षिण्येन परिवेष्टयति इमं दुरुक्तमित्यादिना मेखलेयमित्यंतेन मंत्रेण माणवकपठितेन युवा सुवासा इत्यादि देवयंत इत्यंतेन वा मन्त्रेण तूष्णीं वा मेखलां बध्नीते। अत्र यद्यपि सूत्रकारेण यज्ञोपवीतधारणं न सूत्रतं तथाप्येकवस्त्राः प्राचीनावीतिन इति प्रेतोदकदाने प्राचीनावीतित्वविधानाद् 'दंडाजिनोपवीतानि मेखला चैव धारयेत्' इति याज्ञवल्क्येन ब्रह्मचारिणः उपवीतधारणस्मरणात्। तथा ''सदोपवीतिना भाव्यं सदा ब(शिखेन चा विशिखो व्युपवीत यत्करोति न तत्कृतमिति'' छांदोगपरिशिष्टे ''कात्यायनेन सामान्यतः सर्वाश्रमिणां सदा यज्ञोपवीतधारण- स्मरणात् यज्ञोपवीतधारणं तावदुपनयनप्रभृति प्राप्तम्'' तच्च वुफत्र कर्तव्यमित्य- बसरापेक्षायामौचित्यान्मेखलाबंधनानंतरं युज्यते। एतदेव कर्कोपाध्यायवासुदेव- दीक्षितरेणुदीक्षितप्रभृतयः स्वस्वग्रन्थे यज्ञोपवतीधारणमंत्रावसरे लिखिवंतः। तच्च सर्वकर्मांगत्वान्मंत्रवद्युज्यत इति मंत्रमपि शाखांतरीयं मंत्रमपि लिखितवंतः। ततोत्र 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्रयं प्रतिमुंच शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेज' इति माणकपठितेन मंत्रेण उपवीतं परिधापयति आचामयति च। अथ तूष्णीमैणेयमजिनमुत्तरीयं करोति।

;यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र ं प्रतिमु शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामीत्यथाजिनं प्रयच्छति मित्रस्यः चक्षुरुिण बलीयस्तेजो यशस्वी स्थविरं समि(मनाहनस्यं वसनं जरिष्णु परीदं वाज्यजिनं दधेहमितिद्ध

मन्त्रार्थ-यह मेखला कामचारादि दोषों को शमन करती हुई वर्ण की पवित्रता को सम्पादित करती हुई तथा मेरे प्राण और आपान दोनों में बल का आधान करती हुई भगिनी वेफ समान हितेच्छु ;यह मेखलाद्ध मुझे प्राप्त हुई।

अर्थ-मेखलां बध्नीते=;आचार्यद्ध माणवक की कटि में मेखला बाँधे माणवक मन्त्र पढ़े॥४॥

अर्थ-;आचार्यद्ध माणवक को यज्ञोपवीत धारण करावे तथा माणवक यज्ञोपवीतम0 इत्यादि मन्त्र पढ़े। अथाजिनम्॥ यज्ञोपवीतदान वेफ अनन्तर आचार्य माणवक को मृगचर्म दे। माणवक, मित्रस्य चिक्षुरित्यादि मन्त्रोच्चारण- पूर्वक अथवा मौन होकर मृगचर्म धारण करे।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयंत इति वा ॥५॥

तूष्णीं वा॥५०॥

अर्थ-अथवा युवा सुवासा इत्यादि मन्त्र पढ़कर, तूष्णीं वा=अथवा मौन होकर मेखला बाँधे॥५॥५०॥

मन्त्रार्थ-अनेक गुणों से युक्त यह सुन्दर वस्त्र जो कि माल्याभरण से अल .कृत है मेखला वेफ लिए इस माणवक को प्राप्त हुआ है। शोभनचित्त वृत्ति वाले क्रान्तदर्शी कवि इस बटु को वेदार्थ ज्ञापन करते हुये उत्कर्ष की ओर ले जाते हैं॥

दंडं प्रयच्छति ॥५१॥

यो मे दंड इति आचार्यो माणवकाय वक्ष्यमाणलक्षणं दंडं प्रयच्छति।

अर्थ-दण्डं प्रयच्छति=आचार्य माणवक को दण्ड दे॥५१॥

तं प्रतिगृ ाति, यो मे दंडः परापद्वैहायसोधिभूम्यां तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति॥५२॥

तूष्णीं माणवकश्च तं दंड यो मे दंड इत्यादिना ब्रह्मवर्चस इत्यंतेन मंत्रेण प्रतिगृ ाति।

मन्त्रार्थ-हे आचार्य! वैदिक कर्मों वेफ अधिकार वेफ लिए रचित श्रेष्ठ स्वभाव शु(एवं प्रजापति वेफ साथ उत्पन्न होने वाले इस

एवेफ आचार्यो दीक्षावत् दीक्षायां यथा दंडप्रदान सोमे तथेच्छन्ति तत्र उच्छ्यस्व वनस्पते इत्यादिना यज्ञस्योदृच इत्यतेन मंत्रेण यमजानो दण्डमुच्छ्यति तद्वदत्र ब्रह्मचारी वेफन हेतुना दीर्घसत्रं वा एष उपैति यो ब्रह्मचर्यमुपैतीत्यारभ्य ब्रह्मचर्यस्य दीर्घसत्रसप्तप्रतिपादनात्।

मन्त्रार्थ-जो दण्ड पृथिवी से उत्पन्न होकर आकाश में विस्तृत हुआ तथा मेरे अभिमुख प्राप्त हुआ, मैं दीर्घायु, वेद ज्ञान एवं ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति वेफ लिए इस दण्ड को ग्रहण करता हूं।।

अर्थ-एवेफ=वुफछ आचार्य लोग, दीक्षावत्=सोम दीक्षा की भांति ;मौन होकर दण्ड ग्रहण का विधान करते हैंद्ध दीर्घसत्रमुपैति=;क्योंकिद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला दीर्घसत्र की समानता प्राप्त करता है, ऐसा कहा गया है।।13।।

अथास्याि रंजलिनांजलिं पूरयति आपो हिष्टेति तिसृभिः।।14।।

अथ दंडप्रदानानंतरम्। आचार्यः अस्य माणवकस्य अञ्जलिं स्वकीया- ञ्जलिस्थाभिरि : आपो हिष्टेत्यादिकाभिस्तिसृभिर्ऋग्भिः पूरयति।

अर्थ-अथ=दण्डप्रदानानन्तर आचार्य, अस्य=बटु की, अञ्जलिम्= अञ्जलि को, अञ्जलिना=अ लि से, अि :=जल से, आपो हिष्टति0=आपो हिष्टा इत्यादि तिसृभिः=तीन)चाओं से, पूरयति=पूर्ण करे।।14।।

टिप्पणी-;1द्ध आपो हिष्टा मयो भुवस्ता न{ऊर्जे दधातन।। महेरणाय चक्षसे।।

;2द्ध यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः उशतीरिव मातरः।।

;3द्ध तस्मा{अर मामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः।।

अथैनं सूर्यमुदीक्ष्यति तच्चक्षुरिति।।15।।

अथानंन्तरम् एनं माणववंफ सूर्यमुदीक्षस्वेत्येवं प्रेष्य सूर्यमादित्यमुदीक्ष्यति अवलोकनं कारयति स च प्रेषितः तच्चक्षुरित्यादिना भूय शरदः शतादित्यंतेन मंत्रेण सूर्यमुदीक्षते।।

अर्थ-अथैनम्=इसवेफ अनन्तर माणवक को, तच्चक्षुरिति0=;आचार्यद्ध, तच्चक्षुः इत्यादि मन्त्रोच्चारणपूर्वक सूर्यमुदीक्षयति=सूर्य का दर्शन करावे।।15।।

टिप्पणी-;1द्ध तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूय शरदः शतात्।।

अथास्य दक्षिणं समधिहृदयमालभते। मम व्रते ते हृदयं दधामीति। मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पति । नियुनक्तु मह्यमिति।।16।।

अथ सूर्यदर्शनानंतरम् आचार्यस्य माणवकस्य दक्षिणासमधि दक्षिण- स्वंफधस्योपरि स्वं दक्षिणहस्तं नीत्वा हृदयं वक्षः मम वेते त इत्यादिना बृहस्पतिष्टवा नियुनक्तु मह्यमित्यंतेन मंत्रेण आलभते स्पृशति।

अर्थ-अथ=सूर्योपस्थानानन्तर ;आचार्यद्ध अस्य=इस माणवक का, दक्षिणांसम्=दाहिने कन्धे से, अधिहृदयमालभते=हृदय का स्पर्श करे, 'मम व्रते' इत्यादि मन्त्र पढे।।16।।

अथास्य दक्षिणं हस्तं गृहीत्वाह को नामासीति।।17।।

अथ हृदयालंभनानंतरमाचार्यः अस्य माणवकस्य स्वकीयेन दक्षिणहस्तेन दक्षिणं हस्तं गृहीत्वा धृत्वा 'को नामासि' इति आह ब्रवीति असावहं

असावहं भो ३ इति प्रत्याह ॥१४॥

अथ प्रतिवचनानंतरमाचार्य एनं माणववेफ कस्य ब्रह्मचार्यसीत्याह पृच्छति। भवत इति माणववेफनोच्यमाने इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निरचार्यस्तवाहमाचार्यस्तव अमुकशर्मी ति पठति।

अर्थ-असौ-यह ;देवदत्तशर्माख्ड अहम्=मैं हूं भोः ३=हे ;आचार्यख्ड, इति प्रत्याह=यह उत्तर दे॥१४॥

अथैनमाह कस्य ब्रह्मचार्यसीति॥१५॥

अथानंतरम् एनं वुफमारमाचार्यः भूतेभ्यः प्रजापतिप्रभृतिभ्यः परिरक्षितुं ददाति प्रयच्छति तत्र मंत्रः प्रजापतये त्वेत्यादिभ्यः अरिष्ट ा इत्यंतः॥

अर्थ-अथ-नाम प्रश्नानन्तर, एनम्=बटु से ;आचार्यख्ड, आह=कहे ;प्रश्न करेख्ड कस्य=किसवेफ, ब्रह्मचार्यसि=ब्रह्मचारी हो॥१५॥

भवत इत्युच्यमान इन्द्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्यस्त- वासाविति॥२०॥

अर्थ-भवतः=आपवेफ, इत्युच्यमाने=बटुक वेफ ऐसा कहने पर आचार्य 'इन्द्रस्य0' इत्यादि मन्त्र पढ़े॥२०॥

अथैनं भूतेभ्यः परिददाति प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्य स्त्वौषधिभ्यः परिददामि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परिददामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः परिददामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट ा इति॥२१॥

मन्त्रार्थ-हे बटो! तुम इन्द्र ;परमैश्वर्यसम्पन्नख्ड वेफ ब्रह्मचारी हो, तुम्हारा प्रथम आचार्य अग्नि है, दूसरा आचार्य मैं हूं।

अर्थ-अथैनम्=इसवेफ अनन्तर बटु को ;आचार्यख्ड भूतेभ्यः=प्रजापति आदि की रक्षा वेफ लिए परिददाति=समर्पित करे और मन्त्र पढ़े।

मन्त्रार्थ-हे बटु! मैं तुमको प्रजापति, सविता, औषधि, द्यावापृथिवी, विश्वेदेवा एवं सम्पूर्ण भूतों वेफ लिए रक्षार्थ समर्पित करता हूं॥२१॥

इति पारस्करगृह्यसूत्रे हरिहरभाष्ये द्वितीयकाण्डे द्वितीयकण्डिका॥२॥

इति द्वितीयकाण्डे द्वितीयकण्डिका॥

तृतीयकण्डिका

वेदारम्भ संस्कार अथवा सावित्री उपदेश

प्रदक्षिणमग्निं परीत्योपविशति॥१॥

एवं व दानादिभिरचार्येण संस्कृतो माणवकः अग्नि प्रदक्षिणं यथा भवति तथा परीत्य परिक्रम्य प ादग्नेरचार्यस्योत्तरतः उपविशति।

अर्थ-प्रदक्षिणमग्निम् ;इस प्रकार आचार्य द्वारा वस्त्रादि से अल ंकृत बटुख्ड अग्नि की प्रदक्षिणक्रम् से, परीत्य=परिक्रमा करवेफ, उपविशति=;आचार्य वेफ उत्तर की ओरख्ड बैठे॥१॥

अन्वारब्ध आज्याहुतीर्हुत्वा प्राशनांते{थैनं संशास्ति ब्रह्मचार्यस्य- पोशान कर्म वुरु मा दिवा सुषुप्था वाचं यच्छ

इति। अशानीति प्रत्युत्तफः कर्म स्नानादिवफ स्ववर्णाश्रमविहित वुफ्रु विधेहि। करवाणीतिः प्रत्युत्तफः मा दिवा सुषुप्थाः स्वाप्सीरिति। न स्वपानीति प्रत्युत्तफः वाचं गिरं यच्छ नियमय। यच्छानीति प्रत्युक्तः समिधं वक्ष्यमाणप्रकारेण आधेहि अग्नौ प्रक्षिपेति। अपोऽशानेति पूर्ववत्।

अर्थ-अन्वास्थ्यः=ब्रह्मा से अन्वास्थ ;हाथ में ब्रह्मा से सूत्रादि से सम्बन्धित होकरद्ध आचार्य, आज्याहुती=घृत की आहुति हवन करवेफ, प्राशनान्ते=हुतशेष सं व का प्राशन करकर, अथैनम्=अनन्तर बटु का, संशास्ति=अनुशासन करे।

ब्रह्मचार्यसि=तुम ब्रह्मचारी हो, अपोऽशान=;भोजन प्रारम्भ करने वेफ पूर्व और भोजन वेफ प ात्द्ध जल पीना ;आचमन करनाद्ध, कर्म वुफ्रु=शास्त्रोक्त स्वाश्रम विहित कर्म करना, दिवा=दिन में, मा सुषुप्थाः=शयन न करना, वाचं यच्छ=वाणी नियमन करना, समिधमाधेहि=अग्नि में समिधाओं का आधान करना ;आहुति देनाद्ध अपोऽशानेति=आचमन करना।।2।।

टिप्पणी-;1द्ध ;आघारावाज्यमादि स्विष्टकृदन्तद्ध 14 आहुति दे ;प्रथम काण्ड, पञ्चमकण्डिका तृतीय सूत्रद्ध। ;2द्ध इन प्रश्नों में प्रत्येक वेफ बाद ब्रह्मचारी उत्तर देता जाये-असानि, करवाणि, न स्वपानि, यच्छानि, आदधानि, अश्नानि।

अथाऽस्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्य ्मुख्यायोपविष्टायोप- स ाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय।।3।।

अथ शासनानंतरम् अस्मै ब्रह्मचारिणे सावित्रीं सवितृदेवत्यां गायत्रीछंदस्कां विश्वामित्रदृष्टाम्)चम् अन्वाह उपदिशति कथं भूताय प्रत्य ्मुख्राय पि माभिमुख्राय पुनः कथं भूताय उपविष्टाय क्व अग्नेरुत्तरस्यां दिशि तथा उपसन्नाय पादोपसंग्रहणादिना भजमानाय तथा समीक्षमाणाय सम्यक् आचार्यमवलोक्यते तथा आचार्येण सम्यगवलोकिताय।

अर्थ-अथ=अनुशासन वेफ अनन्तर ;आचार्यद्ध उत्तरतोऽग्नेः=अग्नि वेफ उत्तर की ओर, प्रत्यय ्मुख्राय=पि म की ओर मुख्र किए हुए ;बटु कोद्ध उपविष्टाय=बैठे हुए, उपस ाय=;आचार्य को चरणस्पर्शादि सेद्ध सेवा करते हुए, समीक्षमाणाय=आचार्य को अच्छी प्रकार देख्रते हुएफ्र समीक्षिताय=;तथाद्ध आचार्य द्वारा ठीक प्रकार से देख्रे जाते हुए, अस्मै=इस बटु को, सावित्रीम्=गायत्री मन्त्र का, अन्वाह=उपदेश करे।।3।।

टिप्पणी-;1द्ध दाहिने कान में।

दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैवेफ।।4।।
पच्छोर्धर्चशः सर्वाञ्च तृतीयेन सहानुवर्त्तयन्।।5।।

पक्षांतरमाह दक्षिणतः अग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि तिष्ठते ऊर्ध्वाय ऊर्ध्वीभूताय वा आसीनाय उपविष्टाय इत्येवेफ आचार्याः सावित्रीप्रदानं मन्यंते कथयन्वाह पच्छः पादं पादम् अर्धर्चशः तदनु अर्धर्चम(र्चम्, तदनु च सर्वांतृतीयेन वारेण सह मिलित्वा आवर्त्तयन्।

अर्थ-एवेफ=वुफछ आचार्यों का मत है कि, दक्षिणतस्तिष्ठते=अग्नि वेफ दक्षिण की ओर ख्रड़े हुए अथवा, आसानीय=बैठे हुए ;बटु को गायत्री का उपदेश करेद्ध।4।।

पच्छः=पाद पाद करवेफ, पुनः अर्धर्चशः=आधा मन्त्र करवेफ, पुनः सर्वां च तृतीयेन=तीसरी बार सम्पूर्ण मन्त्र को, सहानुवर्तयन्=साथ साथ बटु से कहलावे ;इस प्रकार तीन बार मन्त्र का उपदेशकरेद्ध।।5।।

टिप्पणी-मन्त्र-ॐ भुर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रयोदयात्।

संवत्सरे षण्मास्ये चतुर्विंशत्यहे द्वादशाहे षडहे त्र्यहे वा।।6।।

सावित्रीप्रदानस्य कालविकल्पा- नाह संवत्सरे उपनयनमारभ्यं पूर्णे वर्षे षण्मास्ये षडेव मासाः षण्मास्यं स्वार्थे तद्धि(तश्छांदसो वृद्धि(लोपः 'छंदोवत्सूत्राणि भवन्तीति वचनात्' तस्मिन् षण्मास्ये चतुर्विंशत्यहे चतुर्विंशत्या अहोभिरुपलक्षितः कालः चतुर्विंशत्यहः तस्मिन् द्वादशाहे द्वादशभिरहोभि- रुपलक्षितः कालो द्वादशाहस्तस्मिन् षडहे षडभिरहोभिरुपलक्षितः कालः षडहः तस्मिन् त्र्यहे त्रिभिरहोभिरुपलक्षितः कालस्त्र्यहस्तस्मिन्।

अर्थ-संवत्सरे=पूर्ण वर्ष में, षण्मास्ये=अथवा 6 महीनों में, चतुर्विंश- त्यहे=अथवा 24वें दिन, द्वादशाहे वा=अथवा 12वें दिन, षडहे=अथवा

अनुब्रूयात् वुफतः 'आग्नेया वै ब्राह्मण' इति श्रुतः। आग्नेया अग्निदैवत्यः ब्राह्मण इति वेदवचनात्।

अर्थ-ब्राह्मणाय=ब्राह्मण वेफ लिए तो, सद्यस्त्वेव=शीघ्र ही अर्थात् उपनयन वेफ दिन ही, गायत्रीम्=गायत्री मन्त्र का, अनुब्रूयात्=उपदेश करे। क्योंकि श्रुति में लिखा है-आग्नेयो वै ब्राह्मणः=ब्राह्मण अग्निदैवत्य ;तेजस्वीद्ध होता है।।7।।

टिप्पणी-;1द्ध यह उपर्युक्त काल का विकल्प क्षत्रिय और वैश्य वेफ लिए है।

त्रिष्टुभं राजन्यस्य ।।8।।

जगतीं वैश्यस्य।।9।।

सर्वेषां वा गायत्रीम्।।10।।3।।

त्रिष्टुभं राजन्यस्य जगतीं वैश्यस्य सर्वेषां वा गायत्रीं राजन्यस्य क्षत्रियस्य त्रिष्टुप्छंदो यस्याः सा त्रिष्टुप् तां त्रिष्टुभं जगतीछंदो यस्याः)चः सा जगती तां जगतीं वैश्यस्य सावित्रीमनुब्रूयादित्यनुषज्यते सर्वेषां वा गायत्रीं सर्वेषां ब्राह्मणक्षत्रियविशां गायत्रीमेव गायत्रछंदस्कामेव सावित्रीं संवितृदेवताकां तत्सवितुरिति सकलवेदशास्त्राम्नाताम्)चमनुब्रूयात्।

अर्थ-राजन्यस्य=क्षत्रिय वेफ लिए। त्रिष्टुभ्=त्रिष्टुप् का उपदेश करे, वैश्यस्य वैश्य वेफ लिए, 'जगतीम्'=जगती का उपदेश करे, सर्वेषां वा=अथवा सभी वर्णों को, गायत्रीम्=गायत्री का ही उपदेशकरे।।8।।9।।10।।

टिप्पणी-

;1द्ध देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय॥

दिव्यो गन्धर्वः वेफतपूः वेफतु : पुनातु वाचस्पतिर्वाजं नः स्वदतु स्वाहा॥ यजुः। 1।1॥

;2द्ध विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।

वि नोकमख्यत्सविता वरेण्यो(नुप्रयाणमुषसो विराजति॥

॥ इति द्वितीयकाण्डे तृतीयकण्डिका॥

चतुर्थकण्डिका

समिदाधन विधि

अथ समिदाधानम्॥1॥

अत्र सावित्रीप्रदानोत्तरकाले समिधाम् आधानं प्रक्षेपः ब्रह्मचारिणो भवति अत्राग्नाविति भाष्यकारः। अत्रावसरस्य पाठादेव सि(अत्र।

अर्थ-अत्र=यहाँ पर ;अग्नि मेंद्ध समिदाधानम्=काष्टप्रक्षेपण की विधि ;का वर्णन किया जाता हैद्ध॥1॥

पाणिनाग्निं परिसमूहति अग्ने सुश्रवः सश्रवसं मा वुफरु यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा अस्येवं मां सुश्रवः सौश्रवसं वुफरु यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा अस्येवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासमिति॥2॥

प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्योत्तिष्ठन्त्समिधमादधाति अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसे एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिधे जीवपुत्रो मामाचार्योमेधा- व्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्य ाद्ो भूयासं स्वाहेति॥3॥

एवं द्वितीयां तथा तृतीयाम्॥4॥
एषा त इति वा समुच्चयो वा॥5॥

पाणिना दक्षिणहस्तेन अग्निं प्रकृतहोमाधिकरणं परिसमूहति संधुक्षयति इंधनप्रक्षेपेण वक्ष्यमाणैः पंचभिर्मन्त्रैः यथा अग्ने सुश्रवः सुश्रवसम्मा वुफरु यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं वुफरु यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिया असि एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासम्। वेफचित्परिसमूहने त्रीन्मंत्रान्मन्यंते तद्यथा अग्ने सुश्रव इत्यारभ्य सुश्रवसं मा वुफरु इत्येक यथा त्वमग्ने इत्यारभ्य सौश्रवसं वुफरु इत्येवं द्वितीयं यथा त्वमग्ने देवानामित्यादि भूयासमित्यंतं तृतीयमिति प्रदक्षिणमग्निं पर्युक्ष्योत्थाय समिधमादधात्यग्नये समिधमिति ततः प्रदक्षिणं यथा भवति तथा पर्युक्ष्य दक्षिणहस्तगृहीतेनोदवेफन परिषिच्य उत्थाय ऊर्ध्वीभूय प्रा मुखस्तिष्ठन् समिध्यते दीप्यते अग्निरनयेति समित् तां समिधम् आदधाति प्रक्षिपति समिल्लक्षणं छंदोगपरिशिष्टे ''नांगुष्ठादाधिका कार्या समित्स्थूलतया क्वचित्। न विमुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥ प्रादेशान्नाधिका न्यूना न तथा स्याद्विशाखिका। न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु न विजानताश् ब्रह्मपुराणे ''पालाशाश्वत्थन्यग्रोधप्लक्ष- वैवंफकतोद्भवाः॥ अश्वत्थोदुंबरो बिल्वश्चंदनः सरलस्थता॥ शाल देवदारु खदिरश्चेति याज्ञिकाः'' मरीचिः ''विशीला विदला ''स्वा वक्राः सुसुषिराः कृशाः॥ दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसि(िविनाशिकाः'' अस्य पूर्वश्लोकः पापगाः समिधो देयास्ता कामोपपादिताः॥ कामेषु च सशल्कार्दा विपरीता जिघांसत इति

समिदाधाने समुच्चयः ऐक्य तत मत्रद्धयाते समित्प्रक्षेपः इति त्रयो मत्रविकल्पाः।

अर्थ-पाणिना=;दक्षिणद्ध हाथ से ;बटुद्ध अग्निम्=अग्नि को परि- समूहति=;वक्ष्यमाण ऽ मन्त्रों से धृताक्त कण्डेअग्नि में डालकरद्ध प्रज्वलित करें।2।।

मन्त्रार्थ=शुभकीर्ति वाले हे अग्नि! मुझे भी शुभकीर्ति वाला बना दो हे शुभकीर्ति अग्नि जिन कारणों से तुम कीर्तिमान हो उन्हीं कारणों से मुझे भी कीर्तिमान कर दो! हे अग्नि! जिस प्रकार तुम देवताओं और यज्ञ वेफ अधिपति हो उसी प्रकार मैं भी वेद ;ज्ञानद्ध और मनुष्यों का अधिपति बन जाऊं।।

अर्थ-अग्निम्=अग्नि वेफ चारों ओर, प्रदक्षिणम्=प्रदक्षिण क्रम् से, पर्युक्ष्य=जल सींचकर, उत्तिष्टन्=खड़े होकर, समिधम्=काष्ट का, 'अग्नि' इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक, आदधाति-हवन करें।3।।

मन्त्रार्थ-मैं जातवेदा ;धर्मोत्पादकद्ध एवं परिपूर्ण अग्नि वेफ लिए समिधा लाता हूं। हे अग्ने! जिस प्रकार आप इन समिधाओं से प्रदीप्त होते हो इसी प्रकार मैं भी, आयु से, मेधा से, वर्चस् से, प्रज्ञा से, इन्द्रियों से, ब्रह्मवर्चस् से प्रदीप्त होऊँ। मेरा आचार्य बृहस्पति ;सद्गशद्ध हो, मैं मेधावी सुस्मृतिसम्पन्न, यशस्वी, तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी तथा स्वस्थ हो जाऊँ।।

अर्थ-एवम्-इसी प्रकार द्वितीयाम्-दूसरी। तथा तृतीयाम्=तथा तीसरी समिधा का हवन करें।4।।

एषा ते-एषा ते0 ;अथवाद्ध इस मन्त्र में समिदाधान करें। समुच्चयो वा अथवा दोनों मन्त्रों से समिदाधान करें।5।।

टिप्पणी-;1द्ध एषा ते अग्ने समित्तया वर्धस्व चा प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमाप्यासिषीमहि।। यजुः 2।14

पूर्ववत्परिसमूहनपर्युक्षणे।।6।।

पूर्ववत् अग्ने सुश्रव इत्यादिभिः पंचभिर्मंत्रैः परिसमूहन पर्युक्षणमपि पूर्ववत्वुफर्यात्।

अर्थ-पूर्ववत्=पहले की भांति, परिसमूह पर्युक्षणे-ऽ काण्डों द्वारा अग्नि का सम्धुक्षण एवं जल से ;चारों ओर गिराकरद्ध अभ्युक्षण करें।6।।

पाणी प्रतप्य मुखं विमृष्टे तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाह ायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चो दा अग्नेसि वर्चो मे देहि अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर जाविति।

अंगान्यालभ्य जपत्यंगानि च म आप्यायंतां वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं यशो बलमिति त्र्यायुषाणि करोति भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेंसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमंत्रमृद्ध।7।।5।।

पाणी प्रतत्य मुखं विमृष्टे तनूपा अग्नेसि तन्वम्मे पाह्यायुर्दा अग्नेस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेसि वर्चो में देहि अग्ने यन्मे तन्वा ऊन तन्म आपूर्णेति मेधाम्मे देवः सविता मेधां देवी सरस्वती मेधामश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर- जाविति पाणी हस्तौ प्रतप्य अग्नौ तापयित्वा तनूपा अग्नेसीत्यादिभिः सप्तभिमंत्रैः प्रतिर्मत्रं पाणिभ्यां मुखं विमृष्टे ललाटादि चिबुकांतं प्रोञ्छति तत्र मेधां मे देवः सविता मेधां देवी सरस्वती अनयोरादधात्वित्यध्याहारः। अत्र शिष्टाचारप्राप्ताः वेफचित्पदार्था लिख्यंते। अंगानि च म आप्यायंतां वाक्प्राण क्षु श्रोत्रं यशो बलमिति अ ानि च म इत्यनेन मंत्रेण शिरः प्रभृतीनि पादांतानि अगान्यालभेत एवं वाकृइत्यनेन मुखं प्राण इत्यनेन नासिवेफ चक्षुरित्यनेन चक्षुषी श्रोत्रमित्यनेन श्रवणे यशो बलमित्यस्य पाठमात्रं त्र्यायुषाणि वुफरुते भस्मना ललाटे ग्रीवायां दक्षिणेंसे हृदि च त्र्यायुषमिति प्रतिमंत्रं त्र्यायुषमित्येतैश्चतुर्भिर्मत्रंपादैः अनामिकागृहीतेन भस्मना ललाट- ग्रीवादक्षिणां सहृदयेषु प्रतिपादं त्र्यायुषाणि वुफर्य्ये अत्र। त्र्यायुषकरणं सूत्रकारानुक्तमपि प्रसि(त्वात् शिष्टपरंपराचरितत्वात् क्रियते। ततो ब्रह्मचारी संध्यामुपास्याग्किार्य कृत्वा गुरुषूपसंग्रहणं वृ(तरेष्वभिवादनं वृ(षु नमस्कारं वुफर्यात्पर्यायः। अत्र स्मृत्यन्तरोक्तमभिवादनं लिख्यते ''ततोभिवादयेद्वृ(ान- सावयमिति ब्रुवन्'' इति याज्ञवल्क्यादिस्मृतिप्रणीतस्याभिवादनप्रयोगो यथा संग्रहणं नाम अमुकगोत्रोऽमुवेफत्येतावत्प्रवरः अमुकशर्म्माहं भोः 3 श्रिहरिहरशर्मन् त्वामभिवादये इत्युक्तवा कर्णौ स्पृ । दक्षिणोत्तरपाणिभ्यां दक्षिणपाणिना गुरोर्दक्षिणं पादं सव्येन सव्यं गृहीत्वा

जातिसर्वाधयोषितः। विप्राष्य विप्र वुफशल पृच्छन्नृपमनामयम्।। वेश्य क्षम समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च।। न वाच्यो नीक्षितो नाम्ना यवीयानपि सर्वथा।। पूज्यैस्तमभिभाषेत भो भवन् कर्मनामभिः। परपत्नीमसंबंधां भगिनीं चेति भाषयेत्। त्रिवर्षपूर्व श्रोत्रियोभिवाद्यः आत्रिवर्षाः सम्बन्धिनः स्वल्पेनापि स्वयोनिजः। अन्ये च ज्ञानवृ(ाः सदाराश्चाभिवाद्याः ''उदक्यां सूतिकां नारीं भर्तृध्नीं गर्भपातिनीम्। पाषंडं पतितं व्रात्यं महापातकिन् शवम्। नास्तिवंफ कितवं स्तेनं कृतघ्नं नाभिवादयेत्। मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं धावंतमशुचिं नरम्।। वमंतं जृम्भमाणं च वुफर्वंतं दंतधावनम्।। अभ्यक्तं शिरसि स्नानं वुफर्वन्तं नाभिवादयेत्'' इति शातातपः। बृहस्पतिस्तु ''जपरूजलस्थं च समित्पुष्पवुफशांस्तिलात्। उदपात्रर्ध्यभैक्षाल्नं वहंतं नाभिवादयेत्।। अभिवाद्य द्विजश्चैतानहोरात्रेण शुध्यति''।। क्षत्रवैश्याभिवादने विप्रस्यैवं शुद्राभिवादने त्रिरात्रं कार्यं तु रजकादिषु ''चांडालादिषु चांद्रां स्यादिति संग्रहकृत्स्मृतम्''। जगदग्निः ''देताप्रतिमां दृष्ट्वा यति चैवं त्रिदंडिनम्। नमस्कारं न वुफर्याच्चेदुप- वासेन शुध्यति।। सर्वे वापि नमस्कार्भाः सर्वावस्थासु सर्वदा। अभिवादो नमस्कारस्तथा प्रत्यभिवादनम्। आशीर्वाच्या नमस्कार्यैर्वयस्यस्तु पुनर्तमेत्। स्त्रियो नमस्या वृ(श्च वयसा पत्युरेव ताः''।।

अर्थ-पाणी=दोनों हाथ, प्रतप्य=अग्नि में तपाकर ;बटुद्ध 'तनूपा0' इत्यादि मन्त्रों से, मुखम्-मुख का, विमृष्टे-मार्जन करे ;ललाट से चिबुक पर्यन्त स्पर्श करेद्ध।।7।।8।।

मन्त्रार्थ-हे अग्नि! आप शरीर की रक्षा करने वाले, आयु देने वाले, वर्चस प्रदान करने वाले हैं। अतः आप मेरे शरीर की रक्षा करते हुए आयु और वर्चस करते हुए मेरे शरीर की प्रत्येक कमी को पूरा करें। सविता देवता सरस्वती एवं कमलमालाधारी अश्विनिवुफमार, मुझे मेधा प्रदान करें।।

अर्थ-अ ानि-शरीर वेफ अवयवों को आलभ्य-छूटकर ;बटुद्ध जयति-मन्त्र पढ़े-अ ानि च म आप्यायन्ताम्0 इत्यादि। त्र्यायुषाणि

करोति=;भस्म सेद्ध तिलक करे भस्मना=भस्म से, त्र्यायुषम्0=इत्यादि मन्त्र से प्रतिमन्त्रम्-प्रतिमन्त्रोच्चारण पूर्वक, ललाटे=मस्तक में, ग्रीवायम्-कण्ठ में, दक्षिणांसे=दक्षिण कन्धे पर, एवं हृदि-हृदय में तिलक धारण करे।9।।

मन्त्रार्थ-मेरे अंगों, वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, यश और बल को आप्यायित करे।

टिप्पणी-;1द्ध-त्र्यायुषं जमदग्नेरिति ललाटे, कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्, यद्दे, वेषु त्र्यायुषम् इति दक्षिणबाहुमले, तन्नो{अस्तु त्र्यायुषम् इति हृदि।।

प मकण्डिका

ब्रह्मचर्य काल के व्रत एवं नियम

अत्र भिक्षाचार्यचरणम्।।1।।

अत्रावसरे भिक्षाचर्यानुष्ठानं तद्यथा

अर्थ-अत्र-इस अवसर पर ;समिदाधान वेफ अनन्तरद्ध, भिक्षाचर्य- चरणम्-भिक्षा ;प्राप्तिद्ध वेफ लिये प्रार्थना करनी चाहिए।।1।।

भवत्पूर्वां ब्राह्मणो भिक्षेत।।2।। भवन्मध्यां राजन्य।।3।। भवदंत्यां वैश्यः।।4।।

भवच्छदः पूर्वो यस्याः सा भवत्पूर्वा तां भिक्षां ब्राह्मणः द्विजोत्तमः भिक्षेत याचेत तथैव भवच्छब्दो मध्ये यस्याः सा भावन्मध्या तां राजन्यः क्षत्रियो भिक्षेतेत्यनुषंगः भवच्छब्दो अंत्ये यस्यः सा भवदंत्या तां वैश्यः तृतीयो वर्णः भिक्षां भिक्षेतेत्यनुवर्तते।

अर्थ-ब्राह्मणः=ब्राह्मण ब्रह्मचारी, भवत्पूर्वाम्=भवत् शब्द सर्व प्रथम उच्चारण करवेफ। राजन्यः=क्षत्रिय ब्रह्मचारी, भवन्मध्याम्=भवत् शब्द मध्य में उच्चारण करवेफ। वैश्यः=वैश्य ब्रह्मचारी, भवदन्याम्=भवत् शब्द अन्त में उच्चारण करवेफ, भिक्षेत=भिक्षा याचना करे।।2-4।।

टि0-;1द्ध भवति भिक्षां देहि। ;2द्ध भिक्षां भवति देहि। ;3द्ध भिक्षां देहि भवति।

ति ।{प्रत्याख्यायिन्यः।।5।। षड्द्वादशा{परिमिता वा।।6।। मातरं प्रथमामेवेफ।।7।।

भिक्षेर्धातोर्द्विकर्मत्वात् द्वितीयं कर्माह तिस्त्रः स्त्रियो भिक्षां भिक्षेत कथंभूताः प्रत्याख्यातं निगकर्तुं शीलं यासां ताः प्रत्ययाख्यायिन्यः न प्रत्याख्यायिन्यः अप्रत्याख्यायिन्यः। अत्र द्वितीयार्थे प्रथमा भिक्षतेति कर्तृप्रत्ययांतस्याख्यातस्य कर्मकारकापेक्षितत्वात् षट् वा स्त्रियः द्वादश वा अपरिमित वा असंख्याता भिक्षेतेति सर्वत्रानुषंगः। एते भिक्षा-विकल्पा आहारपर्याप्त्यपेक्षया एक आचार्याः मातरं जननीं प्रथमां भिक्षेतेत्याहुः। अयं च प्रथमोधर्म इति भाष्यकारः।

अर्थ-ति :-तीन अप्रत्याख्यायिन्यः-तिरस्कार न करने वाली ह्रियों से ;सर्वप्रथम भिक्षा माँगेद्ध षड्=अथवा 6 ह्रियों से, अथवा द्वादशापरिमिता वा=12 ह्रियों या और भी अधिक ह्रियों से भिक्षा प्राप्त करे।5-6।।

अर्थ-प्रथमाम्-प्रथमभिक्षा मातरम्=माता से प्राप्त करे, एवेफ=यह किन्हीं आचार्यों का मत है ;यह प्रथम दिवस का ही नियम है-कर्क0द्ध।7।।

आचार्याय भैक्षं निवेदयित्वा वाग्यतोहः शेषं तिष्ठेदित्येवेफ।।8।।

वाग्यतः=वाणी को संयत कर ;मौनद्ध तिष्ठेत्=रहे, इत्येवेफ=यह ;पफलातिशयार्थद्ध किन्हीं आचार्यों का मत है।।४।।

अहिंस रण्यात्समिध आहृत्य तस्मिन्नग्नौ पूर्ववदाधाय वाचं विसृजते।।५।।

अहिंसन् अच्छिदन् स्वयं भग्ना आरण्यान्ग्रामात् समधिः पूर्वोक्तलक्षणः आहृत्य आनीय तस्मिन्नग्नौ यत्र उपनयनांगहोमः कृतस्तस्मिन् पूर्ववत्परि- समूहनादि ऋयायुषकरणांतं यावत् आधाय हुत्वा वाचं विसृजते मौनं त्यजति वाग्यमपक्षे।

अर्थ-अरण्यात-ज ल से, अहिंसन्=वृक्ष को बिना काटे हुए ;स्वयं निपतित समधिः=काष्ट वेफ ख्रण्डों को, आहृत्य=लाकर, तस्मि ग्नौ=उसी अग्नि में पूर्ववदाधाय=पूर्वोक्तफ प्रकार से हवन कर, वाचं विसृजते=वाणी उच्चारण करे ;यदि मौन रहा होद्ध।।५।।

टि0-;1द्ध यहाँ वेफवल मौन वेफ प्रति ही विकल्प है। समिदाधान तो प्रत्येक अवस्था में करना चाहिए।।

अधः शा यक्षारालवणाशी स्यात्।।१०।।
दंडधारणमग्निपरिचरणं गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्या।।११।।
मधुमांसमज्जनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानि वर्जयेत्।।१२।।

अत ऊर्ध्वं ब्रह्मचारिणो यमनियमानाह। अधः शयितुं शीलमस्य असावधःशायी स्यात् तदा अक्षारम् अलवणं चाश्नायीत्येवंशीलः अक्षारालवणाशी भवेत् दंडधारणं दंडस्य स्ववर्णविहितस्य धारणं वुफर्यात्। दंडाजिनोपवीतानि मेखलां चैव धार्य्येदित्येतदुपलक्षणत्वात्सदाचि- रूपं वुफर्यात्। अग्नेः परिचरणं सायं प्रातः परिसमूहनपूर्वं ऋायुषकरणांतं न समिदाधानं गुरुशुश्रूषा गुरोः शुश्रूषा परिचर्या तां वुफर्यात् भिक्षार्थ चर्या भिक्षाचर्या भैक्षचरणमिति यावत्। मधु क्षौद्रं मांसंपललं प्लवनं स्नानम् उ(तोदवेफन उपरि ख्रद्वादौ आसनम् उपवेशनम् आसनस्योपरि मसूरिकाद्य- सानं वा स्त्रीगमनं स्त्रीणां मध्ये अवस्थानम् अभिगमनस्योपरि वक्ष्यमाणत्वात् अनृतम्। असत्यवदनम् अदत्तानां परद्रव्याणाम् आदानं ग्रहणं स्तेयमित्यर्थः। एतानि मध्वादीनि वर्जयेत्।

अर्थ-;ब्रह्मचारी वेफ लिए नियमद्ध अधःशायी=भूमि पर शयन करे। अक्षारालवणाशी=क्षारयुक्तफ तथा नमकीन पदार्थों को न ख्राये। दण्डधारणम्=सर्वदा दण्डधारण करे, अग्निपरिचरणम्=प्रतिदिन ;सायंप्रातःद्ध अग्नि की सेवा ;परिसमूहन, समिदाधानादिद्ध करे। गुरुशुश्रूषा=प्रतिदिन गुरु की सेवा, भिक्षाचर्या=प्रतिदिन भिक्षायाचना करे। मधु इत्यादि=मधु, मांस, मज्जन ;जलाशयादि में डुबकी लगा कर स्नानद्ध, चारपाई में बैठना, स्त्रीगमन, असत्यभाषण, बिना दिये दूसरे वेफ द्रव्य का ग्रहण ;स्तेयद्ध इन कार्यों को न करे।।10-12।।

अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यं चरेत्।।१३।।

अ ाचत्वारिंशतं वर्षाणि अब्दानि वेदब्रह्मचर्यं वेदग्रहणार्थं ब्रह्मचर्य- मुत्तफलक्षणं चरेत् अनुतिष्ठेत्। अस्मिन् पक्षे चतुर्णामपि वेदानामेक एव व्रतादेशः सर्ववेदाहुतिहोम ।

द्वादश वा प्रतिवेदम्।।१४।। **यावद्ग्रहणं वा।।१५।।**

अनुकल्पमाह वा तदशक्तौ द्वादश वर्षाणि प्रतिवदं वेदे ब्रह्मचर्यं चरेदित्यनुवर्त्तते। तत्राप्यशक्तो यावद्ग्रहणं यावद्वेदस्य वेदयोः वेदानां ग्रहणम् आचार्यात्पाटतोर्थित स्वीकरणं तावद्वा ब्रह्मचर्यं चरेत्। वर्णव्यवस्थया वासः प्रभृतिव्यवस्थितात्याह।

अर्थ-अष्टाचत्वारिंशद्=48 वर्षाणि वर्ष वेद ब्रह्मचर्य=वेद ग्रहण वेफ लिए ब्रह्मचर्य ;उपर्युक्त लक्षणद्ध का, चरेत्=आचरण करे ;अशक्त होने परद्ध द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम्=12,12, वर्ष प्रतिवेद वेफ हिसाब से यथेच्छ अध्ययन करे ;इसमें भी अशक्त होने परद्ध यावद्ग्रहणं वा=जितना भी वेदाध्ययन कर सवेफ करे।।13।।14।।15।।

वांसासि शाणक्षौमाविकानि।।१६।।

ब्रह्मचारिणां यथासंख्यं शाणक्षौमाविकानि वस्त्राणि परिधेयानि भवंति तत्र शाणमयं शाणं क्षौमं क्षुमा अतसी तद्विकारमयं क्षौमम् आविकम् अवेर्षेषस्य विकारः आविकम् ऊर्णामयमित्यर्थः।

रौरवं राजन्यस्य ।।१९।।

रुरुर्मृगविशेषः चित्रमृगप्रसि(ः तस्येदमजिनं रौरवं राजन्यस्य क्षत्रिय- स्योत्तरीयं भवति।

आजं गव्यं वा वैश्यस्य।।२१।।

अजस्य वस्तस्य इदम् अजिनं कृति वैश्यस्य उत्तरीयम् अथ वा गव्यं गोः इदं गव्यम् अजिनं वा वैश्यस्य उत्तरीयं भवति।

सर्वेषां वा गव्यमसति प्रधानत्वात् ।।२०।।

पक्षांतरमाह सर्वेषां ब्राह्मणक्षत्रियविशां गव्यमजिनं वा उत्तरीयं भवति कदा असति मुख्ये अविद्यमाने कृतः प्रधानत्वाद् गव्यं हि अजिनानाम् ऐणेयाद्यजिनप्रभृतिनां प्रधानम् एणादीनाः गौः प्राधान्यं यत् यद्वा गव्यस्य चर्मणः फुरुषसंबंधित्वेन प्रधानत्वात्। तथा च श्रुति 'ते(विस्थाय फुरुं गव्ये तां त्वचमादधुरिति'।

अर्थ-ब्रह्मणस्य=ब्रह्मण ब्रह्मचारी वेफ लिए, ऐणेयम्=हिरण का, अजिनम्=चर्म, उत्तरीयम्=उत्तरीय होता है राजन्यस्य=क्षत्रिय वेफ लिए=रौरवम्= रुरु मृग का चर्म ;उत्तरीय होता हैद्ध, । आजं गव्यं वा, वैश्यस्य=वैश्य वेफ लिए, बकरी का या गाय का चर्म उत्तरीय होता है। असति=अपर्युत्तफ मुख्य उत्तरीय न प्राप्त होने पर प्रधानत्वात्=प्रधान होने वेफ कारण, गव्यम्= गाय का चर्म ही, सर्वेषाम्=सभी ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य वेफ लिए उत्तरीय होता है।।19-20।।

मौञ्जी रशना ब्राह्मणस्य।।21।। धनुर्ज्या राजन्यस्य।।22।।

मौर्वी वैश्यस्य ।।23।। मुंजाभावे वुफशाश्मंतकबल्वजानाम्।।24।।

मौंजी मुंजः तृणविशेषस्तन्मयी मौंजी रशना मेखला ब्राह्मणस्य ब्रह्मचारिणो भवति धनुर्ज्या चापस्य ज्या गुणः रशना राजन्यस्य ब्रह्मचारिणः मौर्वीति तृणविशेषस्तन्मयी रशना वैश्यस्य भवति मुंजस्याभावे अलाभे ब्राह्मणस्य वुफशानां वुफशमयी रशना भवति धनुर्ज्याया अभावे क्षत्रियस्य अश्मंतकमयी भवति मौर्व्यभावे बाल्वजी वैश्यस्य। मुंजाभावे शब्दोत्र धनुर्ज्यामौर्व्यभावोपलक्षणार्थः।

अर्थ-ब्राह्मणस्य=ब्रह्मण की रशना=मेखला, मौ ी=मूँज नामक तृणविशेष की होती है। राजन्यस्य=क्षत्रिय की रशना, धनुर्ज्या=धनुष की प्रत्य ा की मेखला होती है। वैशयस्य=वैश्य की रशना=मौर्वी=मुरु नामक तृण विशेष की होती है। मू ाभावे=मूँज आदि वेफ अभाव में ब्रह्मणादि वेफ लिए क्रमशः वुफश, अश्मन्तक एवं बल्वज की रशना बनावे।।21-24।।

पालाशो ब्राह्मणस्य दंडः।।25।। बैल्वो राजन्यस्य।।26।। औदुंबरो वैश्यस्य।।27।।

वेफशसंमितो ब्राह्मणस्य दंडो ललाटसंमितः क्षत्रियस्य घ्राणसंमितो वैश्यस्य सर्वं वा सर्वेषाम्।।28।।

पालाशः पलाशवृक्षोद्भवः ब्राह्मणस्य ब्रह्मचारिणो दंडो भवति स च वेफशसमितः पादादिवेफशमूलावधिप्रमाणकः बैल्वः बिल्ववृक्षोद्भावः क्षत्रियस्य ललाटसंमितः ललाटावधिपरिमाणः भ्रुमध्यावधिपरित्यर्थः औदुंबर उदुंबर- वृक्षोद्भवः वैश्यस्य ब्रह्मचारिणो मुख्यसंमित औष्टपुटावधिर्दण्डः सर्वे वा सर्वेषांद्ध यद्वा सर्वेषां ब्राह्मणक्षत्रियविशां ब्रह्मचारिणां सर्वे पालाशबैल्वोदुंबरा अनियमेन दंडाः भवंति नियमो वा नास्ति मुख्याभावे यथालाभमुपादेयम्।

अर्थ-ब्रह्मणस्य=ब्रह्मण वेफ लिए, पालाशो दण्डः=पलाश ;ढाकद्ध का दण्ड होता है। राजन्यस्य=क्षत्रिय वेफ लिए, बैल्वः का, ;तथाद्ध वैश्य वेफ लिए औदुम्बरः=गूलर का दण्ड होता है ;ब्राह्मण का दण्ड वेफशपर्यन्त लम्बा, क्षत्रिय का ललाट पर्यन्त लम्बा तथा वैश्य का नासिका पर्यन्त लम्बा होता हैद्ध सर्वे वा सर्वेषाम्=अथवा, सभी वृक्षों के दण्ड सभी वर्णों वेफ लिए होते हैं।।25-28।।

आचार्येणाहूत उत्थाय प्रतिशृणुयात्।।29।।

आचार्येण गुरुणाहूत आकारितः ऊर्ध्वो भूत्वा प्रति शृणुयात् प्रतिवचनं दद्यात् ब्रह्मचारी।

शयानं चेदासीन आसीनं चेत्तिष्ठंस्तिष्ठतं चेदभित्रफमन्नभित्रफामन्तं चेदभिधावन्।।30।।

स एवं वर्तमानोऽमुत्राद्यवसत्यमुत्रद्यवसतीति तस्य स्नातकस्य कीर्तिर्भवति।।31।।

चेद्यदि शयानं स्वपतं ब्रह्मचारिणं गुरुराहयति तदा आसीनः उपविष्टः सन् प्रतिवचनं दद्यात् आसीनम् उपविष्टं चेदाहयति तदा तिष्ठन्नुत्थितः यदि तिष्ठतमुत्थिमाहयति तदा अभिक्रामन् गुरुमभिमुखं गच्छन् प्रति शृणुयात् अभिक्रामतं चेदभिधावन् अभिमुखं धावन् संग्रति शृणुयात् स एवं वर्तमानोऽमुत्राद्य वसति स ब्रह्मचारी एवमुक्तेन मार्गेण ब्रह्मचर्य वर्तमानास्तिष्ठान् अमुत्र स्वर्गे अद्य इहैव स्थितः सन् वसत तिष्ठति द्विरुक्ति स्तुत्यर्था तस्य स्नातकस्य कीर्तिर्भवति तस्य ब्रह्मचारिणः स्नातकस्य समावतस्य कीर्तिर्यशो भवति इति यथोक्तधर्मानुष्ठातुर्ब्रह्मचारिणः पफल कथनं।

अर्थ-आचार्येण=आचार्य वेफ द्वारा आहूतः=बुलाया गया ;ब्रह्मचारीद्ध उत्थाय= उठकर, प्रति शृणुयात्=उत्तर दे। शयानं चेदासीनः=यदि लेटे हुए ब्रह्मचारी को गुरु बुलावे तो बैठकर उत्तर दे। आसीनं चेत्तिष्ठन्=यदि बैठे हुये ब्रह्मचारी को गुरु बुलावे तो खड़े होकर उत्तर दे। तिष्ठन्तं चेदभिक्रामन्= यदि खड़े हुये ब्रह्मचारी को गुरु बुलाये तो वुफछ चलकर उत्तर दे। और अभिक्रामन्तं चेदभिधावन्=यदि चलते हुए ब्रह्मचारी को गुरु बुलावे तो दौड़कर उत्तर दे।।29-30।।

अर्थ-सः=वह ब्रह्मचारी, एव=इस प्रकार वेफ मार्ग से वर्तमानः=चलता हुआ अद्य=यहीं रहता हुआ, अमुत्र=स्वर्ग में निवास करता है ;दो बार कथन स्तुत्यर्थ है ;तस्य=उस, स्नातकस्य=विद्याप्राप्ति वेफ अनन्तर स्नातक की कीर्तिर्भवति=कीर्ति होती हैद्ध।।31।।

त्रयः स्नातका भवन्ति विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति।।32।।

त्रयः त्रिप्रकाराः स्नातका भवन्ति कथम् एको विद्यास्नातकः, अपरो व्रतस्नातकः, अन्यो विद्याव्रतस्नातकः। एतेषां लक्षमाह।

अर्थ-स्नातकों के प्रकार-त्रयः=तीन, स्नातका भवन्ति=स्नातक होते हैं। क्रमशः ;1द्ध विद्यास्नातक ;2द्ध व्रतस्नातक एवं ;3द्ध विद्याव्रतस्नातक कहे जाते हैं।।32।।

समाप्य वेदमसमाप्य व्रतं यः समावर्तते स विद्यास्नातकः।।33।।
समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्त्तते स व्रत स्नातकः।।34।।
उभयं समाप्य यः समावर्त्तते स विद्याव्रतस्नातक इति।।35।।

समाप्य समाप्ति पाठतोऽर्थत अवसान् नीत्वा वेदवेदस्य मन्त्रब्रह्माणा- त्मिकाम् एकां शाखां व्रतं च ब्रह्मचर्य समाप्य यः समावर्त्तते स्नाति स ब्रह्मचारी विद्यास्नातको भवति। एवं समाप्य व्रतं द्वादशवर्षिकादिवंफ ब्रह्मचर्यम् समाप्य असम्पूर्णमधीत्य वेदम् एकां शाखां यो ब्रह्मचारी समावर्त्तते स्नानं करोति स व्रतस्नातको भवति। उभयं वेदं ब्रह्मचर्य च समाप्य अन्तं नीत्वा यः स्नाति स विद्याव्रतस्नातको भवति।

अर्थ-समाप्य वेदम्=वेदाध्ययन ;वेद की एक शाखा का साोपा अध्ययन करवेफद्ध समाप्त करवेफ तथा व्रतम्=12 वर्ष लक्षण ब्रह्मचर्य को समाप्त न करने वाला, जो=समावर्तते=समावृत होता है, वह विद्यास्नातकः= विद्यास्नातक होता है। समाप्यव्रतम्=द्वादशवर्ष लक्षण ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त करवेफ, तथा असमाप्य वेदम्=वेदाध्ययन को पूरा न करवेफ जो समावर्तते=समावर्तन स्नान करता है, वह व्रतस्नातक कहलाता है। तथा उभयं समाप्य=द्वादश वर्ष लक्षणव्रत एवं वेदाध्ययन दोनों को समाप्त करवेफ यः=जो समावर्तते=समावर्तन स्नान करता है वह विद्याव्रत

आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य।।38।।

आषोडशाद्वर्षाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवति। आद्वाविंशाद्राजन्यस्य। आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य। उपनयनकालस्य परमावधिमाह आषोडशाद्वर्षात् प्राक्ब्राह्मणस्य विप्रस्य अनतीतः उपनयनस्य कालः समयो भवति। आद्वाविंशात् द्वाविंशद्वर्षात्पूर्वं क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद्वर्षादर्वाक् वैश्यस्य उपनयनस्य कालः अनतीतो भवति। भवतीति सर्वत्र संबध्यते।

अर्थ-आषोडशाद् वर्षाद्=16 वर्ष वेफ पूर्व तक ब्राह्मण का, नातीतः=अनतीतः कालो भवति=;गायत्री उपदेश काद्ध समय होता है। राजन्यस्य=क्षत्रिय का आद्वाविंशाद्=22 वर्ष वेफ पूर्व तक तथा वैश्यस्य=वैश्य का अचतुर्विंशाद्=24 वर्ष ;वेफ पूर्व तक का समय गायत्री उपदेश वेफ लिए ठीक कहा गया हैद्ध।।36-38।।

अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति।।39।।

अतः पंचदशात् एकविंशात्त्रयोविंशाद्वर्षादूर्ध्वम् अनुपनीता ब्राह्मण- क्षत्रियवैश्याः यस्थासंख्यं पतितसावित्रीकाः पतिता स्खलिता अधिकाराभावात् निवृत्ता सावित्री गायत्री येभ्यः ते पतितसावित्रीका भवन्ति संपद्यन्ते।

अर्थ-अतः उर्ध्वम्=इस समय की अवधि से ऊपर ;ब्राह्मणादिद्ध पतित- सावित्रीका=पतितसावित्री वाले, भवन्ति=हो जाते हैं।।39।।

नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न चैभिर्व्यवहरेयुः।।40।।

तान् पतितसावित्रीकान् न उपनयेयुः उपनयनसंस्कारेण न संस्वुफर्युः शिष्टाः वैफर्ि त् अतिक्रांतनिषेधैरुपनीतानपि न अध्यापयेयुः न वेदं पाठयेयुः तथा न याजयेयुः वैफ न अति क्रांतनिषेधैर्वेदमध्यापितानपि न याजयेयुः न यज्ञ कारयेयुः। एभिः पतितसावित्रीवैफरनुपनतीतैर्वा सह न व्यवहरेयुः न व्यहरेत् स्नानसनशयनभोजनविवाहदिभिः कर्मभिर्न व्यवहारं वुफर्युः।

अर्थ-एनान्=इन पतित सावित्रीवाले ब्राह्मण क्षत्रियादि का ;आचार्यद्ध न उपनयेयुः=उपनयन संस्कार न करावे। ;यदि निषेध का उल्लंघन करवेफ कोई उपनीत कर दे तोद्ध नाध्यापयेयुः=वेदादि न पढ़ाये। न याजयेयुः=;उनकोद्ध यज्ञादि न कराये। एभिः च=और इन लोगों वेफ साथ न व्यवहरेयुः=;कभी कोईद्ध व्यवहार न करे।।40।।

कालातिक्रमे नियतवत्।।41।।

गर्भाधानादीति उपनयनांतानि कर्माणि नियतकालान्यभिहितानि। यदि दैववशात्पुफषापराधाद्वा दोषाद्वा तेषां नियतस्य कालस्य अतिक्रमो भवति तदा किं कर्त्तव्यमिति संदेहे निर्णयमाह।। कालातिक्रमे यस्य संस्कारकर्मणः शास्त्रे नियमितो यः कालः तस्य अतिक्रमे लंघने नियतवत् नित्यवत् नित्ये श्रौतकल्पे नित्येषु यद्विहितं प्रायश्चि त्तं भवति ततः कृतप्रायश्चि त्तस्य अतिक्रांतकाले संस्कारकर्मण्यधिकारः संपद्यते अनादिष्ट प्रायश्चि त्तेति कर्त्तव्या च प्रयोगे वक्ष्यते। अत्र कालातिक्रम इत्युपलक्षणम्। अतः अन्येषामपि कर्मणां नाशे इदमनादिष्टमेव सर्वं प्रायश्चि त्तं गृह्यकारेण प्रायश्चि त्तान्तस्य अनुपदिष्टत्वात् विंफ तु श्रौतानामतिदेश्ये प्राप्ते अविज्ञाते प्रतिमहाव्याहृतिभिः सर्वाभि श्चतुर्थं सर्वप्रायश्चि त्तं ये नित्यस्यैव कालातिक्रमे नियतवदित्यनेनातिदेशः कृतो ननुपदेशः कृतो गृह्यकारेण तत्र। विज्ञातप्रत्यक्षश्रुतिमुख्यं किमिमार्ग्वेदिवंफ सामवेदिवंफ वेत्यनिश्चि तं स्मार्तं कर्म तस्य भ्रेषे श्रौतकल्पे व्याहृतिचतुष्टयं पंचवारुणहोमं प्रायश्चि त्तम् उद्दिश्टमत्र गृह्यसूत्रे गृह्योक्तकर्मणामपि स्मार्तत्वाद्भ्रेषे तस्यैवातिदेशो युक्तो न पुनः प्रत्यक्षवेदमूलकर्मभ्रेषोपदिष्टानाम्। इदानीं पतितसावित्रीकविषये संस्कारप्रतिप्रसवमाह।

अर्थ-कालातिक्रमे=प्रमादादि ये यदि संस्कारों वेफ नियत समय में गर्भाधानादि संस्कार न हो सवेफ तो, नियतवत्=नित्य श्रौत विधि वेफ समान ही अनादिष्ट प्रायश्चि त करे।।41।।

टि0-;1द्ध व्याहृतियों की आहुति एवं पंच वारुणी मन्त्रों से आहुति करे। जितने संस्कारों का अनादिष्ट प्रायश्चि त करना हो उतनी आवृत्तियाँ करें।

त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाणमपत्ये संस्कारो नाध्यापनं च।।42।।

टि0-;1द्ध यदि बटु का पिता, पितामह एवं प्रपितामह पतितसावित्रीक हो तो उसका संस्कार एवं वेदाध्यापतादि तिषि(है। ;गदाधर भाष्यद्ध

;2द्ध उपनयन संस्कार तो करें किन्तु वेदाध्यापन न करे ;हरिहरभाष्यद्ध

तेषां संस्कारेप्सवो व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरंव्यवहार्या भवंतीति वचनात्॥43॥8॥

व्रात्यस्तोमविधि-तेषां पतित सावित्रीकाणां मध्ये यः संस्कारयितुकामः स व्रात्यस्तोमेन यज्ञविशेषेण इ । व्रात्यस्तोमं यज्ञं कृत्वा व्यवहार्यो भवति उपनयनादिसंस्कारयोग्यो भवति तस्मात्काममिच्छया व्रात्यस्तोमेने । अधीयीत् वेदं पटेयुः व्यवहार्याः लोवेफ शिष्टानां अध्यापनादिषु कर्मसु योग्या भवन्ति इति वचनात्।

अर्थ-तेषाम्=उन पतित सावित्रीक असंस्कृत व्यक्तियों में, संस्कारेप्सुः= अपने को संस्कृत करने की इच्छा वाला व्यक्ति, व्रात्यस्तोमेन= व्रात्यस्तोम यज्ञविशेष से इष्ट्वा=हवन करवेफ, कामम्=यथेच्छ, अधीयीरन्=वेदादि का अध्ययन करें। व्यवहार्या भवन्तीति वचनात्=शिष्ट पुफषों वेफ व्यवहार वेफ योग्य हो जाते हैं, यह कात्यायन श्रौतसूत्र का वचन है।

टि0-;1द्ध चार प्रकार का व्रात्यस्तोम कात्यायन श्रौतसूत्र में 22वें अध्याय चतुर्थ कण्डिका में उपदिष्ट है।

अर्थ-व्रात्य 4 प्रकार वेफ होते हैं-;1द्ध निन्दित-पापाचारी जाति- बहिष्कृत नृशंस व्रात्य। ;2द्ध कनिष्ठ-संस्कारहीन जातिबहिष्कृत युवक। ;3द्ध ज्येष्ठ-पुंस्त्वहीन वृ(व्रात्य। ;4द्ध हीनाचार-नृत्योपजीवी शस्त्रोपजीवी व्रात्यशिक्षक व्रात्य। इन चार व्रात्यों वेफ 4 प्रकार वेफ व्रात्यस्तोम वर्णित हैं।

;2द्ध व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा व्रात्यभावाद् विरमेयुः। व्यवहार्या भवन्ति॥ का0 22 अ0 4 क0 39, 40 सू0॥ व्रात्यस्तोम ;यागद्ध में निम्नलिखित वस्तुओं का दान होता है ;ताण्ड्य ब्राह्मण-17.1/14-15द्ध तिरछी बँधी हुई पगड़ी, चाबुक, ज्याहीन धनुष, काला वस्त्र, अमार्गगामी रथ, ;अल्पवय घोड़ों से युक्तफ रथद्ध चाँदी का कण्टाभरण, मेष का चर्म ;मेषरोमनिर्मितवस्त्रद्ध रस्सी, काले जूते ये सभी वस्तुयें मागध ब्राह्मण को अथवा व्रात्यकर्मतत्पर ब्राह्मण को दें और 33 गोदान करें। निन्दिततम व्रात्य ;ज्येष्ठद्ध 66 गोदान करें, तब वह संस्कार्य हो सकता है।

श्रुतेः असंस्कार्यप्रसंगात् स्मृत्येतरोक्ता अपि असंस्कार्या लिख्यंते ''षंढाब्धिरस्तब्धजडागद्गदपंगुषु॥ वुफब्जवामनरोगार्त्त शुष्कांगि- विकलांगिषु॥ मत्तोनमत्तेषु मूवेफषु शयनस्थे तिरिन्द्रिये। ध्वस्पुंस्त्वे{पि चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचिताः'' मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यावित्येवेफ कर्मस्वनधिकारात्यातित्यं नास्ति तदपत्यं संस्कार्यं ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनोत्पन्नो ब्राह्मण एवेति स्मृतेः। अन्ये तु तावपि संस्कार्यावित्याहुः-द्धे मातावदाचार्यः करोति उपनयनं वा अग्निसमीपनयनं वा सावित्रीवाचनं वा आत्यदंगं यथाशक्ति कार्यं विवाहश्च कन्यास्वीकारो{न्यदंगमिति ''औरसक्षेत्रजाश्चैव संस्कार्या भागहारिणः। औरसः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूढजस्तथा॥ कानीश्च पुनर्भुजो दत्तः क्रीतश्च कृत्रिमः। दत्तात्मा च सहोढश्च त्यपविद्धः सुतस्ततः। पिंडदोषहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः। एते द्वादशपुत्राश्च संस्कार्याः स्युर्द्विजा यतः॥ वेफचिदा- हुर्द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ वुफंडगोलकौ। अमृते च मृते पत्यौ जारजौ वुंफडगोलकौ''। शंखलिखितौ ''नोन्मत्तमूकौसंस्वुफर्यात्'' विष्णुः। नापरिक्षितं याजयेत्, नाध्यापयेन्नोपनयेत् आपस्तंबः। शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम्। एतच्च रथकारविषयं तस्य तु मातामहीद्वारवेफ शूद्रत्वमदुष्टकर्मणां मद्यपानरहितानामिति कल्पतरूकारः इति सूत्रार्थः॥ अथ प्रयोगः। तत्र ब्राह्मणस्याष्टवार्षिकस्य गर्भाष्टवार्षिकस्य वा क्षत्रिययस्यैकादशवार्षिकस्य वैश्यस्यद्वादशवार्षिकस्य उपनयनं वुफर्यात्। यथामंगलं सर्वेषामुपनयनमथोदगयने शुक्लपक्षे पुण्येहनि मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिवंफ श्रा(वुफर्यात्। वुफमारस्य वपनं कारयित्वा ब्राह्मणत्रयस्य भोजनं दत्त्वा वुफमारं च भोजयित्वा बहिःशालायां पंचभूसंस्कारान् विधाय लौकिकाग्निं स्थापयित्वा पर्युप्तशिरसमलंकृतं वुफमारमाचार्यफुषा आचार्य समीपमानयंति। तत आचार्य आनीतं वुफमारं पश्चादग्नेः स्वस्य दक्षिणतो{वस्थाप्य ब्रह्मचर्यमागामिति ब्रूहीति वुफमारं प्रतिवदति ब्रह्मचर्य मागामिति वुफमारः प्रतिब्रूयात्। ब्रह्मचार्यसीति ब्रूहीत्याचार्येणोक्ते ब्रह्मचार्यसानीति माणवको ब्रूयात्। अथाचार्यो माणववंफ येनेंद्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतं तेन त्वा परिदधाम्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चस इत्यनेन मन्त्रेण यथोक्तं वासः परिधापयति। तत आचार्यो माणवकस्य कटिप्रदेशे मेखलां बध्नाति। इयं दुरुक्तं परिबाधमाना दुरुक्तं परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती म आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसा देवी सुभगा मेखलेयमिति मन्त्रं पठितवतः 'युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः। तं धीरासः कवय उन्नयंति स्वाध्यो मनसा देवयंतः' इति वा मन्त्रः। तूष्णीं मन्त्रवर्जं वा ततः 'यज्ञोपवीतं परमं

तृणादिकम्। सदा सम्भवतो धार्यमुपवीत द्विजादिभिः॥1॥ शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संगतांगुलिमूलवंफ। आवेष्ट षण्णवत्या तत्त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥2॥ अब्लिंगवैफस्त्रिभिः सम्यक् प्रक्षाल्योर्ध्वृतं च तत् अप्रदक्षिणमावृतं सावित्र्या त्रिगुणीकृतम्॥3॥ अधः प्रदक्षिणवृत्तं समं स्यान्नवसूत्रकम्। त्रिरावेष्ट दृढं ब(वा हरिब्रह्मेश्वरान्नमम्॥5॥ यज्ञोपवीतं परममितिमंत्रेण धारयेत्। सूत्रं सलोमवंफ चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम्॥8॥ सावित्र्या दशकृत्वोऽभि र्मन्त्रिताभिस्तदुक्षयेत्। विच्छिन्नं वाप्यधो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत्॥6॥ स्तनादूर्ध्व- मधोनाभेनं धार्यं तत्कथंचन। ब्रह्मचारिण एवंफ स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि वा॥7॥ तृतीयमुत्तरीयं वा वस्त्राभावे तदिष्यते। ब्रह्मसूत्रेऽपसव्येसे स्थिते यज्ञोपवीतिता॥8॥ प्राचीनावीतिता सव्ये वंफठस्थे तु निवितिता। वस्त्रं यज्ञोपवीतार्थे त्रिवृत्सूत्रं च कर्मसु। वुफशमुंजबल्वजं तु रज्ज्वा वा सर्वजातिषु॥9॥ ततस्तथैव तूष्णीं मावणकस्य तथोक्तमजिनमुत्तरीयं कारयति तथाचार्यो माणवकाय दंडं ददाति माणवकश्च यो मे दण्डं परापतद्वैहायसोऽधिभूम्यां तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणो ब्रह्मवर्चसायेत्यनेन मंत्रेण तं प्रतिगृ त्युच्छ्र्यति च, यथाचार्यः स्वकीयमंजलि जलेन पूरयित्वा तेन जलेनांजलिस्थेन माणवक- स्यांजलि पूरयति आपो हि ष्ठेत्यर्चेन। ततो गुरुर्माणववंफ प्रेषयति सूर्य मुदीक्षस्वेति माणवकश्च प्रेषिस्तच्चक्षुरिति मंत्रेण सूर्यमुदीक्षते। अथाचार्यो माणवकस्य दक्षिणांसस्योपरि स्वं दक्षिणं हस्तं नीत्वा हृदयमालभते ”मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तंते अस्तु, मम वाचमेकमनाजुषस्व बृहस्पतिष्टवा नियुनक्तु मह्यम्“ इति मंत्रेण। अथाचार्योऽस्य माणवकस्य दक्षिणं हस्तं सांगुष्टं गृहीत्वा को नामासीत्याह। एवं पृष्टः वुफमारः अमुकशर्माहं भो 3 इति प्रत्याह पुनराचार्यो माणववंफ पृच्छति कस्य ब्रह्मचार्यसीति, ’भवत‘ इति माणववेफनोच्यमाने इद्रस्य ब्रह्मचार्यस्यग्निराचार्यस्तवाहमाचार्य- स्तवाहमाचार्यस्तवामुकशर्मन्नित्याचार्यः पटेत्। अथैनं वुफमारं भूतेभ्यः परिददात्याचार्यः ’प्रजापतये त्वा परिददामि देवाय त्वा सावित्रे विश्वेभ्यस्त्वा- देवेभ्यः पदिदामि सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाम्यरिष्ट ।‘ इत्यनेन मंत्रेण। अथ वुफमारः अग्निं प्रदक्षिणाकृत्य आचार्यस्योत्तरत उपविशति आचार्यश्च ब्रह्मोपवेशनादिपर्युक्षणान्तं कृत्वा आघारावाघाः स्विष्टकृदन्ताश्चतुर्दशाज्याहुतीर्हुत्वा हुतशेषं प्राश्य पूर्णपात्रं वरं वा ब्रह्म वा दद्यात्। अथानंतरमेन ब्रह्मचारिणं संशास्ति कथं? ब्रह्मचार्यसीत्याचार्यो वदति असानीति ब्रह्मचारी अपोशानेत्याचर्यः अश्नानीति ब्रह्मचारी कर्म वुफर्विंत्याचार्यः करवाणीति ब्रह्मचारी मा दिवा सुषुप्ता इत्याचार्यः न स्वपानीति ब्रह्मचारी वाचं यच्छेत्याचार्यः यच्छानीति ब्रह्मचारी समिधमाधेहीत्याचार्यः आदधानीति ब्रह्मचारी अपोशानेत्याचार्यः अश्नानीति ब्रह्मचारी अथास्मै एवं शासिताय ब्रह्मचारिणो आचार्यः सावित्रीमन्वाह। कीदृशाय उत्तरतोग्नेः प्रत्य ्मुखाय उपविष्टाय पादोपसंग्रह- पूर्वकमुपसन्नाय आचार्यं समीक्षमाणाय स्वयमप्याचार्येण समीक्षिताय कथमन्वाह ॐ कारव्याहृतिपूर्ववंफ प्रथमं पदं एवैफकपदं तथा द्वितीयमर्(र्चशं तथैव तृतीयं सर्वां स्वयं च ब्रह्मचारिणा सह पठन् वेफषांचित्पक्षे दक्षिणतोग्नेस्तिष्ठते आसीनाय वा आचार्यं उक्तप्रकारेण सावित्रीमन्वाह संवत्सरे वा षण्मासे वा चतुर्विंशत्यहे वा द्वादशाहे वा षडहे वा त्र्यहे वा काले क्षत्रियवैश्ययोर्ब्रह्मचारिणोः आचार्यःसावित्रीं ब्रुयात्। ब्राह्मणाय तु सद्य एव गायत्रीं गायत्रीछंदस्कां सावित्रीं सवितृदेवत्यामृचं विश्वामित्रदृष्टां सायमग्निहोत्रहोमानंतरमाहवनी- याग्न्युपस्थापने विनियुक्ता तत्सवितुरिति सर्ववेदशाखाम्नातां ब्रह्मदृष्टगायत्रीछंद- स्का परमात्मदैवतवेदारम्भादिविनियुक्तां सप्रणवां प्रजापतिदृष्टाग्निवायुसूर्य- दैवतगायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छंदस्काग्न्याधानविनियुक्तभूर्भुवः स्वरिति महाव्याहृति- पूर्विकां ब्राह्मणाय ब्रह्मचारिणे अचार्योऽनुब्रूयात् क्षत्रियाय त्रिष्टुप् छंदस्कां बृहस्पतिदृष्टां सवितृदेवत्यां देव सवितरित्यादिकां वाजपेयआज्यहोमविनियुक्तां तथा वैश्याय प्रजापतिदृष्टां जगतीछंदस्कां सवितृदेवत्यां रुक्मपाशप्रतिमोचने उख्र संभरणे विनियुक्तां विश्वा रूपाणि प्रतिमुंच इत्येतामृचं ब्रूयात्। सर्वेषां ब्राह्मणक्षत्रियविशां गायत्रीमेव वा गायत्रछंदस्कां सावित्रीमुक्तलक्षणां ब्रूयात्। अत्रावसरे ब्रह्मचारी समिदाधानं करोति तत्र पूर्वं दक्षिणहस्तेन सुश्रवः सुश्रवसं मां वुफरु यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि मा सुश्रवः सुश्रवसं वुफरु यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपो भूयासमित्येतैः पंचभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रम् इंधनप्रक्षेपेणाग्निं संधुक्षयति हस्ताभ्यां संधुक्षणप्रसि(रस्ति ततोग्निप्रदक्षिणहस्तेन अ ः पर्युक्ष्य उत्थाय तिष्ठन् ’अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यसे एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिधे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्य ादो भूया स स्वाहेत्यनेन मंत्रेणोक्तलक्षणमिं समिधमग्नावाधायानेनेव द्वितीयां-तृतीयां वा धत्ते एषा ते अग्ने समिदित्यादिना वा मन्त्रेण अग्नये समिधमाहार्षमिति एषा ते अग्ने समिदियेताभ्यां मंत्राभ्यां वा एवैफकशस्ति ः आदधाति। तत उपविश्य पूर्ववदग्ने चेत्सुश्रव इत्यादिभिरग्निं संधुक्ष्य तूष्णीं पाणिं प्रतप्य तनूपा अग्नेसि तन्वं मे पाहि आयुर्दा अग्नेस्यामुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेसि वर्चो मे देहि अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृणु मेधां मे देवः सविता आदधातु मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर जाविति सप्तभिर्मंत्रैः प्रतिमंत्र मुखं विमार्ष्टि। अत्र शिष्टाचारप्राप्ताः वेफचन पदार्थाः लिख्यन्ते ततः अंगानि च म आप्यायन्तामित्यनेन शिरः प्रभृति पादान्तं सर्वांगान्यालभते वाक्य मे आप्यायतामिति चक्षुषी युगपत् श्रोत्रं च मे आपययतामिति दक्षिणं श्रोत्रम्। ततोऽनेव मंत्रेण वामं यशोबलं च मे आप्यायतामिति मंत्रं पटेत्। ततोऽनामिकया अग्नेर्भस्म गृहीत्वा ललाटे ग्रीवायां दक्षिणांसे हृदि चतुर्षु स्थानेषु त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषं यद्देवेषु त्र्यायुषं त ो अस्तु त्र्यायुषीमिति चतुभिर्मंत्रैस्त्र्यायुषाणि वुफरुते। अत्र स्मृत्यंतरोक्तमभिवादनं लिख्यते ”ततोऽभिवादयेद्वृ(ानसावहमिति ब्रुवन्“ इति याज्ञवल्क्यादिस्मृतिप्रणीतं तस्याभिवादनस्य प्रयोगो यथा वत्सगोत्रोभार्गवच्य- वनाप्नवानौर्वजामदग्नेति

ता भिक्षेत। कति-ति : षड् वा द्वादश वा द्वादशभ्यो{धिका वा मातर वा प्रथमा भिक्षेतेत्यन्वयः। एव भिक्षा भिक्षित्वा ब्रह्मचारी भैक्ष गुरवे निवेद्य अहः शेषं वाग्यतस्तिष्ठेत् वा आसीत वेत्यनियमः। ततः उपास्तमयं संध्यावंदनपूर्ववंफ स्वयं प्रशीर्णाः पूर्वोक्तलक्षणाः समिधः पूर्ववत् उक्तप्रकारेण तस्मिन्नेवाग्नौ आधाय वाचं विसृजते इति तद्दिनकृत्यम्। अथ तद्दिनमारभ्या- समावर्त्तनात्कर्त्तव्यमुच्यते भूमौ शयनम् अक्षारलवणाशनं दंडधारणम्। अग्निपरिचरणं गुरुशुश्रूषा भिक्षाचर्या सायंप्रातर्भोजनार्थ भोजनसंनिधाने वारद्वयं वा भैक्षचरणमनिद्यब्राह्मणगृहे गुर्वाज्ञया याचित्वा भोजनविधिना भुंजानः मधुमांसज्जनोपर्यासनस्त्रीगमनानृतादत्तादानानि वर्जयेत्। स्मृत्यंतरे तु ''मधुमां- सांजनोच्छिष्टं शूद्रस्त्रीप्राणिहिंसनम्। भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्'' आदिशब्देन पर्युषितताबूलदंतधावनाव सथिकादिवास्वापच्छत्रपादुकागंधमाल्यो- द्वर्त्तनानुलेपनजलक्रीडाद्यूतनृत्यगीतवाद्यालापादीन्यन्यान्यपि वर्जनीयानि स्मृतानि तथा ''कार्या भिक्षा सदा धार्यं कौपीनं कटि सूत्रकम्। कौपीनसहितं धार्यं खंडं वा वस्त्रपार्श्वयुक्।। यज्ञोपवीतमजिनं मौंजीं दंडं च धारयेत्। नष्टे भ्रष्टे नवं मंत्रा(त्वा भ्रष्टं जले क्षिपेत्'' अष्टाचत्वारिंशतं वर्षाणीत्याव्यवहार्या भवन्तीतिवचनादित्यंतमुक्तार्थम्। कालातिक्रमे नियतवदित्य स्यार्थ उक्त इतिकर्त्तव्यतात्र लिख्यते। पूर्णाहुतिवदाज्यं संस्कृत्य अनादिष्टप्रायश्चित्तहोमं वुफर्यात् पूर्णाहुतीर्यथा कात्यायनसूत्रे पूर्णाहुतिं जुहोति निरुप्याजं गार्हपत्ये- {धिश्रित्य ुक ुवं च संमृज्योद्वास्योत्पूयावेक्ष्य गृहीत्वारब्ध एवं सर्वत्र। अत्रैवं प्रयोगः-यदावसथिकस्य अनादिष्टं प्राप्नोति तदाग्निः संभृत एव यदि निरग्नेः तदा शु(यां भूमौ पञ्च भूसंस्कारान् कृत्वा लौकिकमग्निं स्थापयित्वा स्थाल्यामाज्यं तूष्णीं निरुप्याग्नावधिश्रित्य ुवं दर्भैः संमृज्याज्य- मुद्वास्य वुफशतरुणाभ्यामुत्पूयावेक्ष्य ुवेणादायोपरिसमिधं निधायोत्थाय ुवंसव्ये कृत्वा दक्षिणेनाग्नौ तिष्ठन् समिधमाधायोपविश्य दक्षिणं जान्वाच्य ॐ भूः स्वाहेति ुवस्थिताज्यानैमामाहुति हुत्वा भुवः स्वाहा स्वः स्वाहा भूर्भुवः स्वः स्वाहेति चत :। त्वन्नो अग्न इत्यादिभिः पंच ुवेणावदायाज्याहुतीर्जुहोति इदं नवाहुतिहोमात्मवंफ कर्म यत्र यत्र प्रायश्चित्तानादेशः कर्मणा नियत- कालातिक्रमे वा तत्र तत्रादिष्टसंज्ञवंफ प्रायश्चित्तं वेदितव्यम्। यदा तु कस्मिंश्चित्स्थालीपाकादिकर्मप्रयोगे वर्त्तमाने अनादिष्टप्रायश्चित्तमापद्यते तदा-तत्कर्मागंभूत एवाग्नौ तत्कृत्वा अनादिष्टं हुत्वा उपरितनं प्रयोगं वुफर्यात्। यदा तु बहूनि निमित्तानि भवन्ति तदा प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्त्तत इति न्यायात् यावन्ति निमित्तानि तावत्कृत्वः प्रायश्चित्तमावर्त्तत यथोक्तिमित्युप- नयनपद्धतिः।। अत्र वेदब्रह्मचर्यं चरेदित्यनेन वेदाध्ययनांगतया ब्रह्मचर्याचरणमुक्तं वेदाध्ययनारम्भस्य कालः इतिकर्त्तव्यता च नोत्तफा। वेफवलं समावर्त्तनकर्म सूत्रकारेणारब्धं वेदं समाप्य स्नायादिति तत्र वेदस्य आरम्भ विना समाप्तिः ;कर्त्तुमशक्येति उपनयनानंतरमेव वेदारंभस्य समय इत्यवगम्यते। इतिकर्त्तव्यता च पुनः एतदेव व्रतादेशनविसर्गेष्विति उपाकर्महोमातिदेशाद् व्रतादेशने वेदारंभे प्राप्नोति। अत फउपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम्। वेदाध्यापयेदेनं शौचाचारां शिक्षयेत्' इति गुरोः उपनयनानंतरं वेदाध्यापनविधानाच्च उपनयनोत्तरकालं पुण्येहनि मातृपूजापूर्ववंफ वेदारम्भनिमित्तमाभ्युदयिवंफ श्रा(माचार्यो विधाय पंचभूसंस्कारपूर्ववंफ लौकिकाग्निं स्थापयित्वा ब्रह्मचारिणमाहूय अग्नेः प ात् स्वस्योत्तरत उपवेश्य ब्रह्मोपवेशनाद्याज्यभाग ं कृत्वा यदि ग्वेदमारभते तदा पृथिव्यै स्वाहा अग्नये स्वाहेति द्वे आज्याहुती हुत्वा ब्रह्मणे छंदोभ्य इत्याद्या नवाहुतीर्हुत्वा शेषं समापयेत्। यदि यजुर्वेदं तदाज्यभागानन्तरम् अंतरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहेति विशेषः। यदा सामवेदं तदाज्याभागानन्तरं दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहेति विशेषः। यदा{थर्ववेदं तदाज्यभागान्ते दिग्भ्यः स्वाहा चंद्रमसे स्वहेति विशेषः। यद्येकदा सर्ववेदा- रंभस्तदाज्यभागानंतरक्रमेण प्रतिवेदं वेदाहुतिद्वयं हुत्वा ब्रहणे छंदोभ्य इत्याहुतिद्वयं च हुत्वा प्रजापतये इत्याद्याः सप्तमंत्रेण जुहुयात्। अनंतरं महाव्याहृत्यादि- स्विष्टकृदंता दशाहुतीर्हुत्वा प्राशनं विधाय पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं ब्रहणे दत्त्वा ब्रह्मचारिणे यथाविधि वेदमध्यापयितुमारभते इति व्रतादेशप्रयोगः।।

।। प मकण्डिका समाप्त ।।

षष्ठकण्डिका

समावर्त्तन संस्कार

वेदं समाप्य स्नायात्।।1।।

मंत्रब्राह्मणात्मवंफ समाप्य सम्यक् पाठतो{र्थत अंतं नीत्वा स्नाया- द्वक्ष्यमाणेन विधिना स्नानं वुफर्यात् अथवा ब्रह्मचर्यं व्रतमष्टाचत्वरिंशकमष्टा- चत्वारिंशद्वर्षं निवर्त्य समाप्य अवसानं प्राप्य गुरुणानुमतः स्नायादिति संबंधः।

अर्थ-वेदम्=उपर्युत्तफ लक्षण वेद को, समाप्य=;अध्ययनद्ध समाप्त करवेफ।।1।।

एवेफ सूत्रकाराः द्वादशवेफपि द्वादशवर्षं समाप्येति व्रते चरिते स्नायादिति मन्यत्ते तत्रापि।

अर्थ-द्वादशवेफ इत्येवेफ=वुफछ आचार्यों का मत है कि 12 वर्ष वेफ ही व्रत या विद्या का अध्ययन समाप्त करवेफ स्नान करे।।3।

गुरुणानुज्ञातः।।4।।

अत्रासूत्रितमपि उभयं वेदं व्रतं च समाप्य वा स्नायादित्यनुषज्यते। यत पूर्वस्नातकस्य त्रैविध्यमुत्तफम्।

अर्थ-गुरुणानुज्ञातः=गुरु की आज्ञा लेकर, स्नायात्=स्नान करें ;स्नातक बनेद्ध।।4।।

विधिर्विधेयस्तर्वफ वेदः।।5।।

वेदं समाप्येत्युत्तंफ तत्र कियान् वेद इत्यपेक्षायामाह विधिं विधीयते इति विधिः आग्नेयमादधीतं इति अग्निहोत्रं जुहुयात् ज्योति ोमेन स्वर्गकामो यजेतेत्यादि विधायवंफ ब्रह्मणवाक्यं विधेयः विधीयते ब्राह्मणवाक्येन कर्मागत्वेनेति विधेयो विधिर्विधेयोविधेस्तर्क वेद यदत्रैतस्मिन्दर्शने सति समस्तवैदिकसंहारात्मिका मीमांसापि वेदशब्दवाच्या भवतीत्यादिना तर्वफपदं मीमांसापरमंगीकृत्य वार्तिककारिताया मीमांसाया अपि वेदत्वमुत्तंफ तद्विध्यादि- त्रस्य वेदत्वप्रतिपादनार्थेयं स्मृतिरिति षडंगवेदत्वस्मृतितुल्यन्यायतया पूर्वपक्ष- संयताभ्युपगमेनैव तदृष्टातेन कल्पसूत्राणां छन्दस्त्वाभावमुपपादयितुं नत्वेवमेव समृतिव्याख्यानं संमतम् अध्येतृणां मीमांसायां वेदशब्दाप्रसि(ः। नचाध्येतृप्रसि(। निरपेक्षैवेयं स्मृतिर्विध्यादित्रयस्य वदेत्वं प्रतिपादयतीति वाच्यं, तथा सति त ैरपेक्ष्येण स्मृतिमात्रपर्यालोचने तत्स्वारस्येन विध्युद्देसमात्रस्यैव वेदत्वा- पत्तावर्थवादादीनामवेदत्वापत्तेः। विधेयत्वमग्निहोत्रन्यायविस्तरयोरपि वेदात्वा- पत्तेश्च। अथाध्येतृप्रसि(नुरोधेन विधिविधेयशब्दयोर्ब्राह्मणमंत्रपरत्वा व्याप्त्य- तिव्याप्ती तर्हि स्मृतिरध्येतृप्रसि(पेक्षत्वापत्तौ कथं तर्कत्तदप्रसि(वेदत्वप्रति- पादनपरता। न च तदंशे स्वातंत्र्यम्, अपेक्षानपेक्षाविध्यनुवादकृतवैरूप्यापत्तेः न्यायविस्तारातिप्रसंगानिवृत्तेश्च व्यवहारप्रविष्टपदार्थनिर्णये तिद्विरोधेन शाह्रस्या- सामर्थ्याच्च तस्मदध्येतृप्रसि(ष्यैव मंत्रब्राह्मणत्मकस्य वेदस्य कं द्विधिनांग- विधायकः कश्चिनमंत्रात्मको विधयेः कश्चित्स एष नेति नेति त्रैयंबकाः पुरोडाशा इत्यादिवत् त्रैविध्यमनयै वोच्यत इति तात्त्विकोर्(र्थः। अतः ष ंगा एव वेदस्मृतिरपि परमतोपन्यासात् पूर्वपक्षस्मृतिरेवेत्यलम्। मन्त्र इषे त्वादिः तर्को(र्थवाद इति कर्कोपाध्यायः। यथा अत्तफाः शर्करा उपादधाति इति विधिः श्रूयते तत्रांजनसाधनं घ्रतं तैलं वसा च। तन्मध्ये वेफनात्तफा इति संशये तेजो वै धृतमिति अर्थवादात् धृतेनात्तफा इति निर्णीयते अतस्तर्कोर्थवादः तर्को मीमांसेति कल्पतरुकारः। चकरा ामधेयभागसंग्रहः यतो वेदो विध्यर्थवादमंत्र- नामधेयैश्तुर्धा मीमांसवैफर्विचार्यते तथा अग्निहोत्राधारो यागभेदो उ द्बलभिदिति नामधेयानि।

अर्थ-विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः=फ्सोमेन यजेतऱ इत्यादि विधि, इषे त्वादिमन्त्र विधेय तर्क ;मीमांसाद्ध शाह्र फ्वेदऱ पदवाच्य है।।5।।

षड मेवेफ।।6।।

एवेफ सूत्राकाराः षडंगं वेदं समाप्य स्नायादित्याहुः। षट्शिक्षाकल्प- व्याकणनिरुत्तफज्योतिश्छंदांसि अंगानि यस्य वेदस्य षडंगः तं षडगं।

अर्थ-षड मेवेफ=वुफछ आचार्यों वेफ मत से षड वेद ;का अध्ययन करवेफ स्नान करेद्ध।।6।।

न कल्पमात्रे।।7।।

कल्पमात्रे ग्रन्थमात्रे मंत्रे वा ब्राह्मणे वा अधीते न स्नानमिच्छन्ति कल्पमात्राध्ययनस्य अनुष्टादायोग्यत्वात् यतः अथातोधिकार अथातो धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्मजिज्ञासेत्यादिभिरधिकारसूत्रः अधीतसकलवेदस्याग्निहोत्रादिकर्म- स्वधिकार इत्याचार्ये वर्ण्यते।

अर्थ-न कल्पमात्रे=ग्रन्थमात्र मन्त्र ब्राह्मण भाग मात्र का ही अध्ययन करवेफ ;स्नान न करेद्ध।।7।।

कामं तु याज्ञिकस्य।।8।।

तु शब्दः पक्षवावृत्तौ काममिक्षतः याज्ञिकस्य आध्वर्यवादियज्ञविद्या- कर्मवुफशलस्य स्नानमिच्छति। अयमर्थः मंत्रब्राह्मणात्मवंफ वेदमधीत्यावबुध्य स्नायात्यिकः पक्षः। सांगं वेदमधीत्यावबुध्य च स्नायादित्यर्थः। ग्रंथमात्रमप्यधीत्य यज्ञ विद्यां वाभ्यस्य स्नानादिति तृतीयः। यज्ञविद्याविरहेण ग्रंथमात्रे

उपसंगृह्य गुरुं, समिधोऽभ्याध्याय, परिश्रितस्योत्तरतः वुफशेषु प्रागग्रेषु पुरस्तात्स्थित्वाऽ ानामुदवंफभानाम्।।9।।

ये अप्स्वंतरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्य मयूखो मनोहास्खलो- विरूजस्तनूदूषिरिन्द्रियहा अति तान्सृजामि। यो रोचनस्तमिह गृ ामीत्ये- कस्मादपो गृहीत्वा।।10।।

फ्तेनाभिषिंचते।

स्नायादित्युक्तं तत्र कथं स्नायादित्योपेक्षिते आह उपसंगृह्य उपसंग्रहण- विधिना प्रणम्य वंफ गुरूमाचार्यं समिधः पूर्वोक्तफलक्षणस्ति : परिसमूहनादिन्यायुष- करणांतेन विधिना आचार्यो वर्त्तितसमावर्त्तनांगहोमेऽग्नौ आधाय प्रक्षिप्य अत्र समिधोऽभ्याधायेत्युक्तं तत्समिदाधानं किं वेदाहुत्यादिसमावर्त्तनहोमात्पूर्वमुत पश्चात् वेदहुतिहोमः वुफतः प्राप्त इति चेत् एतदेव व्रतादेशनविसर्गेविष्वत्याति- देशात् पूर्वं भवतु उपसंगृह्य गुरुं समिधोभ्याधायेति पाठात् समिदाधानानंतरं वेदाहुतीनामवसर इति गम्यते नैतदेवं श्रुत्याहि वेदाहुतीनामवसरः समिदाधानात्पूर्वं समिदाधानं च स्नानात्पूर्वमिति क्रमस्य ज्ञापितत्वात् कथं स यामुपयन् समिधमादधाति प्रायणीया यांस्तान्स्यंत्सीदयतीयेतिश्रुतेः। तस्मात्समावर्त्तनहोमापत्तेः उपसंग्रहणादिपरिश्रितस्य परिवेष्टितस्य सर्वतः प्रच्छादितस्य समावर्तनांगहोम- साधनाग्निस्थापनप्रवेशस्य उत्तरतः उत्तरस्मिन् भागे वुफशेषु प्राक्तूफलेषु प्रागग्रेषु आस्तीर्णेषु क्व? पुरस्तात्प्राच्यां दिशि वेफषामष्टानामुदवुफंभाना दक्षिणेत्तरायता- नामष्टसंख्याकानाममलजलपूर्णानामाम्रादिशुभप वमुखानां स्थित्वा स्थितिं कृत्वा ऊर्ध्वीभूयेत्यर्थः ये अप्स्वंतरग्नय इत्यादिना मंत्रेण इह गृ ामीत्यनेन एकस्मात्- प्रथमातिक्रमे कारणाभावादितित्यायेन प्रथमाम् प्राच्युदंचिविवाहकर्माणीत्यनेन न्यायेन दक्षिणस्य प्रथमेत्थमपः जलं दक्षिणहस्तेन् गृहीत्वा तेन जलेन अभिषिंचते अभ्युक्षति आत्मानं शिरस्तः स्नानकर्त्तात्मानं तत्र मंत्रः।

अर्थ-गुरूम्=गुरु वेफ। उपसंगृह्य=चरणो का उपसंग्रहण करवेफ, समिधोऽभ्याधाय=3 समिधाओं को अग्नि में हवन करवेफ ;द्वितीयकाण्ड चतुर्थ कण्डिकाद्ध, परिश्रितस्य=हवन वेदी वेफ। उत्तरतः=उत्तर की ओर, प्रागग्रेषु वुफशेषु=प्रागग्रवुफशों वेफ पुरस्तात् स्थित्वा=सामने बैठकर, अ ानामुद- वुफम्भानाम्=रखे हुये आठ जल पात्रों में से।।9।।

अर्थ-येऽप्स्वन्तः इत्यादि मन्त्रोच्चारण करवेफ, एकस्मात=एक पात्र से, अपो गृहीत्वा ;आठवार जल भूमि में गिराकर नवी वार जलद्ध लेकर।।10।।

तेन ममाभिषिंचामि श्रिये यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति।।11।।

फ्येन श्रियमकृणुतां येनावमृशतां सुराम्। येनाक्ष्यावभिषि तां यद्धां तदश्विना यश इति।।12।।

;आपो हि ष्ठेति च प्रत्यृचमद्ध।।13।।

त्रिभिस्तूष्णीतमिरैः।।14।।

एवमेकोदवुफंभजलासाध्यं स्नानमभिधाय इतरप्तवुफंभजले ये अप्स्वंतरिति मंत्रेण जलमादाय वक्ष्यमाणैर्मत्रयथाक्रममभिषिंचते तद्यथा येन श्रियमित द्वितीयम् आपो हि पटेति तृतीयं यो वः शिव इति चतुर्थं तस्मा अरमिति पंचमं तूष्णीमितराणि त्रीणि स्नानानि।

मन्त्रार्थ-इस जल में गोह्य आदि जो आठ दूषित अग्नियाँ हैं, उनका त्याग करता हूँ तथा जो रोचन अग्नि है, उसे ग्रहण करता हूँ।

अर्थ-तेनाभिषि ते-उस जल से अपने शिर में मन्त्रोच्चारणपूर्वक अभिषेक करे।। यही प्रत्येक जल पात्र में करे और क्रमशः ये मन्त्र पढ़े ;1. श्रिये यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय।। 2. येन श्रियमकृणुतां येनावमृशतां सुराम्।। येनाक्ष्यावभ्यषि तां यद्धां तदश्विना यशःद्ध।। 3. आपो हि ष्टा0। 4. यो वः शिवतमो0।। 5. तसमा अर 0।।

इतरैः=शेषैः। त्रिभिः=तीन वुफंभों से। तूष्णीम्=मौन होकर अभिषेक करे।।11-14।।

उदुत्तममिति मेखलामुन्मुच्य निधाय वासोन्यत्परिधाया- दित्यमुपतिष्ठते।।15।।

उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो मरू स्स्थात्प्रातर्यावभिरस्थाद्दशसनिरसि दशसनिं मा वुफर्वाविदं मा गमय। उद्यन्भ्राजभृष्णुरिन्द्रो

अर्थ-उदुत्तमम्0 इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक, मेखलामुन्मुच्य=मेखला का त्याग करके, दण्डं निधाय=दण्ड रखकर ;त्यागकरद्ध वासोऽन्यत्परिधाय ;मृगचर्म को त्याग करद्ध अन्य वस्त्र धारण करके आदित्यमुपतिष्ठते=सूर्य के प्रति उपस्थान करे ;वक्ष्यमाण मन्त्र से स्तुति प्रार्थना करेद्ध।।15।।

मन्त्रार्थं-जिस प्रकार इन्द्र मरूद्गणों के साथ रहता है, उसी प्रकार हे सूर्य! शीघ्रगमनशील सप्तर्षिमण्डल के द्वारा आप सेवित हो। अपने तेज सेअन्य पदार्थों को उ   ासित करते हो। प्रातः मध्या   एवं सायंकाल क्रमशः दश, शत, एवं सह   रश्मियों वाले होकर हमें भी दश, शत एवं सह   गुणदक्षिणादि देने की सामर्थ्य देकर प्रतिष्ठा दो।।16।।

दधितिलान्वा प्राश्य जटालोमनखानि संहृत्यौदुम्बरेण दन्तान्धावेत्। अ ाद्याय व्यूहध्वं सोमो राजाऽयमागमत् स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन चेति।।17।।

ततो दधितिलानामन्यतरं प्राश्य अशित्वा जटा   लोमानि च नखानि तानि संहृस्य संहार्य वापयित्वेत्यर्थः। अत्र संहृत्येति णिचो लोपश्छांदसः, स्वयं संपर्त्तुमशक्यात्वात् औदुबरेण द्वादशगुलसंमितेन कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलेन उदुंबरकाष्ठेन अ   ाद्याय व्यूहध्वमिति मन्त्रेण दन्तान् धावयेत् प्रक्षालयेद् ब्राह्मणः द्वादशांगुलेन राजन्यः अष्टांगुलेन वैश्य इति विशेषः। अत्र जटालोमन- खवपननिमित्तादुत्तरत्र पुनः स्नात्वेति पुनः शब्दसामर्थ्याच्च स्नानमाप्यते। अतो वपनानंतर स्नानाचमने विधाय दन्तान्प्रक्षालयेदिति सि(म्।

अर्थ-दधितिलान् वा प्राश्य-दही अथवा तिल खाकर ;शीत में तिल, ग्रीष्म में दधिद्ध जटालोमनखानि=केश नाखून आदि को ;क्षौर कर्म द्वाराद्ध संहृत्य=दूर करके, अ ाद्याय0 इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक। औदुम्बरेण= गूलर की दातून से। दन्तान् धावेत्=दाँत साफ करे।

मन्त्रार्थ-हे दन्त् तुम अ   भक्षण के लिये एक पंक्तिनिविष्ट हो जाओ। यह सोम राजा मुझे प्राप्त हुआ है, वह मेरे मुख को सत्कीर्ति एवं षड्विध एश्वर्य से प्रक्षालित करेगा।।17।।

उत्साद्य पुनः स्नात्वाऽनुलेपनं नासिकयोर्मुखयस्य चोपगृ ीते प्राणपानौ मे तर्पय चक्षुर्मे तर्पय श्रोतं मे तर्पयेति।।18।।

उत्साद्य पुनः स्नात्वानुलेपनं नासिकयोर्मुखस्य चोपगृ ीते प्राणापानौ म इति उत्साद्य सुगंधिद्रव्येण शरीरमुद्वर्त्य पुनः भूयः स्नात्वा शिरः प्रभृतीन्यंगानि प्रक्षाल्य अनुलेपनचंदनादि मुखनासिकयोः उपगृ ीते मुखं च नासिके च अनुलिंपति प्राणपानौ मे तर्पयेत्यादिना श्रोत्रं मे तर्पयेत्यनेन मंत्रेण।

अर्थ-उत्साद्य=उद्धर्तन लगाकर, पुनः स्नात्वा=पुनः स्नान करके, प्राणापानौ0 इत्यादि मन्त्र से सुगन्धित चन्दनादि मुख एवं नासिका उपगृ ीते=लगावे।

मन्त्रार्थ-मेरे, प्राण अपान, नेत्र, और श्रोत्र को सन्तृप्त करो।।18।।

पितरः शुन्धध्वमिति पाण्योरवनेजनं दक्षिणा निषिच्यानुलिप्य जपेत्। सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमिति।।19।।

पितरः शुन्धध्वमिति पाण्योरवनेजनं दक्षिणा निषिंच्यानुलिप्य जपेत् सुचक्षा अहमिति, ततः पाण्योरवनेजनं हस्तयोः प्रक्षालनमुदकं पितरः शुधध्वमित्यनेन मंत्रेण प्राचीनावीती दक्षिणामुखो भूत्वा दक्षिणस्यां दिशि निषिच्य प्रक्षिप्य यज्ञोपवीती भूत्वा पितृकर्मकरणनिमित्तकम् उदकस्पर्शं विधाय चंदनादिना सुगन्धिद्रव्येण गात्राण्यनुलिप्य सुचक्षा अहमित्यादि भूयासमित्यंतं मन्त्रं जपेत्।

अर्थ-पाण्योरवनेजनम-दक्षिणा, निषिच्य=दक्षिण की ओर हाथ धोवे और ;पितरः शुन्धध्वमुद्ध यह मन्त्र पढ़े। ;पुनः चन्दनादि मस्तक मेंद्ध अनुलिप्य =लेपन करके सुचक्षा0 इत्यादि मन्त्र ;काद्ध जपेत्=पाठ करे।

मन्त्रार्थ-मैं नेत्रों से सुस्पष्ट देखने वाला, तेजस्वी मुखवाला, एवं कानों से सुस्पष्ट सुनने वाला हो जाऊँ।।19।।

अहतं वासो धौतं वा मैत्रेणाच्छादयीत परिधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टि रस्मि। शतं च जीवामि शरदः पुरूची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्य इति।।20।।

इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक धारण करे।

मन्त्रार्थ-यश तथा दीर्घायु होने वेफ लिये मैं वह्न धारण करता हूँ। तथा धन देनेवाले इस वह्न वेफ धारण से मैं सौ वर्ष तक जीवन धारण करूँ॥20॥

अथोत्तरीयम्। यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेन्द्राबृहस्पति। यशो भग माविदद्यशो मा प्रतिपद्यतामिति॥21॥

अथोत्तरीयं यशसामेति अथोत्तरीयपरिधानानंतरं तादृशमेवोत्तरीयं वासो यशसामित्यादिना यशो मा प्रतिपद्यतामित्यंतेन मंत्रेण आच्छादयीतेति गतेनाख्यातेन संबंधः।

एक चेत्पूर्वस्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत॥22॥

एवं चेत्पूर्वस्योत्तरवर्गेण प्रच्छादयीत वेद्यादिरेक एव वासो भवति तदा पूर्वस्यैव परिधानीयस्य वास उत्तरवर्गेन उत्तरभागेन प्रच्छा:दयीत यशसामेति मंत्रेणोत्तरीयं वृफर्यादित्यर्थः सुमनसा प्रतिगृ ाति या आहरदिति।

अर्थ-अथ=इसवेफ अनन्तर, उत्तरीयम्=यशसा0 इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक उत्तरीय वह्न धारण करे। एक चेत्=यदि एक ही वह्न हो तो, पूर्वस्योत्तरवर्गेण= उसवेफ उत्तरार्ध से, प्रच्छादयीत=अपने को आच्छादित करे॥21-22॥

मन्त्रार्थ-यशस्वी द्यावापृथिवी तथा इन्द्र और बृहस्पति मुझे प्राप्त करें, मुझे यशवाला बनावें।

सुमनसः प्रतिगृ ाति। या आहरज्जमदग्निः श्र(ायै कामायेन्द्रियाय। ता अहं प्रतिगृ ामि यशसा च भगेन चेति॥23॥

सुमनसा पुष्पाणि अन्येन दत्तान्यादत्ते या आहरदित्याादिना यद्यशसा च भगेन चेत्यंतेन मंत्रेण अथा(विबध्नीते यद्यशसां इति॥सुमनसः प्रतिगृ ाति=या आहरद्0 इत्यादि मन्त्रोचारण पूर्वक पुष्पमाला ग्रहण करे।

मन्त्रार्थ-जिस पुष्प को जमदग्नि ने श्र(ा मेधा, काम और इन्द्रियों की शक्ति वेफ लिये प्राप्त किया, उसी पुष्प को मैं यश ओर ऐश्वर्य वेफ लिये ग्रहण करूँ॥23॥

अथा(विबध्नीते यद्यशो(प्सरसामिन्द्र कार विपुलं पृथु तेन स ंग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशोमयीति॥24॥

अथ ताः प्रतिगृह्य अवबध्नीते शिरसि बध्नाति यद्यशोप्सरसा इत्यादिना यशोमयीत्यतेन मंत्रेण।

अर्थ-अथ-पुष्पग्रहणानन्तर, अवबध्नीते=उन पुष्पों को शिर में धारण करे, यद्यशो इत्यादि मन्त्र पढ़ें।

मन्त्रार्थ-इन्द्र ने अप्सराओं वेफ जिस यश को विपुल एवं विस्तृत कर दिया था, उसी यश से संग्रथित माला मैं धारण करता हूँ, मैं यशस्वी बनूँ॥24॥

उष्णीयेण शिरो वेष्टयते। युवा सुवासा इति॥25॥

;उष्णीषेण शिरो मू(र्नि वेष्टते युवा सुवासा इत्यादिकया देवयत इत्येतयर्चा।

अर्थ-उष्णीषेण=पगड़ी से, शिरो वेष्टयते=शिर को बाँधे-युवा सुवासा0 इत्यादि मन्त्र पढ़े॥25॥

टि0-युवा सुवासाः परिवीत आगात्, स उ श्रेयान् प्रतिजायमानः। तान्धीरासः कवयोनन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः॥

अलङ्करणमसि भूयो(लङ्करणं भूयादिति कर्णवेष्टकौ॥26॥
वृत्रस्येत्य ंत्तेफ(क्षिणी॥27॥

अलंकरणमसीतिमंत्रेण दक्षिणोत्तरयोः कर्णयोर्वेष्टकौ भूषणं प्रतिमंत्रं प्रतिमुंचते परिधत्ते ;वृत्रस्येत्यंत्तफेक्षिणीद्ध वृत्रस्येत्यादिना चक्षुर्मे देहीत्यंतेन यथाक्रम दक्षिणवामें मंत्रावृत्त्या अंक्ते सौवीरांजनेन संस्करोति।

रोचिष्णुरसीत्यात्मानमादर्शे प्रेक्षते॥28॥

रोचिष्णुरसी मंत्रेण आत्मानं मुखप्रभृति शरीरमादर्शेदर्पणे प्रेक्षते पश्यति।

अर्थ-अलकरण0 इत्यादि मन्त्र पढ़कर, कर्णवेष्टकौ=कानों में वुफण्डल धारण करे। वृत्रस्य0 इत्यादि मन्त्र से, अक्षिणी=दोनों नेत्रों को, उ त्तफे=अ न से संस्कृत करे।। रोचिष्णुरसि0 यह मन्त्र उच्चारण करवेफ आत्मानम्=अपने ;मुखद्ध को आदर्शे=शिशे में, प्रेक्षते=देखे।।26।।28।।

टि0-वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।।

छत्रं प्रतिगृ ाति। बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामंतर्धेहि तेजसो यशसो मा मंतर्धेहीति।।29।।

छत्रमातपत्रं बृहस्पते छदिरसीत्यादिना यशसो मामंतर्धेहीत्यंतेन मंत्रेण प्रतिगृ ाति प्रतिग्रहशब्दसामर्थ्यात् अन्यत आदत्ते।

अर्थ-बृहस्पते इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक, छत्रम् प्रतिगृ ाति=छाता ग्रहण करे।

मन्त्रार्थ-हे छत्र! तुम बृहस्पति वेफ धर्मादिनिर्वतक हो। मेरे पापों को दूर करो ;ढक दोद्ध तथा मेरे यश और तेज को प्रकाशित करो।।29।।

प्रतिष्ठेस्थो विश्वतो मा पातमित्युपानहौ प्रतिमु ते।।30।।

उपानहौ पादत्राणे प्रतिमुंचते परिधत्ते प्रतिष्ठते स्थो विश्वतो मा पातमित्यन्तेन मंत्रेण मंत्रस्य द्विवचनांतत्वात्परिधातुं शक्यत्वाच्च प्रतिष्ठे इति द्विवचन स्थ इति च युगपत्पादयोः परिधत्ते।

विश्वाभ्यो मा नष्ट्राभ्यस्परिपाहि सर्वत इति वैणवं दण्डमा- दत्ते।।31।।

विश्वाभ्यो मेत्यादिना मंत्रेण वंशमयदंडं यष्टिमादत्ते गृ ाति तच्चोत्तफन्यायेन पूर्वदंडं त्यक्त्वैव इदमभिषेकप्रभृति दंडगृ ातं कर्मजातं स्नानकर्त्ता करोति नाचार्यः।

अर्थ-प्रतिष्ठे स्थो0 इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक, उपानाहौ=जूते, प्रतिमु ते=धारण करे, ;तथाद्ध विश्वभ्यो0 इत्यादि मन्त्रोच्चारण पूर्वक वैणव=बाँस की, दण्डम्=छड़ी, आदत्ते=ग्रहण करे।।

मन्त्रार्थ-;1द्ध तुम दोनों स्थिर होते हुये सब ओर से मेरी रक्षा करो। ;2द्ध घोर स्वरूपों से मेरी रक्षा करो।।30-31।।

दन्तप्रक्षालनादीनी नित्यमपि वासश्छत्रोपानह ाप्पूर्वाणि चेन्मन्त्रः ।।32।।

दंतप्रक्षालनमादौ येषां पुष्पादीनां तानि दन्तप्रक्षालनादीनि नित्यमपि सर्वदा मंत्रवंति स्नातकस्य भवन्ति वाससीं च छत्रं च उपानहौ च वासश्छत्रोपानहं चकारादंडोपि। एतानि चेद्यदि अपूर्वाणि नूतनानि ध्रियंते तदा मंत्रो भवति तद्ग्रहणे।।

अर्थ-दन्तप्रक्षालनादीनि नित्यमपि=दन्तधावनादि में नित्य मन्त्र पढ़े तथा जब नया वस्त्र, छत्र, जूते आदि धारण करे तब मन्त्र पढ़े।।32।।

।। इति द्वितीयकाण्डे षष्ठकण्डिका समाप्ता।।

सप्तमकाण्डिका

स्नातक के व्रत एवं नियम

अर्थ-स्नातस्य=स्नातक वेफ, यमान्=नियम, वक्ष्यामः=कहते हैं। कामात्=यदि इच्छा हो तो, इतरः स्नातक से इतर लोग भी ;इन नियमों का पालन कर सकते हैंद्ध।।1।।2।।

नृत्यगीतवादित्राणि न वुफर्या न् गच्छेत्।।3।।

नृत्यं लास्यादिभेदभि ं गीतं षड्जादिस्वरैः ध्रुवादिरूपकविशेषैर्निब(वादित्रं तन्त्र्यातिभेदेन चतुर्विधं नृत्यं च गीतं च वादित्रं च नृत्यगीतवादित्राणि तानि स्वयं न च गच्छेत् नृत्यादि अन्यैरपि क्रियमाणनि न गच्छेत् द्रष्टुं श्रोतुं चकारः करोतेर्गच्छतिक्रियासमुच्चयार्थः।

अर्थ-नृत्य गीत वादित्राणि=नाचना, गाना, बजाना। न वुफर्यात्=न करे। नच गच्छेत्=तथा, ;जहाँ नाँच गाना होता होद्ध वहाँ न जाये।।3।।

कामं तु गीतं गायति वै गीते वा रमत इति श्रुतेह ंपरम्।।4।।

अत्र गीते प्रतिप्रसवमाह। तु पुनः कारमिच्छया गीतं गानं स्वयं वुफर्यात् पर क्रियमाणं च गच्छेच्छ्रोतुं वुफतः हि यस्मात् गायित स्वयं गानं करोति गीते वा अन्यैः क्रियमाणे गाने रमते रतिं प्राप्नोति इति श्रुतेर्वेदवचनं च यः सर्वः कृत्स्नो मन्यते आत्मानं सुखिनं संपूर्णं मन्यते स्वयं गायति गीतं च श्रृणोति ;अपरमुद्ध अपरमपि गायेत गीतं च श्रृणुयात् इत्येतदर्थज्ञापवंफ वेदे लिंगमस्ति यथाश्वमेधे श्रूयते दिवा ब्राह्मणो गायति नक्तफं राजन्य इति। अनेन ब्राह्मणराजन्ययोः स्वयंगाने अधिकारोस्तीति ज्ञायते तौ च अश्वमेधयाजिनं यजमानं राजन्यं धावयितुं गायतः तेन गायनश्रवणेऽप्यधिकारो गम्यते।

अर्थ-कामं तु=यदि गाने की इच्छा हो तो, गीतं गायति वा0 इत्यादि वेद वाक्यों वेफ अनुसार गा भी सकता है।।4।।

क्षेमे नक्तं ग्रामांतरं न गच्छे च धावेत्।।5।।

क्षेमे सति आपदभावे सति नक्तंफ रात्रौ ग्रामांतरमन्यग्रामं न गच्छेत् अक्षेमे तु गच्छेत्। क्षेमे सतीत्यनुषज्यतेन च धावेत् शीघ्रं न गच्छेत्।

अर्थ-क्षेमे-यदि कल्याण हो तो, नक्तम्=रात्रि में, ग्रामान्तरं=दूसरे गाँव। न गच्छेत्=न जाये, न च धावेत्=तथा दौड़कर मार्ग में न चले।।5।।

उदपानावेक्षणवृक्षारोहणपफलप्रचयनसंधिसर्पणविवृतस्नानविषमलंघनशुष्कवदनसंध्यादित्यावेक्षणभैक्षणानि न वुफर्यात्। न ह वै स्नात्वा भिक्षेतापह वै स्नात्वा भिक्षां जयतीति श्रुतेः।।6।।

उदपानस्य वुफस्यावेक्षणमुपरि स्थित्वा अधोमुखीभूयावलोकन वृक्षे आरोहणमुपरिगमनं पफलानामाम्रादीनां प्रपतनं त्रोटनं संधौ संध्यासमये सपर्णमध्वगमनं संधिना अपमार्गेण वा सर्पणं विवृतेन नग्नेन स्नानं विषमस्य पर्वगर्त्तादेः लंघनमतिक्रमणं शुष्कस्य अश्लीलस्य वदनं भाषाणमश्लीलं तु त्रिविध लज्जाकरं दुःखकरममंगलसूचवंफ च। संध्यासु आदित्यस्य सूर्यमडलस्य गगतः प्रेक्षणं दर्शनमुपस्तफस्य वाग्प्रतिबिंबितस्य च 'नपोस्तंफ न वास्स्थमिति मनुस्मृतेः, भिक्षणं भैक्षचर्या एतानि उदपानावेक्षणादीनि भिक्षणांतानि वर्जयेत्।

भिक्षणनिषेधे श्रुतिं प्रमाणत्वेनावतारयति स्नात्वा समावर्त्य न भिक्षेत यतः स्नात्वा भिक्षामपनयति अपाकरोति ह वै इति निपातसमुदायः नि यार्थ इति वेदवचनात्।

अर्थ-उदपानादि0-वुफएँ में झाँकना, वृक्ष में चढ़ना, पफल तोड़ना, प्रातः एवं सायंकाल गस्ता चलना, नग्न स्नान, उच्चावच भूमि लंघन, अश्लील भाषण, प्रायः एवं सन्ध्याकाल सूर्य दर्शन तथा भिक्षाचरण, ;स्नातकद्ध करे। श्रुति में कहा है कि, न वै स्नात्वा भिक्षेत=स्नान वेफ बाद भिक्षा न माँगे क्योंकि स्नान, भिक्षाम् अप जयति=भिक्षा को पराजित कर देता है।।6।।

वर्षत्यप्रावृतो व्रजेत् अयं मे वज्रः पाप्मानमपहनदिति।।7।।

देवे वर्षति अप्रावृतः अनाच्छातिदः व्रजेत् गच्छेत् अयं में वज्र इत्यनेन मन्त्रेण।

अर्थ-वर्षति=मेघ बरसने पर। अप्रावृतः=बिना छाता लगाये हुए अयं में इत्यादि उच्चारण करता हुआ, व्रजेत् गमन करे।

मन्त्रार्थ-यह वज्र ;जलरूपीद्ध मेरे पापों को दूर करे।।7।।

समये न जातानि लोमानि यस्याः सा अजातलोम्नी तामजातलोम्नीं नोपहसेत् न च गच्छेत् विपुंसीं च पुफषाकारां ह्रियं वूफर्चादिविकारेण नोपहसेदित्यनुवर्त्तते। षंढं नपुसंवंफ नोपहसेदित्यनुवर्त्तते।

गर्भिणीं विजन्येतिब्रूयात्।।10।।

गर्भिणीमंतर्वर्त्नीं विजन्या इति नाम ब्रूयात् वदेत्

सवुफलमिति नवुफलम्।।11।।

भगालमिति कपालम्।।12।।

मणिधनुरितींद्रधनुः।।13।।

गां धयंतीं परस्मै नाचक्षीत।।14।।

सवुफलमिति नवुफलं ब्रूयात् कपालं कार्परं भगालमिति ब्रूयात् इन्द्रधनुः मणिधनुरिति ब्रूयात्। परस्य गां सुरभिं धयंतीं वत्सं पाययंतीं परस्मै स्वामिने नाचक्षीत न कथयेत्।

अर्थ-अप्सु=जल में, आत्मानम्=अपने प्रतिबिम्ब को, नावेक्षेत्=न देखे। अजातलोम्नीम=वेफशहीन स्त्री कोऋ विपुंसीम=पुफषाकृति ;श्मश्रु आदि से युत्तफद्ध स्त्री को, तथा षण्ड नपुंसक को देखकर उपहास न करे ;इनसे अभिगमन न करेद्ध, गर्भिणीं विजन्येति=गर्भिणी स्त्री को विजन्या, नवुफलम्= नेवले को सवुफल, कपालम्=कपाल को भगाल, इन्द्रधनुः-इन्द्रधनुष को मणिधनु कहे। गाधयन्तीम्=यदि गाय अपने बछड़े को दूध पिलाती हो तो, परस्मै=दूसरे से ;उसवेफ स्वामी सेद्ध नाचक्षीत=न बताये।।8-14।।

उर्वरयामनन्तर्हितायां भूमावुत्सर्पस्तिष्ठ मूत्रपुरीषेन वुफर्यात्।।15।।

उर्वरायां सस्यवत्यां भूमौपृथिव्यां वेफवलायां तृणैरनर्तर्हितायां मूत्रपुरीषे मूत्रस्य पुरीषस्य वा उत्सर्ग न वुफर्यात् किंचित्तिष्ठन् ऊर्ध्वः न वुफर्यात् तथा उत्सर्प्य ुक्षियमाणः सत् न वुफर्यात्।

अर्थ-उर्वरायाम्-उपजाऊ भूमि में ;जिसमें धान्य लगा होद्ध, अनन्तर्हितायाम्= तृणादि से अव्यवहित भूमि में, तथा खड़े होकर-चलते हुये मूत्रपुरीषे न वुफर्यात्=मूत्र और पुरीष का उत्सर्ग न करे।।15।।

स्वयं प्रशीर्णेन काष्टेन गुदं प्रमृजीत।।16।।

स्वयम् आत्मनः प्रयत्नं विना प्रशीर्णेन स्वयंछि ेन पतितेन काष्टान दारुशकलेन अयज्ञियेन प्रमृजीत प्रोछयेत् पुरीषोत्सर्गसं धानात् गुदमित्यध्याहारः।

अर्थ-स्वयं प्रशीर्णेन-अपने आप गिरे हुए, काष्टेन=लकड़ी वेफ टुकड़ों से, गुदं=गुप्तांग को, प्रमजीत=सापफ करे।।16।।

विकृतं वासो नाच्छादयीत।।17।।

विकृतं मजिष्टादिरागेण विकारमापादित वासे वह्नं न परिदधित नील्यादिना रत्तंफ विकृतं निषिध्यते कषायरत्तंफ तु न निषिध्यते किं तु प्रशस्यत इति भाष्यकारः।

दृढव्रतो वधत्रः स्यात सर्वेषां मित्रमिव ;शुक्रियमध्येस्यमाणःद्ध ।।18।।

दृढं स्थिरं व्रतं प्रारब्धं कर्म यस्य स दृढव्रतः स्यात् किं च वधात् घातात् त्रायते रक्षतीति वधत्रः स्यात् किं च सर्वेषां च मित्रमिव सखेव सुहृदिव हितकारी स्यादित्यर्थः 'मैत्रो ब्राह्मण उच्यते' अति स्मरणात्। अत्र यो दृष्टार्थविषयप्रतिषेधः अत्र दृष्टार्थादेव निवृत्तिः प्राप्तौ प्रतिषेध-

॥ इति सप्तमकण्डिका समाप्त॥

अथा मकण्डिका

त्रिरात्र व्रत

ति ो रात्रीर्व्रतं चरेत्॥१॥

एवं स्नातकस्य समावर्त्तनप्रभृति यावद्गार्हस्थ्यं कर्त्तव्यत्वेन वर्जनीयत्वेन च नृत्यगीतादीन्याभिधाय अधुना तस्यैव समावर्त्तनदिनमारभ्य त्रिरात्रव्रत-चर्यामाह ति : त्रिसंख्याः रात्रीः अहोरात्राणि व्रतं वक्ष्यमाणं चरेत् अनुतिष्टेत्।

अर्थ-ति ो=तीन। रात्रीः=दिन और रात्री, व्रत=;आगे कहे हुये नियमों वेफ अनुसारद्ध व्रत का, चरेत्=आचरण करे॥१॥

अमांसाश्यमृन्मयपायी॥२॥

मांसमश्नातीत्येवंशीलो मांसाशी तद्विपरीतः अमांसाशी अमृन्मयपायी स्यादिति शेषः।

अर्थ-अमांस्याशी=मांस न खाये, अमृन्मयपायी=मिट्टी वेफ पात्र में जलादि न पिये॥२॥

ह्रीशूद्रशवकृष्णशवुफनिशुनां चादर्शनमसंभाषा च तैः॥३॥

ह्री नारी शूद्र तुर्थो वर्णः श्वो मृतशरीरं कृष्णशवुफनिः काकः श्वा वुफर्कुरः एतेषामदर्शनमवलोकनाभावः तैः ह्रीशूद्रादिभि सह असंभाषा न संभाषा असंभाषा अवचनव्यवहारः।

अर्थ-ह्री0-ह्री, शूद्र, शव, काक, वुफत्ता इनका, अदर्शनम्=दर्शन न करे। तैः च=और इन लोगों वेफ साथ, असम्भाषा=सम्भाषण न करे॥३॥

शवशूद्रसूतका ानि च नाद्यात्॥४॥

नाद्या भक्षयेत् कानि शवो मृतकः तस्मिन् जाते सति क्रीत्वा लब्ध्वा वा यत् ज्ञातिभिरग्धतेशूद्रस्य अवरवर्णस्य नापितादेर्भोज्यस्यापि यद तच्छूद्रा सूतवेफ प्रसवाशौचे सति यत् ज्ञातीनाम तत्सूतका तानि शवशूद्रसूतका नि चकारः ह्रियाद्यदर्शनादिसमुच्चयार्थः।

अर्थ-शव0=शव का अ , सूतक का अ , शूद्र का अ , न अद्यात=न खाये॥४॥

मूत्रपूरीषे ष्टीवनं चातपे न वुफर्यात्सूर्याच्चात्मानं नांतर्दधीत॥५॥

मूत्रं च पुरीषं च मूत्रपुरीषे आतपे धर्मे न वुफर्यात् नोत्सृजेत् यथा ीवनं च पूफत्कृत्य मुखा ालादिनि ावं न वुफर्यादातपे। सूर्यात् आदित्यात् आत्मानं स्वं छत्रादिना अन्तर्हितं न वुफर्यात्।

अर्थ-आतपे=धूप में, मूत्रपुरीषे=मूत्र एवं पुरीषोत्सर्ग, ीवनम्=थूकना न वुफर्यात्=न करे, सूर्याच्चात्मानम्=सूर्य वेफ प्रकाश से अपने को, नान्तर्दधीत=दूर न रखे॥५॥

तप्तेनोदकार्थान्वुफर्वीत॥६॥

अवज्योत्य रात्रौ भोजनम्॥७॥

सप्तेन जलेन उदकार्थान् उदकसाध्याः शौचाचमनादिकाः क्रियाः वुफर्वीत विदध्यात्।

अर्थ-तप्तेन=उष्ण जल से, उदकार्थान्=शौच आचमन आदि क्रियायें। वुफर्वीत=करे॥६॥

दीक्षितोप्यातपादीनि वुफर्यात्प्रवर्ग्यवांश्चेत्।।७।।

चेद्यदि दीक्षितः सोमयागार्थं स्वीकृतदीक्षः प्रवर्ग्यवान् प्रवर्ग्यो महावीरः अस्यस्तीति प्रवर्ग्यवान् तदा आतपादीनि आतपे मूत्रपुरीषोत्सर्ग विनादीनि अवज्योत्य रात्रिभोजनांतानि वुफर्यात् वा सत्यवदनमेव। अत्र सूत्रकारेण यांवंति स्नातकव्रतान्युत्तफानि न तावत्येवानुतिष्ठेत् अपि तु मन्वादिस्मृतिप्रणीतान्यपि इति सूत्रार्थः।।

अर्थ-दीक्षितोऽपि-यागार्थ दीक्षासम्प व्यत्तिफ भी यदि प्रवर्ग्यवान=सोमयाग की विशेष विधि से युत्तफ है तो आतपादीनि=आतप में मूत्रादि न करे इत्यादि नियमों का पालन कर सकता है।।७।।

अथ प्रयोगः वेदमुत्तफलक्षणं व्रतं च उभयं वा समाप्य गुर्वनुज्ञातो ब्रह्मचारी स्नायात्। तत्र आचार्यो मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिक श्रा(कृत्वा ब्रह्मचारिणा भो आचार्य अहं स्नास्ये इत्युज्ञादानं प्रार्थितः स्नाहीत्यनुज्ञा दत्त्वा ब्रह्मचारिणे परिश्रिते पंचभूतसंस्कारान् कृत्वा लौकिकाग्निं विधाय ब्रह्मोपवेशनादि आज्यभागांतं कर्म निवर्त्य वेदारंभवत् वेदाहुतिहोमं विधाय महाव्याहृत्यादि स्वि कृदतं च कृत्वा सं वं प्राश्य पूर्णपात्रवरयोरन्यतरं ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् तद्यथा तत्राज्यभागांतं कृत्वा यदि ग्वेदमधीत्य स्नानं करोति तदा पृथिव्यै स्वाहा अग्नेय स्वाहेति द्वे आज्याहुती हुत्वा ब्रह्मणे छंदोभ्य इत्याद्या नवाहुतीर्हुत्वा यदि यजुर्वेदं तदाज्यभागानंतरम् अन्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहेति द्वे आज्याहुती हुत्वा ब्रह्मणे छंदोभ्य इत्याद्या नवाहुतीर्हुत्वा महाव्याहृत्यादिस्विष्टकृदंता दशाहुतीर्हुत्वा छन्दोभ्य इत्यारभ्यानुमत्यंता नवाहुतीर्हुत्वा महाव्याहृत्यादिदक्षिणा दत्त्वा समापयेत्। यदा सामवेदं तदाज्यभागांते दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहेति हुत्वा ब्रह्मणे छन्दोभ्य इत्यरभ्यानुत्यंता नवाहुतीर्जुहोति। यद्यथर्ववेदं तदाज्यभागांते दिग्भ्यः स्वाहा चद्रमसे स्वाहेति आहुतिद्वयं हुत्वा ब्रह्मण इत्याद्या जुहोति। यदैकदा वेदचतुष्टयमधीत्य स्नानं करोति तदाज्यभागानंतरं प्रतिवेदं वेदाहुतिद्वयं हुत्वा ब्रह्मणे छंदोभ्य इत्याहुतिद्वयं च हुत्वा प्रजापतये इत्याद्याः प्रजापतये देवेभ्य षिभ्यः श्र(यै मेधायै सदसस्पतये अनुमतय इति सप्तमंत्रेण जुहुयात्। एवं वेदद्वयत्रयाध्ययनेऽपि योज्यम्। अनंतरं महाव्याहृत्यादिस्वि कृदंता दशाहुतीर्हुत्वा प्राशनं विधाय दक्षिणादानांतं वुफर्यात्। ब्रह्मचारी उपसंग्रहणपूर्ववंफ गुरुं नमस्कृत्य परिसमूहनादि त्र्यायुषकरणांतं तस्मि ग्नौ समिदाधानं वुफर्यात् ततः आचार्यपुफषैः परिश्रित- स्योत्तरभागे स्थापितानां दक्षिणोत्तरायतानामष्टानां जलपूर्णानां कलशानां पूर्वभागे आस्तृतेषु प्रागग्रेषु वुफशेषु उद मुखः स्थित्वा येप्स्वतंरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूखो मनोहा स्खलो विरुजस्तनूदूषुरिंद्रियहा तान्विजहामि यो रोचनस्तमिह गृ मीति मंत्रेण प्रथमकलशात दक्षिणचुलुवेफन उदकमादाय तेनेमामभिषि मि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसायेति मंत्रेणात्मानभिषिंचते। एवमेव द्वितीयादिभ्यः समेभ्यः उदवुफभेभ्यः येप्स्वतरग्न इत्यनेनैव मंत्रेण एवैफकस्माज्जलमादाय येन श्रियमकृणुतां येनावमृशतं सुरां येना क्षावभयषिंचतां यद्वा तदश्विना यश इति आपो हि ा मयो भुवः यो वः शिवतमो रसः तसमा अरंगमामव इत्येतै तुर्भिर्मंत्रैः प्रतिमन्त्रमात्मानमभिषिच्य त्रिष्तूष्णीम- भिषिंचते। तत उदुत्तममिति मंत्रेण मेखलां शिरोमार्गेण निःसाय तां मेखलां भूमौ निधाय अन्यद्वासः परिधायाचम्य आदित्यमुपति ते उद्यन् भ्राजभृष्णुरिंद्रो मरु रस्थात्प्रातर्याभिरस्थाद्दशसनिरसि दशनिं मा वुफर्वाविदन्मागमयोद्यन् भ्राजभृष्णुरिंद्रो मरु रस्थाद्दिवायावभिरस्थाच्छतसनिरसि शतसनिं मावुफर्वाविदंमा गमयोद्यन्भ्राजभृष्णुरिंद्रो मरु रस्थात्सायं यावभिरस्थासह सनिरसि सह सनिं मावुफर्वादिनमा गमयेत्यादित्योपस्थानमन्त्रः। ततो दधि वा तिलान्वा दक्षिणस्ति- मध्यगतेन सोमतीर्थेन प्राश्य जटालोमनखानि वापयित्वा स्नात्वाचम्योत्तफलक्षणे- नौदुंबरकाष्ठेन अ द्याय व्यूहध्वं सोमो राजायमागतम्स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन चेत्यनेन मन्त्रेण दन्तान् क्षालयित्वाचम्य सुगन्धिद्रव्यमिश्रितेन यवादेः चूर्णेन संतीतेन शरीरमुद्वर्त्य पुनः सशिरस्वंफ स्नात्वाचम्य चन्दनाद्यनुलेपनं पाणिभ्यां गुहीत्वा मुखं नासिकां च प्राणापानौ मे तपर्य चक्षर्मे तर्पय श्रोत्रं मे पर्पयेत्नेन मंत्रेणालभते। ततः प्राणी प्रक्षाल्य तदुदकम लिनादायापसव्यं कृत्वा दक्षिणमुखो भूत्वा दक्षिणस्यां दिशि पितरः शुन्धध्वमित्यनेन मन्त्रेण भूमौ निषिंचेत्पितृतीर्थेनः। अथ यज्ञोपवीती भूत्वोदकमुपस्पृश्य चन्दनादिना सुचक्षा अहमक्षीभ्यां भूयासं सुवर्चा मुखेन सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासमिति मन्त्रेण आत्मानमुलिप्य परिधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि शत जीवामि शरदः पुफची रायस्पोषमभिसंव्ययिष्य इति मन्त्रेण अहतं धौतं वा यथालाभं वासः परिधाय 'धारयेद्वैणवीं यष्टिं सोदवंफ च कमण्डलुम्। यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च वुफण्डले' इति मनुना ब्रह्मचार्यप्राप्तस्य यज्ञोपवीतधारणस्य सतः स्नातकस्य पुनर्विधानात् द्वितीययज्ञोपवीतधारणं प्राप्तं तच्च पूर्वं धृते सति स संभवति अतस्तदुत्तायं जले प्रक्षिप्यापरं नवम् उत्तफलक्षणं त्रिसरद्वयं यज्ञोपवीतमित्यादिना मन्त्रेण परिधाय यज्ञोपवतीस्यैकदेशविना से यातयामत्वमतो न तस्य नवेन संयोगः यज्ञोपवतीस्यैकदेशविनाशेपि मंत्रादिकसंस्कारस्य विनष्टत्वात् ततो यशसा मा द्यावापृथिवी यशसेंद्रबृहस्पती यशो भग मा विदद्यशो मा प्रतिपद्यतामिति मंत्रेण उत्तरीयं वास आच्छाद्य द्वितीयवह्लाभे पुर्वस्यैवोत्तवर्गेण अनेनैवोत्तरीयं वासः परिधत्ते या आहरज्जमदग्निः श्र(यै कामायेंद्रियाय ता अहं प्रतिगृ मि यशसा च भगेन चेति पुष्पाणि अन्यतः प्रतिगृह्य यद्यशोप्सरससामिंद्र कार विपुलं पृथु तेन संग्रथिताः आसुमनस अवबध्नामि यशोमयीति मंत्रेण शिरसि बद्ध्वा युवा सुवासा इत्यनर्चा उष्णीषेण शिरो वेष्टयते। अलंकरणमसि भश्योलंकारणं भूयादिति दक्षिणवुफण्डलं कृत्वा

नवमकण्डिका

पंच-महायज्ञ-विधि

अथातः प महायज्ञाः॥१॥

अथ समावर्तनानंतरं कृतविवाहस्य प महायज्ञेष्वधिकारः। अतो हेतो पंचसंख्याका महायज्ञाः महायज्ञशब्दवाच्याः कर्मविशेषाः पंचमहायज्ञा व्याख्यास्यंते इति। तत्र पंचसु ब्रह्मणे स्वाहेत्येवमादिकोहोमात्मकः पूर्वो देवयज्ञः। ततो मणिवेफ त्रीनित्येवमादिबलिरूपो भूतयज्ञः। ततः पितृभ्यः स्वधा नम इति बलिदानं पितृयज्ञः। हंतकार- तिथिपूजादिको मनुष्यज्ञः। पंचमो ब्रह्मयज्ञः। एते पंच महायज्ञाः अहरहः कर्त्तव्याः स्नातवेफन। कथमित्य-पेक्षायामाह।

वैश्वदेवाद ात्पर्युक्ष्य स्वाहाकारैर्जुहुयाद्।

विश्वे देवा देवता अस्येति वैश्वदेवम ं तसमात् वेफ ते देवभूतपितृ- मनुष्यादयः स्मृतिषु तेभ्य अदत्त्वा भोजननिषेधात् तेभ्यो दत्त्वा गृहपतेः शेषं भुजित्वविधानात् तस्माद्यद महरहः शालाग्नौ लौकिवेफग्नौ वा यथाधिकारं पच्यते तद्वैश्वदेवमग्नं तस्मादुत्य पात्रांतरे कृत्वा पर्युक्ष्य आवसथ्यस्य पर्युक्षणं कृत्वा स्वाहाकारैः सह वक्ष्यमाणैर्जुहुयात्।

अत्र पर्युक्षणोपदेशः वुफशकण्डिवेफतिकर्त्तव्यतानिगमार्थं जुहोतिषु स्वाहाकारोपदेश बल्यादिभ्यो निवृत्त्यर्थः। सं वत्र्युदासार्थो वा। बलिदानं तु नमस्कारेण, बलिदाने नमस्कास्य दर्शितत्वात्।

अर्थ-अथातः=समावर्तन संस्कार वेफ अनन्तर कृत विवाह व्यक्तिफ वेफ लिये प महायज्ञाः=पाँच महायज्ञों का विधान वर्णन करते हैं।

ब्रह्मणे प्रजापतये गृह भ्यः कश्यपायानुमतय इति॥२॥

पंचहोमाः भूतगृह्येभ्यः भूतानि च तानि गृह्याणि च भूतगृह्याणि तेभ्यो भूतगृह्येभ्यः होमानंतरं दद्यादिति शेषः।

अर्थ-;देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ एवं ब्रह्मयज्ञद्ध विश्वेदेव देवताक ;काण्ड हुएद्ध अ में से उस अ पर छींटें लगाकर ब्रह्मणे स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, गृह्याभ्यः स्वाहा, कश्यपाय स्वाहा, अनुमतये स्वाहा, इस प्रकार पाँच आहुतियाँ अग्नि में डालो।

भूतगृह भ्यो मणिवेफ त्रीन्पर्जन्यायदभ : पृथिव्यै॥३॥

कथं मणिवेफ मणिकसमीपे सामीप्यसप्तमीयं त्रीन् बलीन् दद्यादिति शेषः। कथं पर्जन्याय नमः अदभ ोनमः पृथिव्यै नम इति।

अर्थ-गृह निवासी भूतो वेफ लिए मटवेफ या घटादि जलपात्र वेफ निकट तीन आहुतियाँ पर्जन्याय नमः, अद्भ्यः नमः, पृथिव्यै नमः यह बोलकर दो।

धात्रे विधात्रे च द्वार्ययोः॥४॥

द्वारशाघयोर्दक्षिणोत्तरयोर्यथाक्रमं धात्रे नमो विधात्रे इति द्वौ बली दद्यात्।

अर्थ-द्वार्य=उत्तर और दक्षिण द्वार देशों पर क्रम से धात्रे नमः, विधात्रे नमः यह बोलकर दो बलि दे।

प्रतिदिशं वायवे दिशां च॥8॥

प्रतिदिशं दिशं दिशं प्रति वायवे नम इति एवैफवंफ बलिं दद्यात्। दिशां च दिग्भ्य दिग्भ प्रतिदिशं प्राच्यै दिशे नम इत्येवमादि तल्लिंगोल्लेखेनैवैफवंफ बलिं दद्यात्।

अर्थ-प्रत्येक दिशा में 'वायवे नमः' कह कर बलि दे। तथा दिशाओं वेफ नाम बोलकर 'प्राच्यै दिशे नमः इत्यादि रुप से बलि दें।

मध्ये त्रीन्ब्रह्मणे{तरिक्षाय सूर्याय॥6॥

मध्ये प्रतिदिशं तत्ताना बलीनामंतराले त्रीन् बलीन् दद्यात् कय ब्रह्मणे नमः अंतदिक्षाय नमः सूर्याय नम इति।

अर्थ-प्रत्येक दिशा में दी गई बलियों वेफ मध्य में ब्रह्म, अन्तरिक्ष और सूर्य वेफ नाम से 3 तीन बलि दे।

विश्वेभ्यो देवेभ्यो विश्वेभ्य भूतेभ्यस्तेषामुत्तरतः॥7॥

तेषां ब्रह्मदीनां त्रयाणां बलीनामुत्तरतः उत्तरप्रदेशे विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नम इति द्वौ बली दद्यात्।

अर्थ-तेषाम्=उन मध्य भाग में दी गई तीन बलियों वेफ उत्तर भाग में विश्वदेवों और विश्वभूतों वेफ लिये बोलकर दो बलि दे।

उषसे भूतानां च पतये परम्॥8॥

परं तयोरप्युत्तरतः उषसे नमः भूतानां पतये इत्यत्र चकारं मंत्रातगर्तमाहुः।

अर्थ-तथा उन दो बलियों वेफ उत्तर की ओर 'उषसे नमः' 'भूतानां पतये नमः' यह कहकर दो बलि दे।

पितृभ्यः स्वाधा नम इति दक्षिणतः॥9॥

एषामेव ब्रह्मादिबलीनां दक्षिणतः दक्षिणप्रदेशे पितृकर्मत्वात्प्राचीनावीती दक्षिणामुखः पितृभ्यः स्वधा नम इति मंत्रेणैवंफ बलिं पात्रे अवशिष्टेनान्नेन दद्यात्।

अर्थ-वुफछ विद्वान चकार को मन्त्र का ही हिस्सा मानते हैं, तदनन्तर ;प्राचीनावीती होकर और दक्षिण की ओर मुख करवेफ 'पितृभ्यः स्वधा नमः' कहकर दक्षिण की ओर बलि दे।

पात्रं निर्णिज्योत्तरापरस्यां दिक्षि निनयेद्यक्ष्मैतत्त इति॥10॥

उ(रणपात्रं निर्णिज्य प्रक्षाल्य निर्णेजनजलं तेषामेव ब्रह्मादिबलीनामुत्तरा- परस्यां वायव्यां दिशि निनये उत्सृजे। कथं यक्ष्मैतते निर्णेजनमिति मन्त्रेण।

अर्थ-उ(रण पात्र को धोकर ब्रह्मा आदि को दी गई बलि वेफ उत्तर एक और उत्तर पश्चिम दिशा वेफ बीच की दिशा अर्थात् वायव्य कोण में ष्यक्ष्मैतत्ते नमःş यह बोलकर निर्णेजन जल को डाल दे।।

बद्धृत्याग्रं ब्राह्मणायावनेज्य दद्या(न्त त इति॥11॥

वैश्वदेवादन्नादु(त्य अवदाय अग्रं षोडशग्रासपरिमितग्रासचतुष्टपपर्याप्तं वा अन्नं ब्राह्मणाय विप्राय न क्षत्रियवैश्याभ्यामवनेज्येत्यवनेजनं दत्त्वा हन्त ते इत्यनेन मन्त्रेण दद्यात्।

पंच महायज्ञा इति अनेनानुष्ठानस्य वत्तुफमुपक्रांतत्वात् तदनुष्ठाानं सावसरं वत्तफव्यं नोत्तफमतो विचार्यते। ब्रह्मयज्ञस्य स्मृत्यंतरे त्रयः काला उत्तफाः। अथाह कात्यायनः ष्यश्चश्रुतिजपः प्रोत्तफो ब्रह्मयज्ञस्त स स्मृतः। स चार्वाक्तर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः! वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्र

एतावद्वर्शिष्यते वैश्वदेवासाने यदा क्रियते तदा कोऽवसरः चतुर्णामन्त इति चेत् न हंतकारादेर्नृयज्ञस्य रात्रावपि स्मरणात् नास्यानश्नन् गृहे वसेत् इत्यादिना तस्मादतिर्ष्टिकालेपि ब्रह्मयज्ञो मनुष्ययज्ञात्पूर्वं कर्तव्यः।

अर्थ-देवार्पित अन्न में से 16 या 4 ग्रास अ वेफ निकालकर देवेभ्यो नमः इस मन्त्र को बोलकर ब्राह्मण को दो। ;यहाँ ब्रह्मयज्ञ को अतिथि यज्ञ से पूर्व करना चाहिएद्ध।

यथार्हं भिक्षुकानतिथीं संभजेरन्।12।।

यथार्हं यो यदर्हति तदनतिकम्य यथार्हं तद्यथा भवति तथा भिक्षुकान् परिव्राजकब्रह्मचारिप्रभृतीन् तत्र उववुफर्वाणकब्रह्मचारिणः अक्षारालवणमितरेषां च यथोचितमतिथिन् अध्वनीनाञ्छ्रोत्रियानिद् संभजेरन् भिक्षाभोजनादिदानेन तोषयेरन् गृहमेधिनः।

अर्थ-गृहस्थियों को यथायोग्य जैसे ब्रह्मचारियों को बिना लवण और क्षार वाला अ दे, इस प्रकार अतिथियों और भिक्षुओं में अ को विभक्त कर दे।

बालज्येष्ठागृह्या यथार्हमश्नीयुः।।13।।

बालो ज्येष्ठः प्रथमा येषां गृह्याणां ते बालज्येष्ठाः ते च ते गृह्या गृहे भवाः पुत्रादयः यथार्हं यथायोग्मश्नीयुः भुजीरन्।

अर्थ-बालकों को प्राथम्य ;ज्येष्ठत्वद्ध देते हुए जो जिसवेफ योग्य पदार्थ बना हो उसे खा ले।

प्र ाद्गृहपतिः पत्नी च।।14।।

पश्चाद्गृह्येषु पूर्वमाशितेषु सत्सु पश्चाद्गृहपतिः गृहस्वामी पत्नी च तद्भार्या अश्नीयाताम्।

अर्थ- पश्चात् अर्थात् अतिथियज्ञ वेफ बाद गृहपति और उसकी पत्नी भोजन करें। पत्नी से पूर्व भी यथायोग्य भोजन कर लें।।1-14।।

पूर्वो वा गृहपतिः। तस्मादुस्वादिष्टं गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नी- यादिति श्रुतेः।।15।।

वा। अथवा गृहपतिः स्वामी पत्न्याः पूर्वो वा अश्नीयात्। वुफतः तस्मादुस्वादिष्टं गृहपतिः पूर्वोऽतिथिभ्योऽश्नीयादिति श्रुतेः। तस्मात्स्वात् अ ात् यत् इष्टं तद ं गृहपतिः पत्न्याः पूर्वः अतिथिभ्यः अशितेभ्यः इति श्रुतेः वेदवचनात् अहरहः स्वाहा वुफर्याद ाभावे।

अर्थ-स्वादिष्ट अ को गृहपति अतिथियों से भी पूर्व खा सकता है। इन स्तुतियों में लिखा है।।15।।

अहरहः स्वाहा वुफर्याद ाभावे

वेफनचिदाकाष्ठाद्देवेभ्यः पितृभ्यो मनुष्येभ्यश्चोदपात्रात्।।16।।

अहरहः प्रतिदिनं देवेभ्यः अ ेन स्वाहा वुफर्यात्। देवतोद्देशेन अ ं जुहुयात् अ ाभावे वेफनचित् द्रव्येण काष्टापर्यतेनापि पितृभ्यः स्वधा वुफर्याद ेन तदभावे वेफनचिद्द्रव्यणोदपात्रपर्यतेन। एव मनुष्येभ्यो हंतकारमप्यर्थात् एवं पंच महायज्ञानामहरहर्नित्यत्वेन कर्तव्यतावगम्यते इति सूत्रार्थः।

अर्थ-प्रतिदिन अ से स्वाहाकार करे। अन्न न होने पर किसी भी अन्य वस्तु से स्वाहाकार करे, यहाँ तक कि वुफछ न मिले तो काष्ट से ही देवों को वस्तु प्रदान करे। देवों और मनुष्यों वेफ लिए जलपात्र पर्यन्त वस्तुओं को प्रतिदिन स्वाहाकार से समर्पित करे।।16।।

अथ प(तिः। ततः पंचमहायज्ञनिमित्तं मातृपूजापूर्वकमाभ्युदयिवंफ श्रा(कृत्वा वैश्वदेवार्थं पावंफ विधाय समु(त्याऽभिधार्य पश्चादग्नेः प्रा ्मुख उपविश्य दक्षिणं जान्वाच्य मणिकोदवेफनाग्निं पर्युक्ष्य हस्तेन द्वादशपर्वपूरक्- मोदनमादाय ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे प्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये गृह्याभ्यः स्वाहा इदं गृह्याभ्यः कश्यपाय स्वाहा इदं कश्यपाय अनुमतये स्वाहा इदमनुमतये इति देवयज्ञः।। इति पंचाहुतीर्हुत्वा मणिकसमीपे प्राक्संस्थमुदक्संस्थं वा हुतशेषेणान्नेन बलित्रयं दद्याात्। तद्यथा पज्न्याय नमः इदं पर्जन्याय अदभ ो नमः इदमद्भ : पृथिव्यै नमः इदं पृथिव्यै इति दद्यात्।

ततो द्वारशाखयोर्दक्षिणोत्तरयोर्यथाक्रमं धात्रे नमः इदं धात्रे विधात्रे नमः इदं विधात्रे इति द्वौ बलि दत्त्वा प्रतिदिशं वायवे नमः इदवायवेनैव

दद्यात् इति भूतयज्ञः।

ततः ब्रह्मादीनां बलीनां दक्षिणप्रदेशे प्राचीनावीती दक्षिणामुखः पितृभ्यः स्वधा नम इति मंत्रेणैवंफ बलिं पात्रे अवशिष्टान्नेन दद्यात् इति पितृयज्ञः॥

तत्पात्रं प्रक्षाल्य निर्णेजनजलं ब्रह्मादिबलीनां वाव्ये निनयेत् यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनमित्यनेन मन्त्रेण इदं यक्ष्मणे। ततः काकादिबलीन् बहिर्दद्यात् तद्यथा फऐंद्रवारुणवायव्याः सौम्या वै नै ेतास्था। वायसाः प्रतिगृ न्तु भूमौ पिंडं मायार्पितम्ष् इदं वायसेभ्यः। फद्वौ श्वानौ श्वावशबलौ वैवस्वतवुफलोद्भवो। ताभ्यां पिंडं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौफ इदं श्वभ्याम्॥ फदेवा मनुष्याः पशवो वयांसि सि(ा यर्क्षोरगदैत्यसंघाः। प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्ष् इदं देवादिभ्यः। फपिपीलिकाः कीटपतंगकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबंधब(ाः। तृप्त्यर्थम नं हि मया प्रदत्तं तेषामिदं ते मुदिता भवन्तुष् इदं पिपीलिकादिभ्यः। पादौ प्रक्षाल्याचम्य अतिथिप्राप्तौ पादप्रक्षालन- पूर्ववंफ गन्धमाल्यादिभिरभ्यर्च्य अन्नं परिवेष्य हंत तेऽन्नमिदं मनुष्यायेति संकल्प्य तमाशयेत्। तदभावे षोडशग्रासपरिमितं चतुर्ग्रासपरिमितं वा अ पात्रे कृत्वा निवती भूत्वोद ुमुख उपवि ोर्हंत तेऽ मिदं मनुष्यायेति संकल्प्य कस्मैचिद् ब्राह्मणाय दद्यात्।

मनुष्ययज्ञसि(ये ततो नित्यश्रा(वुफर्यात्। तद्यथा स्वागतवचनेन षट् ब्राह्मणान्द्वौ वा एवंफ वाऽभ्यर्च्य पादौ प्रक्षाल्य आचम्य गृहं प्रवेश्य वुफशांतर्हितेष्वासनेषूद ुमुखानुपवेशयेत्। ततः स्वयमाचम्य प्रा ुमुख उपविश्य पुंडरीकाक्षं श्रीवासुदेवं च संस्मृत्य सावित्रीं पठित्वा अद्येत्यादि देशकालौ स्मृत्वा प्राचीनावीति दक्षिणामुखं सव्यं जान्वाच्य अमुकसगोत्राणामस्मत्पि- पितामहप्रपितामहानाममुकशर्मणां तथा अमुकगोत्राणामस्मन्मातामहप्रमातामहवृ(- प्रातामहानाममुकामुकशर्मणां नित्यश्रा(महं करिष्ये इति प्रतिज्ञाय नित्यश्रा(ततो यथार्हं भिक्षुकादिभ्यो संविभज्य बालज्येष्टाश्च गृह्या यथायोग्यमश्नीयुः। ततो जायापती अश्नीतः पूर्वो वा गृहपतिः पत्नी ततोऽतिथ्यादीनाशयित्वा- श्नीयादिति॥

दशमी कण्डिका

अध्ययन-अध्यापन उपाकर्म विधि

अथातोऽध्यायोपाकर्म॥१॥

अथ पंचमहायज्ञकथनानंतरमध्यास्य अध्ययनस्य उपाकर्म उपाकरणं व्याख्यास्यते इति शेषः। तच्चाग्निमतोऽध्यापनप्रवृत्तस्यैव भवति छंदांस्युपा-

कृत्याधीयते इति वचनात्, उपाकरणस्य चावसथ्याग्निसाध्य- त्वात् निरग्नेर्नाधिकारः तथा च छन्दोगपरिशिष्टं कात्यायनः फ्त स्वेग्नावत्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम्। स्वगर्भं संस्कृतार्थश्च याव ासौ प्रजायते।।ः इति स्वेत आत्मना आहितः आधानसंस्कृतोऽग्निः स्वः तस्मिन्स्वेऽग्नौ अन्यस्य सम्बन्धी संस्कारो होमः अत्यहोमः स न स्यात् न भवेत् किं पर्युदस्य एकां समिदाहुतिं मुक्त्वा वर्जयित्वा सा च समिदाहुतिः उपाकर्मणि आचार्यस्याग्नौ शिष्यकर्तृका भवति तेनावसथ्याग्नावुपकर्म भवतीति गम्यते। अतः अध्यापयतोपि निरग्नेः साग्नेरपि अन्यानध्यापयतो नाधिकारः। यत्तु लोवेफ ब्रह्मचारिणं पुरस्कृत्य उपाकर्म प्रवर्त्तते लौकिकाग्नौ तस्याचारं विहाय मूलं न दृश्यते।

अर्थ-प यज्ञ न्रूपण वेफ बाद अध्याय=अध्ययन का उपाकर्म उपाकरण या स्वीकरण की व्याख्या या निरूपण करेंगे।।1।।

ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रावणस्य पंचमीं हस्तेन वा।।2।।

ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन युत्तफायां श्रवणश्च पौर्णमास्या एव विशेषणं तत्र तयोः प्रायशः संभवात्। एवं च सति पौर्णमास्या एव प्राधान्यं तस्माद् विशेषणाभावेपि पौर्णमास्यां भवति। ओषधिप्रादुर्भावस्तु सर्वत्रोपेक्षितः। श्रावणमासस्य पंचमी हस्तेने युत्तफा वा प्राप्य भवति, तत्रापि प्रायेण हस्तो भवति, अतः श्रावणी पूर्णिमा श्रावणपंचमी वा अविशिष्टा वा उपाकर्मणः कालः अन्ये तु कालचतुष्टयमाहुः। अथ श्रवणेन वा श्रावण्यां पौर्णमास्या वा श्रावणस्यं पंचमी वा हस्तेन वेति। ओषधिप्रादुर्भावस्तु सर्वत्रापेक्षितः ओषधिप्रादुर्भावे सति श्रवणेन इत्यादि।

अर्थ-अपाकार्ग आदि ओषधियों वेफ उग आने पर श्रवण नक्षत्र युत्तफ श्रावण मास की पूर्णिमा वेफ दिन, अथवा श्रावन मास की प मी वेफ दिन हस्त नक्षत्र वेफ आने पर ;ओषधि प्रादुर्भाव तो होना ही चाहिएद्ध उपाकर्म करे।2।।

आज्यभागाविष्ट्वाज्याहुती जुहोति ।।3।।

अर्थ-दो आज्याभागाहुतियां 'अग्नेय स्वाहा' 'प्रजापतये स्वाहा', इन मन्त्रों से देने वेफ बाद पिफर यदि ग्वेद का उपाकर्म करना हो तो ॐपृथिव्यै स्वाहा, ॐअग्नये स्वाहा ये दो आहुतियाँ दे।3।।

पृथिव्याऽग्नय इत्यृग्वेदे।।4।।
अन्तरिक्षाय वायवइति यजुर्वेदे।।5।।
दिवे सूर्यायेति सामवेदे।।6।।
दिग्भ्य न्द्रमस इत्यथर्ववेदे।।7।।
ब्रह्मणे च्छन्दौभ्यश्चेति सर्वत्र।।8।।
प्रजापतये देवेभ्य षिभ्यः श्र(यै मेधायै सदसस्पतऽनुमतय इति च।।9।।
एतदेव व्रतादेशनविसर्गेषु।।10।।

आज्यभागावि । आज्यभागहोमानन्तरमाज्या हुतीर्जुहोति। तत्र ग्वेदे अधीयमाने पृथिव्यै अग्नय इति द्वे आहुति जुहोति, यजुर्वेद अधीयमाने अन्तरिक्षाय वायव इति द्वे, सामवेदे अधीयमाने विदे सूर्यायेति द्वे, अथर्ववेदे अधीयमाने दिग्भ्यश्चन्द्रमस इति द्वे, ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्चेति द्वे आहुती सर्वत्र प्रतिवेदमावर्तयेत्। सर्वेषु वेदेषु अधीयमानेषु एकतमे वा तथा प्रजापतय इत्यादि काश्च सप्त, च शब्दात् सर्वत्र एवमेवैफकशो वेदाध्यापनोपा- करणपक्षे यदा पुनश्चतुर्णामपि वेदनां तन्त्रेणोनपाकरणकर्म तदा ब्रह्मणे छन्दोभ्यश्चेति प्रतिवेदाहुतिद्वयमावर्त्तते प्रजापतये देवेभ्यः इत्याद्यातन्त्रेणैव योगविभागसामर्थ्यात्।।

अर्थ-यदि यजुर्वेद का उपाकर्म करना हो तो ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा, ॐ वायवे स्वाहा इन दो मन्त्रों से आहुति दे। एवं दिवे स्वाहा, सूर्याय स्वाहा इन दो मन्त्रों से सामवेद वेफ आरम्भ करने में। ॐ दिग्भ्यः स्वाहा, ॐ चन्द्रमसे स्वाहा इन मन्त्रों से अथर्ववेद वेफ आरम्भ में आहुति दे। ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, ॐ छन्दोभ्यः स्वाहा, इन दो मन्त्रों से प्रत्येक वेद वेफ उपाकर्म में आहुति दे। इतना ही नहीं अपितु-

प्रजापतये स्वाहा, देवेभ्यः स्वाहा, षिभ्यः स्वाहा, श्र(यै स्वाहा, मेधायै स्वाहा, सदसस्पतये स्वाहा, अनुमतये स्वाहा इन सात मन्त्रों से भी प्रत्येक वेद वेफ आरम्भ में आहुति दें। विशेषता इतनी है कि यदि वेद चतुष्ट्य का उपाकर्म एक साथ करना हो तो नवम् मन्त्र को

व्रतादेशनविसर्गास्तेषु भवंति सदसस्पतिमित्यक्षतधानाहुिः।

अर्थ-आचार्य 'सदसस्पतिम्' इस मन्त्र से तीर बार अक्षत ;चावलद्ध और जौ की मिली आहुति दे॥11॥

सर्वे ऽनुपठेयुः॥12॥

अर्थ-तदनन्तर सब शिष्यगण भी इसी मन्त्र को बोलकर तीन बार आहुति दें॥12॥

हुत्वा हुत्वौदुंबर्यस्ति स्तिह्नः समधि आदध्युरार्द्राः सपलाशा घृतात्तफाः सावित्र्या॥13॥

सदसस्पतिमित्यनेन मन्त्रेण अक्षताश्च धानाश्च ताः अक्षतधानाः ताः आचार्यो जुहोति त्रि वारं सर्वे च शिष्याः एतं मन्त्रमनु सह पठेयुः। तथा हुत्वा हुत्वा औदुंबर्यः उदुंबरवृक्षोद्भवास्ति स्ति आर्द्राः सरसाः सपलाशाः पत्रसहिताः घृतात्तफाः आज्यलिप्ताः समिधः सर्वे आचार्यप्रमुखाः शिष्याः आदध्युः। अग्नौ सावित्र्या प्रसि(या प्रक्षिपेयुः भेदेन न तु युगपत्।

अर्थ-किन्तु 'सदसस्पतिम् इस मन्त्र वेफ बाद गूलर ;उदुम्बरद्ध की तीन- तीन समिधाओं से जिन पर पत्ते भी लगे हों तथा जो घृतात्तफा भी हों, गायत्री मन्त्र बोलकर प्रत्येक शिष्य आचार्य वेफ साथ आहुति दे॥13॥

ब्रह्मचारिण पूर्वकल्पेन॥14॥

तत्र ये ब्रह्मणचारिणः शिश्या ते पूर्वकल्पेन समिदाधानोत्तफमन्त्रेण आदध्युः। अत्र ति स्ति इति वीप्सा न समिद्विषया किन्तु आधातृपुरुषविषया तेन प्रत्याहुतिमेवैफकामादध्युः।

अर्थ-तथा आचार्य को छोड़कर शिष्यगण पुनः समिदाधान वेफ मन्त्रो में तीन बार तीन आहुति दे॥14॥

श ो भवंत्वित्यक्षतधाना अखादन्तः प्राश्नीयुः॥15॥

श ो भवन्तु वाजिनः इत्यनयर्चा अक्षतधाना अखादन्तः दन्तैरनव- खण्डयन्तः प्राश्नीयुः।

अर्थ-तदनन्तर 'ॐ श ो भवन्तु' यह मन्त्र बोलकर जौ और चावलों को बिन चबाए ;अखादन्तःद्ध शिष्यवृन्द निगल जायँ॥15॥

दधिक्राव्ण इति दधि भक्षयेयुः॥16॥

दधिक्राव्णो अकारिषमित्यृचा दधि भक्षयेयुः।

अर्थ-तथा 'दधिक्राव्णः अकारिषम्' इस मन्त्र को बोलकर शिष्यवृन्द दधि भक्षण करें॥16॥

स यावंतं गणमिच्छेत्तावतस्तिलानाकर्षफलवेफन जुहुयात्सावित्र्या शुक्रज्योतिरित्यनुवावेफन वा॥17॥

स आचार्यो यावंतं यावत्संख्यावंफ शिष्याणां गणं समूहमिच्छेत् तावत्संख्याकान् तिलान् आकर्षपफलवेफन औदुंबर्येण बाहुमात्रेण सूर्याकृतिना सावित्र्या सवितृदेवतया गायत्रच्छन्दस्कया प्रसि(या जुहुयात् यद्वा शुक्रज्योतिरित्यनुवावेफन जुहुयात्। गुणपफलमेतत्। अतो धानाभ्यः स्विष्टकृते हुत्वा महाव्यहृत्यादिनवाहुतीर्हुत्वा।

अर्थ-गुरु जितने शिष्यों की कामना करे उस संख्या वेफ अनुसार तिल गिन कर आकर्ष पफलक में अर्थात् गूलर की लकड़ी वेफ बने सर्पाकार चमस से उन तिलों की गायत्री मन्त्र को बोलकर आहुति दे, अथवा 'शुक्रज्योतिः' इस अनुवाक से आहुति दे॥17॥

प्राशनांते प्रत्य ्मुखेभ्य उपविष्टेभ्य ॐकारमुक्त्वा त्रिश्च सावित्रीमध्यायादीन्प्रब्रूयात्॥18॥

सं वप्राशनानंतरं प्रत्य मुखेभ्यः आसीनेभ्यः शिष्येभ्यः सामर्थ्यात्स्वयं प्र मुख उपवि ॐकारं प्रणवमुक्त्वा उच्चार्य तत्सवितुरित्यादिवंफ च सावित्रीं त्रिरुक्त्वा मंत्रब्राह्मणयोः अध्यायना- मादीन्प्रब्रूयाध्याययेत् इति यजुर्वेदोपाकरणे।

अर्थ-एवं दधिप्राशन वेफ बाद पश्चिमाभिमुख बैठे शिष्यों वेफ आगे ॐकार सहित तीन बार गायत्री का पाट करवेफ यजुर्वेद वेफ प्रत्येक अध्याय का प्रथम मन्त्र बोले व बुलवावें॥18॥

पर्वाणि छन्दोगानाम्॥20॥

छंदोगानां सामगानां शिष्यणां सामोपाकरणे पर्वाणि पर्वतामादीत्यब्रूयात्।

अर्थ-सामवेदियों वेफ लिए प्रत्येक पर्व वेफ आदि का मन्त्र बोले॥20॥

सूक्तान्यथर्वणाम्॥21॥

आथर्वणनां शिष्याणामथर्ववेदोपाकरणे सूत्तफानि सूत्तफादीत्यब्रूयात्।

अर्थ-अथर्ववेदाध्यायी शिष्यों वेफ लिए प्रत्येक सूत्तफ वेफ आदि का मन्त्र बोले॥21॥

सर्वं जपंति सह नोऽस्तु सह नोवतु सह न इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्मा इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामह इति॥22॥

अर्थ-तदनन्तर गुरु एवं शिष्य मिलकर 'स ह नो अस्तु'-यहाँ से लेकर 'न विद्विषामहे' यहाँ तक नवें मन्त्र का जप करें॥22॥

त्रिरात्रं नाधीयीरन्॥23॥

सर्वे आचार्याः शिष्याश्च सहनोस्त्वित्यमुं मन्त्रं जपंति त्रिरात्रं नाधीयीरन्।

अर्थ-तदनन्तर तीन दिन तक छुट्टी रखें॥23॥

लोमनखानामनिकृन्तनम्॥24॥

अर्थ-एवं तीन दिनों में न बाल कटावें, न नाखून कटवावें॥24॥

एवेफ प्रागुत्सर्गात्॥25॥

उत्सर्गकर्मतः अर्वाक् इच्छन्ति। उत्सर्गश्च अष्टात्मासानधीत्योत्सृजेयु- रित्येवं वक्ष्यमाण इति सूत्रार्थः।

अर्थ-वुफछ आचार्यों का मत है कि जब तक 'उत्सर्ग कर्म' न करना हो तब तक लोमनख्र कृन्तन न कराव, यह उत्सर्ग कर्म कब होता है, इसका विधान आगे लिख्रा है॥८॥

अथ प(ति। श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रवणयुत्तफायां श्रवणरहितायां श्रवणस्य शुक्लपंचम्यां हस्तयुत्तफायामयुत्तफायां वा उपाकर्म अध्यायोपाकर्म भवति। तच्च अध्यापनं वुफर्वन् एव औपासनकस्य न त्वन्यस्य। तत्र प्रथम प्रयोगे विहितमातृपूजापूर्वकं श्रा(माचार्यः आवसथ्याग्नौ प्रवेदनाद्याज्यभागांते विशेषमनुतिष्ठेत्। तंदुलस्थाने अक्षतधाना आसादयेत् प्रोक्षणकाले प्रोक्षेच्च। तथोपकल्पयति औदुंबरीः समिधः दधि आकर्षफलवंफ तिलान् भक्षार्थं धानाः तत आज्यभागांते वेदाहुत्यादीननु मन्त्यंतानं वेदारंभव(ामं विदध्यात्। एकदा सर्ववेदोपाकरणे प्रतिवेदमाज्याहुतिद्वयं द्वयं हुत्वा ब्रह्मणे ददोअ्य इत्यहुतिद्वयं पुनः पुनर्जुहुयात। प्राजापत्याद्या अनु मन्त्यंताः सप्ताहुतीस्तंत्रेण अथ सदसस्पतिमित्यनयर्चा ुवेण आसादिताभिरक्षतधानाभिरेकामाहुतिम् आचार्यो जुहोति इदं सदसस्पतये शिष्या अपि मन्त्र गुरुमनुमन्त्रम् उपांशु पठंति। तत आचार्यः शिष्याश्च सर्वे औदुंबरीमार्द्रा सपलाशं घृतात्तफाम् एवैफकां समिधं तत्सवितुरित्यादिकया सावित्र्या अग्नावादध्युः। ब्रह्मचारिणश्च शिष्याः अग्निकार्यमंत्रेण तथैव समिधम् आदध्युः एवं द्विपरं धानाहोमं विधाय एवैफकां समिधमादध्युः। तत आचार्यः शिष्याश्च उपकल्पितधाना- भ्यास्ति ोक्षतधाना अनबस्रण्डयनतो भक्षयेयुः श ो भवन्तु वाजिन् इत्यानयर्चा। तत आचम्य ततो दधिक्राणो अकारिषमित्येतयर्चा दधि भक्षयेयुः। तत आचमनानन्तरम् आचार्यो यावंतं शिष्य गणं कामयेत् तावतस्तिलालाकर्षपफल- वेफनादाय सावित्र्या जुहुयात् इदं सवित्रे शुक्रज्योः तिस्रित्यतनेनानुवावेफन वा तिलान् जुहुयात् तत्रेदं मरुद्भ इति त्यागः। ततो हुतशेषधानाभ्यः स्वि कृतं हुत्वा महाव्याहृत्यादिप्राजापत्यांता नवाहुतीर्हुत्वा सं वप्राशनं ब्रह्मणे दक्षिणादानां यथोत्तफं वुफर्यात् ततः प्रत्य मुख्रोपविष्टेभ्यः शिष्येभ्यः प्रा मुख्र आचार्य उपवि म् ॐकारमुक्त्वा त्रिवारं च सावित्रीमुक्त्वा इषे त्वा कृष्णोसीत्येवं मन्त्रस्य अध्यायनामादीन्प्रतीकान्ब्रूयात्। तथा च व्रतमुपेष्यन्स वै कपालोत्ये- वान्यतर उपदधातीत्येवं च ब्राह्मणस्य ग्वेदानां मंडलादीन् छन्दोगानां पर्वादीन् आथर्वणानां सूत्तफादीन्। ततः सर्वे आचार्यः शिष्याश्च जपंति सह नोवतु सह न इदं वीर्यवदस्तु ब्रह्म इन्द्रस्तद्वेद येन यथा न विद्विषामहै इति अमुं मन्त्र तदनन्तरं त्रिरात्रमनध्यायं वुफर्युः। यतः पअनध्यायेष्वध्ययने प्रज्ञामायुः प्रजां श्रियम्। ब्रह्म वीर्य बलं तेजो निकृन्तति यमः स्वयम्॥ मन्त्रवीर्यक्षयभयदिन्द्रो वज्रेण हंति च। ब्रह्मराक्षसतां चैति नरवंफ च भवेद् ध्रुवम्॥ लोमनख्रानां च निकृन्तनं न वुफर्युः। त्रिरात्रमेव प्रागुत्सर्गाद्वा लोमनख्रानां च निकृन्तनं वर्जयेयुः। अतः मन्त्रब्राह्मणयोः शुक्लकृष्णपक्षे उत्सर्जन यावत् निरंतरं मन्त्रं ब्रह्मणं च अधीयीरन् आचार्येणाध्या ष्यमानाः शिष्याः॥ इत्युपाकर्म॥

इदानीं त्रिरात्रं नाधीयीरंर त्यनध्यायप्रसंगादनध्यायानाह-

एकादश कण्डिका

अनध्याय अर्थात् अवकाश वर्णन

वाते(मावास्यायां सर्वानध्यायः॥७॥

वाते वायौ प्रचण्डे वाति सति वातमात्रस्य सर्वदा विद्यमानत्वात् नानध्यायनिमित्तता अमावास्यायां दर्शे च सर्वानध्याः सर्वेषु वेदेषु वेदांगेषु अनध्ययननिवृत्तिः सर्वानध्यायः मतांतरे यदगुरुमुख्राच्छिष्यते शिल्पश्रमादि तत्राप्यनध्यायः। यतः शिल्पिनः स्थपत्यादयः श्रमिणो मल्लादयः अनध्यायं मन्यतो दृश्यंते अतो यत्किंचिदुपाध्यायतः अधीयतेश्रूयते वा शिष्यते वा तत्र सर्वत्रानध्यायः। स चानध्यायः गुरो सकाशात् अनधीताध्ययने अध्यापक-धर्मप्रकरणात् न गुणतेपि। वेफचित्तु सर्वशब्दस्य गुणनादिविषयतां मन्यंते। तन्मतेना(पूर्वाध्ययन नाधीतस्याभ्यसनमिति।

अर्थ-अनध्याय वेफ प्रस से कब-कब अनध्याय करना चाहिये, यह परिगणना करते हैं-जब प्रचण्ड वायु चल रही हो, तथा अमावस्या की तिथि हो, तब वेदाध्ययन की छुट्टी रख्रें॥७॥

श्रा(ाशने चोल्कावस्पुफर्ज्जद्भूमिचलनाग्न्युत्पातेष्वृतुसंधिषु चा((कालम्॥८॥

एकस्य तोः अत अपरस्य यावदप्रवृत्तिः स काल उच्यते तत्रापि कालिकता नोपपद्यते तत पूर्वस्यत्ता अत्या रात्रेः उत्तरस्य आद्यमहः तावानध्यायः।

अर्थ-श्रा(खाने पर, अजीर्ण होने पर, उल्कापात अर्थात् तारे टूटने पर, बिजली वेफ चमकने पर, भूमिकम्प होने पर, अग्नि लग जाने पर, उक्त उत्पातों वेफ होने पर तथा तुसन्धि होने पर इन सब अनध्यायों पर छुट्टी रहे। पर जब तक यह काल समाप्त न हो तब तक का ही अनध्याय हो॥2॥

उत्सृष्टेष्वभ्रदर्शने सर्वरूपे च त्रिरात्रं त्रिसन्ध्यं वा॥3॥

उत्सृष्टेषु छन्दःसु वक्ष्यमाणेन विधिना छन्दसामुत्सर्गे कृते अनध्यायाः अभ्रस्य अतिशयितस्य मेघस्य दर्शने आविर्भावे विद्युदभ्रवायुवृष्टिगर्जितानां युगपत्प्रवृत्तिः सर्वरूपं तस्मिन् सर्वरूपे च त्रिरात्रं त्रीण्यहोरात्राणि वा त्रिसंध्यं संध्यात्रयम् अनध्याया इति चकारेणानुगृह्यते अन्येषां पक्षे अभ्रदर्शने त्रिसंध्यं सर्वरूपे त्रिरात्रमिति व्यवस्थितो विकल्पः।

अर्थ-एवं वेद का उत्सर्ग कर देने पर, मेघों का घनघोर रूप में उदय होने पर, तब तक का, अन्धकार तथा विद्युत, बादल, तेज वायु इन सब वेफ साथ होने पर तीन दिन अथवा त्रिसन्ध्य एक दिन का अवकाश रहे॥3॥

भुक्त्वार्द्रपाणिरुदवेफ निशायां संधिवेलयोरंतःशवे ग्रामेन्तर्दिवा- कीर्त्ये॥4॥

भुक्त्वा(शित्वा यावद्रार्द्रपाणिस्तावदनध्याय इत्यनुषंगः। उदवेफ यावत्तिष्ठति तावत् निशायां महानिशायां ‘महानिशा च विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम्’ इति स्मरणात् ‘रात्रेः पूर्वोत्तरौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत्’ इति वचनेन रात्रेः पूर्वचतुर्थयामयोः वेदाभ्यासविधानाद् द्वितीयतृतीयप्रहरयोः परिशेषादाध्याय इत्यर्थात् महानिशा लभ्यते संधिवेलयोः अहोरात्रयोः संधिवेलयोः संध्याकालयोरित्यर्थः। अन्तर्मध्ये शवः मृतशरीरं यत् सः तस्मि ग्रामे तावदनध्यायः दिवा अ कीर्त्यं पठनीयं यत् प्रवर्ग्यादि तद्दिवाकीर्त्यं तस्मिन्न विषये अन्तः ग्राममध्ये अनध्यायः पक्षांतरे तु संनिहितो दिवाकीर्ति ण्डालो यत्र सोंतर्दिवाकीर्त्यो देशः तत्रानध्यायः।

अर्थ-खाने वेफ बाद जब तक हाथ गीले रहें तब तक छुट्टी। जब तक जल में स्नान आदि करे तब तक। रात्रि वेफ बीच वेफ दो प्रहरों में। रात वा दिन की सन्धि वेला में। जब तक ग्राम वेफ अन्दर किसी मृत व्यक्ति का शरीर रहे जब तक दिवाकीर्त्य दिन में पठनीय प्रवर्ग्यादि वेफ पटन समय अन्तः ग्राममध्य में रहते हुए अनध्याय है॥4॥

धावतो(भिशस्तपतितदर्शनाश्चर्याभ्युदयेषु च तत्कालम्॥5॥

धावतः शीघ्रं गच्छतः अभिशस्तः ब्रह्महत्यादिपापेनाभियुक्तः पतितः ब्रह्महत्यादिना पापेन अभिशस्त पतित अभिशस्तपतितो तयोर्दर्शनम् आ र्यमद्भुतम्। उभ्युदयः पुत्रजन्मविवाहादि, एतेषु धावतादिनिमित्तेषु तत्कालं यावन्निमितं तावत्काल।

अर्थ-दौड़ते हुए अनध्याय होता है। अभिशस्त=गोहत्यादि पापों से युक्त और पतित=ब्रह्महत्या आदि से पतित वेफ दर्शन होने पर, तथा किसी आश्चर्यमय बाजीगर आदि वेफ खेल वेफ देखने वेफ समय तक, विवाह पुत्र जन्म आदि अभ्युदय कार्यों वेफ समय उतने समय की छुट्टी रखें॥5॥

नीहारे वादित्रशब्द आर्त्तस्वने ग्रामांते श्मशाने श्वगर्दभोलूकशृगाल- सामशब्देषु शिष्टाचरिते तत्कालम्॥6॥

नीहारे धूमिकायां वादित्राणां मृदंगादीनां शब्दे आर्त्तस्य सुदुःखितस्य स्वने शब्दे ग्रामस्यांते सीम्नि श्मशाने प्रेमभूतौ श्वा च गर्दभ उलूक शृगाल साम च श्वगर्दभोलूक शृगालसामानि तेषां शब्दे श्रूयमाणे शिष्टाचरिते वा शिष्टस्य श्रोत्रियस्य आचरिते आगमने तत्कालं यावत्ति मित्तं तावत्काल- मनध्यायः।

अर्थ-कुहरे वेफ समय, बाजों या नगाड़ों की ध्वनि होने पर, विलाप की आवाज आने पर, ग्राम की सीमा पर, श्मशान में कुत्ते, उल्लु और गीदड़ वेफ चिल्लाने पर, जब तक सामवेद की ध्वनि हो उतनी देर अनध्याय रहे॥6॥

उपलक्षणविधया रेल की सीटी तथा रेल वेफ पास से निकलने तक भी छुट्टी रहे-

गुरौ प्रेते(पोभ्यवेयादशरात्रं चोपरमेत्॥7॥

नाम सोमयागे त्विजां दोक्षितस्य च आज्याभिमर्शनलक्षणं कर्म समानं ताननप्त्रं येतास्ति इति स तानूनप्त्री तस्मिन् सतानूनप्त्रिणि प्रेते समाने तुल्ये ब्रह्मणि वेदे चरित च सब्रह्मचारी तस्मिन् सब्रह्मचारिणि सहाध्यायिनि समानाचार्ये प्रेते त्रिरात्रमन अध्यायः।

अर्थ-जो व्यक्ति तानुनप्त्र नामक कर्म में एक साथ दीक्षित होते हैं वे सतानूनप्त्रक कहलाते हैं। यह तानूनप्त्र घृताभिधारण नामक एक कर्म विशेष है जो सोम भागों में किया जाता है, उस तानूनप्त्र नामक कर्म वेफ साथी की मृत्यु होने पर, सहपाठी की मृत्यु होने पर भी तीन दिन का अनध्याय रखे।।8।।

एकरात्रमसब्रह्मचारिणी।।9।।

न सब्रह्मचारी असब्रह्मचारी तस्मिन् असब्रह्मचारिणि भि ाचार्ये सहाध्यायिनि प्रेते एकरात्रमनध्यायः।

अर्थ-यदि सहपाठी न हो किन्तु उस विद्यालय में भि गुरु से पढ़ता हो तो एक दिन का अनध्याय रखे।।9।।

अर्(षष्ठान्मासानधीत्योत्सृजेयः।।10।।

अर्: ष ो मासो येषां मासानां ते अर्(ष ाः तान् अधीत्य पठित्वा उत्सृजेयुः पूर्व श्रावण्यादौ उपाकृतानि छन्दांसि।

अर्थ-साढ़े पाँच मास तक वेदाध्ययन करवेफ पिफर विराम रखे।।10।।

अर्(सप्तमान्वा।।11।।

अर्: सप्तमो येषां ते अर्(सप्तमासास्तान्मासान्वा अधीत्य उत्सृजेयुरिति पूर्वोत्तफेन सम्बन्धः। अत्र छन्दसामुत्सर्गोपदेशात अंगाध्ययनमनुज्ञायते।

अथेमामृचं जपंति उभा कवी युवा यो नो धर्मः परापतत्। परिसंख्यस्य धर्मणो विसख्यानि सृजामहे इति।।12।।

अथेमामृचं जपन्ति उभाकवी युवा इति आचार्येण सह शिष्या उभा कवी युवा इतीमामृचं जपन्ति उभा कवी युवा यो तो धर्मः परापतत् परिसख्यस्य धर्मिणो वि सख्यानि सृजामहे इति इमामृचं जपंति।

अर्थ-अथवा साढ़े छः मास तक पढ़ने वेफ बाद विराम करे। अध्ययन का उत्सर्ग करते हुए गुरु और शिष्य निम्नलिखित मन्त्र का पाठ करें-

''उभा कवी युवा यो नो धर्मः परापतत्। परि सख्यस्य धर्मणो वि सख्यानि सृजामहे''।।12।।

मन्त्रार्थ-अश्विनीवुफमारो! गुरु प्रजापति! तुम दोनों क्रान्तदर्शी हो, तुम दोनों की कृपा से जो हमारी मैत्री की रक्षा वेफ लिए प्राप्त हुआ है, उसवेफ द्वारा हम द्वेष को दूर करते हैं। तथा वह धर्म हमारा परस्परोपकारक ही रहे।

त्रिरात्र सहोष्य विप्रतिष्ठेरन्।।13।।

त्रिरात्रं सह एकत्र उषित्वा विप्रति ेरन् विप्रपासं वुफर्युः विशेषेण प्रवासं वुफर्युरिति सूत्रार्थः।

अर्थ-एतदनन्तर तीन दिन गुरु शिष्य साथ करवेफ भि -भि दिशाओं में यथास्थान प्रस्थान करें।।13।।

द्वादशी कण्डिका

अध्ययन उत्सर्ग वर्णन

व्याख्याकार पौष की ही अष्टमी लेते हैं, तथा अन्य मध्यमा का अर्थ अमावास्या भी करते हैंद्ध वेद का पठन पाठन छोड़े दें, जिसका स्वाध्याय आरम्भ किया है, उसका अगले उपाकरण तक स्वाध्याय न करें।।1।।

उदकांतं गत्वादभिर्देवान्छन्दांसि वेदानृषीन्पुराणाचार्यान्गंधर्वानितरा- चार्यान्संवत्सरं च सावयवं पितृनाचार्यान्स्वांश्च तर्पयेयुः।।2।।

कथमुत्सृजेरि त्यपेक्षायामुच्यते उदकांतं नद्यामुदकसमीपं गत्वा उदकसमीपगमनात् स्नानं लक्ष्यते। ननु फ्पक्षद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रज-स्वलाः। तासु स्नानं न वुफर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः।।य इति छंदोगपरिशिष्टे नदीस्नानस्य निषेधात् कथं मद्यायुच्यते? सत्यम् फउपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्योपरागे च रजोदोषो न विद्यतेय इत्यपवादवचनात् न दोषः। ततो यथाविधि स्नात्व माध्या वंफ कर्म देवा गातु विद इत्येतत्प्राक्फ निर्वर्त्य सप्तर्षिपूजावंशानुपठनानंतरं देवास्तृप्यंतां छन्दासि तृप्येतामित्येवम् आचार्यान्तात् यज्ञोपवीतिनस्तर्पयेयुः आचार्यसंहिताः शिष्याः। ततः प्राचीनावीतिनो दक्षिणामुख्रा नामगोत्रोच्चारणपूर्वक स्वां पितृपितामहपितामहान् तर्पयेयुः। अनंतरं स्नानवस्त्रं निष्पीड चम्य देवा गातुं विद इत्यनयर्चा समापेयुः।

अर्थ-उत्सर्ग का प्रकार बतलाते हैं कि-उदकान्त=नदी वेफ समीप जाकर अर्थात् स्नान करवेफ आचार्य सहित शिष्य देवों को, छन्दों को, वेदों को,)षियों को, पुराणाचार्यों को, गन्धर्वों को, आचार्यों को, सावयव संवत्सरों को, पितरों को तर्पण द्वारा सन्तुष्ट करें।।2।।

सावित्रीं चतुरनुद्रुत्य विरताः स्म ईति प्रब्रूयुः।।3।।

ततः सावित्रीं तत्सवितुरीत्यादिकां चतुःकृत्वो(नुद्रुत्य पठित्वा विरताः स्म इत्याचार्यप्रमुख्राः शिष्याः सर्वे ब्रूयुः।

अर्थ-तदनन्तर सावित्री को 4 चार बार बोलकर 'विरताः स्मः' हम उत्सर्ग का कार्य समाप्त कर चुवेफ, यह कहें।।3।।

क्षपणं प्रवचनं च पूर्ववत्।।4।।

क्षपणम् अनध्ययनं लोमनख्रानामनिकृन्तनं च प्रवचनम् अध्यायादीनां पठनं पूर्ववत् उपाकरणकालवत्। ततद्दिरात्रानंतरं शुक्लपक्षेषु छन्दास्यधीयीरन् कृष्णपक्षेष्वंगानि ततः पुनरर्द्धषष्टमासान्(सप्तमासान्वा सामान्यधीत्य एव- मेवोत्सर्गं विधाय उभा कवी युवेत्यादिकाम्)चं जपित्वा त्रिरात्रमेकरात्र- स्थाय यथेष्टं विप्रतिष्ठेरन् पृथक्-पृथक् गच्छेयुः। ततः पुनरुपाकरणकाले। उपाकृत्य अध्ययनं यावदुत्सर्गं इति सूत्रार्थः।

अर्थ-क्षपण=तीन दिन तक ध्याय और लोम नख्रादि न काटना और प्रवचन=अग्निमीडे, इशे त्वा, अग्न आयाहि, शन्नो देवीः, सह नो(स्तु, उभा कवी इन मन्त्रों का पाठ अध्यायों या कर्म वेफ समान करें।।4।।

त्रयोदशी कण्डिका

प्रथम बार हल जोतने की विधि

पुण्याहे लांगलयोजनम्।।1।।

प्रथमं कृषिप्रवृत्तस्यैतत्कर्मोच्यते पुण्याहे उदगयनशुक्ल पक्षादिव्युदासेन चन्द्रतारानुवूफले दिवसे लांगलस्य हलस्य योजनं प्रवर्त्तनं।

अर्थ-पुण्य नक्षत्र में हल जोते।।1।।

ज्येष्ठया वेंद्रदैवत्यम्।।2।।

पक्षांतरमाह यद्वा अपुण्याहे(पि ज्येष्ठया नक्षत्रेण युते लांगलयोजनं वुफतः इन्द्रदेवत्या ज्येष्ठा यतः इन्द्रायत्ता च कृषिरिति। एतच्च मातृपूजा((भ्यु- दयिकश्रा(पूर्वकम्।

अर्थ-अथवा बिना पुष्य नक्षत्र वेफ भी यदि ज्येष्ठा नक्षत्र आ जावे तो हल जोत दे, क्योंकि नक्षत्र का देवता इन्द्र है। तथा इन्द्र वेफ अधीन कृषि होती है।।2।।

इन्द्रं पर्जन्यमश्विनौ मरुत उदलाकाश्यपं स्वातिकारीं सीतामनुमतिं च दध्ना तंडुलैर्गंधैरक्षतैरिष्ट्वा(नडुहो मधुघृते प्राशयेत्।।3।।

तत्र इंद्रादीनतुमत्यं तान् देवताविशेषान् दध्ना तंडुलैरक्षतैः अक्षतान् यवान् इष्ट्वा नमोन्तर्नाममंत्रैः बलिहरणेन संपूज्य अनडुहो वृषभान् षडादीन् मधुहृते मिलितेन प्राशयेत्। तद्यथा दधितंडुलगंधाक्षतान् पात्रे कृत्वा शुचिगचांतः प्रा ्मुख्र उपविश्य कृषिक्षेत्रैकदेशे गोमयोपलिप्ते हस्तेन गृहीत्वा इन्द्राय नमः पर्जन्याय नमः अश्विभ्यां नमः मरुद्भ्यो नमः उदलाकाश्यपाय नमः स्वातिकायै नमः सीतायै नमः अनुमत्यै नमः यथामन्वं त्यागा इदमादिका नमोरहिताः। एवमष्टौ बलीन् प्राक्संस्थान दद्यात् ततो बलीवर्दान् मधुघृते पात्रे कृत्वा तूष्णीं प्रत्येक प्राशयेत् लेहयत्।

अर्थ-इन्द्र, पर्जन्य, दोनों अश्विनी वुफमार, मरुत, उदलाकाश्यप, स्वातिकारी, सीता और अनुमति नाम वेफ आठ देवता विशेषों को इन्द्राय नमः' इस प्रकार मन्त्रोच्चारण पूर्वक दही, चावल, गन्ध और जौ ;अक्षतद्ध का होम करे, तथा पिफर प्रत्येक बैल को शहद और घी बिना मन्त्र वेफ ही चटावे।।3।।

सीग युञ्जन्तीति योजयेत्।।4।।

सीग युञ्जन्तीत्यनयर्चा वृषभो हले योजयेद्दक्षिणोत्तरक्रमेण शुनं सुपफाला इत्यनयर्चा भूमिं कृषेत्।

अर्थ-तदनन्तर ''सीग युञ्जन्ति'' ;यजु0 12।67द्ध इस मन्त्र वेफ हल में बैल जोड़े।।4।।

शुनं सुपफाला इति कृषेत् पफालं वा लभेत्।।5।।

यद्वा शुनं सुपफाला इति पफालमभिमृशेत् तल्लिगंत्वान्मन्त्रयोः।

अर्थ-''शुनं सुपफालः'' ;यजु0 12।69द्ध इस मन्त्र से भूमि को जोते, या हल में पफाली को ठीक से लगाकर पिफर जोतना आरम्भ करे।।5।।

नवाग्न्युपदेशात्।।6।।

न वा एतौ योजने कर्षणे मन्त्रौ भवतः। वुफतः? अग्नो अग्निचयने एतयोः उपदेशात्। नच अग्नि प्रकरणे आम्नातयोस्तयोपदेशः न वातिदेशः।

वपनानुषंगाच्च।।7।।

इतोऽपि मन्त्रौ न भवतः अग्निप्रकरणे बीजवपने ये मन्त्रा या ओषधीरित्याद्या विनियुक्ताः तेषामपि अत्रानुषंगः स्यात्। यदि लिंगमात्रेणोपदेशाभावेपि नियुज्यते तदा वपनमंत्रा अपि तल्लिगत्वाद्विनियोजनीया भवेयुर्न चैतदिष्यते।

अग्यमभिषिच्यावुफष्टं तदाकृषेयुः।।8।।

अग्यं श्रेष्ठं बलीवर्दम् अभिषिच्य गंधमाल्यादिभिर्भूषयित्वा अकृष्टम् अविलिखितं तत्क्षेत्रम् आकर्षयेयुः विलिखेयुः इति लांगलयोजनम्। इति सूत्रार्थः।।

अर्थ-वुफछ आचार्यों का मत है कि इन दोनों मन्त्रों को बिना बोले ही बलीवर्द भोजन तथा कर्षण करे क्योंकि उक्त दोनों मन्त्र अग्निचयन प्रकरण में नियुक्त है। यदि उक्त मन्त्रों का अतिदेश मानें तो गण अग्निचय प्रकरणोक्त धान्यवपन मन्त्रों का तथा ''या ओषधीः'' इत्यादि का भी अतिदेश प्रस होगा। उत्तम बैल को घण्टा आदि से अल ्कृत करवेफ जिस खेत को नहीं जोता है उसे जोते।।6-8।।

स्थालीपाकस्य पूर्ववद्देवता यजेदुभयोर्व्रीहियवयोः प्रवपन्त्सीतायज्ञे च।।9।।

ततो ब्राह्मणभोजनम्।।१०।।

इति सूत्रार्थः। अथ प्रयोगः।। तत्र प्रथमप्रयोगे मातृतूजाभ्युदयिकानंतरम् आवसथ्याग्नौ ब्रह्मोपवेशनादिप्राशनांते तण्डुलस्थाने पूर्वोसि(स्थालीपाकमासाद्य प्रोक्षणकाले प्रोक्षेत्। तत आज्यभागानन्तरं स्थालीपावेफन लांगलयोजनदेवताभ्यो तुहुयात् तद्यथा इन्द्राय स्वाहा इदमिंद्राय तथा पर्जन्याय स्वाहा इदं पर्जन्याय अश्विभ्यां स्वाहा इदमश्विभ्यां मरुदभ्यः स्वाहा इदं मरुदभ्यः उदलाकाश्यपाय स्वाहा इदमुदलाकाश्यपाय स्वातिकायै स्वाहा इदं स्वातिकायै सीतायै स्वाहा इदं सीतायै अनुमत्यै स्वाहा इदमनुमत्यै। ततोऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति हुत्वा आज्येन नवाहुतीश्च हुत्वा प्राशनं ब्रह्मणे दक्षिणादानब्राह्मणभोजनानि वुफर्यात् इति व्रीहियववपनकर्म।। सीतायज्ञे च एताश्च देवताः स्थालीपावेफन यजेत् इत्यतिदेशः।

अर्थ-तदनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन करावे।।१०।।

चतुर्दशी कण्डिका

श्रवण कर्म विधि

अथातः श्रवणाकर्म।।१।।

अथेदानीम् आवसथ्याग्निसाध्यकर्मणां प्रकृतत्वात् श्रवणाकर्मोच्यत इति शेषः।

अर्थ-अब श्रवण कर्म व्याख्या करते हैं। श्रवण या श्रवणा नक्षत्र में होने वेफ कारण श्रवण कर्म कहाता है।।१।।

श्रावण्यां पौर्णमास्याम्।।२।।

तच्च श्रावणमास्य शुक्ल पंचदश्यां कर्त्तव्यं।

अर्थ-यह श्रावणी पौर्णमाशी या पूर्णिमा को ही किया जाता है। अन्य गौणकाल में नहीं।।२।।

स्थालीपावंफ श्रपयित्वाक्षतधाना ैकपालं पुरोडाशम्।।३।।

स्थालीपावंफ चरुम् अक्षतधानाः अक्षतानां सतुषाणां यवानां धानाः अक्षतधानाः ताश्च श्रपयित्वा एककपालम् एकस्मिन् कपाले श्रप्यत इत्येककपालं तं पुरोडाशं चश्रपयित्वेत्यनुषज्यते। अन्यथा तद्भूतोपादानं स्यात् अतश्च धानापुरोडाशयोः श्रवणोपदेशात् भर्जनकपालयोरपिआसादनप्रोक्षणे भवतः अर्थवतां प्रोक्षणविशेषेणोपदिश्यते।

अर्थ-स्थालीपाक चरु को पकाकर एक कपाल में पचनीय पुरोडाश को पकाकर तुष सहित जौ को अक्षत धाना कहते हैं। उन्हें भी भूनकर उनमें से बहुत से भूने धानों को पीस डालें। पिफर दो आज्याभाग आहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से आज्याहुतियाँ दें।।३।।

धानानां भूयसीः पि ाज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति अप ेत पदा जही पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारुणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबांधवैः स्वाहा।।४।।

धानानां भर्जितानां यवानां मध्ये भूयसीः बहीः पिष्ट्वा सक्तुन्मापाद्य प्रतिमन्त्रं द्वे आज्याहुती जुहोति।

अर्थ-वे मन्त्र हैं-अप श्वेत पदा० इत्यादि।।४।।

न वै ेतस्याध्याचारेहिं ददर्श क न श्वेताय वैदर्व्याय नमः स्वाहेति।।५।।
स्थालीपाकस्य जुहोति विष्णवे श्रवणाय श्रवण्यै पौर्णमास्यै वर्षाभ्यश्चेति।।६।।

पिता माता च भार्या च दुहिता भगिनी तथा पितृष्वसा मातृष्वसा सप्त गोत्राण्यमूनि वै।। इति।। तदनन्तर स्थालीपाकचरु की चार आहुतियाँ विष्णु श्रावणा आदि वेफ उद्देश्य से दो।।8-6।।

धानावन्तमिति धानानाम्।।7।।

धानावतं करंभिणमित्यनयर्चा धानानामेकामाहुतिं जुहोति।

अर्थ-'धानावन्तं' इत्यादि मन्त्र से पिष्ट धानों की भी एक आहुति दो।।7।।

घृताक्तान्सक्तून्सर्पेभ्यो जुहोति।।8।।

अर्थ-घी में सने हुए सत्तुओं का सर्पों वेफ उद्देश्य से हवन करो।।8।।

आग्नेयपांडुपार्थिवानां सर्पाणामधिपतये स्वा श्वेतवायवान्तरि- क्षाणां सपांणामधिपतये स्वाहा अभिभूः सौर्यदिव्यनां सर्पाणामधि- पतये स्वाहेति।।9।।

घृतेन आज्येन आक्ताः अभिधारिताः घृतात्ता तान् सक्तून् सर्पेभ्यः आग्नेयपांडुपार्थिवेत्यादिभिर्मंत्रैः प्रतिमंत्रम् एवैफकामेव तिस्त्र आहुतीर्जुहोति।

यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है-धानावन्तं करम्भिणम् अपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः।। ;यजु0 20।29द्ध।।

अर्थ-उस उसम आग्नेय0 श्वेतवायव्य0 अभिभूः इत्यादि तीन मन्त्रों से आहुति दो।।9।।

सर्वहुतमेककपालं ध्रुवाय भौमाय स्वाहेति।।10।।

तत एककपालं पुरोडाशं सर्वहुतं यथा भवति तथा ध्रुवाय भौमाय स्वाहेत्मनेन मन्त्रेण जुहोति। ततः स्थालीपाकधानासक्तुभ्यः स्विष्टकृ(ोमः।

अर्थ-सक्तु होम वेफ बाद सर्वहुत आहुति दो। पिफर स्विष्टकृत् आहुति दो।।10।।

प्राशनांते सक्तूनामेकदेशं शूर्पे न्यूप्योवनिष्क्रम्य बहिःशालायाः स्थंडिलमुपलित्योल्कायां ध्रियमाणायां मान्तरागमतेत्युक्त्वा वाग्यतः सर्वानवनेजयति।।11।।

आग्नेयपांडुपार्थिवानां सर्पाणामधिपते(वनेनिक्ष्व `तवायवांतरिक्षणां सर्पाणामधिपते(वनेनिक्ष्व अभिभूः सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपते(वने- निक्ष्वेति।।12।।

प्राशनांते सं वप्राशनानंतरं सक्तूनामेकदेशं बलित्रयपर्याप्तं शूर्पे शरेषीकावंशात्यतममये इच्छापरिमाणे न्युप्य कृत्वा उपनिष्क्रम्य शालायाः सकाशान्निर्गत्य बहि। अंगणे स्थंडिलं भूमिं स्वमेव गोमयेनोपलिप्य अत्र सर्पानवनेजयतीत्यस्याः क्रियाया उपलेपनक्रियायाश्च एककर्त्तव्यत्वेन पूर्वकालीनस्योपलेपनस्य ल्यबन्तत्वं 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' इति पाणिनिना ल्यप्स्मरणात् तेन अत्र स्थंडिलयस्य स्वयं पूर्वमुपलेपतम्। उल्कायां ध्रियमाणायां ज्वलति काष्टे(न्येत ध्रियमाणो मांतरागमत आवसथ्यस्य मम च अन्तराले मागच्छत इत्युक्त्वा अभिधाय वाग्यतो मौती सर्पात् आग्नेयश्वेत-अभिभूरित्यादिभिस्त्रिभिर्मंत्रै अवनेनिक्ष्वेत्येतदन्तैः प्राक्संस्थानवनेजयति अवनिक्तान् शुचीन् करोति।

अर्थ-सं वभक्षण वेफ बाद सत्तुओं का वुफछ शेष भाग सूप में रखकर मकान से बाहर जाकर आंगन को लीपकर ;स्थपिण्डलद्ध उल्का वेफ प्रकाश में ''मा अन्तरागमत'' ;सर्पो तुम घर में कभी मत घुसोद्ध। या ''मेरी वुफण्डाग्नि तथा उपलेपन स्थल वेफ बीच में कोई मत जाओ'' यह कहता हुआ मौन होकर सर्पोद्देश्य से प्रोक्षण करो।।11।।

अर्थ-जिन मन्त्रों से अवनेजन ;प्रोक्षणद्ध करे वे मन्त्र 'आग्नेय0' 'श्वेतायव0' 'अभिभूः' इत्यादि तीन हैं, इन्हें प्रोक्षण वेफ समय बोले।।12।।

यथावनिक्तं दर्व्योपघातं सक्तुन्त्यसर्पेभ्यो बलिं हरति।।13।।

सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपते प्रलिखस्वेति॥१६॥

अधिपत एष ते बलिरिति यथावनिक्तं येषु देशेषु अवनेजनं कृतं यथावनिक्तमनतिक्रम्येत्यर्थः। दर्व्या प्रादेशमात्र्या द्व ंगुष्टपर्वविस्तीर्णाया पालाशाद्यन्य तमयज्ञियवृक्षोद्भवया उपघातम् उपहत्योपहत्य गृहीत्वा गृहीत्वा आग्नेयेत्यादिभि स्त्रिभिर्मंत्रैः एष ते बलिरित्येतदंतैः प्रतिमंत्र सर्पेभ्यो बलि हरति ददाति। उपघातमितिणमुल्प्रत्ययांतः उपपूर्वो हतिग्रहणार्थः। अथ स्त्रुवेणोपहत्याज्यमितिवत् अवनेज्य पूर्ववत्ककतैः प्रलिखत्याग्नेयेत्यादि प्रलिखस्वेत्यन्तम् अवनेज्य अवनेजनं दत्त्वा कथं पूर्ववत्वंफकतैर्बैवंफकतीयैः प्रादेशमात्रैः त्रिभिरेकतोदन्तैः समुच्चितैः आग्नेयेत्यादिभिस्त्रिभिर्मंत्रैः प्रलिखस्वे- त्यंतैर्यथासंख्यं प्रतिबलिं प्रलिखति वंफड्यति।

अर्थ-जिस स्थान पर अवनेजन किया है, उस पर चमस से सत्तुओं को लेकर सर्पों वेफ उद्देश्य से बलि दे। तथा निम्नलिखित तीन मन्त्र बोले व तीन बार बलि दे। ;मन्त्र मूल में देखिएद्ध॥ *13-14*॥

;यहां दर्वी से उपघात करवेफ इस वाक्य में उप पूर्वक हन् धातु का ग्रहण अर्थ है जैसे-' ुवेणोपहत्या।ज्यम्' इस वाक्य में उपहनन का ग्रहण अर्थ होता हैद्ध।

अर्थ-पिफर अवनेजन करवेफ बड़े बड़े कन्यों से भूमि का विलेखन करे तथा निम्नलिखित मन्त्र बोलता जाय॥*15-16*॥

अजंनानुलेपनं जश्चांजस्वानुलिंपस्व जो।पि नह्यस्वेति॥१७॥

अंजनं कज्जलं लौकिकदीपजं त्रैकवुफदं सौवीर वा इति प्रसि(वा अनुलेपनं सुरभिचन्दनादि जः पुष्पमाला आग्नेयेत्यादिभिस्त्रिभिर्मन्त्रैः अंजस्व अनुलिंपस्व जोसि नह्यस्वेत्यन्तैः प्रतिमन्त्रं प्रतिबलिहरणमेवैफवंफ यथाक्रमं ददाति।

अर्थ-तदनन्तर प्रत्येक बलि मन्त्र वेफ साथ अंजन दे, चन्दनानुलेपन दे, माला पहिनावे-तथा अंजस्व, अनुलिम्पस्व, उपनह्यस्व बोले ॥*17*॥

सक्तुशेषं स्थण्डिले न्युप्योदपात्रेणोपनिनीयोपतिष्ठते नमो।स्तु सर्पेभ्य इति तिसृभिः॥१८॥

सक्तुशेषं यच्छूर्पे न्युप्यातीतं बल्यर्थं बलिदानायोपलिप्तैकदेशे न्युप्य शूर्पेणैव क्षिप्त्वा उदपात्रेण जलपात्रेण उपनिनीय प्रवाह्य नमोस्तु सर्पेभ्य इति तिसृभि)ग्भिः सर्पानुपतिष्ठते बल्यभिमुखस्तिष्ठन् स्तौति।

अर्थ-बाकी बचे सत्तुओं को स्थण्डिल पर छोड़ दे, उन पर जलपात्र से जल सेचन करे तथा 'नमोस्तु सर्पेभ्यः' इत्यादि यजुर्वेद वेफ *13*वें अध्याय वेफ 'नमो।स्तु सर्पेभ्यो ये वेफ च पृथिवीमनु'॥ ''या इषवो यातुधानानाम्0॥7॥ ये वा।मी रोचेन दिवो0॥ इन तीन मन्त्रों का पाठ करे॥*18*॥

स यावत्कामयेत न सर्पा अभ्युपेयुरिति तावत्सन्ततयोदधारया निवेशनं त्रिः परिषिंचन्परीयादप श्वेत पदा जहीति द्वाभ्याम्॥१९॥

द्वाभ्यां स गृहपतिः यावत् देशं सर्पाः नागा नाभ्युपेयुर्न संचरेयु इति कामयेत् इच्छेत् तावंतं देशं संततया अनवच्छिन्नया उदधारया सलिलधारया निवेशनं गृहं परिषिचन् त्रिः परीयात् त्रीन्वारान् गृहस्य समंतात् प्रादक्षिण्येन परिक्रम्य गच्छेत् कथम् अप श्वेत पदा जहिति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां।

अर्थ-वह गृहपति जितने हिस्से में चाहे कि सर्प न रहें घर वेफ उतने हिस्से को तीन बार सींचे और परिक्रमा भी साथ-साथ करे।

तथा "अप श्वेत पदा जहि" इन पूर्वोक्त दो मन्त्रों का साथ ही पाठ करता जाय॥19॥

दर्वीं शूर्पं च प्रक्षाल्य प्रतप्य प्रयच्छति॥20॥

दर्वीं पूर्वोक्तां शूर्पं च प्रक्षाल्य क्षालयित्वा प्रतप्य सकृत्तापयित्वा सन्निधानादुल्कायामेव प्रयच्छति ददाति उल्कधारायाः सन्निधानादेव।

अर्थ-दर्वी वेफ सूप को धोकर व तपाकर उल्का ग्रहण करने वाले व्यक्ति को दे दे॥20॥

द्वारदेशे मार्जयन्त आपो हि ष्ठेति तिसृभिः॥21॥

द्वारदेशे शालायाः द्वारे आपो हि ष्ठेति तिसृभिः)ग्भिः ब्रह्मयजमानो- ल्काधाराः मार्जयन्त अ त्मानमभिषिंचति ब्रह्मयजमानोल्काधाराः बहुवचनोपदेशात्॥

अर्थ-'आपो हि ष्ठाः' ;यजु011।50।52द्ध इत्यादि तीन मन्त्रों से ब्रह्मा यजमान, और उल्का धारण कर्त्ता तीनों अपना-अपना मार्जन करते हैं॥21॥

अनुगुप्तमेतं सक्तुशेषं निधाय ततोऽस्तमितेस्तमितेऽग्निं परिचर्य दर्व्योपघातं हरेदाग्रहायण्याः॥22॥

एतं प्रकृतं सक्तुशेषं होमावशिष्टान्सक्तून् अनुगुप्तं सुरक्षितं यथा भवति तथा निधाय स्थापयित्वा ततस्तस्मात् श्रवणाकर्मकालात् प्रभृति अस्तमिते सूर्ये प्रतिदिनम् अग्निम् आवसथ्यं परिचर्यं सायं होमेन आराध्य दर्व्योपघातं शूर्पे न्युप्तान् सक्तून् सर्पेभ्य उक्तप्रकारेण बलिं हरेत किमवधि आग्रहायण्याः आग्रहायणी पौर्णमासी यावत्। अथवा आग्रहायणीशब्देन तत्कालावधिकम् आग्रहायणीकर्म वक्ष्यते। यत्र हि बलीनामुत्सर्गस्य वक्ष्यमाण-त्वात्। भाष्यकारस्तु तत इति तेभ्यः सक्तुभ्यः दर्व्योपहत्योपहत्यास्तमिते अग्निपरिचरणं कृत्वा बलिं हरेदाग्रहायणीं यावदित्याह स्म। बलि हरणं च अवनेजनदानप्रत्यवनेजनैः वंफकतितगृहपतिं बलीन् हरंतम् आवसथ्याग्नि च अंतरेण मध्ये न गच्छेयुः न विलेख्रनांतरेव।

अर्थ-इस सुरक्षित सक्तुशेष को रख छोड़े तथा जब जब सूर्य छिपे तब तब प्रतिदिन होम करवेफ दर्वी सक्तुशेष की बलि सर्पों को देता रहे जब तक आग्रतायण ;मार्गशीर्षद्ध को पौर्णमासी न आवे तब तक॥22॥

तं हरन्तं नान्तरेण गच्छेयुः ॥23॥

प्राणिनः ततः श्वादयोपि अलं निवार्याः।

अर्थ-बलि देते समय आवसथ्याग्नि और बलि स्थान वेफ मध्य से कोई न गुजरे, वुफत्ते बिल्ली भी न आवें॥23॥

दर्व्याचमनं प्रक्षाल्य निदधाति॥24॥

दर्व्या आचमनं मुखं प्रक्षाल्य निदधाति, स्थापयति प्रत्यहं दर्वीमुख- प्रक्षालनोपदेशात् शूप्रक्षालनाः भावः।

अर्थ-पिफर दर्वी वेफ मुख ;आचमन=मुखद्ध को धोकर प्रतिदिन दर्वी को सुरक्षित स्थान पर रख दें॥24॥

धानाः प्राश्नन्त्य- संस्यूताः॥25॥

धानाः भर्जितान् यवान् प्राश्नन्ति भक्षयन्ति बहुवचनोपदेशात् ब्रह्म- यजमानोल्काराधाः कथंभूताः असंस्यूताः दंतैरलग्नाः अचर्वयन्त्य इत्यर्थः।

अर्थ-ब्रह्मा, यजमान, उल्काधार, आदि धानों को दाँतों से बिना चबाये, ;असंस्यूत=दन्तचर्वणं बिनाद्ध खाते हैं॥25॥

ततो ब्राह्मणभोजनम्॥26॥

इति सूत्रार्थः।

अर्थ-तदनन्तर कर्म की पूर्ति वेफ लिए एक ब्राह्मण को भोजन करावे॥26॥

चरूदेशस्योत्तरतो भर्जनमधिश्रित्य तदुत्तरतः कपालमुपधाय आज्य निरुप्य चरूपात्रे प्रणीतादका- सेचनपूर्वकं तडुलप्रक्षेप कृत्वा ब्रह्मद्वारा आज्यमधिश्रित्य स्वयं चरूमन्येन भर्जने यवानवरेणैककपाले पुरोडशमधिश्रित्य पुरोडाशं प्रथयित्वा यावत्कपालं सर्वेषां पर्यग्निकरणं वुफर्यात्। ततः वंसंस्कृत्याज्यमुद्वास्य चरूं चोद्वास्याज्य- स्योत्तरतः स्थापयित्वा धाना उद्वास्य चरोरूत्तरतो निधाय पुरोडाशमुद्वास्य धानानामुत्तरतः स्थापयेत्। तत आज्योत्पवनावेक्षणप्रोक्षण्युत्पवाति कृत्वा भूयसीर्धानादृशषदुपलाभ्यां पि ा अल्पाः पृथक् स्थापयित्वा घृतेन सक्तून् अक्त्वोपयमनवुफशा, दानाद्याज्यभागांतं कर्म वुफर्यात्। तत आज्येन अप श्वेत पदा जहि पूर्वेण चापरेण च सप्त च वारूणीरिमाः प्रजाः सर्वाश्च राजबांधवैः स्वाहेति इदं श्वेतपदे इति त्यागं विधाय न वै श्वेतस्याध्याचारेहि ददर्श वंफचन श्वेताय वैदव्यार्य नमः स्वाहेति मन्त्रेण द्वितीयामाहुतिं हुत्वा इदं श्वेताय वैदर्व्यायेत्युक्त्वा स्थालीपावेफन चत आहुतीर्जुहोति। यद्यथा विष्णवे स्वाहा इदं विष्णवे श्रवणाय स्वाहा इदं श्रवणाय श्रावण्यै पौर्णमास्यै स्वाहा इदं श्रावण्यै पौर्णमस्यै वर्षाभ्यः स्वाहा इदं वर्षाभ्यः। अथ धानावंतं करंभिणमित्यृचा धानानामेकाहुतिं हुत्वा इदमिद्रायेति त्यक्त्वा सक्तूनामाहुतित्रितयं जूहुयात् यथा आग्नेयपांडुपार्थिवानां सर्पाणामधिपतये स्वाह इदं शब्द युक्तः स्वाहाकाररहितोयमत्र एव त्यागः। त्रिषु श्वेतवायवांतरिक्षाणां सर्पाणामधिपतये स्वाहा अभिभूः सौर्यदिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा ततो ध्रुवाय भौमाय स्वाहेति सर्वं पुरोडाश वे कृत्वा जुहूयात् इदं ध्रुवाय भौमायेति त्यक्त्वा चरूधानासक्तुभ्यः उत्तरतः विंफचित्किचिदादाय स्विष्टकृतं विधाय महाव्याहृ- तिहोमं सं वप्राशनं ब्रह्मणो दक्षिणादानांतं वुफर्यात्। अथ हुतशेषसक्तूनामेकदशं शूर्पेप्रदिप्यादायोपात्रं दर्वीवंफकतयांजनानुलेपनस्त्रजश्च शालाया बहिर्निस्क्रम्य ब्रह्मणा उल्काधारेण सह स्वांगणो हस्तमात्रं स्थंडिलं स्वयमुलिप्य लौकिकाग्न्युल्कायां ध्रियमाणायां गमतेति प्रैषमुच्चार्य वाग्यतः स्थंडिले उदपात्रपादायाग्नय इत्यादिना अधिपते(वनेनिक्ष्वेत्यन्तेन एकत्रावनेजनार्थं जलं दत्त्वा श्वेतवायवेत्यादिना अधिपते(वनेनिक्ष्वेत्तन्तेन द्वितीयम्। अभिभूः सौर्वेत्यादिना तथैव तृतीयं सर्पानवनेजयति। ततो(वनेजनस्थानेषु अवनेजनक्रमेण एतैरेव मन्त्रैरेष ते बलिरित्यतैस्त्रिभिः प्रतिमन्त्रं बलिं हरति। ततः पूर्वदवनेज्य वंफकतत्रयेण प्रलिखस्वेत्यादिना अधिपते(वनेनिक्ष्वेत्तन्तेन एकत्रावनेजार्थ जलं दत्त्वा श्वेतवायवेतयादिना अधिपते(वनेनिक्ष्वेत्तन्तेन द्वितीयम्। अभिभूः सौर्वेत्यादिना तथैव तृतीयं सर्पावनेजयति। ततो(वनेजनस्थानेषु अवनेजनक्रमेण एतैरेव वंफकतत्रयेण प्रलिखस्वेत्यन्तैः एतैरेव मन्त्रैः प्रतिबलिं प्रतिमन्त्रं प्रतिखलति। ततोंजस्वेत्यन्तैरूक्तमन्त्रैः प्रतिबलिं प्रतिमन्त्रमञ्जनं ददाति तथैवानुलिंपस्येत्यनुलेपनम् एवमेव जो नह्य वेति पुष्पमालां दत्त्वा सक्तुशेषं स्थंडिले क्षिप्त्वा उदपात्रजलेन प्रसंप्लाव्य नमोस्तु इत्यादिभिस्तिसृभि)ग्भिः सर्पास्तिष्ठन्नुपतिष्ठते। ततः स गृहपतिः एतावंतं देशं सर्पा न प्रविमेयुरिति यावत्कामयेत तावंतं देश सन्ततोदकधारया त्रिः परिषिचन् गृहं परीयात् अप श्वेत पदा जहीति पूर्वोक्तमन्त्राभ्यां सकृत् द्विस्तूष्णीं ततो दर्वीं शूर्पं च प्रक्षाल्योकायां सकृत्प्रतप्योल्काधारयां प्रयच्छति। अथ शालाद्वारि आपो हि ष्ठेति त्र्यृचेन ब्रह्मयजमानोल्काधाराः मार्जयन्ते जलेनात्मानं ततो धानाः प्राश्नंति ब्रह्म यजमानोल्काधारा अनवखंडयन्त। ततो ब्राह्मणभोजन- मेतावच्छ्र- वणाकर्म।। अथ प्रत्यहं बलिहरणप्रयोगः।। सक्तुशेषं सुगुप्ते भांडे स्थायित्वा ततः अस्तमिते सूर्ये सक्तुदर्वीवंफकतत्रयं निधायोदपात्रं गृहीत्वा सोल्काधारः शालाया बह्रिपलेपनादि परिलेखनांतं बलिहरणमतुदिनं पूर्ववत्वुफर्यात्। आग्रहायणीं यावत् मांतरागमतेति प्रैषाभावे(पि कि त् अन्तरा न गच्छेत् दर्वीमुखमेव प्रक्षालयेदिति अहरहर्बलिदानविधिः।।

प दशी कण्डिका

इन्द्रयज्ञ विधि

प्रौष्ठपद्यामिंद्रयज्ञः।।1।।

प्रौष्ठपदीभाद्रपदीप्रकरणात् पौर्णमासी तस्याम् इंद्रयज्ञनामधेयं कर्म भवति औपासनाग्नौ।

अर्थ-प्रौष्ठपदी=भाद्रपद मास की पूर्णिमा वेफ दिन 'इन्द्रयज्ञ' नामक कर्म करे।।1।।

पायसमैंद्रं श्रपयित्वा(पूपां ापूतैस्तीर्त्वा((ज्यभागावि ाज्याहुतीर्जुहोतींद्रायेंद्राण्या(अजायैकपदे(हिर्बुध्न्याय प्रौष्ठपदाभ्य ेति।।2।।

पायसं पयसा सि(चरूम् ऐंद्रम् इन्द्रदैवत्यं श्रपयित्वा यथाविधिं पक्त्वा अपूपांश्च चतुरः श्रपयित्वा तांश्च चतुरः प्रतिदिशं स्तरणार्थम् ऐंद्रमित्यनेन देवताति(तेन इन्द्राय स्वाहेति होमस्य मन्त्रांतरस्य चानुक्तत्वात अत्र पायसश्रपणोपदेशात पायश्च प्रणीयते अपूपैः प्रतिदिशमग्निं स्तीर्त्वा

स्थालीपाकस्य जुहोतींद्राय स्वाहेति प्राशनांतेमरुद्भ्यो बलिं हरत्यहुतादो मरुत इति श्रुतेः।।३।।

ततः स्विष्टकृदादिप्राशनांते मरुद्भ : एकोनपञ्चाशत्संख्याभ्यो देवताभ्यः बलिं ददाति। ननु मरुतां देवतात्वे सति कथं होमसंबंधरहितत्वं बलिदानार्हत्वं च, शृणु अहुतादो मरुत देवातात्वे सति कथं अहुमतदन्त्यीत्यहुतादः मरुतो देवा इति श्रुतेः।

अर्थ-तदनन्तर स्थालीपाक चरु का इन्द्र वेफ उद्देश्य से स्वाहाकार करे।३।। ;यह मन्त्र किसी-किसी संहिता में नहीं भी है।द्ध

आ त्थेषु पलाशेषु मरुतोऽश्वत्थे तस्थुरितिवचनात्।।४।।

वेदवनात् आश्वत्थेषु पलाशेषु मरुतोऽश्वत्थे इमानि आश्थानि तेषु पिप्पलो वेषु पत्रेषु बलिं हरतीति शेषः। ननु बलिहरणं भूमौ अन्यत्र दृश्यते इह कस्मादश्वत्थपत्रेष्विति शंकते श्रुतेः।

अर्थ-पीपल वेफ पत्तों पर बलिदान करे, क्योंकि लिखा है कि मरुद्गण अश्वत्थ पर निवास करते है।।४।।

अर्थ-जो कि बलि प्रदान कर्म है वह ''शुक्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च'' इत्यादि यजुर्वेद वेफ ३९वें अध्याय वेफ ४०वें मन्त्र तक है। इन मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र में १-१ मरुद् देवता हैं। इस प्रकार ४९ मरुत् कहते हैं। प्रत्येक मन्त्र वेफ अन्त में 'नमः' पद भी बोलता जाय।।५।।

शुक्रज्योतिरितिप्रतिमन्त्रम्।।५।।

विमुखेन च।।६।।

मन्त्रापेक्षा यामाह शुक्रज्योतिरित्येवमादिभिर्मन्त्रैः नमस्कारांतैः प्रतिमन्त्रं विमुखेन च उग्र भीमश्चेत्येवमादिना।

मनसा।।७।।
नामान्येषामेतानिती श्रुतेः।।८।।

अध्येतृप्रसिद्धेन मनसा मनोव्यापारेण बलिं हरतीति वुफतः एभिर्मन्त्रैर्बलिहरणाम्। एषां मरुताम् एतानि शुक्रज्योति चित्रज्योतिश्चेत्येवमादिना विक्षिप इत्यंतानि नामानि इति श्रुतेः वेदवचनात्।

इन्द्रदैवीरिति जपति।।९।।

बलिहरणांते इन्द्रं दैवीरित्येतामृचं जपति।

अर्थ-विमुग्र संज्ञक 'उग्रश्च' "भीमश्च" इत्यादि 7वें मन्त्र से भी बलि दे। किन्तु यह बलि केवल मन से संकल्प से दे, पत्ते पर नहीं।। शुक्र ज्योति और सत्य ज्योति आदि मरुद्गणों के नाम हैं ऐसा श्रुति में लिखा है।। 7-9।।

ततो ब्राह्मणभोजनम्।। 10।।

।। इति सूत्रार्थः।।

तदनन्तर कर्म की पूर्ति के लिए ब्राह्मण को भोजन करावे।।10।।

।। अथ प्रयोगः ।। भाद्रपदपौर्णमास्यां प्रथमप्रयोगे मातृपूजापूर्वकं- माभ्युदयिकं विधायावसथ्याग्नौ इन्द्रयज्ञारूपं कर्म कुर्यात्। तत्र ब्रह्मोपवेशनादि- प्राशनांते विशेषः। सक्षौरं प्रणयनं मूलदेशे पयः इतरत्र जलं प्रक्षिप्य प्रणयेत् उपकल्पनीयानि तंडुलपिष्टं समाश्वत्थपर्णानि तत आज्यनिर्वापानंतरं प्रणीताभ्यः क्षीरमुत्सिच्य चरुपात्रे तण्डुलान्प्रक्षिप्य प्रणीतोदकेन पिष्टं संपूय चतुरोऽपूपा - मर्याज्यमधिश्रित्य तदुत्तरतः कर्परे चतुरोऽपूपान् अधिश्रयति। आसादनक्रमेणो- द्वासनादि तत उपयमनकुशादानात् पूर्वम् अपूपैः अग्नेः पुरस्तात् दक्षिणतः प मतः उत्तर एवैकैकेन परिस्तरणं कृत्वाऽऽज्यभागांते प ाज्याहुतिर्जुहोति। इन्द्राय स्वाहा इदमिद्राय इन्द्राण्यै स्वाहा प्रौष्टपदाभ्यः स्वाहा इदं प्रौष्टपदाभ्यः। ततः पायसेन इन्द्राय स्वाहेत्येकामाहुतिं हुत्वा इदमिद्रायेति त्यक्त्वा पायसेनैव स्विष्टकृ(ोमं विधाय महाव्याहृत्यादिहोमसं वप्राशनदक्षिणादानादि कुर्यात्। अथाग्नेरुत्तरतः प्राक् संस्थानि प्रागग्राणि सप्ताश्वत्थपत्राणि निधाय तेषु मरु ो बलीन् हरति। पायसशेषं ुवेणादायादाय शुक्रज्योतिरित्येवमादिभिः षण्मन्त्रैर्नमस्कारांतैरुग्र भीमश्चेत्येतेनैव सप्तमेन च मनसोच्चारितेन च प्रतिमन्त्रं सप्तसु मन्त्रेषु यथाक्रमं स्पष्टार्थं प्रयोग उच्यते। त्याग शुक्रज्योतिश्चेत्यारभ्य)तपा ात्यं हा नमः इदं शुक्रज्योतिषे चित्रज्योतिषे सत्यज्योतिष्मते शुक्राय)ततपसेत्यंहसे च ईदृ ् अन्यादृ ् चेत्यादिसरभसे नमः इदमीदृशे अन्यादृशसदृशे प्रतिसदृशे मिताय संमीताय सरभसे च)तश्चेत्यादिविधार्ये गणाय नमः इदमृतजिते सत्यजिते सेनजिते सुषेणाय अन्तिमित्राय दूरे अमित्राय गणाय च ईदृक्षास इत्यारभ्य यज्ञे अस्मि मः इदमीदृक्षेभ्यः एतादृक्षेभ्यः प्रतिसदृक्षेभ्योऽमितेभ्यः संमितेभ्यः सभरेभ्यो मरुद्भ स्वतवांश्चेत्यादि उज्जेषिणी नमः इदं स्वतवसे प्रघासिने सांतपनाय गृहमेधिने क्रीडिने शकिने उज्जेषिणे च उग्रश्चेत्यारभ्य विक्षिपः स्वाहा नमः मनसा इदमुग्राय भीमाय ध्वांताय धुनये सासहभियुग्ने विक्षिपाय चेत्यपि मनसा। तत इदं देवीरित्येतामृचं जपति यजमानः। ततो ब्राह्मण-भोजनमिति।।

टिप्पणी-बलि देने के बाद "इन्द्र दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्, यथेन्द्रं दैवीर्विशे मरुत्वतेऽनुवर्त्मानोऽभवन्। एवमिन्द्रं यजमानं दैवीश्च विशः मानुषीश्चानुवर्त्मानोऽभवन्" इस मन्त्र का पाठ करे। ;**नोट-**नमः से पूर्व चतुर्थी विभक्त लगावेद्ध

अर्थ-तदनन्तर एक ब्राह्मण को भोजन करावे।।10।।

पोषशी कण्डिका

पृषातक कर्म

आश्युज्यां पृषातका।।1।।

पृषातका इतिसंज्ञकं कर्म भवति पृषातका आश्वयुज्यां पौर्णिमायां भवति।

अर्थ-आश्विन पूर्णिमा के दिन पृषातक संज्ञक कर्म करे।।1।। ;घी मिले दही को पृषातक कहते हैंद्ध

पासमैद्रं श्रपयित्वा दधिमधुघृतमिश्रं जुहोतीन्द्रायेन्द्राण्या अश्विभ्या- माश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे चेति।।2।।

तत्र ऐंद्रम् इंद्रदैवत्यं पायसं चरुं संसाध्य दधिमधुघृतैर्मिश्रं कृत्वा आवसथ्याग्नौ जुहोति कथ्य इत्याह इन्द्रायेत्याभिः पंचभिर्मन्त्रैः स्वाहाकारान्तैः

प्राशनान्ते दधिपृषातकमंजलिना जुहोति ऊनं मे पूर्यतां पूर्णं में माविगात्स्वाहेति॥७॥

ततः स्विष्टकृत्प्रभृति प्राशनांते दध्ना पृषतवंफ पृषदाज्यं दधिपृषातक- मंजलिना ऊनं म इत्यादिना मंत्रेण जुहोति। पृषदाज्यं घृते दक्षिप्रक्षेपाद्भवति।

अर्थ-सं व भक्षण वेफ बाद दधि मिश्रित घी को अञ्जलि से आहुति दो। साथ ही ''ऊनं मे'' इत्यादि मन्त्र बोले॥७॥

दधिमधुघृतमिश्रममात्या अवेक्षंत आयात्विंद्र इत्यनुवावेफन॥५॥

ततो दधिमधुघृतमिश्रं हुतशेषं पायसम् अमात्या अमा च गृहं तत्र भवा अमात्या यजमानस्य गृह्याः भ्रातृपुत्रादयः आयात्विन्द्रोवस उप न इत्यारभ्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न इत्यंतेन अनुवावेफनावेक्षंते पश्यन्ति।

अर्थ-दधि मधु घृत मिश्रित हुतशेष चरू को अमात्य=यजमान वेफ घर वेफ भाई पुत्र आदि देखें। ;अमा=गृहं तत्र भवा अमात्याःद्ध साथ ही ''आयात्विन्द्रः०'' इत्यादि ''स्वस्तिभिः सदा नः'' इत्यन्त यजुर्वेद वेफ २०।५१-५४ तक मन्त्रों का पाठ करें॥५॥

मातृभिर्वत्सान्त्संसृज्यतां रात्रिमाग्रहायणीं च॥८॥

ताम् आश्वयुजीसम्बन्धिनीं रात्रिं वत्सान् मातृभिर्जननीभिर्धेनुभिः संसृजय संसृष्टान् कृत्वा तां रात्रिमिति 'कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे' इत्युपपदविभक्ति- द्वितीया। तेन संध्यानां वत्सान् संसृज्य सकलां रात्रि न बध्नीयात् न वेफवलं तामेव रात्रिं वत्ससंसर्गः आग्रहायणीं च मार्गशीर्षसंबंधितीमपि रात्रिं।

अर्थ-उस रात्रि में बछड़ों को उनकी माताओं से अलग न करें, इसी प्रकार आग्रहायणी पूर्णिमा की रात्रि में भी वत्सों को न बाँधे॥८॥

ततो ब्राह्मणभोजनम्॥९॥

॥इति सूत्रार्थः॥

अर्थ-पिफर कर्म सांगत्यार्थ ब्राह्मण भोजन करावें॥९॥

पफल-इस कर्म से घी दूध की वृ(ि होती है।

॥ अथ प्रयोगः ॥ तत्र आश्वयुज्यां पौर्णमास्यां पृषाकताख्यं कर्म भवति तद्यथा प्रथमप्रयोगे मातृपूजाभ्युदयिकपूर्वकम् आवसथ्याग्नौ ब्रह्मोप- वेशनादि। प्राशनांते विशेषः सक्षीराः प्रणीताः प्रणयेत् दधिमधुनी उपकल्पयेत् प्रणीताः क्षीरेण पायसं श्रपयेत् तत उपयमनकुशादानादर्वावंफ पायसे दधिमधु- घृतानि श्रपयेत् आज्यभागानंतरं दधिमधुघृतमिश्रेण पायसेन इन्द्राय स्वाहा इदमिंद्राण्यै स्वाहा इदमिंद्राण्यै अश्विभ्यां स्वाहा इदमश्विभ्यां आश्वयुज्यै पौर्णमास्यै स्वाहा इदमाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे स्वाहा इदमाश्वयुज्यै पौर्णमास्यै शरदे स्वाहा इदं शरदे। एवं पंचाहुतीर्हुत्वा तत एव पायसात् स्विष्टकृत हुत्वा महाव्याहृत्यादिदक्षिणादानांते स्थाल्याज्यं दधि आसिच्य पृषदाज्यं कृत्वा अंजलिना(ादाय ऊनं मे पूर्यतां पूर्ण मे माविगात्स्वाहेति जुहोति इदमग्नये। ततो दधिमधुघृतमिश्रं हुतशेषं पायसम् अमात्याः पुत्रादयः आयात्विंद्र इत्यनुवावेफन यूयं पात स्वस्तिभिः सदा न इत्यंतेन अवेक्षंते। ब्राह्मण भोजयिष्ये॥

सप्तदशी कण्डिका

सीतायज्ञ विधि

अथ सीतायज्ञः॥१॥

तत्र सीतायज्ञे व्रीहयश्च यवाश्च व्रीहियवास्तन्मध्ये यत्र यत्र यजेत तन्मयं स्थलीपावंफ श्रपयेत्द्ध तत्र सीतायज्ञे व्रीहयश्च यवाश्च व्रीहियवास्तन्मध्ये यत्र यत्र यस्मित् यस्मिन् व्रीहिकाले यवकाले वा यजेत सीतायज्ञेन तन्मयं व्रीहिमयं व्रीहिकाले यवमयं यवकाले स्थालीपावंफ चरू श्रपयेत्।

अर्थ-व्रीहि और यव में से जिस जिस काल में अर्थात् व्रीहिकाल में अर्थात् शरद् तु में यवकाल में अर्थात् वसन्त)तु में जब जब सीतायज्ञ करना जो तब तब व्रीहिकाल में व्रीहिमय यवकाल में यवमय स्थालीपाक चरू बनावे।।2।।

कामादीजानोन्यत्रापि व्रीहियवयोरेवान्यतरं स्थालीपावंफ श्रपयेत्।।3।।

कामात् इच्छातः अन्यत्रापि यज्ञादिप्रभृतिषु ईजानो यागं वुफर्वन् व्रीहिय वयोरेव अन्यतरं स्थालीपावंफ श्रपयेत्।

अर्थ-इच्छानुसार सीतायज्ञ से भिन्न स्थान पर भी यज्ञ न करने की इच्छावाला व्रीहि और यव में किसी एक का ही स्थालीपाक बनावे।।3।।

नपूर्वचोदितत्वात्सन्देहः।।4।।

अत्र व्रीहियवयोरन्यतरस्य यागमात्रसाधनद्रव्यत्वे न संदेह वुफतः पूर्वचोदित्वात् पूर्वोपदिष्टत्वात् वुफत्रेति चेत् व्रीहिन् यवान्वा हविषि इत्यत्र कल्पे अतो न संदेहः।

अर्थ-यहां एक शंका है कि व्रीहि और यव से यज्ञ का विधान तो आश्वलायन श्रौत सूत्र 1/4/1 से प्राप्त ही था, अतः पूर्ववत् विहित होने से इनवेफ द्वारा यज्ञ करने में कोई सन्देह नहीं था, पिफर यह विधान क्यों किया।।4।।

असंभवाद्विनिवृत्तिः।।5।।

ननु यावस्य चरोर्विनिवृत्तिर्दृश्यते कथमन्यतरं स्थालीपावंफ श्रपयेदिति चेत् उच्यते यावस्य चरोर्या निवृत्तिः सा असंभवात् न शास्त्रात् अतो नायम् असंभवविनिवृत्तस्य यावस्यः चरोः प्रतिप्रसवः यतः सामान्यशास्त्रविहितं क्वचिछास्त्रान्तरेण प्रतिषि(पुनर्विधीयमानं हि प्रतिप्रसवमुच्यते। इदं त्वसंभवात्प्रतिषि(कथमसंभव इति चेत् अनव ाविताांतरोष्मपक्वेफ ईषदसि(तण्डुलपावेफ चरूशब्दप्रयोगप्रत्ययात् अतो वाचनिको यावस्थालीपाको यत्र तत्र गुलिकाभिः संपाद्यते। यत्र पुनर्विकल्पः तत्रासंभवाद्विनिवृत्तिरिति।

अर्थ-इसका उत्तर देते हैं कि चरू शब्द बिना भाड वेफ निकाले ;अनव ावितद्ध तथा भीतर भीतर गर्मी से पवेफ खिले हुए चावलों वेफ स्थालीपाक में ही प्रसि(है। अतः इस यव से स्थालीपाक वेफ असम्भव होने से यहां उसका विधान किया गया है। सामान्य परिभाषा सूत्र यव पिष्ट में चरितार्थ है।।5।।

क्षेत्रस्य पुरस्तादुत्तरतो वा शुचौ देशे कृष्टे पफलानुपरोधेन।।6।।

क्षेत्रस्य सस्यवतः पुरस्तात् पूर्वस्या दिशि उत्तरतो वा उदीच्या वा शुचौ अमेध्य द्रव्यरहिते देशे कृष्टे पफालेन विलिखिते पफलस्य सस्यस्य अनुपरोधः अबाधः पफलानुपरोधेन सीतायज्ञः कर्त्तव्यः।

अर्थ-पवेफ खेत वेफ पफलों की जहाँ हानि न हो ऐसे खेत वेफ पूर्व या उत्तर भाग में पवित्र स्थान पर जोते हुए स्थान पर सीतायज्ञ करना चाहिए।।6।।

ग्रामे वोभयं संप्रयोगादविरोधात्॥7॥

यद्वा ग्रामे कर्त्तव्यः वुफतः उभयसंप्रयोगात् उभयं क्षेत्रं ग्राम संप्रयोक्तुम् अधिकरणतया संब(शक्यते पफलानुपरोधेन कृष्टत्वेन वा पुरस्तादुत्तरतो वा शुचौ देशे कृष्टे इति ग्रामस्यापि विशेषांगत्वेन संबध्यते अविरोधात्। ननु क्षेत्रग्रामयोः एकतरोपादानेन अन्यतरस्यः बाधः प्रसज्येत ततो विरोध इति चेत् न, न विरोधः अविरोधस्तस्मादविरोधाद्विकल्पादेकतरोपादानं न दोषः व्यवस्थासंभवेहि अष्टदोषपुष्टोपि विकल्पः आश्रीयते न्यायर्वि :।

अर्थ-अथवा ग्राम में सीतायज्ञ करे। क्योंकि न वहां पफल की हानि होगी तथा वहाँ हल भी चल जायेगा, ऐसा करने में कोई विरोध नहीं है॥7॥

यत्र श्रपयिष्यन्नुपलिप्त उ(तावोक्षितेग्निमुपसमाधाय तन्मिश्रैर्दर्भैस्तीर्त्वा{{ज्यभागाविष्ट्वा{{ ज्याहुतीर्जुहोती॥8॥

अर्थ-जब स्थालीपाक बनाना चाहे तब उस स्थान को गोबर से लीपे, वहाँ की मिट्टी स्प वेफ द्वारा उल्लिखित करे, पिफर जल से प्रोक्षण करे। पिफर वहाँ औपासनाग्नि की स्थापना करे, पिफर यव या तण्डुलों में से, जिसका चरु बनाना हो उससे दर्भों को लपेट दे और उन दोनों दर्भों से वेदी का परिस्तरण करे, पिफर दो आज्य भाग की आहुति दे। पिफर निम्न मन्त्रों से वेफवल आज्याहुति ही दे, ये मन्त्र पांच है तथा 'स्वाहाकार' युक्त है, इन्हें मूल में ही देखिए॥8॥

पृथिवी द्यौः प्रदिशो दिशो यस्मै द्युभिरावृताः तमिहेन्द्रमुपहये शिवा नः संतु हेतयः स्वाहा। यन्मे विंफचिदुपेप्सितमस्मिन् कर्मणि वृत्रहन् तन्मे सर्वं समृध्यतां जीवतः शरदः शतं स्वाहा॥ संपत्तिर्भूति- र्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ ं श्रीः प्रजामिहावतु स्वाहा यस्या{भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम् इंद्रपत्नीमुपहये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात्कर्मणि स्वाहा। अश्वावती गोभती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतंद्रिता खलमालिनीमुर्वरामस्मिन्कर्मण्युपहये ध्रुवां सा मे त्वनपायिनी भूयात्स्वाहेति॥9॥

यत्र क्षेत्रे ग्रामे वा चरुं श्रपयिष्यन् भवति श्रपयितुमिच्छन् भवति तत्र उपलिप्ते गोमयोदवेफन उ(ते स्प ेनोल्लिखिते अवोक्षिते मणिकोदवेफन सिक्ते अग्निमावसथ्य स्थापयित्वा अत्र पुनरुपलेनाद्युपदेशः दृष्टेपि प्राप्त्यर्थः न पुनः परिसमहनो(रणानिवृत्त्यर्थः तन्मिश्रैर्दर्भैस्तीर्त्वा तैर्व्रीहिभिर्यवैर्वा मिश्रा मिलिता दर्भास्तन्मिश्रैर्दर्भैः अग्निस्तीर्त्वा परिस्तीर्य आज्यभागयागानंतरं वक्ष्यमाणमन्त्रैः पृथिवी द्यौरित्यादिभिः पञ्चभिर्मन्त्रैः क्रमेण पञ्चाज्याहुतीर्जुहोति।

अर्थ-'पृथिवी द्यौः' से लेकर 'भूयात् स्वाहा' तक 5 मंत्र हैं॥9॥

स्थालीपाकस्य जुहोति सीतायै यज्ञायै समायै भूत्या इति॥10॥

अर्थ-तदनन्तर सीता आदि वेफ नाम से स्थालीपाक का होम करे॥10॥

मन्त्रवत्प्रदानमेवेफषाम् ॥11॥

स्थालीपाकस्य इत्यवलक्षणा तस्य सीताद्याभ्य ।तसृभ्यो देवताभ्य त आहुतीः क्रमेण तन्नाभिरेव चतुर्थ्यंतैः स्वाहकारांतैश्च जुहोति। एवेफषामाचार्याणांमते मंत्रवदेव प्रधानं होमः न स्वाहाकारः विंफ कारणम् आह।

अर्थ-वुफछ आचार्यों वेफ मत में मन्त्र बोलकर हवि को देवताओं को प्रदान करे, 'स्वाहाकार' न करे यह मत है॥11॥

स्वाहाकारप्रदाना इति श्रुतेर्विनिवृत्तिः॥12॥

स्वाहाकरणे प्रदानं येषु ते स्वाहाकरप्रदानाः जुहोतयः इति श्रुतेः। श्रुतौ श्रौतकर्मणि स्वाहाकारप्रदानत्वम् इदं तु स्मार्त्त कर्म्म ननु वषट्कारेण च देवेभ्योन्नं प्रदीयत इति सामान्यवचनाद गार्ह्येपि प्रवर्त्ततामिति चेत् न चात्र वषट्कारस्य प्रवृत्तिः किमित याज्यापुरोनुवाक्यवत्त्वे वषट्कारस्य प्रवृत्तिरिति याज्यापुरोनुवाक्यवत्त्वे वषट्कारस्य श्रवणात् तेन सह पाठाच्च स्वाहाकारो{प्यत्र निवर्त्तते न मन्त्रवत्प्रदानमित्येतस्य पक्षस्य विनिवृत्तिः निरासः अप्रवृत्तिः। वुफतः स्मार्त्ते{पि कर्मणि स्मृतिकारैः स्वाहाकारस्य विधानात् तथा छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः ''स्वाहास्वषट्कारनमस्कारा दिवौकसाम्। हंतकारो मनुष्याणां स्वधाकारः स्वधाभुजांय इति। अथ सीतायज्ञे चेत्यनने सूत्रेनातिदि भ्यो लांगलयोजनदेवताभ्यः तदभुतोपात्तस्थालीपा- वेफनास्मिन्नवसरे

अनपायिनः नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति॥13॥

अथ दक्षिणतो<निमिषा वर्मिण आसते ते त्वा दक्षिणतो गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनः नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीम- मिति॥14॥

अथ प ात् आभुवः प्रभुवो भूतिर्भूमिः पार्ष्णिः शुनंवुफरिः ते त्वा पश्चाद्गोपायन्त्प्रमत्ता अनपापिनः नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्योहरामीम- मिति॥15॥

अथोत्तरतः भीमा वायुसमा जवे ते त्वोत्तरः क्षेत्रे खले गृहे<ध्वनि गोपायन्त्वप्रमत्ता अनपायिनः नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीम- मिति॥16॥

प्रकृतादन्यस्मादाज्यशेषेण च पूर्ववद् बलिकर्म॥17॥
स्त्रियश्चोपयजेरन्नाचरितत्वात् ॥18॥
संस्थिते कर्मणि ब्राह्मणान्भोजयेद् ब्राह्मणान्भोजयेत्॥19॥

तत्र पुरस्ताद्य इत्यादिभि तुर्भिमंत्रैस्तरणशेषभाव उपसर्जनत्वं गताः प्राप्ता एव वुफशास्तेषु स्तरणवुफशेषु बलिं हरन्ति वेफभ्यः सीतागोप्तृभ्यः सीता लांगलप(तिस्तां गोपायन्ति ये ते सीतागोप्तारस्तेभ्यः स्तरणशेषवूफर्चाः प्राच्यादिषु चतसृषु दिक्षु यथालिंगं प्रकृतादन्यस्मादाज्यशेषेण च पूर्ववद्बलिकर्म प्राकृतात्प्रधानदेवतासम्बन्धिनो व्रैह्याद्यावाद्वा स्थालीपाकात् अन्योन्यः सि(ा- पात रुस्तस्मात्स्थालेनाज्यशेषेण च पूर्ववत् लांगलयोजनवत् बलिकर्म इंद्रपर्जन्यादिभ्यो बलिहरणं कर्त्तव्यं स्त्रिय ापियेरन्नाचरितत्वात् स्त्रिय भार्यादिकाः उपयजेरन् बलिकर्मणा ताभ्य एव देवताभ्यः पूजां वुफर्युः वुफत एव तत् आचरित्वात् प्राचीनाभिः स्त्रीभिः बलिकर्मणः कृतत्वात् संस्थिते कर्मणि ब्राह्मणान् भोजयेत् संस्थिते समाप्ते सीतायज्ञरूपे कर्मणि ब्राह्मणान् विप्रान् त्रिप्रभृतीन् भोजयेत् आशयेद् भक्ष्यभोजयादिभिः। द्विरुक्तिरत्र काण्डसमाप्तिनिबन्धना॥ इति सूत्रार्थः॥ अथ प्रयोगः॥ अथ सीतायज्ञः कृषि वुफर्वतः साग्नेः व्रीहिनिष्पत्ति काले यवनिष्पत्तिकाले च भवति तत्र प्रथम प्रयोगे मातृपूजाभ्युदयिवेफ भवतः अनंतरं क्षेत्रस्य पूर्वत उत्तरतो वा कृष्टे शुचौ देशे यत्र सस्यानि न नश्यन्ति तत्रेदं कर्म वुफर्यात् यद्वा ग्रामे पूर्वत उत्तरतोवा शुचिदेशस्य कर्षणं विधाय तत्र कर्तव्यम्। एवं देशद्वयान्तरे देशे पञ्चभूसंस्कारान् कृत्वा औपासनाग्निमुपसंधाय ब्रह्मोपवेशनादि वुफर्यात्। तत्र विशेषः व्रीहिकाले व्रीहिसस्यामिश्रैर्दर्भैरग्निं परिस्तृणति यवकाले यवसस्यमिश्रैः तथा ब्रीहिकाले व्रीहिमयम् एकमेव चरूं यवकाले यवशस्यं श्रपयति अपरं स्थालीपावेफ सि(मेवासादयति तण्डुलानन्तरम् उपकल्पयति बलि पटलवंफ बलिपटलकमिति शूर्पादिवंफ वैष्णवं पात्रं वुफल्माषौदनयुक्तमुच्यते। तण्डुलानन्तरं सि(चरूं प्रोक्षति आज्यभागानन्तरं पञ्चाहुतीर्जुहोति यथा-पृथिवी द्यौः प्रदिशो यस्मै द्युभिरावृताः। तमिहेंद्रमुपहहे शिवा नः सन्तु हेतयः, स्वाहा॥ इदमिंद्राय यन्मे किंचिदुपेप्सितम् संपत्तिर्भूमिर्वृष्टिर्ज्यैष्ठ श्रीः प्रजामिवाहयतु स्वाहा ॥ इदमिंद्राय। यस्याभावे वैदिकालौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणाम् इन्द्रपत्नीमुपहये सीतांसा मे<स्त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा इदमिंद्रपत्न्यै अश्वावती गोमती सूनृतावती बिभर्ति या प्राणभृतो अतंद्रिता स्वमलमालिनामुर्वरामस्नि् कर्मण्युपहये ध्रुवां सा मे<स्त्वनपायिनी भया स्वाहा इदं सीतायै॥ अथ प्रकृतस्य स्थालीपाकरस्य चत ु आहुतिजुहोति यथा सीतायै स्वाहा इदं सीतायै जयायै स्वाहा इदं जयायै इदं पर्जन्याय अश्विभ्यां स्वाहा इदमश्विन्याम्रूद्म : स्वाहा इदं मरुद्भयः उदलाकाश्वपाय स्वाहा इदमुदलाकाश्यपाय स्वातिकायै स्वाहां इदं स्वातिकायै सीतायै स्वाहा इदं सीतायै अनुमत्यै स्वाहा इदमनुमत्यै यथादैवतं त्यागः प्रकृतात्सि(न्चरोः स्विष्टकृतः। ततोमहाव्याहृत्यादि ब्रह्मणे दक्षिणादानांतं कृत्वा क्षेत्रस्य पुरस्तादारभ्य प्रादक्षिण्येन प्रतिदिशं स्तरणशेषवुफशतृणान्यास्तीर्य तेषु मुख्येन चरूणा यथास्तरणं वक्ष्यमाणमन्त्रैर्बलीन् हरति यथापुरस्ताद्य एत आसते सुधन्वा निषंगिणः। ते त्वा पुरस्ताद्गोपायंत्वप्रमत्ता अनपायिनो नमः। एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरीमीमम् इति पुरस्ता लिहरणमंत्रः। इदं सुधन्वेभ्योनि- षंगिभ्यः। अथ दक्षिणतो निमिषावर्मिण आसते ते त्वा दक्षिणतो गोपायत्वप्रमत्ता अनपायिनी नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीमम् इति दक्षिणतो बलिहरणमन्त्रः इदमनिमिषेभ्यो वर्मिभ्यः। अथ पश्चाद् भुवः प्रभुवोभूतिर्भुमिः पार्ष्णिः शुनंवुफरिः तेत्वा पश्चाद् गोपार्यत्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीममिति पर्ि मतो बलिहरणमन्त्रः। इदमाभूभ्यो भूत्यै भूम्यै पार्ष्ण्यै शुनं वुफर्यै। अथोत्तरतो भीमा वायुसमा जवे ते त्वोत्तरतः क्षेत्र ले गृहे<ध्वनि गोपायंत्वप्रमत्ता अनपायिनो नम एषां करोम्यहं बलिमेभ्यो हरामीमम् इति उत्तरतो बलिहरणमन्त्रः। इदं भीमेभ्यो वायुसमाजवेभ्यः। अथ सि(चरूं शेषं स्थालीनाज्यशेषेण सन्नीयते नेंद्रादिभ्यो<नुमत्यंतेभ्यो लांगलयोजनदेवताभ्यो बलिं हरति। ततो बलिपटलवेफन स्त्रियश्चन्द्रादिभ्यो हलयोजनदेवताभ्यः अन्येभ्य वृ(व्यवहारसि(भ्यः क्षेत्रपालादिभ्यः बलिदानं वुफर्युः ततो ब्राह्मणान्भोजयेत्। इति सप्दशी कण्डिका॥17॥

अर्थ-उक्त नियम की यहाँ निवृत्ति समझनी चाहिए, क्योंकि स्मार्तकर्मों में भी स्वाहाकार का विधान है, तथाहि-’स्वाहाकार वषट्कार

कण्डिका वेफ तृतीय मन्त्र में उक्त ला ल योजन देवताओं को भी बलि अर्पण करे॥18॥

अर्थ-गृह स्त्रियाँ भी उक्त इन्द्रादि वेफ लिए बलि द्वारा पूजन करें क्योंकि ऐसा ही पूर्वज स्त्रियों ने आचरण किया है॥19॥

अर्थ-कर्म की समाप्ति पर ब्राह्मण भोजन करावे॥ वाक्य की आवृत्ति काण्ड समाप्ति की सूचना वेफ लिए है॥20॥

॥ इति द्वितीयः काण्डः ॥